रसेन्द्रपुराण

हिन्दी टीका सहित

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन
मुंबई

श्रीधन्वन्तरये नमः ।

पटियालाराज्यान्तर्गत-टकसालनिवासी पटि-
यालाके राज्यवैद्य वैद्यरत्न पं॰ रामप्रसाद
वैद्योपाध्याय प्रणीत-

रसेन्द्रपुराण ।

भाषाटीकासहित ।

मुद्रक एवं प्रकाशकः
खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

संस्करण : मार्च २०१९, संवत् २०७५

मूल्य : ४५० रुपये मात्र ।

मुद्रक एवं प्रकाशकः
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013.

भूमिका ।

यह रसेन्द्रपुराण तीन भागोंमें सम्पूर्ण होगा जिसका यह प्रथम भाग छपकर तैयार है यद्यपि रसग्रन्थोंकी भाषा बनानेमें भाव स्पष्ट करनेमें प्रायः यथेष्ट प्रयत्न कियाजाता है तथापि यह विद्या प्रायः गुरुद्वारा सीखनेसेही ठीक आसकती है । इस प्रथम भागमें रस उपरस धातु उपधातुओंका शोधन मारण तथा यंत्रादिविधान और पारदके विशेष संस्कार उचित रूपसे लिखे गये हैं । दूसरे भागमें रसोंके ज्वरादि रोगोंपर क्रमानुसार सिद्ध योग लिखे गये हैं जो प्रतिरोगपर क्रमानुसार प्रयोग करनेसे शीघ्र फलप्रद होंगे । यह भागभी शीघ्रही तैयार होकर छपनेवाला है ।

विनीत—

रामप्रसाद.



॥ श्री ॥

रसेंद्रपुराण-विषयानुक्रमणिका ।

षड्विंश अध्याय ।

सप्तविंश अध्याय ।

ऊनत्रिंश अध्याय ।

त्रिंश अध्याय ।

इति अनुक्रमणिका समाप्ता।

॥ श्रीधन्वन्तरये नमः ॥

श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः ।

पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीत–

रसेन्द्रपुराणम् ।

भाषाटीकासहितम् ।

नमस्तस्मै महेशाय कृपया यस्य लेखनी ।
अज्ञस्य हस्तमागत्य विद्वद्भिरपि पूज्यते ॥ १ ॥
प्रसादाद्यस्य देवस्य आयुर्वेदमहोदधौ ।
प्रवृत्तिर्मम वैचित्र्यान्नमस्तस्मै पिनाकिने ॥ २ ॥
नमः शिवाय साम्बाय सगणाय ससूनवे ।
भस्मोद्धूलितदेहाय सर्वशक्तिमयाय च ॥ ३ ॥

जिसकी कृपासे मूर्खके भी हाथमें आई हुई लेखनी विद्वानोंके पूजने योग्य बनजाती है उस जगदीश्वर महादेवको प्रणाम करता हूं। जिस पिनाकधारी, सर्व शक्तिमान् भस्मसे धूसर हुई देहवाले देवताकी कृपासे आयुर्वेद रूपी महासागरमें मेरी विचित्रतासे प्रवृत्ति है। उस देवता श्रीगणेशजी और पार्वतीजी तथा नन्दी वीरभद्रादि गणोंसे शोभायमान महादेवको प्रणाम है ॥ १–३ ॥

वैद्यो रामप्रसादोऽहं ध्यात्वा चित्ते महेश्वरम् ।
निबध्नामि रसेन्द्रादिपुराणं रससम्मितम् ॥ ४ ॥

श्रीमहेश्वर महादेवका अन्तःकरणसे ध्यान करके रामप्रसाद नामक वैद्य मैं रसयुक्त रसेंद्रपुराण नामके ग्रंथको निबन्धन करता हूँ। अर्थात्–ग्रन्थ रूपसे लिखता हूँ ॥ ४ ॥

एकदा पर्वते जातः संवादो गुरुशिष्ययोः ।
नानावृक्षसमाकीर्णे शोभिते वनदारुभिः ॥ ५ ॥
पद्मकाष्ठादि संयुक्ते वनपुष्पैरलंकृते ।
लताप्रतानैर्गुल्मैश्च नानौषधिसमन्विते ॥ ६ ॥

यस्मिन्कन्दादयः सर्वे सुलभा हि भिषग्वरैः ।
मण्डूकपर्णीमुत्पाट्य कन्दादीनौषधीस्तथा ॥ ७ ॥
छायायां समुपाविष्टं समीपे निर्झरस्य वै ।
गुरुं विनीतभावेन भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ ८ ॥
प्रणम्य चोपसंविश्य भूमौ संस्थाप्य चौषधीः ।
पृष्टवान् रसधातूनां क्रियां शीघ्रफलप्रदाम् ॥ ९ ॥

एक समय पहाडके ऊपर रसक्रिया और धातुक्रियाके सम्बन्धमें गुरु शिष्योंका जो संवाद हुआ वह इस रसेन्द्रपुराणमें लिखते हैं । जिस पर्वतपर यह प्रश्नोत्तर हुए वह अनेक प्रकारके सुन्दर वृक्ष और वनस्पतियोंसे शोभायमान था । पद्म, काष्ठ, वनपुष्प आदिसे अलंकृत था । तथा अनेक लता, प्रतान औषधियें, सब प्रकारके कन्द आदि वनौषधियें इस स्थानमें वैद्योंके लिये सुलभ थीं । इस मनोहर स्थानमें एक सुयोग्य शिष्य ब्राह्मी और अनेक कन्दादि लेकर जलके झरनेके किनारे छायामें सुखपूर्वक बैठे हुए गुरुके पास पहुंच भक्तियुक्त चित्तसे प्रणाम कर और औषधियोंको पृथिवी पर स्थापन कर विनीत भावसे बैठ गया । फिर हाथ जोडकर शीघ्र फलके देनेवाली रस धातुक्रियाके सम्बन्धमें इस प्रकार पूंछने लगा ॥ ५-९ ॥

शिष्य उवाच ।

भगवन् रसधात्वादिसाधकस्य मया श्रुतम् ।
सिद्धिः संजायते शीघ्रं न तथा वनदारुभिः ॥ १० ॥
चरके सुश्रुते नैव न वै वाग्भट्टनिर्मिते ।
हारीतसंहितायां न क्वचिद्दृष्टा रसक्रिया ॥ ११ ॥
केन कस्मै प्रदिष्टेऽयं केन वै निर्मिता पुरा ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि हृद्या वै रसवैद्यके ॥ १२ ॥

हे भगवन् ! रस और धातु आदि सिद्ध करके चिकित्सा करनेवाले वैद्योंकी जिस प्रकार शीघ्र सिद्धि होती है उस प्रकार काष्ठादि वनौषधियोंसे शीघ्र सिद्धि प्राप्त नहीं होती । इसलिये रसवैद्योंको शीघ्र यश प्राप्त होता है ऐसा सुना है । परन्तु यह रसक्रिया न तो चरकमें ही देखी है और न सुश्रुत और वाग्भट्टमें

इसका वर्णन है एवं हारीत संहितामें भी नहीं है । यह रसक्रिया किसने किसके प्रति उपदेश की है और किसने निर्माण की है यह सुननेकी मेरी बडी इच्छा है । अतः कृपाकर वह रसक्रिया आज इस रस वैद्यकमें वर्णन कीजिये ॥ १०–१२ ॥

एवं शिष्यमुखाच्छ्रुत्वा प्रश्नं वै रससंयुतम् ।
उवाच कृपया तत्र रसग्रन्थविचक्षणः ॥ १३ ॥
ब्रह्मणा हि यथा प्रोक्तं आयुर्वेदं प्रजापतिः ।
जग्राह निखिलेनादावश्विनौ तु पुनस्ततः ॥ १४ ॥

इस प्रकार शिष्यके मुखसे रससम्बन्धि प्रश्न सुनकर रसके ग्रन्थोंको जाननेमें सुयोग्य गुरु इस प्रकार कृपापूर्वक कहने लगे कि जिस प्रकार ब्रह्माने आदि कालमें आयुर्वेदको कथन किया वह सम्पूर्ण सांगोपांग दक्षप्रजापतिने ग्रहण किया, फिर प्रजापतिसे अश्विनीकुमारने सांगोपांग ग्रहण किया ॥ १३ ॥१४ ॥

देवासुररणे देवा दैत्यैर्ये सक्षताः कृताः ।
अक्षतास्ते कृताः सद्यो ह्यश्विभ्यामद्भुतं महत् ॥ १५ ॥
वज्रिणोऽभूद्भुजस्तम्भः स चाश्विभ्यां चिकित्सितः ।
सोमान्निपतितश्चन्द्रस्ताभ्यामेव सुखीकृतः ॥ १६ ॥
भार्गवश्च्यवनः कामी वृद्धः सन्विकृतिं गतः ।
वीर्यवर्णस्वरोपेतः कृतोश्विभ्यां पुनर्युवा ॥ १७ ॥
एतैश्चान्यैश्च बहुभिः कर्मभिर्भिषजां वरौ ।
बभूवतुर्भृशं पूज्याविन्द्रादीनां दिवौकसाम् ॥ १८ ॥
दृष्ट्वा नासत्ययोर्लोके प्रतिष्ठां महतीं तदा ।
हरस्याज्ञां समागृह्य वीरभद्रो मुदान्वितः ॥ १९ ॥
प्रययाचे च ब्रह्माणमायुर्वेदस्य पारगम् ॥
अध्यापयायुर्वेदं मां यशस्यं रोगनाशकम् ॥ २० ॥
तमुवाच ततो ब्रह्मा वीरभद्रं गणोत्तमम् ॥

न योग्योऽस्ति भवान्वीर चंचलत्वाद्धि साधने ॥ २१ ॥
सत्त्वप्रधानैः साध्योऽयमथ दत्तंप्रजापतिम् ॥ २२ ॥

एक समय देवासुर संग्राममें जिन जिन देवताओंको दैत्योंने घायल कर दिया उन सबको अश्विनीकुमारने आरोग्य और व्रणरहित कर दिया। वह इनका विचित्र चमत्कार देख सबको बडा आश्चर्य हुआ। इसी प्रकार इन्द्रकी स्तम्भित भुजाओंको इन्होंने चिकित्सा कर आरोग्य किया। तथा अमृतसे रहित हुए और राजयक्ष्मासे पीडित दुःखित चन्द्रमाको आरोग्य कर दिया। ऐसे ही भृगुवंशोत्पन्न कामकी इच्छावाले महावृद्ध च्यवनऋषिको जिसके बुढापेके कारण सब अंग गलित हो चुके थे अश्विनीकुमारने इस वृद्धको बल, वीर्य, वर्ण और स्वरयुक्त कर फिर युवा बनादिया ॥ ऐसे ऐसे अनेक कर्मोंके प्रभावसे यह वैद्योंमें इन्द्रादिक देवताओंके निरन्तर पूज्य हुए और इनका यश त्रिलोकीमें फैल गया। इस प्रकार सब संसारमें इनकी अधिक प्रशंसा और प्रतिष्ठा देख वीरभद्रकोभी आयुर्वेद जाननेकी उत्कट इच्छा प्रकट हुई। फिर महादेवजीकी आज्ञा लेकर प्रसन्न होता हुआ वीरभद्र आयुर्वेदके पारदर्शी ब्रह्माजीके पास पहुंचा और विनयपूर्वक प्रार्थना करने लगा कि हे ब्रह्मन्! यशदायक और रोगोंको नष्ट करनेवाले आयुर्वेदका मुझे भी अध्ययन कराइये। यह सुनकर ब्रह्माजीने कहा हे वीर! तुम आयुर्वेद अध्ययन करनेके योग्य नहीं हो तुममें अधिक चंचलता है इस लिये तुम आयुर्वेदका साधन नहीं कर सकोगे। आयुर्वेद तो सत्त्वप्रधान दयालु पुरुषोंके लिये है और दूसरी बात यह है कि मैं आयुर्वेद दक्षप्रजापतिको दे चुका हूं इस लिये तुमको नहीं पढा सकता ॥ १५–२२ ॥

विधिप्रोक्तं वचः श्रुत्वा स्वापमानं च चिंतयन् ।
संभग्नाशो निरुत्साहः क्रुद्धः प्रस्फुरिताधरः ॥ २३ ॥
दुरात्मन् यत्कृतं चाद्य ह्यपमानो ममेदृशः ।
गृहाण तत्फलं ब्रह्मन्नित्युक्त्वा बलसन्निभः ॥ २४ ॥
छेदयामास शूलेन चतुराननमस्तकम् ।
दक्षस्यापि सभां प्राप्य कृतवाञ्छेदनादिकम् ॥ २५ ॥
एवं कृत्वा गतो वीरो ह्यपमानप्रतिक्रियाम् ।
अश्विभ्यां तत्र चागत्य विधातुर्मस्तकादयः ॥ २६ ॥

कृताः शालाक्यशल्यादिक्रियाभिः पूर्ववत्कृशम् ।
तच्छुत्वा वीरभद्रोऽसौ लज्जितः शिवसन्निधौ ॥ २७ ॥
आगत्य निजवृत्तांतं सर्वं तत्र न्यवेदयत् ।
भस्मीभूतो भविष्यामि कृत्वा काष्ठमयीं चिताम् ॥ २८ ॥
कृपया ब्रूहि वो नाथ रोगानीकहरीं क्रियाम् ।
सर्वं श्रुत्वा ततो देवो भूतनाथो महेश्वरः ॥ २९ ॥
शीघ्रफलप्रदां श्रेष्ठां रसधातुमयीं क्रियाम् ।
वीरभद्राय शिष्याय क्रमशः पर्यपाठयत् ॥ ३० ॥

ऐसे ब्रह्माके वाक्यको सुनकर अपने अपमानकी चिन्ता करता हुआ वीरभद्र क्रोधसे भर गया उत्साह और आशा जाती रही होठ मारे क्रोधके फरकने लगे फिर बोला हे दुरात्मन् ! हे ब्रह्मन् ! जैसा तैंने आज इस प्रकार मेरा अपमान किया है उसके फलको ग्रहण कर यह कहकर अग्निके समान संतप्त वीरभद्र (भैरवने) त्रिशूलसे ब्रह्माका मस्तक काट डाला दक्षकी सभामें जाकर भी बहुतसा छिन्न भिन्न किया इस प्रकार अपने अपमानकी प्रतिक्रिया करके वीरभद्र चल पडे इतनेमें अश्विनीकुमारोंने शल्य शालाक्यक्रियासे ब्रह्माका मस्तक जोडदिया दक्षकी सभामें जा चिकित्सा कर सब पूर्ववत् आरोग्य कर दिये इस खबरको वीरभद्र सुनकर बडा लज्जित हुआ और शिवजीके पास जा सब वृत्तान्त सुनाकर कहने लगा कि हे नाथ ! अब मैं लकडियोंको इकट्ठा करके चिता बनाकर जलजाऊंगा नहीं तो सब रोगोंके समूहको शीघ्र नष्ट करनेवाली क्रियाका कथन करो। भूतनाथ महादेवने इस संपूर्ण वृत्तान्तको सुनकर कृपा करके वीरभद्ररूपी शिष्यके पास रस और धातुओंका (विधिपूर्वक) कथन किया ॥ २३-३० ॥

भूतानुकंपः प्रवणो महेशः कैलासवासी जगदादिनाथः ।
स्ववीर्ययुक्तागदयोगरत्नैः कीर्णानि तंत्राणि बहूनि चक्रे ॥ ३१ ॥

संपूर्ण प्राणियोंपर कृपाकी इच्छावाले कैलासवासी जगत्के आदिदेव महादेवने रससंबधी अनेक अगद और रसके योगोंसे अनेक ग्रंथ रोगोंको नष्ट करनेके लिये बनाये (अर्थात् वीरभद्रके पास कथन किये) ॥ ३१ ॥

रसविद्या पराविद्या त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ।
भुक्तिमुक्तिकरी यस्मात्तस्माज्ज्ञेया गुणान्वितैः ॥ ३२ ॥

रसविद्या सब विद्याओंमें परम श्रेष्ठ है और परम दुर्लभ है संसारके सब सुखोंको और मोक्षके देनेवाली है इसलिये सर्वगुणसंपन्न विद्वानोंको अवश्य सीखनी चाहिये ॥ ३२ ॥

प्रशंसां रसविद्यायाः श्रुत्वा गुरुमुखात्ततः ॥ ३३ ॥
उवाच ब्रूहि मे पुण्यं रसस्याद्भुतकर्मणः ।
उत्पत्तिं संस्कृतिं चैव क्रमेण भिषजां वर ॥ ३४ ॥

इस प्रकार रसविद्याकी प्रशंसा गुरुमुखसे सुनकर शिष्य कहने लगा हे श्रेष्ठ वैद्य ! इस अद्भुत कामके करनेवाले रस (पारद) की उत्पत्ति और संस्कार आदि पुण्यकथा क्रमपूर्वक मुझको सुनाइये मुझे इसके सुननेकी बडी उत्कंठा है॥३३॥३४॥

पारदप्रशंसा ।

हरति सकलरोगान्मूर्च्छितो यो नराणां
वितरति किल बद्धः खेचरत्वं जवेन ।
सकलसुरमुनीन्द्रैर्वन्दितः शम्भुबीजं
स जयति भवसिन्धोः पारदः पारदोऽयम् ॥ ३५ ॥

जो पारा मूर्च्छित होनेसे मनुष्योंके सभी रोगोंका हरण करता है तथा बद्ध हुआ वेगसे आकाशमें विचरनेकी शक्ति देता है। तथा सकल सुर मुनियों-करके पूजित शिवबीज संसारसागरसे पार करनेवाला ऐसा यह पारा है ॥ ३५ ॥

श्रीमान्सूतनृपो ददाति विलसल्लक्ष्मीं वपुः शाश्वतं
स्वानां प्रीतिकरीमचंचलमनो मातेव पुंसां यथा ॥
ह्यन्यो नास्ति शरीरनाशकगदप्रध्वंसकारी ततः
कार्यं नित्यमहोत्सवैः प्रथमतः सूताद्वपुःसाधनम् ॥ ३६ ॥

श्रीमान् सूतराज (पारा) शरीरको सुन्दर स्थिर कान्तियुक्त और अविनाशी देह बना देता है। माताकी समान रक्षा करता है, शरीरको नष्ट करनेवाले रोगोंका नाश करनेवाला ऐसा दूसरा औषध नहीं है, इससे नित्य प्रति प्रातःकाल बडे उत्साहके साथ पारेके सेवनसे शरीरका साधन करना चाहिये ॥ ३६ ॥

साक्षादक्षयदायको भुवि नृणां पञ्चत्वमुच्चैः कुतो
मूर्च्छां मूर्च्छितविग्रहो गदवतां हन्त्युच्चकैः प्राणिनाम् ॥
चन्द्रं प्राप्य सुरासुरेन्द्रचरितां तां तां गतिं प्रापयेत्
सोऽयं पातु परोपकारचतुरः श्रीसूतराजो जगत् ॥ ३७ ॥

पारद-मनुष्यके शरीरको अमर बना सकता है, अकाल मृत्युको जीत ले तो बातही क्या है। मूर्च्छित पारद मूर्च्छा और संपूर्ण रोगोंको दूर करता है। यदी ठीक स्वर्णभक्षी बनकर चंद्रोदय बन जावे या जलौका बद्ध हो जाय तो सुर और असुरोंकीसी आकाश गमनादिकी गतिको देताहै। ऐसा यह सूतराज संसारके ऊपर उपकार करनेमें चतुर जगत्की रक्षा करे ॥ ३७ ॥

यो न वेत्ति कृपाराशिं रसं हरिहरात्मकम् ।
वृथा चिकित्सां कुरुते स वैद्यो हास्यतां व्रजेत् ॥ ३८ ॥
शुष्केन्धनमहाराशिं यथा दहति पावकः ।
तद्वद्दहति सूतोऽयं रोगान्दोषत्रयोद्भवान् ॥ ३९ ॥

विष्णु और शिव स्वरूप दयालु पारेको जो नहीं जानता वह व्यर्थ चिकित्सा करता है और उसकी हँसी होती है। जैसे-सूखी लकडियोंके समूहको अग्नि भस्म करती है उसी प्रकार तीनों दोषांसे होनेवाले रोगोंको यह पारा जलाता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

मोहयेद्यः परान्बद्धो जीवयेच्च मृतः परान् ।
मूर्च्छितो बोधयेदन्यांस्तं सूतं को न सेवते ॥ ४० ॥

स्वयं बँध कर जो औरोंको मोहवश करे और मरकर दूसरोंको जिलावे तथा स्वयं मूर्च्छित होकर औरोंको जगाता है ऐसे पारेको कौन नहीं सेवन करता है ॥ ४० ॥

आयुर्द्रविणमारोग्यं वह्निर्मेधा महद्बलम् ।
रूपयौवनलावण्यं रसोपासनया भवेत् ॥ ४१ ॥

पारेके सेवनसे आयु, द्रव्य, आरोग्यता, जठराग्नि, बुद्धि, आतिशय बल, तथा रूप यौवन और लावण्यता होते हैं ॥ ४१ ॥

मारयेज्जारितं सूतं गंधकेनैव मूर्च्छयेत् ।
बद्धः स्याद्द्रुतिसत्त्वाभ्यां रसस्यैवं त्रिधा गतिः ॥ ४२ ॥

प्रथम कंचुकी रहित शुद्धपारदको गंधक जारणविधिसे जारण करे जारित पारदको मारण करना चाहिये। गंधक द्वाराही पारेको मूर्च्छित करे। द्रुति और सत्त्वसे पारेको बद्ध करना चाहिये इस प्रकार पारेकी तीन प्रकारकी गति कही है ॥ ४२ ॥

रसकी प्रधानता ।

अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसंगतः ।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधेभ्योऽधिको रसः ॥ ४३ ॥

थोडीसी ही मात्रा (खुराक) होनेसे इसको खानेमें अरुचि न होनेसे और शीघ्र आरोग्यदाई होनेसे सम्पूर्ण औषधियोंसे रसकी श्रेष्ठता है (क्योंकि इसके सेवनसे योगसिद्धि और मोक्ष तक होसकता है) ॥ ४३ ॥

अचिराज्जायते पुत्र शरीरमजरामरम् ।
मनसश्च समाधानं रसयोगादवाप्यते ॥ ४४ ॥
सत्त्वं च लभते सद्यो विज्ञानं ज्ञानपूर्वकम् ।
सत्त्वं मंत्राश्च सिद्ध्यन्ति योऽश्नाति मृतसूतकम् ॥ ४५ ॥
यावन्न शक्तिपातस्तु न यावत्पाशकृन्तनम् ।
तावत्तस्य कुतो बुद्धिर्जायते भस्मसूतके ॥ ४६ ॥
यावन्न हरबीजं तु भक्षयेत्पारदं रसम् ।
तावत्तस्य कुतो मुक्तिः कुतः पिंडस्य धारणम् ॥ ४७ ॥
स्वदेहे खेचरत्वं च शिवत्वं येन लक्ष्यते ॥ ४८ ॥

हे पुत्र ! इस पारदके सेवन करनेसे जल्दी देह अजर अमर होता है, तथा मनका समाधान होता है, सत्त्व और ज्ञान विज्ञानकी प्राप्ति होती है बल और मंत्रसिद्धि प्राप्त करता है । जबतक शक्तिपात और फांसोंका कटना नहीं होता तबतक इस प्राणीकी पारेके भस्मको खानेमें कब बुद्धि होती है । जबतक जन पारेको नहीं खाता तबतक इसकी रोगोंसे मुक्ति और देहका धारण कैसे होसकता है, जिस पारेको खानेसे यह प्राणी इस अपने देहसे ही आकाशमें गति तथा शिवत्वको प्राप्त होता है ॥ ४४–४८ ॥

दोषहीनो रसो ब्रह्मा मूर्च्छितस्तु जनार्दनः ।
मारितो रुद्ररूपी स्याद्बद्धः साक्षात्सदाशिवः ॥ ४९ ॥

निर्दोष पारा ब्रह्मा है, मूर्च्छित विष्णु और मारा पारा रुद्र है और जो पारा बद्ध है वह साक्षात् सदाशिवका स्वरूप है ॥ ४९ ॥

साध्येषु भेषजं सर्वमीरितं तत्त्ववेदिना ।
असाध्येष्वपि दातव्यो रसोऽतः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ५० ॥
हतो हन्ति जराव्याधिं मूर्च्छितो व्याधिघातकः ।
बद्धः खेचरतां धत्ते कोऽन्यः सूतात्कृपाकरः ॥ ५१ ॥

प्रायः वैद्योंने साध्य रोगोंमें संपूर्ण औषधें कही हैं, असाध्य रोगोंमें कोई नहीं कही, परन्तु पारा असाध्यरोगोंमें देना कहा है इसीसे पारेकी श्रेष्ठता है । मरा हुआ पारा बुढापे और रोगोंको दूर करता है, मूर्च्छित पारा रोगोंको हरता और बद्ध पारा आकाशमें जानेकी शक्ति देता है; बताओ पारेको छोड कौन ऐसा दयालु है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

केदारादीनि लिंगानि पृथिव्यां यानि कानिचित् ।
तानि दृष्ट्वा तु यत्पुण्यं तत्पुण्यं रसदर्शनात् ॥ ५२ ॥

केदार इत्यादि जितने शिवलिङ्ग इस भूमिमें हैं उनके दर्शनसे जो पुण्य होता है वही पारदके दर्शनसे होता है ॥ ५२ ॥

विधाय रसलिंगं यो भक्तियुक्तः समर्चयेत् ।
जगत्त्रितयलिंगानां पूजाफलमवाप्नुयात् ॥ ५३ ॥

जो मनुष्य पारेका लिंग बनाकर पूजन करता है वह त्रिलोकीके महादेवोंकी मूर्त्तियोंके पूजाफलको प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥

चन्दनाऽगुरुकर्पूरकुंकुमान्तर्गतो रसः ।
मूर्च्छितः शिवपूजा सा शिवसान्निध्यसिद्धये ॥ ५४ ॥
भक्षणाद्विधिपूर्वं हि हन्ति पापत्रयं रसः ।
दुर्लभं ब्रह्मविष्ण्वाद्यैः प्राप्यते परमं पदम् ॥ ५५ ॥

मूर्च्छित पारेको चन्दन, अगर, कपूर और केशरके भीतर स्थापन करना वही शिवपूजा कही जाती है यह शिवप्राप्तिका हेतु है विधिपूर्वक पारेका सेवन करना तीन जन्मोंके पापोंको नाश करता है । जो पद ब्रह्मा विष्णु और शिवको दुर्लभ है उस पदको पारदका सेवन करनेवाला पाता है, जो मनुष्य अपने

हृदयकमलमें स्थित पारदका ध्यान करताहै वह शीघ्र ही अनेक जन्मान्तरके उपार्जित पापोंसे छूट जाता है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

स्वयम्भूलिङ्गसाहस्रैर्यत्फलं सम्यगर्चनात् ।
तत्फलं कोटिगुणितं रसलिङ्गार्चनाद्भवेत् ॥ ५६ ॥
रसविद्या परा विद्या त्रैलोक्येऽपि च दुर्लभा ॥
भुक्तिमुक्तिकरी यस्मात्तस्माद्यत्नेन गोपयेत् ॥ ५७ ॥

अपने आप उत्पन्न हुए हजारों शिवलिङ्गोंकी पूजासे जो पुण्य होता है उससे करोड गुना फल पारेके लिङ्गके पूजनसे होता है । रसविद्या श्रेष्ठविद्या कहलाती है और तीनों लोकोंमें दुर्लभ है यह भोग और मोक्षकी दाता है, इससे इसको यत्नसे रक्षा करे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

शताश्वमेधेन कृतेन पुण्यं गोकोटिभिः स्वर्णसहस्रदानात् ।
नृणां भवेत्सूतकदर्शनेन यत्सर्वतीर्थेषु कृताभिषेकात् ॥ ५८ ॥

सौ अश्वमेध यज्ञ करनेसे जो पुण्य होता है, करोड गोदानोंसे जा पुण्य होताहै और हजार तोला सुवर्ण दान करनेसे जो पुण्य होताहै तथा सब तीर्थोंमें अभिषेक करनेसे जो पुण्य होताहै वह पुण्य पारदके दर्शनमात्रसे होताहै ॥ ५८ ॥

सुरगुरुगोद्विजहिंसापापकलापोद्भवं किलासाध्यम् ।
चित्रं तदपि च शमयति तस्मात्कोन्यः शुचिः सूतात् ॥ ५९ ॥

देवता, गुरु, गौ, ब्राह्मणकी हत्या और अनेक पापोंके करनेसे हुए कुष्ठ भगंदर इत्यादि असाध्य रोगोंको यह पारा शान्त करता है, यह आश्चर्य है । विचारो इससे पवित्र और कौन होवेगा ॥ ५९ ॥

पारदकेनाम ।

रसेन्द्रः पारदः सूतः सूतराजश्च सूतकः ।
शिवतेजो रसः सप्त नामान्येवं रसस्य तु ॥ ६० ॥
शिवबीजो रसः सूतः पारदश्च रसेन्द्रकः ।
एतानि रसनामानि तथान्यानि यथा शिवे ॥ ६१ ॥

रसेन्द्र, पारद, सूत, सूतराज, सूतक, शिवतेज और रस ये सात नाम पारेके हैं । शिवबीज, रस, पारद, रसेन्द्रक इत्यादि पारेके नाम हैं और भी शिवसंबंधी नाम पारदके जानने, जैसे शिव, रुद्र, शंकर आदि ॥ ६० ॥ ६१ ॥

हिमालयवर्णनं तत्र महादेवनिवासः ।

अस्ति नीहारनिलयो महानुत्तरादिङ्मुखे ।
उत्तुंगशृंगसंघातलंघिताभ्रो महीधरः ॥ ६२ ॥
विश्रामाय वियन्मार्गविलंघनघनश्रमः ।
अवतीर्ण इव क्षोणीं शरदंबुमुचां गणः ॥ ६३ ॥
राशिराशीविषाधीशफणाफलकरोचिषाम् ।
भित्त्वा भुवमिवोत्तीर्णो यो विभाति भृशोन्नतः ॥ ६४ ॥
ज्वलदौषधयो यस्य नितंबमणिभूमयः ।
नक्तमुद्दामतडितामनुकुर्वन्ति वार्मुचाम् ॥ ६५ ॥
कटके संचरंतीनां यस्य किन्नरयोषिताम् ।
पादेषु धातुरागेण लाक्षाकृत्यमनुष्ठितम् ॥ ६६ ॥
अवतंसितशीतांशुराच्छादितदिगंबरः ।
यो गुहाधिगतो लोकैर्गिरीश इति गीयते ॥ ६७ ॥

बर्फसे भराहुआ होनेसे श्वेत और बहुत ऊंचा उत्तर दिशामें एक पर्वत है जिसके ऊंचे शिखर बादलोंको फाडकर आकाशमें पहुंचे हुए हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि मानो आकाशमें चलनेसे थका हुआ शरदृतुके मेघोंका समूह इस पर्वतपर आराम करनेको आन ठहरा है । अथवा सर्पोंका अधिपति शेषनाग पृथ्वीको भेदन कर अपने तेज फणोंको उठाये खडा है । इस प्रकार यह उन्नत पहाड शोभा देरहा है । जिसमें अनेक दिव्य औषधियोंकी चमक दमक ऐसी प्रतीत होती है मानो इस पर्वतने तेजयुक्त मणियोंकी मेखला धारण कीहै जिस प्रकार घनान्धकारमयी रात्रिमें, बिजलीकी चमकसे मणियोंकी चकाचौंध होती है । उसी प्रकार दिव्य औषधियें उस पर्वतपर चमक रही हैं । उस पर्वत पर किन्नरोंकी स्त्रियोंके झुंड फिरते हुए शोभाको प्राप्त होरहे हैं और उनके चरणोंको उस पर्वतकी धातुओंने रंगकर लाखके रंगका रँग दिया है । उसी पर्वत पर चन्द्रमारूपी आभूषण मस्तक पर चढाये अपनी पवित्र किरणोंसे आकाशको आच्छादन करते हुए दिशारूपी वस्त्र पहने गुफामें महादेव विराजमान हैं जो संसारमें गिरीश (कैलासपति) नामसे गाये जाते हैं ॥६२-६७॥

महादेवस्थितिः ।

निर्मीलितदृशो नित्यं मुनयो यस्य सानुषु ।
प्रत्यक्षयंति गिरिशमवाङ्मनसगोचरम् ॥ ६८ ॥
शिलातलप्रतिहतैर्यस्य निर्झरसीकरैः ।
अहन्यपि निरीक्षंते यक्षास्तारांकितं नभः ॥ ६९ ॥
नीहारपवनोद्रेकनिःसहा यत्र पूरुषाः ।
निजस्त्रीणां निषेवंते कुचोष्माणं निरन्तरम् ॥ ७० ॥

जिसके समीपवर्त्ती शिखरोंकी कंदराओंमें नेत्र बंद किये समाधि लगाकर मुनिजन महादेवका प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं । जिस महादेवकी महिमाको मन जान नहीं सकता और बाणी कह नहीं सकती । जिस पर्वतकी बडी २ शिलाओं पर ऊंचेसे गिरा हुआ बर्फ शिखरोंका पानी छिटककर आकाशमें विचरता दिनमें ही तारागणोंकी समान प्रतीत होताहै । उस बर्फवाली ठंढी पवनके लगनेको न सहन करते हुए किन्नर निरंतर अपनी स्त्रियोंके कुचोंकी उष्मा (गर्मी) का सेवन करते हैं ॥ ६८-७० ॥

संचरन् कटके यस्य निदाघेऽपि दिवाकरः ।
उद्दामहिमरुद्धोष्मा न शीतांशोर्विभिद्यते ॥ ७१ ॥

जिस पर्वतके कोटरोंमें फिरता हुआ सूर्य बढी हुई बर्फकी शीततासे रुकगई है गर्मी जिसकी दुपहरके समय भी चन्द्रमासे भेदको प्राप्त नहीं होता अर्थात् सूर्य चन्द्रमा दोनों एकसे प्रतीत होते हैं ॥ ७१ ॥

पारदकी उत्पत्ति ।

शैलेस्मिञ्शिवयोः प्रीत्या परस्परजिगीषया ।
संप्रवृत्ते च संभोगे त्रिलोकीक्षोभकारिणि ॥ ७२ ॥
विनिवारयितुं वह्निः संभोगं प्रेषितः सुरैः ।
कांक्षमाणैस्तयोः पुत्रं तारकासुरमारकम् ॥ ७३ ॥
कपोतरूपिणं प्राप्तं हिमवत्कन्दरेऽनलम् ।
अपक्षिभावसंक्षुब्धं स्मरलीलावलोकिनम् ॥ ७४ ॥

तं दृष्ट्वा लज्जितः शम्भुर्विरतः सुरतात्तदा ।
प्रच्युतश्चरमो धातुर्गृहीतः शूलपाणिना ॥ ७५ ॥
प्रक्षिप्तो वदने वह्नेर्गंगायामपि सोऽपतत् ।
बहिः क्षिप्तस्तया सोऽपि परिदंदह्यमानया ॥ ७६ ॥
संजातास्तन्मलाधानाद्धातवः सिद्धिहेतवः ।
यावदग्निमुखाद्रेतो न्यपतद्भूरिभारतः ॥ ७७ ॥
शतयोजननिम्नांस्तान् कृत्वा कूपांस्तु पंच च ।
तदा प्रभृति कूपस्थं तद्रेतः पंचधाऽभवत् ॥ ७८ ॥

अब पारेकी उत्पत्ति कहते हैं किसी समय हिमालय पर्वतमें प्रेमपूर्वक एक दूसरेकी जीतनेकी इच्छासे तीनों लोकोंके क्षोभकारी संभोग करनेको जब श्रीशिवजी तथा पार्वती प्रवृत्त हुए तब उस संभोगको छुडाने और तारकासुरनाशक पुत्रके उत्पात्तिकी उनसे इच्छा करके देवताओंने अग्निदेवको भेजा वह अग्निदेव कबूतरका रूप धारण कर हिमालयकी गुहामें आया वहां बनावटी पक्षी होनेसे व्याकुल अग्निको देख लज्जित हुए शिव कामक्रीडासे निवृत्त होगये उस समय जो वीर्य स्खलित हुआ उसको लेकर शिवजीने अग्निके मुखमें डालदिया, उसको अग्निने गङ्गामें डाला जब गङ्गा उससे अत्यन्त जलने लगीं तब गङ्गाने उसे भूमिपर फेंक दिया उसी शिववीर्यके मलसे सिद्धिप्रद सुवर्णादि धातुएं उत्पन्न हुई असह्य बोझके कारण जितना वीर्य अग्निके मुखसे गिरगया वही पारेके स्वरूपसे पृथ्वीमें विख्यात हुआ चार सौ कोसके गहरे पांच कुंए बनाकर उस शिववीर्यको रखते भये तभीसे वह कूओंमें रहा हुआ पारा पांच प्रकारका होगया ॥ ७२–७८ ॥

पंचविधपारद ।

रसो रसेन्द्रः सूतश्च पारदो मिश्रकस्तथा ।
इति पंचविधो जातः क्षेत्रभेदेन शम्भुजः ॥ ७९ ॥

रस, रसेन्द्र, सूत, पारद, तथा मिश्रक इस प्रकार क्षेत्रभेदसे पांच प्रकारका पारा उत्पन्न हुआ ॥ ७९ ॥

रससंज्ञकपारदके गुण ।

रसो रक्तो विनिर्मुक्तः सर्वदोषै रसायनः ।
संजातास्त्रिदशास्तेन नीरुजो निर्जरामराः ॥ ८० ॥

लालवर्णका पारद सर्वदोषरहित और रसायन है, इसके सेवनसे देवता रोग रहित अजर अमर हुए हैं ॥ ८० ॥

रसेन्द्रसंज्ञक पारदके लक्षण ।

रसेन्द्रो दोषनिर्मुक्तः श्यावो रूक्षोऽतिचंचलः ।
रसायनोऽभवंस्तेन नागा मृत्युजरोज्झिताः ॥ ८१ ॥
देवैर्नागैश्च तौ कूपौ पूरितौ मृद्भिरश्मभिः ।
तदा प्रभृति लोकानां तौ जातावतिदुर्लभौ ॥ ८२ ॥

रसेन्द्रनामक पारा धूसरवर्णका रूखा और अत्यन्त चंचल तथा दोषरहित और रसायन होताहै इसके सेवनसे नाग मृत्यु और बृद्धावस्थारहित होगये। इन पारोंके कुओंको देवता और नागोंने मिट्टी और पत्थरोंसे भर दियाहै, तभीसे रस और रसेन्द्र इन दोनों जातिके पारे इस मनुष्यलोकमें मनुष्योंको अतिदुर्लभ हुए हैं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

सूतसंज्ञक पारद ।

ईषत्पीतश्च रूक्षांगो दोषयुक्तश्च सूतकः ।
दशाष्टसंस्कृतैः सिद्धो देहं लोहं करोति सः ॥ ८३ ॥

सूतनामवाला पारा कुछ पीला, रूखा दोषवाला होताहै यह अठारह संस्कारोंसे सिद्ध किया हुआ सेवन करनेवाले मनुष्यके देहको लोहसा दृढ करता है ॥ ८३ ॥

पारदसंज्ञक ।

अथान्यकूपजः कोऽपि सचलः श्वेतवर्णवान् ।
पारदो विविधैर्योगैः सर्वरोगहरः स हि ॥ ८४ ॥

चौथे कुएका पारदसंज्ञक पारा सफेद और चंचल है। यह (पारा) अनेक प्रकारके योगोंसे सब रोगोंको हरता है ॥ ८४ ॥

मिश्रकपारद ।

मयूरचन्द्रिकाछायः सरसो मिश्रको मतः ।
सोऽप्यष्टादशसंस्कारयुक्तश्चातीव सिद्धिदः ॥ ८५ ॥

मोरके परके चांदोंके समान विचित्र वर्णवाला और सरस पारेको मिश्रक पारा कहते हैं यह भी अठारह संस्कार करनेसे अत्यन्त सिद्धिको देताहै ॥ ८५ ॥

त्रयः सूतादयः सूताः सर्वसिद्धिकरा अपि ।
निजकर्मविनिर्माणैः शक्तिमन्तोऽतिमात्रया ॥ ८६ ॥
एतां रससमुत्पत्तिं यो जानाति स धार्मिकः ।
आयुरारोग्यसंतानं रससिद्धिं च विन्दति ॥ ८७ ॥

उक्त पांच प्रकारके पारोंमें सूतक पारद और मिश्रक ये तीन प्रकारके पारे यद्यपि संपूर्ण सिद्धि करनेवाले हैं तथापि अपने २ कर्मोंद्वारा बनाये जांय तो अत्यन्त शक्तिसंपन्न जानने इस प्रकार पारेकी उत्पत्तिको जो जाने वह धार्मिक है तथा आयु, आरोग्य, संतान और रससिद्धिको प्राप्त होता है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

एतां रससमुत्पत्तिं यो जानाति स धार्मिकः ॥
आयुरारोग्यसंतानरस सिद्धिं च विंदति ॥ ८८ ॥

इस रसकी उत्पत्तिको जो धार्मिक मनुष्य जानता है वह दीर्घायु होता है और नीरोग रहकर अच्छी सन्तानवाला होता है, तथा सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ ८८ ॥

रसादिशब्दोंकी निरुक्ति ।

रसनात्सर्वधातूनां रस इत्यभिधीयते ।
जरारुङ्मृत्युनाशाय रस्यते वा रसो मतः ॥ ८९ ॥
रसोपरसराजत्वाद्रसेन्द्र इति कीर्तितः ।
देहलोहमयीं सिद्धिं सूते सूतस्ततः स्मृतः ॥ ९० ॥
रोगपंकाब्धिमग्नानां पारदानाच्च पारदः ।
सर्वधातुगतं तेजो मिश्रितं यत्र तिष्ठति ॥ ९१ ॥
तस्मात्स मिश्रकः प्रोक्तो नानारूपफलप्रदः ॥ ९२ ॥

यहां रसादि शब्दोंकी निरुक्ति कहते हैं, सब धातुओंके भक्षण करनेसे इस पारेको रस कहते हैं । अथवा वृद्धता, रोग और मृत्युके नाश करनेसे इसको भक्षण करते हैं इस कारण इसको रस कहते हैं । तथा रस और उपरसोंका राजा होनेसे इसको रसेन्द्र कहते हैं और देहको लोहेके समान उत्पन्न करता है इससे इसको सूत कहते हैं । रोगरूप कीचडके समुद्रमें डूबे हुए मनुष्योंको पार लगानेसे इसको पारद कहते हैं, और समस्त धातुओंका मिश्रित तेज इस पारेमें रहता है इस कारण इसको मिश्रक कहते हैं । यह अनेक प्रकारके फल देता है ॥८९-९२॥

एवंभूतस्य सूतस्य मर्त्यमृत्युगदच्छिदः ।
प्रभावान्मानुषा जाता देवतुल्यबलायुषः ॥ ९३ ॥
तान्दृष्ट्वाऽभ्यर्थितो रुद्रः शक्रेण तदनन्तरम् ।
दोषैश्च कंचुकाभिश्च रसराजो नियोजितः ॥ ९४ ॥
तदा प्रभृति सूतोऽसौ नैव सिद्ध्यत्यसंस्कृतः ॥ ९५ ॥

इस प्रकार मनुष्यकी मृत्यु और रोगोंके नाश करनेवाले पारेके प्रभावसे मनुष्य देवताओंके समान बलवान् और दीर्घायुवाले होगये, ऐसे मनुष्योंको देख इन्द्रने प्रार्थना करी कि हे नाथ ! इस पारेके प्रभावसे सब पुरुष देवताओंके तुल्य होजांयगे फिर देवताओंमें क्या फर्क रहा । ऐसा कथन सुन श्रीशिवजीने उस पारेको दोषयुक्त और कांचलीयुक्त करादिया । तभीसे यह पारा विना संस्कारके सिद्ध नहीं होता इससे पारेकी शास्त्रोक्त शुद्धि अवश्य करना चाहिये ॥९३-९५॥

प्रत्यक्षेण प्रमाणेन यो न जानाति सूतकम् ।
अदृष्टविग्रहं देवं कथं ज्ञास्यति चिन्मयम् ॥ ९६ ॥

जो मनुष्य प्रत्यक्ष प्रमाण करके पारेको नहीं जाने वह अदृष्ट शरीर परमात्मा चैतन्य मयको कैसे जानेगा ? अर्थात् जो पारेको जानता है वही परब्रह्मको जानेगा ॥ ९६ ॥

रससंख्या ।

एक एव रसो ज्ञेयो बहुधोपरसाः स्मृताः ॥ ९७ ॥

रस केवल एक (पारद) ही है परंतु उपरस बहुत प्रकारके कहे हैं ॥ ९७ ॥

पारदकी श्रेष्ठता ।

काष्ठौत्षध्यो नागे नागो वंगेऽथ वंगमपि शुल्बे ।
शुल्बं तारे तारं कनके कनकं च लीयते सूते ॥ ९८ ॥
अमृतत्वं हि भजंते हरमूर्त्तौ योगिनो यथा लीनाः ।
तद्वत्कवलितगगने रसराजे हेमलोहाद्याः ॥ ९९ ॥
परमात्मनीव सततं भवति लयो यत्र सर्वसत्त्वानाम् ।
एकोऽसौ रसराजः शरीरमजरामरं कुरुते ॥ १०० ॥

स्थिरदेहाभ्यासवशात्प्राप्य ज्ञानं गुणाष्टकोपेतम् ।
प्राप्नोति ब्रह्मपदं न पुनर्वनवासदुःखेन ॥ १०१ ॥

काष्ठौषधि शीशेमें मिल जाती हैं, शीशा वंगमें, वंग तांबेमें, तांबा चांदीमें, चांदी सोनेमें तथा सोना पारेमें मिलजाता है जिस प्रकार योगी श्रीशिवजीकी मूर्त्तिमें मोक्षके समय लीन होते हैं उसी प्रकार अभ्रकको भक्षण करनेवाले पारेमें लौहादि धातु मिल जाती हैं अथवा जैसे परमात्मामें सर्वप्राणी लीन होते हैं उसी प्रकार पारेमें सब धातुओंका लय होताहै यह एकही रसराज (पारा) देहको अजर अमर करता है । देह स्थिर होनेपर अभ्यास करते २ अष्टसिद्धिसंपन्न ज्ञानकी प्राप्ति होती है, उससे मनुष्य ब्रह्मपदको प्राप्त होता है परंतु वनवासके कष्टसे ब्रह्मपदकी प्राप्ति नहीं होसकती ॥ ९८-१०१ ॥

पारदाद्ब्रह्मप्राप्तिः ।

एकांशेन जगद्युगपदवष्टभ्य स्थितं परं ज्योतिः ।
पादैस्त्रिभिस्तदमृतं सुलभं न विरक्तिमात्रेण ॥ १०२ ॥
नहि देहेन कथं चिद्व्याधिजरामरणदुःखविधुरेण ।
क्षणभंगुरेण सूक्ष्मं तद्ब्रह्मोपासितुं शक्यम् ॥ १०३ ॥
नामापि देहसिद्धेः को गृह्णीयाद्विना शरीरेण ।
तद्योगगम्यममलं मनसोपि न गोचरं तत्त्वम् ॥ १०४ ॥
यज्ज्ञानात्तपसो वेदाध्ययनाद्दमात्सदाचारात् ।
अत्यन्तभूयसी किलयोगवशादात्मसंवित्तिः ॥ १०५ ॥

जो परब्रह्म ज्योति एक कलासे जगत्को धारण कर एक कालमेंही सत्त्व रज तम इन तीन गुणोंसे जगत्में व्यापक है । वह ब्रह्म केवल वैराग्यमात्रसेही प्राप्त नहीं होसकता । अनेक व्याधि बुढापा मरण आदि दुःखोंसे दुःखित क्षण-भंगुर शरीरसे उस सूक्ष्म ज्योतिकी उपासना नहीं होसकती और स्थूल शरीरके विना सूक्ष्मभी साधनमें असमर्थ है क्योंकि योग विना शरीरके नहीं हो सकता और योगके विना वह तत्त्व मनसेभी नहीं जाना जाता यज्ञ, ज्ञान, तप, वेदाध्ययन, दम, सदाचार आदिसे श्रेष्ठ जो आत्मदर्शन है वह योगसेही प्राप्त होसकता है, सो योग विना पारद भक्षणके नहीं होसकता ॥ १०२-१०५ ॥

भ्रूमध्यगतं यच्छिखिविद्युत्सूर्येन्दुवज्जगद्भाति ॥
केषांचित्पुण्यदृशासुन्मीलति चिन्मयं परं ज्योतिः ॥ १०६ ॥
परमानंदैकरसं परमं ज्योतिः स्वभावमविकल्पम् ।
विगलितसकलक्लेशं ज्ञेयं शांतं स्वसंवेद्यम् ॥ १०७ ॥
तस्मिन्नाधाय मनः स्फुरदखिलं चिन्मयं जगत्पश्यन् ।
उत्सन्नकर्मबंधो ब्रह्मत्वमिहैव चाप्नोति ॥ १०८॥
रागद्वेषविमुक्ताः सत्याचारा मृषारहिताः ।
सर्वत्र निर्विशेषा भवंति चिद्ब्रह्मसंस्पर्शात् ॥ १०९ ॥
तिष्ठंत्यणिमादियुता विलसद्देहाः सदोदितानंदाः ।
ब्रह्मस्वभावममृतं संप्राप्ताश्चैव कृतकृत्याः ॥ ११० ॥

भ्रुकुटियुग्मके मध्यमें अग्नि बिजली सूर्य चन्द्रमाकी समान प्रकाशमय ज्योति जो जगत्को प्रकाश कररही है वह चिन्मय ज्योति किसी पुण्यात्मा पुरुषको ही प्रत्यक्ष होती है परमानन्दमय संपूर्ण चराचरमें व्यापक परम ज्योति कल्पनामें न आनेवाला सब क्लेशोंसे रहित जाननेयोग्य शान्त जो आत्मज्ञान द्वारा जाना जाय उसमें मन लगाकर संपूर्ण चैतन्यमय जगत्को देखता हुआ कर्मोंके बंधनको काटकर ब्रह्मको प्राप्त होताहै, फिर ब्रह्मस्पर्शसे रागद्वेषरहित हो सत्य और सदाचारयुक्त मिथ्यारहित संपूर्ण प्राणियोंपर एक दृष्टि होजाती है अणिमादि सिद्धियोंसे प्रकाशित शरीरवाले होते हैं, आनन्दका प्रकाश होताहै ब्रह्ममय हो, अमृत ब्रह्मको प्राप्त होते हैं संपूर्णतासे कृतकृत्य होजाते हैं ॥ १०६-११० ॥

आयतनं विद्यानां मूलं धर्मार्थकाममोक्षाणाम् ।
श्रेयःपरं किमन्यच्छरीरमजरामरं विहायैकम् ॥ १११ ॥
प्रत्यक्षेण प्रमाणेन यो न जानाति सूतकम् ।
अदृष्टविग्रहं देवं कथं ज्ञास्यति चिन्मयम् ॥ ११२ ॥
यज्जरया जर्जरितं कासश्वासादिदुःखविवशं च ।
योग्यं तन्न समाधौ प्रतिहतबुद्धीन्द्रियग्रामम् ॥ ११३ ॥
बालः षोडशवर्षो विषयरसास्वादलंपटः परतः ।

यातविवेको वृद्धो मर्त्यः कथमाप्नुयान्मुक्तिम् ॥ ११४ ॥
अस्मिन्नेव शरीरे येषां परमात्मनो न संवेदः ।
देहत्यागादूर्ध्वं तेषां तद्ब्रह्म दूरतरम् ॥ ११५ ॥
ब्रह्मादयो यतंते तस्मिन्दिव्यां तनुं प्राप्य ।
जीवन्मुक्ताश्चान्ये कल्पान्तस्थायिनो मुनयः ॥ ११६ ॥
तस्माद्ब्रह्मप्राप्तिं समीहमानेन योगिना प्रथमम् ।
दिव्या तनुर्विधेया हरगौरीसृष्टिसंयोगात् ॥ ११७ ॥

संपूर्ण विद्याओंका स्थान धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनका मूलकारण शरीरको अजर और अमर करनेवाला कल्याणकारी रसको छोडकर और क्या पदार्थ है ? अर्थात् कोई नहीं। जो मनुष्य प्रत्यक्ष प्रमाणसे अजरामर कर्त्ता पारदको नहीं जानसकता वह चिन्मय अदृष्ट ब्रह्मको कैसे जानसकता है। जिस शरीरमें बुढापा आयगयाहो कास श्वासादि रोगोंसे व्याकुल हो इन्द्रियां शिथिल होगईहों वह समाधिके योग्य नहीं। पहले मनुष्य १६ वर्षकी अवस्था तक तो बालक ही रहताहै। फिर विषयोंके स्वाद लेनेमें लंपट रहताहै। जब कुछ बिबेक उत्पन्न हुआ तब वृद्धावस्थाने आ घेरा, फिर मनुष्य मुक्तिका साधन कैसे कर-सकताहै। जिनको इसी शरीरमें परमात्माका दर्शन न हुआ मरनेके अनंतर उन विचारोंको कहां प्राप्त होसकता है। ब्रह्मादिक देवता दिव्य शरीरको प्राप्त होकरभी जिसके लिये यतन करते हैं और कल्पांतक रहनेवाले जीवन्मुक्त मुनि भी यत्न करते हैं इसलिये ब्रह्मप्राप्तिकी इच्छावाले योगीको पारद, गंधक, अभ्रक इनके संयोगसे पहले दिव्य शरीर बनालेना चाहिये ॥ १११-११७ ॥

मूर्च्छित्वा हरति रुजं बंधनमनुभूय मुक्तिदो भवति ।
अमरीकरोति हि मृतः कोऽन्यः करुणाकरः सूतात् ॥ ११८ ॥

मूर्छित हुआ पारा संपूर्ण रोगोंको हरताहै। बँधा पारद मुक्ति देता है। मराहुआ पारद अमर करदेता है। इस पारेके समान और करुणा करनेवाला कौन है ? अर्थात् कोई नहीं ॥ ११८ ॥

पारदग्रहणोपायः ।

कन्यां सुरूपां प्रथमर्तुयुक्तां स्नातां सुवस्त्राभरणादिजुष्टाम् ।
जवाश्वरूढां सुनिरीक्षमाणां दृष्ट्वा रसः कूपगतोऽतिशीघ्रम् ॥ ११९ ॥

प्रयात्यधस्तादुपरि प्रचंडकामीव कान्ताकरकर्षणार्थम् ।
धावत्यसौ पृष्ठगतो हि तस्याः पूरो हि नद्या इव योजनैकम् ॥ १२० ॥
प्रत्यायाति ततः कूपं वेगतः शिवसंभवः ।
मार्गनिर्मितगर्तेषु स्थितं गृह्णन्ति पारदम् ॥ १२१ ॥

पहिले ऋतुस्नानवाली स्वरूपवती कन्या वस्त्र और आभूषणोंसे श्रृंगार कर वेगवान् घोडेपर बैठकर पारेके कुँएके ऊपर खडी होती है उस कन्याको देख पारा कुंएमेंसे उमग अति शीघ्रतासे उस कन्याके आलिंगन करनेको दौडता है। जैसे प्रचंड कामी पुरुष अपनी प्यारी स्त्रीके पकडनेको चलता है उस समय वह कन्या घोडेको दौडाती है उसके पीछे चार कोसतक वह पारा दौडता है जैसे नदीका वेग दौडता है जब वह कन्या उसकी सीमा बाहर निकल जाती है तब पारा फिर उसी वेगसे कुंएमें चला जाता है उस समय रास्तामें खोदेहुए गढोंमें जो पारा रहजाता है उसको वहांके मनुष्य इकट्टा कर लेते हैं । परंतु यह पारद आजकल नहीं आता ॥११९–१२१ ॥

कूपादन्यस्थानेऽपि पारदस्योत्पत्तिः ।

पतितो दरदे देशे गौरवाद्वह्निवक्त्रतः ।
सरसो भूतले लीनस्तत्तद्देशनिवासिनः ॥ १२२ ॥
तं मृदं पातनायंत्रे क्षिप्त्वा सूतं हरंति च ॥ १२३ ॥

जब अग्निदेव कैलाशसे पारदको लाये तब वह भारी होनेसे दरद देश (रूम आदि स्थानों) में गिरकर मृत्तिकामें मिलगया सो उन २ देशोंके रहनेवाले लोग ऊर्ध्वपातनयंत्र द्वारा उडाकर पारदको निकाल लेते हैं (प्रायः आजकल ऐसेही बहुत देशोंमें निकलता है) ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

यावत्सूतं न शुद्धं नच मृतमथ नो मूर्च्छितं गन्धबद्धं
नो वज्रं मारितं स्यान्न च गगनवधो नोपधातुश्च शुद्धः ।
स्वर्णाद्यं सर्वलोहं विषमपि न मृतं तैलपाको न जात-
स्तावद्वैद्यः कसिद्धो भवति वसुभुजां मंडले श्लाघ्ययोगः ॥ १२४ ॥

जबतक वैद्यसे पारा शुद्ध न हो, न मरे, तथा विषसे मूर्च्छित और गंधकसे बद्ध न हो । तथा जबतक हीरेकी भस्म न करे तैसे ही अभ्रक जारण नहीं करे, तथा उपधातुओंकी शुद्धि न हो और उससे स्वर्णादि अष्टलोह और विष नहीं मरें

तथा तैलपाक न हो तबतक वैद्य कहां सिद्ध होता है ? और राजाके देशमें किस प्रकार प्रशंसायोग्य होता है ? कभी नहीं होता। अर्थात् जो उक्त कर्मोंको जानता है वही प्रशंसाके योग्य है ॥ १२४ ॥

शोधनादिक्रिया सर्वा मारणादिक्रिया तथा।
सर्वासां रसधातुनां ग्रंथेऽस्मिन् वक्ष्यते ह्यतः ॥ १२५ ॥

इसलिये संपूर्ण रस, उपरस और धातु आदिकोंके शोधन और मारणकी क्रियायें इस ग्रंथमें हम कहेंगे ॥ १२५ ॥

अध्यायका उपसंहार।

एवं हि ते रसोत्पत्तिः पुण्यं वै दर्शनादिभिः।
यथाश्रुतं स्वया बुद्ध्या चाध्यायेऽस्मिन्प्रकीर्तितम् ॥ १२६ ॥

इस प्रकार रसकी उत्पत्ति और उसके दर्शनादिसे पुण्य जैसा गुरुमुखसे सुना और किया तथा जितनी अपनी बुद्धि है उसके अनुसार इस प्रथमाध्यायमें कथन कर दिया है ॥ १२६ ॥

इति श्रीटकसालनिवासिपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्याय-
प्रणीते रसेन्द्रपुराणे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीः ॥

अथातो नानार्थविवेचनीनाम द्वितीयाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम नानार्थ विवेचन नामक अध्यायका कथन करते हैं ॥

शिष्य उवाच।

रसोत्पत्तिं च पुण्यं च श्रुत्वा श्रद्धाधिकायते।
अतस्तच्छोधनोपायः कथ्यतां क्रमशः प्रभो ॥ १ ॥

शिष्य कहनेलगा-हे प्रभो ! रसोंकी उत्पत्ति और पुण्यको सुनकर मेरी श्रद्धा इस विषयमें अधिक होती जाती है इसलिये कृपा करके अब इसके शोधनके उपाय क्रमसे कथन कीजिये ॥ १ ॥

एवं पृष्टस्ततो विद्वाञ्शिष्यबुद्धिं प्रशंस्य वै।
उवाच रससंबंधे श्रूयतां शिष्यसत्तम ॥ २ ॥

इस प्रकार पूछे हुए विद्वान् गुरु शिष्यकी बुद्धिकी प्रशंसा करता हुआ रससंबंधमें बोला हे श्रेष्ठशिष्य ! सुनो ॥ २ ॥

गुरुसेवां विना कर्मनिषेधः ।

गुरुसेवां विना कर्म यः कुर्यान्मूढचेतनः ।
तद्याति निष्फलत्वं हि स्वप्नलब्धं यथा धनम् ॥ ३ ॥
विद्यां ग्रहीतुमिच्छन्ति चौर्यच्छद्मबलादिना ।
न तेषां सिद्ध्यते किंचिन्मणिमंत्रौषधादिकम् ॥ ४ ॥

गुरुकी सेवा विना जो मन्दबुद्धि पुरुष रस तैलादि बनाना आदि कर्म करता है वह स्वप्नप्राप्त धनके समान निष्फल होजाता है जो पुरुष चोरी, छल, अथवा बलात्कार आदि कर्मोंसे विद्या पढनेकी इच्छा करता है उसको या तौ विद्या आवैगी नहीं यदि आभी गई तो मणि मंत्र और औषधादि कर्म कोई उसको सिद्ध नहीं होंगे ॥ ३ ॥ ४ ॥

विद्याप्राप्तौ त्रीणि कारणानि ।

गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा ॥
अथवा विद्यया विद्या चतुर्थं नैव कारणम् ॥ ५ ॥

विद्या आनेके तीन कारण हैं पाहिला तो गुरुकी सेवा करना, दूसरा खूब धन देना, तीसरा कोई विद्या स्वयं उसको पढाकर उसके पलटेमें स्वयं पढना इसको छोड चौथा कारण अथवा उपाय नहीं है ॥ ५ ॥

सद्गुरुलक्षणानि ।

मंत्रसिद्धो महावीरो निश्चलः शिववत्सलः ।
देवीभक्तः सदा धीरो देवतायागतत्परः ॥ ६ ॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः कुशलो रसकर्मणि ।
एतल्लक्षणसंयुक्तो रसविद्यागुरुर्भवेत् ॥ ७ ॥

जो पुरुष पुरश्चरणादिसे जिसको मंत्र सिद्ध हो, महावीर (पराक्रमी) निश्चल, शिवप्रिय, देवीका भक्त और सर्वदा धीर देवताके पूजनमें ततपर सब शास्त्रोंके अर्थ और भावको जाननेवाला और पारेके मारणादि कर्मोंमें चतुर हो इतने लक्षणोंसे संपन्न रसविद्या पढानेका आचार्य होता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

उत्तमशिष्यलक्षणानि ।

शिष्यो निजगुरोर्भक्तः सत्यवक्ता बहुश्रुतः ।
निरालस्यः स्वधर्मज्ञो देव्याराधनतत्परः ॥ ८ ॥

अपने गुरुका भक्त, सत्य बोलनेवाला, बहुश्रुत, आलस्यरहित, अपने धर्मका ज्ञाता तथा देवीके आराधनमें तत्पर ऐसा शिष्य होवे ॥ ८ ॥

ज्ञातव्यं रससंस्कारात्पूर्वं यंत्रादिसाधनम् ।
विषाम्लादेश्च वर्गादि तत्तद्वं चाधुना शृणु ॥ ९ ॥

हे शिष्य ! रसके संस्कारोंके जाननेसे पहले यंत्रोंके निर्माणका प्रकार और मूषा आदि बनानेकी क्रिया जानना चाहिये और विषवर्ग तथा अम्लवर्ग आदि जो रसादि संस्कारमें काम आता है उनको जानना चाहिये विना उनके ज्ञानके रसके संस्कार नहीं होसकते सो तुम पहले अब उनको सुनो (चकारसे लोहाष्टक, षट्लवण, क्षार त्रयादिका वर्णन समझना) ॥ ९ ॥

लोहाष्टकम् ।

सुवर्णं रजतं ताम्रं त्रपु शीशकमायसम् ।
षडेतानि च लोहानि कृत्रिमौ कांस्यपित्तलौ॥ १० ॥

सोना, चांदी, तांबा, रांगा, सीसा, और लोहा ये छः लोह हैं और कांसी, पीतल ये दो कृत्रिम अर्थात् बनावटी लोहे हैं ॥ १० ॥

षड् लवणानि ।

लवणानि षडुच्यन्ते सामुद्रं सैंधवं विडम् ॥
सौवर्चलं रोमकं च चूलिकालवणं तथा ॥ ११ ॥

सामुद्र, सेंधा, विड, काला, रोमक और चूलिका यह छः प्रकारके नमक कहे गये हैं ॥ ११ ॥

क्षारत्रयम् ।

क्षारत्रयं समाख्यातं यवस्वर्जिकटंकणम् ।

जवाखार, सज्जीखार और सुहागा ये तीनों क्षारत्रय कहाते हैं ॥

मधुरत्रयम् ।

घृतं गुडो माक्षिकं च विज्ञेयं मधुरत्रयम् ॥ १२ ॥

घृत, गुड, तथा सहद इन तीनोंको मधुरत्रय कहते हैं ॥ १२ ॥

वसावर्गः ।

मण्डकजंबूकवसा वसा कच्छपसंभवा ।
कर्कोटी शिशुमारी च गोशूकरनरोद्भवा ॥ १३ ॥
अजोष्ट्रखरमेषाणां माहिषस्य तथा वसा ।
वसावर्गः समाख्यातः पूर्वाचार्यैः समासतः ॥ १४ ॥

मेंडक, स्यार, कछुवा, केंकडा, सूस, गौ, सुअर, मनुष्य, बकरा, ऊंट, गधा, मेंढा तथा भैंसा इन तेरहोंकी वसाको पूर्वाचार्योंने वसावर्ग कहा है ॥ १३ ॥ १४ ॥

मूत्रवर्गः ।

मूत्राणि हस्तिकरभमाहिषीखरवाजिनाम् ।
गोजावीनां स्त्रियाः पुंसां पुष्पं बीजं तु योजयेत् ॥ १५ ॥

हाथी, ऊंट, भैंसा, गधा, घोडा, गौ, बकरी, मेंढा और स्त्रीपुरुषोंका मूत्र मूत्रवर्ग कहलाताहै कहीं २ स्त्रियोंका रज और पुरुषोंका वीर्यभी प्रयोग किया जाता है ॥ १५ ॥

माहिषपंचकम् ।

महिषांबु दधि क्षीरं साभिसारं शकृद्रसः ।
तत्पंच माहिषं ज्ञेयं तद्वच्छागलपंचकम् ॥ १६ ॥

भैंसका मूत्र, दही, दूध, घृत और गोबरका रस ये माहिषपंचक कहाता है इसी प्रकार बकरीका छागलपंचक होता है ॥ १६ ॥

अम्लवर्गः ।

अम्लवेतसजंबीरनिंबुकं बीजपूरकम् ।
चांगेरी चणकाम्लं च अम्लीकं कोलदाडिमम् ॥ १७ ॥
अंबष्ठा तिंतिडीकं च नारंगं रसपत्रिका ।
करमर्दं तथा चान्यदम्लवर्गः प्रकीर्त्तितः ॥ १८ ॥

अम्लवेत, जंबीरीनींबू, बिजौरा, लोनिया, चनाखार, इमली, बेर, अनार दाना, चूका, तिंतिडीक, नारंगी, रसपात्रिका तथा करोंदा इत्यादि औरभी खट्टी वस्तु अम्लवर्ग कहलाती हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥

चणकाम्लश्च सर्वेषामेक एव प्रशस्यते ।
अम्लवेतसमेकं वा सर्वेषामुत्तमोत्तमम् ॥
रसादीनां विशुद्ध्यर्थं द्रावणो जारणे हितम् ॥ १९ ॥

चनोंकी खटाई सब खटाइयोंमें उत्तम है अम्लवेतकी तो अत्युत्तम है यह पारे आदिके शोधन द्रावण और जारणमें उपयोगी है ॥ १९ ॥

अम्लपंचकम् ।

कोलदाडिमवृक्षाम्लचुल्लिका चक्रिका रसम् ।
पंचाम्लकं समुद्दिष्टं तच्चोक्तं चाम्लपंचकम् ॥ २० ॥

बेर, अनार दाना, तितिडीक, लोनियां और चूका ये पंचाम्ल तथा अम्लपंचक कहाते हैं ॥ २० ॥

पंचमृत्तिकाः ।

इष्टिका गैरिका लोणं भस्म वल्मीकमृत्तिका ।
रसप्रयोगकुशलैः कीर्त्तिताः पंचमृत्तिकाः ॥ २१ ॥

ईंट, गेरू, नमक, राख और बांवीकी मिट्टी ये रसके जाननेवालोंने पांच मिट्टी कही हैं ॥ २१ ॥

विषवर्गः ।

शृंगिकं कालकूटं च वत्सनाभं सकृत्रिमम् ॥
पित्तं च विषवर्गोऽयं सवरः परिकीर्त्तितः ॥ २२ ॥
रसकर्मणि शस्तोऽयं तद्भेदो नवधापि च ।
अयुक्त्या सेवितश्चायं मारयत्येव निश्चितम् ॥ २३ ॥

सिंगिया, कालकूट, वत्सनाभ, बनावटी विष और पित्त यह विषवर्ग कहा है । यह रसकर्ममें श्रेष्ठ है विषोंके नौ भेद हैं विषको अयुक्तिपूर्वक खानेसे वह मृत्युको करता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

उपविषाणि ।

लांगली विषमुष्टिश्च करवीरं जया तथा ।
तिल्वकः कनकोर्कश्च वर्गो ह्युपविषात्मकः ॥ २४ ॥

कालिहारी, कुचला, कनेर, भांग, हिंगोट, धतूरा तथा आक यह उपविषवर्ग कहलाता है ॥ २४ ॥

दुग्धवर्गः ।

हस्त्यश्ववनिता धेनुर्गर्द्धभी छागिकाऽविका ।
उष्ट्रक्युदुंबराश्वत्थभानुन्यग्रोधतिल्वकम् ॥ २५ ॥
दुग्धिकास्नुग्गणं चैतत्तथैवोत्तमकंठिका ।
एषां दुग्धैर्विनिर्दिष्टो दुग्धवर्गो रसादिषु ॥ २६ ॥

हाथिनी, घोडी, गौ, गधी, बकरी, मेंडी, ऊंटिनी, गूलर, पीपल, आँक, बड, हिंगोट, दुद्धी, थूहर तथा दूधली यह रसादिकोंमें दुग्ध वर्ग कहा है ॥२५॥२६ ॥

विट्वर्गः ।

पारावतस्य चाषस्य कपोतस्य कलापिनः ।
गृध्रस्य कुक्कुटस्यापि विनिर्दिष्टो हि विड्गणः ।
शोधनं सर्वलोहानां पुटनाल्लेखनात्खलु ॥ २७ ॥

कबूतर, नीलकंठ, जंगली कबूतर, मोर, गीध और मुरगेकी बीठको विड्वर्ग कहते हैं । इनमें रगडनेसे और पुट देनेसे सब प्रकारके लोह शुद्ध होजाते हैं॥२७॥

रक्तवर्गः ।

कुसुंभं खदिरो लाक्षा मंजिष्ठा रक्तचन्दनम् ॥ २८ ॥
आक्षीवं बंधुजीवश्च तथाक्ता पूरगंधिनी ।
माक्षिकं चेति विज्ञेयो रक्तवर्गोतिरंजनः ॥ २९ ॥

कुसुम्भा, खैर, लाख, मंजीठ, लाल चन्दन, सहँजना, दुपहरिया, दाह, अगर, कपूरकचरी, सोनामक्खी यह रक्तवर्ग कहा जाता है ॥ २८ ॥ २९ ॥

पीतवर्गः ।

कर्णिकारः किंशुकश्च हरिद्राद्वितयं तथा ।
पीतवर्गोऽयमादिष्टो रसराजस्य कर्मणि ॥ ३० ॥

कनेर, ढाक, दोनों हलदी यह पीतवर्ग पारेके कामोंमें कहाहै ॥ ३० ॥

श्वेतवर्गः ।

तगरः कुटजः कुंदो गुंजा जीवंतिका तथा ।
सिताम्भोरुहकंदश्च श्वेतवर्ग उदाहृतः ॥ ३१ ॥

तगर, कूडा, कुंद, घुंघची, बंदा तथा सफेद कमलका कंद यह श्वेतवर्ग कहाता है ॥ ३१ ॥

कृष्णवर्गः ।

कारवल्ली च कदली त्रिफला नीलिकानलः ।
पंकः कासीसबालाम्रौ कृष्णवर्ग उदाहृतः ॥ ३२ ॥

करेला, केला, त्रिफला, नील, चीता, कीच, कासीस, जिसमें गुठली न पडी हो ऐसा कच्चा आम यह कृष्णवर्ग कहाजाता है ॥ ३२ ॥

रक्तवर्गादिवर्गैश्च द्रव्यं तज्जारणात्मकम् ।
भावनीयं प्रयत्नेन तादृग्रागाप्तये खलु ॥ ३३ ॥

ऊपर कहे हुए रक्तादिवर्गोंसे जिन द्रव्योंको जारण करना हो उनको रंगनेके लिये यत्नपूर्वक भावना देना चाहिये ॥ ३३ ॥

काचटङ्कणलिमादिः शोधनीयो गणो मतः ।
सत्त्वानां बद्धसूतस्य लोहानां मलनाशनः ॥ ३४ ॥

कांच, सुहागा और नौसादरको शोधनीयगण कहते हैं । यह सत्त्वबँधा पारा और सुवर्णादि अष्टलोहोंका मल दूर करते हैं ॥ ३४ ॥

माहिषो मेढ्रोऽण्डगर्भः कालिंगो धवबीजयुक् ।
शशास्थीनि च वर्गोऽयं लोहकाठिन्यनाशनः ॥ ३५ ॥

भैंसेका लिङ्ग, अंडेकी पिलाई, इन्द्रजव धववृक्षके बीज और खरगोशकी हड्डी यह लोहोंकी कठिनताका नाशक वर्ग है ॥ ३५ ॥

द्रावणगणः ।

गुडगुग्गुलुगुंजाज्यसारघैष्टंकणान्वितैः ।
दुर्द्रावाखिललोहादेर्द्रावणाय गणो मतः ॥ ३६ ॥

गुड, गूगल, घुंघची, घी, सहद, नौसादर, सुहागा यह कठिन धातुओंके द्राव करनेको द्रावणगण कहागया है ॥ ३६ ॥

क्षाराः सर्वे मलं हन्युरम्लाः शोधनजारणम् ।
मांद्यं विषाश्च निघ्नंति स्निग्ध्यं स्नेहाः प्रकुर्वते ॥ ३७ ॥

सभी क्षारोंकी भावना देनेसे पारा आदि धातुओंका मैल दूर हो जाता है, अम्लवर्गकी भावना शोधन और जारणमें दी जाती है, विषवर्ग धातुओंकी मंदता दूर करता है घृत तैलादि स्नेहवर्ग धातुओंमें चिकनाई करताहै ॥ ३७ ॥

रसानां तौल्यम्।

त्रुटिः स्यादणुभिः षड्भिस्तैर्लिक्षा षड्भिरीरिता।
ताभिः षड्भिर्भवेद्यूकः षड् यूकास्तु रजः स्मृतः ॥ ३८ ॥
षड्रजः सर्षपः प्रोक्तस्तैः षड्भिर्यव ईरितः।
एका गुंजा यवैः षड्भिर्निष्पावस्तु द्विगुंजकः ॥ ३९ ॥
स्याद्गुंजात्रितयं वल्लो द्वौ वल्लौ माष उच्यते।
षड्भिरेव तु गुंजाभिर्माष एकः प्रकीर्त्तितः।
माषाद्द्वादश तालः स्यादष्टौ ताला पलं भवेत् ॥ ४० ॥

छः अणुकी १ त्रुटि छः त्रुटिका १ लिक्षा छः लिक्षाकी १ यूक छः यूकका १ रज छः रजकी १ सरसों छः सरसोंका १ यव छः जौकी १ रत्ती २ रत्तीकी १ मटर तीन रत्तीका १ वल्ल दो वल्ल (छः रत्ती) का १ मासा होता है। बारह मासोंका १ तोला और आठ तोलोंका १ पल होता है ॥ ३८–४० ॥

माषैश्चतुर्भिश्शाणः स्याद्धरणः स निगद्यते।
टंकः स एव कथितस्तद्द्वयं काल उच्यते ॥ ४१ ॥
क्षुद्रः कोलवटश्चैव द्रंक्षणस्स निगद्यते।
कोलद्वयं च कर्षः स्यात् स प्रोक्ता पाणिमाणिका ॥ ४२ ॥
अक्षं पिचुः पाणितलं किंचित्पाणिश्च तिंदुकम्।
विडालपदकं चैव तथा षोडशिका मता ॥ ४३ ॥
करमध्यो हंसपदं सुवर्णं कवलग्रहः।
उदुंबरश्च पर्यायैः कर्ष एव निगद्यते ॥ ४४ ॥
स्यात् कर्षाभ्यामर्द्धपलं शुक्तिरष्टमिकास्तथा।
शुक्तिभ्यां च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थका ॥ ४५ ॥
प्रकुंचः षोडशी बिल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते ॥ ४६ ॥

चार मासेका शाण होताहै उसको धरण टंक भी कहते हैं (जहां २ मासा आवे वहां २ छः रत्तीका मासा समझना चाहिये) दो शाणका कोल होता है क्षुद्र कोल बटक भी इसको कहते हैं दो कोलका कर्ष होता है उसको पाणिमाणिका,

अक्षपिचु, पाणितल, किंचित्पाणि, तिंदुक, बिडालपदक, षोडशिका, करमध्य, हंसपदक, सुवर्ण, कवलग्रह तथा उदुंबर भी कहते हैं दो कर्षका अर्द्धपल होता है उसीको शुक्ति अष्टमिका कहते हैं। दो शुक्तिका पल होताहै उसको मुष्टि, आम्र, चतुर्थिका, प्रकुंच, षोडशी तथा बिल्व भी कहते हैं ॥ ४१-४६ ॥

पलद्वयं तु प्रसृतं तद्द्वयं कुडवोंजलिः।
कुडवौ मानिका तौ स्यात् प्रस्थं द्वे माणिके स्मृते ॥ ४७ ॥
तैश्चतुर्भिर्घटो माणिर्नल्वनर्मणशूर्पकाः।
द्रोणश्च शब्दाः पर्यायाः पलानां शतकं तुला।
चत्वारिंशत्पलशतं तुलाभारः प्रकीर्त्तितः ॥ ४८ ॥

दो पलका १ प्रसृत, दो प्रसृतका १ कुडव, इसको अंजली भी कहते हैं। दो कुडवकी १ माणिक, दो माणिककी १ प्रस्थ, दो प्रस्थोंका १ पात्रक, दो पात्रकोंका १ आढक, चार आढकोंका एक घट होता है। इसको माणि नल्वण उर्मण शूर्पक तथा द्रोण भी कहते हैं। सौ पलोंकी एक तुला होताहै। चार हजार पलका भार होता है। परंतु शार्ङ्गधरके मतसे २ हजार पलका भार होताहै सो यह ठीक है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

टंकः कर्षं पलं चापि कुडवं प्रस्थमाढकम्।
द्रोणो द्रोणी खारिकेति क्रमादेते चतुर्गुणाः ॥ ४९ ॥
रसशास्त्राणि बहुशो विचार्य किल सारवत्।
रसोपयोगि यत्किंचिद्दिङ्मात्रं तत्प्रदाशतम् ॥ ५० ॥

टंक, कर्ष, पल, कुडव, प्रस्थ, आढक, द्रोण, द्रोणी और खारी ये प्रत्येक क्रमसे एकसे दूसरी चौगुनी कही है। प्रयोजन यह कि टंकसे चौगुना कर्ष और कर्षसे चौगुना पल इत्यादि इसी क्रमसे जानो। मैंने रसोंके शास्त्रोंको विचार कर उसका जो कुछ सार था सो हे शिष्य उसका संक्षेप दिखला दिया है ॥४९॥५०॥

अधुना पुटसंज्ञां च विधानं चापि श्रूयताम्।

अब तुम पुटोंकी संज्ञा और विधिका श्रवण करो ॥

पुटसंज्ञाविधिश्च ।

महापुटम् ।

घने वेदास्रके गर्त्ते हस्तद्वितयमात्रके ।
करीषैरर्द्धपूर्णे च मुद्रितं च शरावकम् ॥
संस्थाप्य चान्यकारीषैः पूरिते शुभगर्त्तके ॥ ५१ ॥
अग्निं प्रज्वाल्य शीते च गृह्णीयात्तु शरावकम् ।
एतन्महापुटं चोक्तं कृतिभिः पूर्वसूरिभिः ॥ ५२ ॥

स्वच्छ करडी पृथ्वीमें एक चौकोना दो हाथका गहरा और चौडा गर्त्त बनावे उसको आधा आरने उपलों (जंगली कंडों) से भरे पीछे औषधियुक्त शराब पर कपर मिट्टी करके सुखावे पीछे गढेके बीचमें रक्खे बाकी गढेको आरने उपलोंसे भरकर बंद कर दे फिर आग लगादे स्वांगशीतल होनेपर शरावको निकाले इसको प्राचीन वैद्योंने महापुट कहाहै ॥ ५१॥५२ ॥

गजपुटलक्षणम् ।

घने वेदास्रके सार्द्धहस्ते चैव तु गर्त्तके ।
पूर्ववद्दीयते चाग्निस्तत्पुटं गजसंज्ञितम् ॥
माहिषं वेति संज्ञेयं सूरिभिः समुदाहृता॥ ५३ ॥

चौकोन घन डेढ हाथ गहरे चौडे गढेमें आधे भाग तक उपले भरदे, बीचमें शरावका संपुट रखके ऊपरसे और आधा उपले भरकर अग्नि दे इसको गजपुट अथवा माहिषपुट कहते हैं ॥ ५३ ॥

वाराहपुटलक्षणम् ।

अरत्निमात्रे गर्त्ते यद्दीयते पूर्ववत्पुटम् ।
करीषाग्नौ तु तत्प्रोक्तं पुटं वाराहसंज्ञितम् ॥ ५४ ॥

हाथभरके गढेमें पूर्वोक्त रीतिसे आरने उपलोंकी अग्नि दे इसको वाराह पुट कहते हैं ॥ ५४ ॥

कुक्कुटपुटलक्षणम् ।

वितस्तिमात्रगर्त्ते यत्पुटयेत्तत्तु कौक्कुटम् ॥ ५५ ॥

बालिस्तभर चौडे और लंबे गढेमें उक्त विधिसे अग्नि देनेको कुक्कुटपुट कहते हैं ॥ ५५ ॥

कपोतपुटलक्षणम्।

वितस्तिमात्रके गर्त्ते सप्तभिर्वाथ चाष्टभिः।
वन्योपलैः पुटं दत्तं तत्तु कापोतसंज्ञितम् ॥ ५६ ॥

बालिस्तभरके गढेमें सात अथवा आठ उपलोंकी अग्नि दीजाय तो उसे कपोत-पुट कहते हैं ॥ ५६ ॥

गोवरपुटलक्षणम्।

चूर्णीकृतकरीषाग्नौ भूमावेव तु यत्पुटम्।
दीयते तत्तु कृतिभिर्गोवरं समुदाहृतम् ॥ ५७ ॥

पृथ्वी पर उपलोंका महीन चूरा करके उस पर औषधियोंको रखे और उसको उपलोंके चूरेसे बंद कर अग्नि देवे यह गोवरपुट कहाताहै ॥ ५७ ॥

कुंभपुटलक्षणम्।

मृद्घटे बहुरन्ध्राणि कृत्वांगुलिसमानि वै।
चत्वारिंशत्ततस्तस्मिंच्छीतमुल्मुकचूर्णकम् ॥ ५८ ॥
अर्द्धमापुरयित्वा च मुखे दद्याच्छरावकम्।
कर्पटेन मृदालिप्त्वा छायाशुष्कं च कारयेत् ॥ ५९ ॥
तस्मिन्नंगारकान्क्षिप्त्वा छायाशुष्कं च कारयेत्।
निधाय त्रिदिनाच्छीतं गृहीत्वौषधिमाहरेत् ॥
एतत्कुंभपुटं ज्ञेयं कथितं शास्त्रदर्शिभिः ॥ ६० ॥

मिट्टीके घडेमें अंगुलीके बराबर चालीस छेद कर उस आधीमें कोयलोंका चूरा भरे, पीछे औषधि रखके उसका मुख शरावसे बंद करदे ऊपरसे कपडमिट्टी कर छायामें सुखावे आगके अंगारे डाल चूल्हे वा ईंटोंपर रख अग्नि देवे पीछे उतार कर तीन दिन शीतल होनेदे जब शीतल होजाय तब औषधियोंको निकाले इसे कुंभ पुट कहते हैं ॥ ५८-६० ॥

भांडपुटलक्षणम्।

स्थूलभांडं तुषापूर्णं मध्ये मूषासमन्वितम्।
वह्निना विहिते पाके तद्भांडपुटमुच्यते ॥ ६१ ॥

धानके तुषोंसे भरे बडे घडेके बीचमें मूषाको रक्खे पीछे. अग्निसे यथा योग्य पाक करे। इसको भांडपुट कहते हैं ॥ ६१ ॥

वालुकापुटलक्षणम् ।

अधस्तादुपरिष्टाच्चचाक्रिकाछाद्यते खलु ।
वालुकाभिः प्रतप्ताभिर्यत्रतद्वालुकापुटम् ॥ ६२ ॥

ऊपर और नीचे वालूसे भर मूषामें औषधियाँ पकाई जावें तो उसे वालुकापुट कहते हैं ॥ ६२ ॥

भूधरपुटलक्षणम् ।

वह्निमित्रात्क्षितौ सम्यक् निखनेद् द्व्यंगुलादधः ।
उपरिष्टात्पुटं यत्र पुटं तद्भूधराह्वयम् ॥ ६३ ॥

भूमिको दो अंगुल या चार अंगुल खोदके उस पर संपुट रखै ऊपरसे पुट देकर आग सुलगावै इसे भूधर पुट कहते हैं। कोई एक हाथभर गहरा चौडा गढा खोदकर साफ स्वच्छ करके उस गढेके मध्यमें एक और दो अंगुल या चार, छः अंगुलका गढा खोद उस छोटेसे गढेमें संपुट रख मिट्टीसे दबादे ऊपरसे जंगली उपले भर अग्नी देवे । शीतल होनपर निकाल ले इसे भूधर पुट कहते हैं ॥ ६३ ॥

लावकपुटलक्षणम् ।

ऊर्ध्वं षोडशिकासूत्रैस्तुषैर्वा गोवरैः पुटम् ।
यत्र तल्लावकाख्यं स्यात्सुमृदुद्रव्यसाधने ॥ ६४ ॥

मूसाके ऊपर आठ तोले कोयलेका चूर्ण अथवा तुष या उपलोंका पुट दिया जाय तो उसे लावकपुट कहते हैं यह पुट नरम वस्तु बनानेको उत्तम है॥ ६४ ॥

अनुक्तपुटमाने तु साध्यद्रव्यबलाबलात् ।
पुटं विज्ञाय दातव्यमूहापोहविचक्षणैः ॥ ६५ ॥

पुट देनेका प्रमाण और पुटका नाम जिस जगह नहीं लिखा उस जगह जिस द्रव्यमें पुट देनाहो उसके बलाबलका विचार करके पुट दे वे, अर्थात् यदि नरम चीज होय तो कुक्कटादि पुट दे, और कठिन द्रव्यमें गजपुट महापुट आदि देने चाहिये ॥ ६५ ॥

उपलपर्यायाः ॥

पिष्टके छगणं छाणमुत्पलं चोपलं तथा ।
गिरिंडोपलसाठी च वराटी छगणाभिधाः ॥ ६६ ॥

उपलं, पिष्टक, छगण, छाण, उत्पल, उपल, गिरिंड, उपलसाठी, तथा वराटी ये सब उपलोंके नाम कहे हैं ॥ ६६ ॥

अथ यंत्राध्यायः।

अथ यंत्राणि वक्ष्यंते रसतंत्राण्यशेषतः।
समालोक्य समासेन सोमदेवेन साम्प्रतम् ॥ ६७ ॥

इसके अनन्तर संपूर्ण रसग्रंथोंको देखकर सोमदेवजी संक्षेपसे यंत्रोंकी विधि कहते हैं ॥ ६७ ॥

यंत्रशब्दनिरुक्तिः।

स्वेदादिकर्म निर्मातुं वार्त्तिकेन्द्रैः प्रयत्नतः।
युज्यते पारदो यस्मात्तस्माद्यंत्रमिति स्मृतम् ॥ ६८ ॥

पारके स्वेदन आदि संस्कार करनके लिये जो मुनियोंसे बनाये गये हैं उन्हें यंत्र कहते हैं ॥ ६८ ॥

कवचीयंत्रम्।

नातिह्रस्वां काचकूपीं न चातिमहतीं दृढाम्।
वाससा कर्दमाक्तेन परिवृत्य समंततः ॥ ६९ ॥
संलिप्य मृदुमृत्स्नाभिः शोषयेद्रविरश्मिभिः।
निधाय भेषजं तत्र मुखमाच्छादयेत्ततः ॥ ७० ॥
काठिन्या दृढया वापि पचेद्यत्तु विधानतः।
कवचीयंत्रमेतद्धि रसादिपचने मतम् ॥ ७१ ॥

कांचकी शीशी मध्यम प्रमाणकी जो दृढ हो उसपर मुलतानी मिट्टीसे कपड मिट्टी करके धूपमें सुखावे पीछे उसमें औषधियोंको भर उसका मुह बंद कर दे फिर वालुका यंत्रादिमें रखकर विधिपूर्वक पकावे, इस प्रकार कपडा चढीहुई शीशीको कवचीयंत्र कहते हैं। इससे पारद आदि पकाये जाते हैं गंधक जारणके समय गंधकका धूम निकलजानेपर मुख बंद करे पहलेही मुख बंद करनेसे शीशी फूट जाती है ॥ ६९-७१ ॥

दोलायंत्रम्।

निबद्धं त्वौषधैः सूतं भूर्जे तु त्रिगुणाम्बरे।
रसपोटलिकां काष्ठे दृढं बद्ध्वा गुणेन हि ॥ ७२ ॥
संधाय पूर्णकुंभांतः स्वावलंबनसंस्थिताम्।
अधस्ताज्ज्वालयेद्वह्निं तत्तदुक्तक्रमेण हि ॥
दोलायंत्रमिदं प्रोक्तं स्वेदनाख्यं तदेव हि ॥ ७३ ॥

औषाधियुक्त पारा लेकर भोजपत्रसे लपेटे पीछे त्रिगुणित कपडेकी पोटलीमें बांधे फिर एक या डेढ बालिस्तके छोटे काष्ठसे बांधकर घडेमें लटकादे और आधा घडा जल भरदे, फिर उस पोटलीको उसके भीतर इस प्रकार लटकावे कि उसका पैंदा पेंदीसे न मिले पीछे उस घडेको चूल्हे पर चढाकर उचित प्रमाणकी अग्नि दे इसको दोलायंत्र अथवा स्वेदनयंत्र कहते हैं ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

साम्बुस्थालीमुखे बद्धवस्त्रे स्वेद्यं निधाय च ।
विधाय पच्यते यंत्रे स्वेदनं तद्यथास्मृतम् ॥ ७४ ॥

अथवा पानी भरे पात्रके मुखपर कपडा बांधकर उसमें भाफ देने योग्य चीजको रख भाफ दे इसको स्वेदनयंत्र कहते हैं ॥ ७४ ॥

गर्भयंत्रम् ।

स्थूलभांडस्य गर्भे तु इष्टिकां स्थापयेत्ततः ॥ ७५ ॥
पात्रं स्थाप्यं वेष्टिकोर्ध्वं द्रव्यं स्थूले च भांडके ।
पश्चान्मुखे चान्यभांडं घटिकासदृशं ददेत् ॥ ७६ ॥
साधु लेपं ततः कृत्वा जलं दत्त्वोर्ध्वपात्रके ।
अग्निं प्रज्वालयेन्मंदं तप्तनीरं पुनस्त्यजेत् ॥ ७७ ॥
पुनः शीतजलं दत्त्वा तप्तं चेत्तत्त्यजेत्पुनः ।
एवं कृते चोर्ध्वभांडे लग्नं तैलादिकं स्रवेत् ॥ ७८ ॥
अंतःस्थे सूक्ष्मपात्रे च तच्च ग्राह्यं प्रयत्नतः ।
गर्भयंत्रमिदं ख्यातं सुगंध्यर्कादिसाधने ॥ ७९ ॥

किसी बडे घडेकी पेंदीमें ईट रख चूल्हेपर चढावे उसके ऊपर दूसरा पात्र रक्खे, इसके चारों ओर औषधि भरदे, पीछे घडेके मुखपर घडियाके समान पात्र रखके संधि बंद करे घडेके तले मंद २ आग जलावे मुखके ढक्कनमें जल भरदेवे जब वह जल गरम होजाय तब दूसरा शीतल जल भरदेवे इस तरह बार बार गरम पानी निकाल २ कर ठंढा पानी भरता रहे इस तरह करनेसे ऊपरके पात्रकी पेंदीमें भाफ जमती है वही ठंढा पानी ऊपर रहनेके कारण टपक २ कर भीतरके पात्रमें गिरती रहती है उसको सावधानीसे निकाल लेवे, इसको गर्भयंत्र कहते हैं इसके द्वारा सुगन्धित अर्क साधन करते हैं ॥ ७५-७९ ॥

प्रकारान्तरम् ।

गर्भयंत्रं प्रवक्ष्यामि पिष्टिकाभस्मकारकम् ।
चतुरंगुलदीर्घां तु त्र्यंगुलोन्मितविस्तराम् ॥ ८० ॥
मृन्मयीं तु दृढां मूषां वर्तुलं कारयेन्मुखम् ।
लवणं विंशतिर्भागो भाग एकस्तु गुग्गुलोः ॥ ८१ ॥
सुश्लक्ष्णं पेषयित्वा तु वारं वारं पुनः पुनः ।
मूषालेपं दृढं कृत्वा लवणाद्यं मृदादिभिः ॥ ८२ ॥
करीषतुषाग्निनाभूमौ स्वेदयेन्मृदु मानवित् ।
अहोरात्रं त्रिरात्रं वा रसेन्द्रो भस्मतां व्रजेत् ॥ ८३ ॥

जिससे पारेकी पिष्टिका भस्म किया जाता है उस गर्भयंत्रको वर्णन करताहूँ । चार अंगुल लंबी और तीन अंगुल चौडी मिट्टीकी मजबूत मूषा बनावे उसका मुख गोल हो तदनंतर बीस भाग नमक और एक भाग गुग्गुलको महीन पीसकर मूषापर पक्का लेप करे अर्थात् लवणादि युक्त मिट्टीमें पारेकी पिट्ठी रखकर मूषामें रक्खे फिर मूषाका मुख बंद कर लेप करदे पीछे भूमिमें गड्ढा खोदकर कंडे और भूसेकी आँचसे धीरे २ एक अथवा तीन दिन रात स्वेदन करे तो पारा भस्म हो जावे ॥ ८०-८३ ॥

हंसपाकयंत्रम् ।

खर्परं सिकतापूर्णं तत्कृतस्योपरि न्यसेत् ।
अपरं खर्परं तत्र शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ८४ ॥
पंचक्षारैस्तथा मूत्रैर्लवणं च विडं ततः ।
हंसपाकाख्यमाख्यातं यंत्रं तद्वार्तिकोत्तमैः ॥ ८५ ॥

बालूसे भराहुआ एक बडा खपरा ले उसमें औषधियोंको रक्खै, ऊपरसे दूसरे खपरेसे मुखमें मुख मिलाकर खूब बंद करदे इस प्रकार पांचों क्षारोंमें मूत्रोंमें नमकोंमें तथा विडोंमें धीमी आगसे पकावे इस यंत्रको हंसपाक कहते हैं ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

विद्याधरयंत्रम् ।

अधः स्थाल्यां रसं क्षिप्त्वा विदध्यात्तन्मुखोपरि ।
स्थालीमूर्ध्वमुखीं सम्यङ्निरुध्य मृदुमृत्स्नया ॥ ८६ ॥

ऊर्ध्वस्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा चुल्ल्यामारोप्य यत्नतः ।
अधस्ताज्ज्वालयेद्वह्निं यावत्प्रहरपंचकम् ॥ ८७ ॥
स्वांगशीतात्ततो यंत्राद् गृह्णीयाद्रससुत्तमम् ।
विद्याधराभिधं यंत्रमेतत्तज्ज्ञैरुदाहृतम् ॥ ८८ ॥

मिट्टीकी दो हंडियां ऐसी ले कि जो भीतरसे चिकनी हों एकमें घुटाहुआ डलीका सिंगरफ या घुटा हुआ पारा छोडकर दूसरी हांडीके मुखसे पेंदी मिलाकर बंद करदेवे और दोनोंका जोड मुलतानी मिट्टी और कपडेसे बंद करे और ऊपरकी हाडीमें पानी भर दे जब पानी गरम होजाय तब उसे निकाल कर दूसरा ठंढा पानी भर दे उन दोनोंको चूल्हे पर चढा नीचे अग्नि जला दे इस प्रकार पांच प्रहर अग्नि देवे फिर स्वांगशीतल होनेपर ऊपरकी हांडीमें लगा पारा यत्नसे निकाल लेवे यंत्रोंके जाननेवाले पुरुषोंने इसको विद्याधर यंत्र कहा है ॥ ८६–८८ ॥

लवणयंत्रम् ।

काचपात्रे वह्निसहे रसराजं निधाय वै ।
लवणापूरितेऽन्यस्मिन्पात्रे तद्वै विनिक्षिपेत् ॥ ८९ ॥
कठिन्या सन्धिमापूर्य दृढं वस्त्रेण वेष्टयेत् ।
एवं लवणनिक्षेपात्प्रोक्तं लवणयन्त्रकम् ॥ ९० ॥
अन्तःकृतरसोलेपं ताम्रपात्रमधोमुखम् ।
लिप्त्वा मृल्लवणेनैव सन्धिं भाण्डतलस्य च ॥ ९१ ॥
तद्भाण्डं पूर्ववत्क्षारैरापूर्य विधिवत्पचेत् ।
एवं लवणयंत्रं स्याद्रसकर्मणि शस्यते ॥ ९२ ॥

किसी आतशी शीशीमें पारा रख कपडमिट्टी कर सुखाले फिर दूसरे बडे पात्रमें नमक भरदे । फिर कपड मिट्टीसे उस पात्रकी सान्धियोंको बन्द कर अच्छीतरह बांधदेवे इस प्रकार लवणको डालनेसे इसका नाम लवणयंत्र पडा है अथवा एक ताम्बेके पात्रमें पारेकी पीठी बना लेप करदे इस पात्रको अधोमुख कर किसी बडे ताम्रपात्रके बीचमें रख लवण और मिट्टीसे संधीलेप करदे फिर इस पात्रको नमकसे भरदे अथवा पारदयुक्त संपुटको लवणसे या किसी क्षारसे भरे पात्रके मध्यमें रख चूल्हेपर चढावे नीचे अग्नि जलावे इसको लवणयंत्र कहते हैं ॥ ८९–९२ ॥

डमरूयंत्रम् ।

यंत्रस्थाल्युपरि स्थालीं न्युब्जां दत्त्वा निरुध्यते ।
यंत्रं डमरुकाख्यं तद्रसभस्मकृते हितम् ॥ ९३ ॥

किसी हांडीके मुखपर वैसीही दूसरी हांडीका मुख जोडदे जोडको मुल्तानी मिट्टीसे बंद करे इसको डमरूयंत्र कहते हैं। यह (यंत्र) पारेकी भस्म उडाने या सिंगरफसे पारा निकालनेके लिये श्रेष्ठ है ॥ ९३ ॥

सोमानलयंत्रम् ।

ऊर्ध्वं वह्निरधश्चापो मध्ये तु रससंग्रहः ।
सोमानलमिदं प्रोक्तं जारयेद्गगनादिकम् ॥ ९४ ॥

जिसके ऊपर अग्नि नीचे जल और बीचमें रस इत्यादि रक्खे जावें वह सोमानल यंत्र कहाता है इसके द्वारा पारदमें अभ्रकादि जारण किये जाते हैं ॥ ९४ ॥

ऊर्ध्वनलिकायंत्रम् ।

भांडकंठादधश्छिद्रे वेणुनालं विनिःक्षिपेत् ।
समानकरकां वापि भांडवक्त्रे निवेशयेत् ॥ ९५ ॥
संधि लिप्त्वा च नालाग्रे काचभांडं निधापयेत् ।
अधस्तात्प्रज्वलेद्वारि टंकयंत्रमिति स्मृतम् ॥ ९६ ॥

कोई पक्का घडा लेकर उसके गलेमें छेद करके उस छेदमें बांस या नरसलकी सीधी पोली नली लगादे और मुखपर उतनाही बडा ढकना रखकर लेप करदे नलीके मुखके नीचे काँचका बर्त्तन रक्खे फिर उस घडेको भट्टीपर रख नीचे अग्नि जलावे तो अग्निके ऊपरवाले बरतनसे औषधियोंका अर्क खिंच खिंचकर दूसरे पानीवाले बरतनमें आवेगा उसको टंकयंत्र कहते हैं इस यंत्रसे नाना प्रकारके अर्क खींचे जासकते हैं ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

वालुकायंत्रम् ।

भांडे वितस्तिगंभीरे मध्ये निहितकूपिके ।
कूपिकाकंठपर्यंतं वालुकाभिश्च पूरिते ॥ ९७ ॥
भेषजं कूपिकासंस्थं वह्निना यत्र पाच्यते ।
वालुकायंत्रमेतद्धि यंत्रविद्भिः प्रकीर्त्तितम् ॥ ९८ ॥

एक बालिस्तभर गहरा जिसका मध्यभाग हो ऐसी एक बडी हांडी लेकर उसके तलेमें एक छिद्र कर उसपर ठीकरी रक्खे जिसके दोनों तर्फ छेद रहे उसमें कपडमिट्टी की हुई आतशी शीशी रख उस पात्रमें वालू भरकर चूल्हेपर चढावे थोडी आंच लगने उपरान्त जब गंधक उंडले तब शीशीका मुख बंद कर नीचे अग्नि जलावे इसको यंत्रवेत्ता पुरुष वालुकायंत्र कहते हैं कोई हांडीमें विना छिद्र कियेही शीशी रख हांडीको वालुसे भरना ठीक समझते हैं ॥९७॥९८॥

भूधरयंत्रम् ।

वालुकासु समस्तांगं गते मूषारसान्विता ।
दीप्तोपलैः संवृणुयाद्यंत्रं भूधरनामकम् ॥ ९९ ॥

मूषामें पारा भरके बंद करे उसको वालूमें दबाकर वालूके ऊपर जंगली कंडोंकी आग जलावे इसको भूधरयंत्र कहते हैं ॥ ९९ ॥

पातालयंत्रम् ।

हस्तप्रमाणं निम्नं च गर्त्तं कृत्वा प्रयत्नतः ।
तस्मिन्भांडं च संस्थाप्य तथान्यत्पात्रमाहरेत् ॥ १०० ॥
तस्मिन्नोषधवर्गं च दत्त्वाऽन्यच्च शरावकम् ।
मुखे संस्थाप्य छिद्राणि कृत्वा चैव शरावके ॥ १०१ ॥
शरावसहितं पात्रं गर्त्तस्थं भाजने न्यसेत् ।
संधिलेपं ततः कृत्वा गर्त्तमापूर्य मृत्स्नया ॥ १०२ ॥
पश्चादग्निं च प्रज्वाल्य स्वांगशीतं समुद्धरेत् ।
पश्चात्तत्पात्रमध्यस्थं पात्रं युक्त्वा समाहरेत् ॥ १०३ ॥
तदंतःस्थं च तत्तैलं गृह्णीयाद्विधिपूर्वकम् ।
पातालाख्यमिदं यंत्रं भाषितं शंभुना स्वयम् ॥ १०४ ॥

हाथभर गढा खोदे उसमें बडे मुंहका बरतन रक्खे फिर दूसरे बरतनमें औषधि रख ऊपर छेदवाला शराव ढकदे फिर उस शराव समेत गढेवाले पात्रके ऊपर उलटा रक्खे जिससे दोनोंका मुख मिलजावे फिर जोडको लीपकर उस गढेको मिट्टीसे भरकर ऊपर अग्नि जलादेवे तो शरावके छेदसे तेल या अर्क खिंचकर नीचेके पात्रमें गिरेगा पीछे स्वांगशीतल होनेपर तेल वा अर्कके पात्रको युक्तिसे निकाल लेवे शिवजीने यह पातालयंत्र कहा है ॥ १००-१०४ ॥

दीपिकायंत्रम् ।

कच्छपयंत्रान्तर्गतमृन्मयपीठस्थदीपिकासंस्थः ।
तस्मिन्निपतितसूतः प्रोक्तं तद्दीपिकायंत्रम् ॥ १०५ ॥

दीपिका (दीवट) यंत्र यह कच्छप यंत्रकाही एक भेद है, इसके बनानेकी विधि यह है मिट्टीकी चौकीपर दीवट रख उसपर युक्तिपूर्वक यंत्रको रक्खे तौ नीचेसे दीपाग्नि और ऊपरसे साक्षात् अग्नि जलावे तो बीचमें जलमें रहे हुए पारेक संस्कार होगा यह दीपिकायंत्र कहाता है ॥ १०५ ॥

तेजोयंत्रम् ।

भांडे चार्द्धप्रमाणेन द्रव्यं स्थाप्य प्रयत्नतः ।
तन्मुखे द्विनलीयंत्रं संस्थाप्य च निरोधयेत् ॥ १०६ ॥
पश्चान्मंदाग्निमुज्ज्वाल्य जलं दत्त्वोर्द्ध्वपात्रके ।
तत्तप्तनलिकाद्वारा निःसार्यं च पुनः पुनः ॥ १०७ ॥
नीचस्थनालिका वक्त्रे भांडं स्थाप्यं द्वितीयकम् ।
तस्मिन्नर्क च पतितं गृह्णीयात्तु विशेषतः ॥ १०८ ॥
तेजोयंत्रमिति ख्यातं तथान्यैर्लवकं मतम् ॥ १०९ ॥

जिस चीजका अर्क निकालना हो उसको किसी बडे बरतनमें रखकर उसको आधा उस चीजसे भर उसके ऊपर दो नलीका यंत्र रक्खे और जोड बंद कर नीचे धीमी आँच जलावे और ऊपरके पात्रमें पानी भरदे जब पानी गरम होजाय तब उसे नलीद्वारा निकाल डाले इसी प्रकार जब २ पानी गरम हो तब २ निकालता रहे नलीके मुखनीचे एक बरतन रखदे उसमें सब अर्क खिंचकर इकट्ठा होजायगा। इसका नाम तेजोयंत्र है और कोई इसको लवकयंत्र भी कहते हैं ॥ १०६--१०९ ॥

कच्छपयत्रम् ।

खर्परं पृथुकं सम्यग् विस्तारं तस्य मध्यतः ।
आलवालं पुटे कृत्वा तन्मध्ये पारदं क्षिपेत् ॥ ११० ॥
ऊर्द्ध्वाधस्तु विडं दत्त्वा मल्लेनारुध्य यत्नतः ।
ऊर्ध्वं देयं पुटं तस्य यंत्रं कच्छपसंज्ञकम् ॥ १११ ॥
जारणार्थे रसस्योक्तं गंधादीनां विशेषतः ॥ ११२ ॥

जिसका दल मोटा हो और मध्यसे खुला विस्तार हो ऐसे बडे खपरे या तौलेके मध्यमें आलवालसा बनाकर उसमें पारद भरदेवे, पारदके ऊपर नीचे विड रक्खे पश्चात् मल्ल (ढकने) से ढककर बंद करे उसके ऊपर अग्निका पुटदे, पारेमें गंधक तथा अभ्रकसत्त्वादि जारण करनेके लिये कच्छपयंत्र कहा है॥ ११०-११२॥

जारणयंत्रम् ।

लोहमूषाद्वयं कृत्वा द्वादशांगुलमानतः ।
ईषच्छिद्रान्वितामेकां तत्र गंधकसंयुताम् ॥ ११३ ॥
मूषायां रसयुक्तायमान्यस्यां तां प्रवेशयेत् ।
तोयं स्यात्सूतकस्याध ऊर्ध्वाधो वह्निदीपनम् ॥ ११४ ॥
रसोनकरसं भद्रे यत्नतो वस्त्रगालतम् ।
दापयेत् प्रचुरं यत्नादाप्लाव्य रसगंधकौ ॥ ११५ ॥
स्थालिकायां पिधायोर्ध्वं स्थालीमन्यां दृढां कुरु ।
संधिं विलेपयेयत्नान्मृदा वस्त्रेण चैव हि ॥ ११६ ॥
स्थाल्यन्तरे कपोताख्यं पुटं कर्षाग्निना सदा ।
यंत्रस्याधः करीषाग्निं दद्यात्तीव्राग्निमेव वा ॥ ११७ ॥
एवं तु त्रिदिनं कुर्यात्ततो यंत्रं विमोचयेत् ।
तप्तोदके तप्तचुल्ल्यां न कुर्याच्छीतले क्रियाम् ॥ ११८ ॥
न तत्र क्षीयते सूतो न च गच्छति कत्रचित् ।
अनेन च क्रमेणव कुर्याद्गंधकजारणम् ॥ ११९ ॥

लोहेके दो मूषा बारह २ अंगुलके बना, एकमें थोडा छेद कर उसमें गंधक भरदे, फिर दूसरे मूषामें पारद रखके गंधकवाली मूषामें प्रवेश करदेवे, पारदके नीचे जल रक्खे फिर एक बडी हांडी लेकर उसके भीतर पारे गंधकवाली मूषाओंको रखके कपडेसे छाने हुए लहसनके रससे पारे और गंधकको अच्छी तरह डुबा देवे ऊपर दूसरी हांडीसे हांडीका मुख बंद करदे, दोनों हांडियोंके मुखमें कपडमिट्टी लगाकर संधिको मजबूतीसे बंद करे फिर एक और बडे पात्रमें जंगली उपले डाल अग्नि देकर उस उपलोंकी अग्निवाल पात्रमें उपरोक्त संपुट रख भीतर कपोतपुटकी विधिसे आँच दे, अथवा उस हाँडीके नीचे जंगली कंडोंकी तेज आँच दे

अथवा लकडीकी तेज अग्नि देवे। इस रीतिसे तीन दिन करके चौथे दिन हंडी शीतल हो जानेपर यंत्रको खोले इस क्रियासे पारा कम नहीं होता और उडकर बाहर भी नहीं जाताहै इसी रीतिसे पारेमें गंधकका जारण करना चाहिये ॥ ११३-११९ ॥

तुलायन्त्रम्।

वृन्ताकारमूषे द्वे तयाः कुर्यादधः खलु।
प्रादेशमात्रां नलिकां मृदा लिप्त्वा सुगंधिकाम् ॥ १२० ॥
तत्रैकस्यां क्षिपेत्सूतमन्यस्यां गंधचूर्णकम्।
निरुद्ध्य मषयोर्वक्त्रं वालुकायंत्रके क्षिपेत् ॥ १२१ ॥
गंधाधोज्वालयेदग्निं तुलायंत्रमुदाहृतम्।
तालगंधाश्मसाराणां जारणार्थमुदाहृतम् ॥ १२२ ॥

बैंगनके स्वरूपके दो मूषे बनावे उनके नीचे अंगूठेसे लेकर तर्जनीतक लंबी नली बनावे उन दोनोंमे अच्छी तरह मिट्टीका लेप करे फिर एक मूषामें पारद दूसरीमें गंधकका चूर्ण भरकर दोनोंका मुख जोडकर मिट्टीसे संधि बंद करके वालुकायंत्रमें रखके गंधकके मूषाके नीचे अग्नि जलावे इसको तुलायंत्र कहते हैं इससे हरिताल गंधक और लोहोंका पारदमें जारण होताहै ॥ १२०-१२२ ॥

जलयंत्रम्।

उपर्याधस्तले तापो मध्ये च रसगंधकौ।
जलयंत्रमिदं गोप्यं श्रेष्ठं यंत्रं समीरितम् ॥ १२३ ॥
अस्मिन् स्वर्णादिभूसत्त्वं गंधकादिं च जारयत्।
कृत्वा लोहमयीं पात्रीमधोमुखसमन्विताम् ॥ १२४ ॥
मुखमध्य क्षिपेद्द्रव्यं पात्रवक्त्रं निरोधयेत्।
लोहचाक्रिकया रुद्ध्वा तत्संधिं साधु लेपयेत् ॥ १२५ ॥
तस्मिन् कोष्ठिक्षिपेदस्रं छागं लोहरजोन्वितम्।
पुनः पुनश्च संशुष्के पुनरेभिश्च लेपयेत् ॥ १२६ ॥
लोहवत्तच्च बब्बूलक्राथन परिमर्दितम्।
जीर्णेष्टिकारजःसूक्ष्मगुडचूर्णसमन्वितम् ॥ १२७ ॥

लेपयेत्खलु तत्प्रोक्तं दुर्भेद्यं सलिलैः खलु ।
खटिकां पटुकिट्टैश्च महिषीदुग्धमर्दितैः ॥ १२८ ॥
यत्तया मृत्स्नया रुद्धो न गंतुं क्षमते रसः ।
विदग्धवनिताप्रौढप्रेम्णा बद्धः पुमानिव ॥ १२९ ॥
ततो जलं विनिक्षिप्य वह्निं प्रज्वालयेदधः ।
अथवा कारयेन्मूषां पात्रलग्नामधोमुखीम् ॥ १३० ॥
लोहानामनुरूपां च तन्मूषामुखरोधिनीम् ।
दत्त्वा चान्यां तयोः सधिं विलेप्याजासृगादिभिः ॥ १३१ ॥
जलमूर्ध्वं विनिक्षिप्य निस्संदेहं विपाचयेत् ।
जलयंत्रं तु बहुभिर्दिनैरेव हि जायते ॥ १३२ ॥

जिसके ऊपर जल नीचे अग्नि बीचमें पारा और गंधक रखकर पकाया जावे उसको जलयंत्र कहते हैं यह सबके पास प्रकाश करनेका नहीं है इससे सुवर्ण, अभ्रकका सत्त्व, गंधक, आदिकोंका जारण करे। इसके बनानेकी यह विधि है कि लोहेका एक बडा बरतन बनावे उसका मुख नीचेको रहे उसमें पारा आदि द्रव्य भरके उसका मुख लोहेकी टिकियासे ढकदे और उसके जोडोंको बंद कर संधियोंपर बकरेके रुधिरमें सानकर लोहेका चूर लगावे उसे बार २ सुखा २ कर लेप करे पश्चात् पुरानी ईंटका बारीक चूर्ण और गुडको बबूलके काढेमें घोटकर लेप करे इसको जल नहीं भेद सकता, और उसपर खडिया मिट्टी नमक और लोहेके चूरेको भैंसके दूधमें खरल कर लेप करे तो पारा इस मुद्राको नहीं छोडेगा जैसे चतुर युवतीके प्रेममें फँसा मनुष्य उसे छोडकर नहीं जासकता पीछे ऊपर जल भरकर नीचे अग्नि जलावे अथवा बरतनसे मिलीहुई नीचेको मुखवाली मूषा बनावे उसपर पत्र जमाकर उसका मुख बंद करे और ऊपर जल भरकर अग्निपर पकावे यह जलयंत्र बहुत दिनोंमें ठीक होताहै ॥ १२३-१३२ ॥

धूपयंत्रम् ।

विधायाष्टांगुलं पात्रं लौहमष्टांगुलोच्छ्रयम् ।
कंठाधो द्व्यंगुले देशे जलाधारं हि तत्र च ॥ १३३ ॥
तिर्यग्लोहशलाकाश्च तन्वीस्तिर्यग्विनिःक्षिपेत् ।

तनूनि स्वर्णपत्राणि तासामुपरि विन्यसेत् ॥ १३४ ॥
पात्राधो निक्षिपेद्धूमं वक्ष्यमाणमिहैव हि ।
तत्पात्रं न्युब्जपात्रेण च्छादयेदपरेण हि ॥ १३५ ॥
मृदा विलिप्य संधिं च वह्निं प्रज्वालयेदधः ।
तेन पत्राणि कृष्णानि हतान्युक्तविधानतः ॥ १३६ ॥
रसश्चरति वेगेन द्रुतं गर्भे द्रवंति च ।
गन्धालकशिलानां हि कज्जल्या वा मृताहिना ॥ १३७ ॥
धूपनं स्वर्णपत्राणां प्रथमं परिकीर्तितम् ।
तारार्थं तारपत्राणि मृतवंगेन धूपयेत् ॥ १३८ ॥
धूपयेच्च यथायोग्यैरन्यैरुपरसैरपि ।
धूपयंत्रमिदं प्रोक्तं जारणाद्रव्यसाधनम् ॥ १३९ ॥

जिसके गलेके दो अंगुल नीचे पानी रहे ऐसा आठ अंगुल लंबा और उतनाही चौडा लोहेका पात्र लेवे फिर एक पतली लोहेकी सलाई लेकर आडी डाल देवे उसके ऊपर महिन सोनेके वर्क रक्खे और उनके नीचे धूआं करे और एक औंधे पात्रसे उस पात्रको ढक कर कपडामिट्टीसे उनके जोड बंदर करदेवे और नीचे आग जलावे तौ उस आगसे धुआं उठकर उन सोनेके वर्कोंको काले बनावेगा और मारेगा इस क्रियासे पारद सोनेको खाय जाता है यह खाया हुआ सुवर्ण पारेमें तत्काल जाण होजाता है । अथवा गंधक हरताल मैनाशिलकी कज्जली और मारेहुए शीशेकी धूनी देवे यह सुवर्णके पत्रोंकी पहली धूनी कही है अगर चांदीके पत्रोंमें धूनी देनी होय तो मारे हुए बंगकी देवे इसी प्रकार दूसरे उपरसोंसे यथायोग्य धूनी देवे यह धूपयंत्र जारण द्रव्यके साधनके लिये कहाहै॥१३३-१३९॥

स्थालीयंत्रम् ।

स्थाल्यां ताम्रादिनिक्षिप्य मल्लेनाऽऽस्यं निरुध्य च ।
पच्यते स्थालिकाधस्थस्थालीयंत्रमितीरितम् ॥ १४० ॥

किसी स्थालीमें तांबा आदि द्रव्य डालके मल्लसे उसका मुख बंद करदे उसके नीचे अग्नि जलाकर पकावे इसको स्थाली यंत्र कहते हैं ॥ १४० ॥

गौरीयंत्रम् ।

गौरियंत्रं प्रवक्ष्यामि सुखदं जारणाविधौ ।
कृत्वा चाष्टांगुलोच्छ्रायां चतुरस्त्रां समेष्टिकाम् ॥ १४१ ॥
स तु नागात्ससुत्कृत्य मध्ये चूर्णेन लेपयेत् ।
श्लक्ष्णां रसकृतां पिष्टिं कृत्वा प्राग्वद्धताभ्रजाम् ॥ १४२ ॥
रूप्यजां हेमजां वापि सत्त्वेनापि विनिर्मिताम् ।
निवेश्य तत्र चोर्ध्वाधो बलेश्चूर्णं पिधाय च ॥ १४३ ॥
तस्याः पिष्ट्याश्चतुर्थांशं वारंवारं विशोषयेत् ।
वक्रे खर्परचक्रीं तु दत्त्वा लिप्य विशोष्य च ॥ १४४ ॥
ऊर्ध्वं हयखुराकारं पुटं दद्याल्लघूपलैः ॥ १४५ ॥

जारण कर्ममें जिसका विशेष काम पडता है ऐसे सुख देनेवाले गौरीयंत्रको कहता हूं आठ अंगुल लंबी चौकोन ऊंची और सीधी ईंट लेकर उसके बीचमें गड्ढा बनावे उसको कांचसे साफकर चूनेका लेप करे पीछे अभ्रकके सत्त्व अथवा सोने और चांदीके वर्कोंमें घोटी हुई पारेकी पिट्ठीको उक्त ईंटके गढेमें भरकर ऊपर और नीचे गंधकका चूरा बिछावे, वह चूरा पारेका चतुर्थांस लेवे पीछे गढेके मुखपर खपरेकी ठीकरी रखके जोडोंको लप देवे और सुखावे उसके ऊपर घोडेके खुरके समान वनके उपलोंकी आंच देवेयह गौरीयंत्र कहाता है॥ १४१-१४५॥

कोष्ठीयंत्रम् ।

हस्तप्रमाणं दीर्घारमष्टसंख्यांगुलं तिर्यक् ।
समभूभागे घटितं वृत्तं मृत्कर्मसंपन्नम् ॥ १४६ ॥
वातायनद्विवृत्तं भस्त्रीमुखतुल्यधोभागे ।
प्रथमेत्पशुवसानालैर्भस्त्राभिर्वाऽभ्रसत्त्वार्थम् ॥ १४७ ॥

एक हाथ लंबी चार अंगुल चौडी आठ अंगुल तिरछी एक लकडी लेवे वह ऊपरसे नमी हुई हो उसको सम भूमिपर रख भीगी हुई गाढी मिट्टी उसपर चढावे और सुन्दर गोल दो मुख बनावे उनमें नीचेका मुख छोटा बनावे पीछे सावधानीसे अचक लकडीको निकाल लेवे पीछे धूपमें सुखाकर मिट्टी व अँगीठीमें छेदकर उस कोष्ठिकाको अच्छे प्रकार रखदे और उसके पीछेके हिस्सेमें पशुके चर्म्मकी नाल

अथवा धोंकनी बांधकर मिट्टीमें कोयले डाले यह अभ्रकआदिके सत्त्व निकालने तथा धातुओंको तपाने व पिघलानेमें उपयोगी होती है कोयलेमें आग धरके खूब धोंके यह कोष्ठीयंत्र कहाता है ॥ १४६ ॥ १४७ ॥

द्वितीयकोष्ठीयंत्रम् ।

कृत्वा खल्वाकृतिं चुल्लीमङ्गारैः परिपूरिताम् ।
तस्यां निवेशितं खल्वं पार्श्वे भस्त्रिकया धमेत् ॥ १४८ ॥
रसेन मर्दिता पिष्टिः क्षारैरम्लैश्च संयुता ।
प्रद्रवत्यतिवेगेन स्वेदिता नात्र संशयः ॥ १४९ ॥
कृतः कांतायसासोऽयं भवेत्कोटिगुणो रसः ॥ १५० ॥

खरलके समान चूल्हा बनाकर उसको अंगारोंसे भर देवे उसके ऊपर खरल रख वगलकी तरफ धोंकनीसे धौंकनेसे रससे खरल की हुई पिष्टी खार और खटाई सहित इस यंत्रकी आंचसे स्वेदन करनेसे तुरत पतली होजाती है जो इसे कान्त पाषाणका बनावे तो वह पारेको करोडों गुण देनेवाला बना देता है यह दूसरे प्रकारका कोष्ठीयंत्र है ॥ १४८-१५० ॥

तृतीयं कोष्ठीयंत्रम् ।

षोडशांगुलविस्तीर्णा हस्तमात्रायता समा ।
धातुसत्त्वनिपातार्थं कोष्ठिका परिकीर्त्तिता ॥ १५१ ॥
वंशखादिरमाधूकबदरीदारुसंभवैः ।
परिपूर्णा दृढांगारैरर्धे वातेन कोष्ठके ॥ १५२ ॥
भस्त्रयारन्तमार्गेण ज्वालयेच्च हुताशनम् ॥ १५३ ॥

सोलह अंगुल बडा एक हाथ लंबा समान कोष्ठिकायंत्र कहाहै बांस खैर महुवा तथा बेरकी लकडीके कोयलोंसे उसको भरकर नीचेके मार्गमें धौंकनीके धमानेसे आग प्रज्वलित करे इसको कोष्ठिकायंत्र अर्थात् धौंकनी कहते हैं ॥ १५१-१५३ ॥

पुटयंत्रम् ।

शरावसंपुटान्तस्थं करीषेष्वग्निमानवित् ।
पचेच्चुल्ल्यां द्वियामं वा रसं तत्पुटयंत्रकम् ॥ १५४ ॥

दोसकोरोंको लेवे एकमें रसको भरकर ऊपर दूसरा सकोरेको रखके शरावसंपुट करे तथा पांच अथवा सात कपडमिट्टी करे चूल्हेमें रखकर आरने उपलोंकी आग जलायकर दो प्रहर तक पकावे वैद्य आंचके प्रमाणको जाननेवाला होना चाहिये यह पुटयंत्र कहाताहै ॥ १५४ ॥

पालिकायंत्रम् ।

चषकं वर्त्तुलं लौहं विनताग्रोर्ध्वदंडकम् ।
एतद्धि पालिकायंत्रं वह्निजारणहेतवे ॥ १५५ ॥

लोहेका गोल प्यालासा जिसके ऊपर भागमें नमा हुवा दण्ड लगाहो बनावे जारणके लिये यह पालिकायंत्र कहाहै ॥ १५५ ॥

इष्टिकायन्त्रम् ।

मध्येगर्त्तसमायुक्तामिष्टिकां कारयेद्भिषक् ।
गर्ते चैव समे श्लक्ष्णे तस्यां सूतादिक न्यसेत् ॥ १५६ ॥
दत्त्वोपरि शरावं च संधिं मृल्लवणैर्लिपेत् ।
तदूर्ध्वं सिकतां किंचिद्दद्याद्देयं पुटं लघु ॥ १५७ ॥
इष्टिकायंत्रमेतद्धि जारयेद्गंधकादिकम् ॥ १५८ ॥

जिसके बीचमें खढी बनाया हो ऐसी ईंटमें पारे आदिको भरकर उसका मुख शरावसे बंद करदेवे और उसके जोडोंको नमक और मिट्टीसे बंद कर पीछे एक गढा खोद उसमें ईंटको रख ऊपरसे चारों ओर थोडी वालु बुरकदे फिर ईंटपर किंचित् अग्निका पुट देवे गंधक आदिके जारण करनेके लिये यह इष्टिकायंत्र कहाता है ॥ १५६-१५८ ॥

बकयंत्रम् ।

दीर्घकंठयां काचकुप्यां गिलयेत्काचभांडकम् ।
तिर्यक् कृत्वा पचेच्चुल्ल्यां बकयंत्रमिदं स्मृतम् ॥ १५९ ॥

लंबी गलेवाली कांचको शीशीमें एक दूसरी शीशीको डाले और तिरछी करके चूल्हेपर पकावे यह बकयंत्र कहाता है ॥ १५९ ॥

नाडिकायंत्रम् ।

विनिधाय घटे द्रव्यं कनीयांसमधोमुखम् ।
घटमन्यं मुखे तस्य स्थापयित्वा द्वयोर्मुखम् ॥ १६० ॥

मृदुमृद्भिः समालिप्य नाडिकां विनिवेशयेत् ।
यंत्रात्कुंडलितां भित्त्वा जलद्रोणीं महत्तमाम् ॥ १६१ ॥
आधारभांडपर्यंतं ततश्चुल्ल्यां विधारयेत् ।
अधस्ताज्ज्वालयेद्वह्निं यावद्वाष्पो विशेदधः ॥ १६२ ॥
गृह्णीयादाधारगतं निर्मलं रसमुत्तमम् ॥ १६३ ॥

किसी घडेमें पदार्थ भर, दूसरा छोटा पात्र आधा उसके मुखपर रखके दोनोंके मुख चिकनी मट्टीसे बंद करदे पीछे उस यंत्रमें एक नाल लगाकर दूसरे पात्रमें डालदे फिर उस पात्रको दूसरे जलयुक्त आधारपात्रमें रख पीछे पूर्वोक्त यंत्रको चूल्हेपर चढा नीचे अग्नि जलावे तौ अग्निके ऊपरवाले घडेका पदार्थ भाफरूप होकर नलके रस्ते दूसरे पात्रमें इकठ्ठा होजायगा फिर शीतल हुए निर्मल अर्कको सावधानीसे निकाल लेवे इस यंत्रके द्वारा अर्क निकाले जाते हैं इसे नाडिकायंत्र कहते हैं ॥ १६०-१६३ ॥

वारुणीयंत्रम् ।

ऊर्ध्वतोयसमायुक्तं जलद्रोणीविवर्जितम् ।
तोयसंवेष्टिताधारमृजुनाडीसमान्वितम् ॥ १६४ ॥
यंत्रं तद्वारुणीसंज्ञं सुरासाधनकर्मणि ॥ १६५ ॥

नाडिका यंत्रमें टेढी नाल होती है और समीप जल द्रोणी रहती है परंतु जिसमें यह न हो केवल ऊपर रखा पात्रही रहे वह वारुणीयंत्र कहाता है इसका नल सीधा होता है आधारभूत पात्र रहता है इसके द्वारा शराब निकाली जाती है ॥ १६४ ॥ १६५ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

बीजद्रव्यं घटे दत्त्वा संछाद्यान्येन तन्मुखम् ।
मृदा मुखं विलिप्याथ नाडीं वंशादिसंभवाम् ॥ १६६ ॥
यंत्रादाधारगां कृत्वा स्रावयेद्विधिना रसम् ।
वारुणीयंत्रमेतद्धि सुरासंसाधने शुभम् ॥ १६७ ॥

दूसरा वारुणीयंत्र कहते हैं शराब निकालने योग्य एक घडा लेवे उसमें शराब निकालने योग्य द्रव्य डालके उसका मुख किसी छोटे पात्रके मुखसे मिलाकर

बंद करे जोडोंको मुल्तानी मिट्टीसे ल्हेसदे पीछे उसमें बांसकी नाल लगा आधार पात्रसे मिलादे उस आधार पात्रके नीचे ठंढा पानी भरा रक्खे इस प्रकार बना हुवा वारुणीयंत्र मद्य बनानेको शुभ है ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

तिर्यक्पातनयंत्रम् ।

घटे रसं विनिक्षिप्य सजलं घटमन्यकम् ।
तिर्यङ्मुखं द्वयोः कृत्वा तन्मुखं रोधयेत्सुधीः ॥ १६८ ॥
रसाधो ज्वालयेदग्निं यावत्सूतो जलं विशेत् ।
तिर्यक्पातनमित्युक्तं सिद्धैर्नागार्जुनादिभिः ॥ १६९ ॥

किसी घडेमें पारा रखके दूसरा जलयुक्त घडा लेवे दोनोंको तिरछे रक्खे, उनके मुख मिला संधि भले प्रकार बंद करे पारेवाले घडेके तले अग्नि जलावे अग्निक प्रभावसे पारा उडकर जलवाले घडेमें प्रवेश करेगा, नागार्जुन आदि सिद्धोंने इसको तिर्यक्पातन यन्त्र कहा है ॥ १६८ ॥ १६९ ॥

नलिकायंत्रम् ।

लोहनालगतं सूतं भांडे लवणपूरिते ।
विरुद्धं विपचेत्प्राग्वन्नालिकायंत्रमीरितम् ॥ १७० ॥

किसी लोहेकी नलीमें पारा भरकर नमक भरे हुए दूसरे पात्रमें खडा कर बंद करदे और लवणयंत्रके समान पकावे यह नलिकायंत्र कहाता है ॥ १७० ॥

कंदुकयंत्रम् ।

स्थूलस्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा वासो बध्वामुखे दृढम् ।
तत्र स्वेद्यं विनिक्षिप्य तन्मुखं प्रणिधाय च ॥ १७१ ॥
अधस्ताज्ज्वालयेदग्निं प्रोक्तं कंदुकयंत्रकम् ।
स्वेदनीयंत्रमितिहि प्राहुरन्ये मनीषिणः ॥ १७२ ॥
यद्वा स्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा तृणं तृणोपरि तथा ।
स्वेदद्रव्यं परिक्षिप्य पिधानं प्रविधाय च ॥ १७३ ॥
अधस्ताज्ज्वालयेद्वह्निं यंत्रं तत्कन्दुयंत्रकम् ॥ १७४ ॥

किसी बडी हांडीमें जल भरक उसके मुखको कपडेसे मजबूत बांध देवे उस वस्त्रके ऊपर स्वेदन करने योग्य द्रव्यको रख उसे दूसरे पात्रसे ढकदे नीचे आग

जलावे इसको कंदुकयंत्र कहते हैं और कोई पंडित इसको स्वेदनीयंत्र कहते हैं अथवा हांडीमें पानी भरके घास बिछावे उसपर स्वेदन द्रव्यको रख उसके मुखको ढकदेवे और उस यंत्रके नीचे अग्नि जलावे इसे कंदुकयंत्र कहते हैं ॥ १७१-१७४॥

जलहारियंत्रम् ।

एतस्याज्जलहार्यंत्रं रसषाड्गुण्यकारणम् ।
सूक्ष्मकान्तमये पात्रे रसस्याद्गुणवत्तरः ॥ १७५ ॥

रसमें षड्गुण गंधक जारणके वास्ते कोष्ठीयंत्रका दूसरा भेद यह जलहारियंत्र है यह सूक्ष्म कान्तलोहका बनाना चाहिये, इसमें यदि पारदमें गंधक आदि जारण किये जाँय तो पारद विशेष गुणवाला होता है ॥ १७५ ॥

अर्द्धचन्द्रखरलम् ।

उत्सेधे सदशांगुलः खलु कला तुल्याङ्गुलायामवा-
न्विस्तारेण दशांगुलो सुनिमितैर्निम्नस्थितैर्वाऽगुलैः ।
पाल्या द्व्यंगुलविस्तरश्च मसृणोऽतीवार्द्धचन्द्रोपमो
घर्षो द्वादशकांगुलश्च तदयं खल्वो मतः सिद्धये ॥ १७६ ॥
अस्मिन्पञ्चपलः सूतो मर्दनीयो विशुद्धये ।
तत्तदौचित्ययोगेन खल्वेष्वन्येषु योजयेत् ॥ १७७ ॥

दश अंगुल ऊंचा, सोलह अंगुल लंबा और दश अंगुल गहरा खरल हो, उसकी पाली दो अंगुल चौडी व चिकनी हो, आकार उसका आधे चन्द्रमाके समान हो और बारह अंगुल लंबी मूसली होनी चाहिये ऐसा खरल पारेकी सिद्धिके लिये कहा है ऐसे खरलमें पांच पल पारेका मर्दन उसकी शुद्धिके लिये करे इसी प्रकार जहां २ जैसा खरल लेना उचित होय वैद्यको वैसा लेना चाहिये ॥ १७६॥१७७॥

वर्तुलखल्वम् ।

द्वादशांगुलनिम्नश्च मध्येतिमसृणीकृतः ।
मर्दकाश्चिपिटोधस्तात्सुग्राहश्च शिखोपरि ।
अयं हि वर्तुलः खल्वो मर्दनेऽतिसुखप्रदः ॥ १७८ ॥

बारह अंगुल गहरा बीचमें चिकना खरल हो उसकी मूसली नीचेसे चपटी हो और ऊपरसे भलीभांति पकडा जासके तथा गोल हो तो मर्दनसंस्कारमें अति सुखदायक होताहै ॥ १७८ ॥

श्रेष्ठखल्वानि ।

खल्वो लोहमयः श्रेष्ठस्तस्माच्छ्रेष्ठश्च सारजः ॥ १७९ ॥

कान्तलोहमयस्तस्मान्मर्दकश्च तथाविधः ।
अभावे लोहखल्वस्य स्निग्धः पाषाणजः शुभः ॥ १८० ॥

रसके संस्कारोंमें लोहेका खरल अच्छा है, उससे भी अच्छा सार लोहेका है, और उससे भी अच्छा कान्त लोहेका है। घोटनेकी मूसली भी उसी लोहेकी होनी चाहिये जिसका खरल हो। यदि लोहेका खरल न मिलसके तौ चिकने पत्थरका भी खरल लेना, और वैसी ही चिकनी मूसली बनाना ॥ १७९॥१८० ॥

खल्वयोग्या शिला नीला श्यामा स्निग्धा दृढा गुरुः ।
षोडशाङ्गुलकोत्सेधा नवांगुलकविस्तरा ॥
चतुर्विंशांगुला दीर्घा घर्षणी द्वादशाङ्गुला ॥ १८१ ॥

खरलके योग्य स्याह मूसा पत्थर चिकना मजबूत और भारी लेना चाहिये वह सोला अंगुल ऊंचा नव अंगुल चौडा, चौबीस अंगुल लम्बा लेना चाहिये। उसकी मूसली भी बारह अंगुल लम्बी होनी चाहिये ॥ १८१ ॥

अथ मूषाप्रकारः ।

मषायोश्च प्रकारं वै श्रूयतां शिष्यसत्तम ।
मूषा हि क्रौंचिका प्रोक्ता कुसुदी करहाटिका ॥ १८२ ॥
पाचनी वह्निमित्रा च रसवेदिभिरुत्तमा ।
मुष्णाति दोषान्याऽशेषान् सा मूषेति निगद्यते ॥ १८३ ॥
उपादानं भवेत्तस्या मृत्तिका लोहमेव च ।
मूषामुखविनिष्क्रान्ता वरमेकापि काकिनी ॥ १८४ ॥
दुर्जनप्रणिपातेन धिग्लक्षमपि मानिनाम् ॥ १८५ ॥

अब हे शिष्यसत्तम ! मूषाका विधान भी सुनो मूषा क्रौंचिक कुमुदी करहाटिका पाचनी वह्निमित्रा रसके वक्ताओंने यह छः मूषाके पर्यायवाचक शब्द कहे हैं, सब दोषोंको निकालकर नष्ट करे उसको मूषा कहते हैं मृत्तिका और लोहमूषाका उपादान कारण है अर्थात् मट्टी और लोहा आदिसे यह बनती है। जो मनुष्य वैद्यविद्याभिमानी है (अपनेको वैद्य मानेहुए हैं) वह मूषाके द्वारा प्राप्त एक काकिणीको भी धन्य समझते हैं परन्तु दुर्जनकी सेवासे लक्ष रुपये पर भी धिक्कार करते हैं ॥ १८२-१८५ ॥

संधिलेप ।

मूषापिधानयोर्बंधे बन्धनं सन्धिलेपनम् ।
अन्ध्रणं रन्ध्रणं चैव संश्लिष्टं संधिलेपनम् ॥ १८६ ॥
मृत्तिका पांडुरस्थूला शर्करा शोणपाण्डुरा ।
चिराध्मानसहा सा हि मूषार्थमतिशस्यते ॥ १८७ ॥
तदभावे च वाल्मीकी कौलाली वा समीर्यते ॥ १८८ ॥

दोनों मूषाके मुखोंको बांधनेके लिये जो बंधन लगाया जाताहै उसको बंध बंधन संधिलेपन अन्ध्रण रन्ध्रण संश्लिष्ट संधिलेपन इन नामोंसे उच्चारण किया जाताहै मृत्तिका जो मूषाके लिये ली जाती है वह बारीक होनी चाहिये पीली गाजनी अथवा लाल या लाल पीले रंगकी हो यह मृत्तिका ही देरतक आध्मायित अग्निको सहन कर सकेगी इसके अभावमें वल्मीक (बांबी) की मृत्तिका लेना चाहिये उसके अभावमें जिस जिस मृत्तिकाके कुम्हार वर्त्तन बनाता है वह लेना चाहिये ॥ १८६–१८८ ॥

मूषानिर्मापणद्रव्याणि ।

या मृत्तिका दग्धतुषैः शणेन शिखित्रिकैर्वा हयलद्दिना च ।
लौहेन दंडेन च कुट्टिता सा साधारणी स्यात्खलु मूषिकार्थे ॥ १८९
श्वेताश्मानस्तुषा दग्धाः शिखित्रा शणखर्परौ ।
लद्दिः किट्टं कृष्णमृत्स्ना संयोज्या मूषिकामृदि ॥ १९० ॥

तुषोंकी भस्म शणका कुतरा बालोंका कुतरा (कटाहुआ चूरा) घोडेकी लीद इन चीजोंको मूषाकी मृत्तिकामें मिलाकर लोहेके दंडसे खूब कूटे यह साधारण मूषाका क्रम है । सफेद पत्थरके रोडा, तुषोंकी राख, बाल, शण खपरा, लीद, लोहेका किट्ट, काली मृत्तिका यह मूषा बनानेके लिये मृत्तिकामें मिलाये जाने चाहिये ॥ १८९ ॥ १९० ॥

वज्रमूषा १.

वर्त्तुला गोस्तनाकारा वज्रमूषा प्रकीर्त्तिता ।
द्वौ भागा तुषदग्धस्य एको वल्मीकमृत्तिका ॥ १९१ ॥
लोहकिट्टस्य भागैकं श्वेतपाषाणभागकम् ।
नरकेशसमं किंचिच्छागीक्षीरेण पाचयेत् ॥ १९२ ॥

यामद्वयं दृढं मर्द्यं तेन मूषां च संपुटेत् ।
शोषयित्वा रसं क्षिप्त्वा तत्कल्कैः संधिलेपितम् ॥
वज्रमूषा भवेदेषा सम्यक् सूतस्य मारणे ॥ १९३ ॥

गोल गायके थनोंके आकारवाली वज्रमूषा कहाती है । तिनकोंकी राख दो भाग, एक भाग बांबीकी मिट्टी, एक भाग लोहकीच, एक भाग सफेद पत्थरका चूरा, और किंचित् मनुष्यके बाल डाले सबको मिलाकर बकरीके दूधमें औटाय दो प्रहर पर्यन्त अच्छी तरह घोटे पीछे उस मिट्टीकी गौके थनके समान गोल और लंबा सांचा बनावे, पीछे उसका ढकना बनायकर धूपमें सुखावे उसमें पारा भर ढकनेसे ढकदेवे और छेदोंको उसी मिट्टीसे बंद करे, पारदके मारणके लिये यह वज्रमूषा कही है ॥ १९१-१९३ ॥

योगमूषा २.

दग्धांगारतुषोपेता मृत्स्ना वल्मीकमृत्तिका ।
तद्वद्विड्समायुक्ता तद्वद्विड्विलेपिता ॥ १९४॥
तया या विहिता मूषा योगमूषेति कथ्यते ।
अनया साधितः सूतो जायते गुणवत्तरः ॥ १९५ ॥

कोयले तुषोंकी राख, काली मृत्तिका, और वल्मीककी मृत्तिका क्षार, खटाई, पंचलवण, गंधक, इनसे खूब एक जीव कर मूषा बनावे और क्षार, खटाई, गंधक, पंचलवण गोमूत्र इनसे बंधन देवे, इसको योगमूषा कहते हैं इस योगमूषासे सिद्ध किया पारद अधिक गुणकारी होता है ॥ १९४ ॥ १९५ ॥

वज्रद्रावणीमूषा ३.

गारभूनागधौताभ्यां शणैर्दग्धतुषैरपि ।
समैः समा च मूषा मृन्महिषीदुग्धमर्दिता ॥ १९६ ॥
क्रौंचिकायंत्रमात्रं हि बहुधा परिकीर्त्तिता ।
तया विरचिता मूषा वज्रद्रावणकेरिता ॥ १९७ ॥

चिकनी मृत्तिकाका गारा अलसीकी छाल लोहेका किट्ट शणका कुतरा तुषोंकी राख सबकी बराबर चिकनी मृत्तिका इन सबको भैंसीके दूधमें मर्दन कर क्रौंचिकायंत्रके समान मूषा बनावे इसको वज्रद्रावणीमूषा कहते हैं॥१९६॥१९७॥

गारमूषा ४.

दुग्धं षड्गुणगाराढ्यकिट्टांगारशणान्विता ।
कृष्णामृद्भिः कृता मूषा गारमूषेत्युदाहृता ॥
यामयुग्मपरिध्मानान्नासौ द्रवति वह्निना ॥ १९८ ॥

लोहेका किट्ट, कोयले, शण, कालीमृत्तिका छः गुना बालूरहित गारा इनको दूधमें मर्दन कर जो मूषा बनाई जावे उसको गारमूषा कहते हैं । यह मूषा दो पहर तीक्ष्ण अग्नि सह सक्ती है ॥ १९८ ॥

वरमूषा ५.

वज्रांगारतुषास्तुल्यास्तच्चतुर्गुणमृत्तिका ।
गारश्च मृत्तिकातुल्यः सर्वैरेतैर्विनिर्मिता ।
वरमूषेति निर्दिष्टा याममग्निं सहेत सा ॥ १९९ ॥

थोहरका कोयला, तुषोंकी राख, प्रत्येक आठ तोले, चिकनी मुलतानी मृत्तिका सोलह तोले चिकना गारा सोलह तोले इन सबको एक जीव कर बनाई हुई मूषा वरमूषा कही जाती है । यह एक प्रहरकी तीक्ष्णाग्नि सहन करती है ॥ १९९ ॥

वर्णमूषा ६.

पाषाणरहिता रक्ता रक्तवर्गाम्बुसाधिता ।
मृत्तया साधिता मूषा क्षितिखेचरलेपिता ॥
वर्णमूषेति सा प्रोक्ता वर्णोत्कर्षे नियुज्यते ॥ २०० ॥

पतथर कंकररहित चिकनी लाल मृत्तिकाको कसुंभा, खैर, लाख, लालचंदन, गोदनी, गेरू, कपूर कचरी, मधु इन औषधियोंके क्वाथमें घोटकर मूषा बनावे और अलसीके कल्कसे पोतकर सुखावे यह सबमें उत्तम वर्णमूषा कही जाती है रस उपरसोंको रंगीन करनेमें यह परम उत्तम है ॥ २०० ॥

रूप्यमूषा ७.

पाषाणरहिता श्वेता श्वेतवर्गाम्बुसाधिता ।
मृत्तया साधिता मूषा क्षितिखेचरलेपिता ॥ २०१ ॥
रूप्यमूषेति सा प्रोक्ता श्वेतवर्णाय युज्यते ॥ २०२ ॥

पत्थर कंकरीरहित उत्तम सफेद मिट्टीको श्वेत वर्गके जलसे रगडकर मूषा बनावे और अलसीके कल्कसे लेपन कर सुखावे इसको रूप्यमूषा कहते हैं यह रस उपरसोंको श्वेत बनानेमें काम आती है ॥ २०१ ॥ २०२ ॥

बिडमूषा ८.

तत्तद्बिडसमुद्भूता तत्ताद्बिडाविलेपिता ।
देहलोहार्थयोगार्थं बिडमूषेत्युदाहृता ॥ २०३ ॥

भूमिमें जो गंधक क्षार आदि बिड अर्थात् मैल पैदा होते हैं उनकी मूषा बना उनको लेपकर जो मूषा होती है उसको बिडमूषा कहते हैं शरीरको लोहसदृश दृढ करनेवाली औषधें सिद्ध करनेके अर्थ यह मूषा कही गई है ॥ २०३ ॥

वज्रद्रावणमूषा ९.

गारभूनागधौताभ्यां तुषमष्टगुणेन च ।
समैः समा च मूषा मृन्महिषीदुग्धमर्दिता ॥ २०४ ॥
क्रौंचिका यंत्रमात्रा हि बहुधा परिकीर्त्तिता ।
तथा विरचिता मूषा लिप्ता मत्कुणशोणितैः ॥ २०५ ॥
बालाऽब्दध्वानिमूलैश्च वज्रद्रावणक्रौंचिका ।
सहतेऽग्निं चतुर्यामं द्रवेणाऽऽपूरितासती ॥ २०६ ॥

चिकना गारा, लोहेका किट्ट, अलसीका छिलका, आठ भाग तुषोंकी राख, सबकी बराबर मृत्तिका इन सबको भैंसीके दूधमें घोटकर क्रौंचयंत्र समान बनाकर खटमलोंके रक्तसे लेपन कर सुखालेवे और मोथे तथा आकाशबेलके क्वाथका लेपन कर सुखावे यह मूषा हीराको गला सक्ती है इसको वज्रद्रावणी मूषा कहते हैं यह चार प्रहरकी तीक्ष्णाग्नि सहन करसक्ती है ॥ २०४-२०६ ॥

वृन्ताकमूषा १०.

वृन्ताकाकारमूषायां नालं द्वादशकांगुलम् ।
धत्तूरपुष्पवच्चोर्ध्वं सुदृढं श्लिष्टपुष्पवत् ॥ २०७ ॥
अष्टांगुलं च सच्छिद्रं सा स्याद्वृन्ताकमूषिका ।
अनया खर्परादीनां मृदूनां सत्त्वमाहरेत् ॥ २०८ ॥

बैंगनके आकारवाली मूषा कर ऊपरको बारह अंगुल नाल रक्खे धतूरेके फूलके समान बीचोंबीच पोली छिद्रयुक्त दृढ होनी चाहिये इसको वृन्ताकमूषा कहते हैं इससे खपरिया आदि मृदु पदार्थोंका सत्त्व निकालना चाहिये ॥२०७-२०८॥

गोस्तनीमूषा ११.

मूषा या गोस्तनाकारा शिखायुक्ता पिधानका ।
सत्त्वानां द्रावणे शुद्धो मूषा सा गोस्तनी भवेत् ॥ २०९ ॥

गौके स्तनके आकारकी जिसके ऊपरकी ओर ढकना दिया जाय उसको गोस्तनी मूषा कहते हैं यह सत्त्वोंके निकालनेमें उत्तम है ॥ २०९ ॥

मल्लमूषा १२.

निर्दिष्टा मल्लमूषा या मल्लद्वितयसंपुटात् ।
पर्पट्यादिरसादीनां स्वेदनाय प्रकीर्त्तिता ॥ २१० ॥

दो तौले लेकर उनमें औषध भर दोनोंका संपुट करके पर्पटी रस आदिके स्वेदनमें काम आती है इसको मल्लमूषा कहते हैं ॥ २१० ॥

पक्वमूषा १३.

कुलालभाण्डरूपा या दृढा च परिपाचिता ।
पक्वमूषेति सा प्रोक्ता पोटल्यादिविपाचने ॥ २११ ॥

कुम्हारके भाण्डके समान पकी हुई दृढ मूषाको पक्वमूषा कहते हैं । यह पोटली आदिके पकानेमें काम आती है ॥ २११ ॥

गोलमूषा १४.

निर्वक्त्रगोलकाऽऽकारा पुटनद्रव्यगर्भिणी ।
गोलमूषेति सा प्रोक्ता सत्वरं द्रव्यशोधिनी ॥ २१२ ॥

विना मुखकी गोल मूषा बना उसमें द्रव्य पहलेही भरदेवे इसको गोलमूषा कहते हैं यह शीघ्र द्रव्योंका मल दूर करनेके काम आती है ॥ २१२ ॥

महामूषा १५.

तले या गोलकाकारा क्रमादुपरि विस्तृता ।
स्थूलवृन्ताकवत्स्थला महामूषेत्यसौ स्मृता ॥
सा चायोभ्रकसत्त्वादेः पुटाय द्रावणाय च ॥ २१३ ॥

नीचेसे गोल क्रमपूर्वक ऊपरसे बडे बैंगनके समान स्थूल हो उसको महामूषा कहते हैं इसके द्वारा अभ्रक सत्त्वादि द्रावण होता है ॥ २१३ ॥

मंडूकमूषा १६.

मंडूकाकारिका मूषा निम्नतायामविस्तरा ॥ २१४ ॥
षडंगुलप्रमाणेन मूषामंडूकसंज्ञका ।
भूमौ निखात्य तां मूषां दद्यात्पुटमथोपरि ॥ २१५ ॥

मेंडकके आकारकी मूषा बनावे वह छः अंगुल लंबी छः अंगुल चौडी हो उसको मंडूकमूषा कहते हैं भूमिको खोदकर उसमें इसको रखके पुट दी जाती है ॥ २१४॥२१५ ॥

मुसलाख्यामूषा १७.

या मूषा चिपिटा मूले वर्तुलाऽष्टांगुलोच्छ्रया ।
मूषा सा मुसलाख्या स्याच्चक्रबद्धरसे हिता ॥ २१६ ॥

नीचेसे चपटी आठ अंगुल लंबी ऊपरसे गोल हो उसको मुसलामूषा कहते हैं यह पारदको चक्रबद्ध करनेमें काम आती है ॥ २१६ ॥

मूषाऽऽप्यायनम्.

द्रवे द्रवीभावमुखे मूषा याऽऽध्मानयोगतः ।
क्षणमुद्धरणं यत्तन्मूषाप्यायनमुच्यते ॥ २१७ ॥

जब मूषान्तर्गत द्रव्य द्रवीभावको प्राप्त होकर आध्मापित अग्निके प्रभावसे मूषाका मुखभी द्रवीभूत होनेलगे उस समय मूषाको धीरेसे निकालकर क्षणभर ठंढा होने देवे इससे इसका मुख फिर दृढताको पकड जाता है इस क्रियाको मूषाप्यायन कहते हैं ॥ २१७ ॥

अध्यायोपसंहार.

यंत्रैर्विना यतस्तात न सिध्यंति रसादयः ।
नानार्थैस्तु समायुक्तो ह्यतोऽध्यायः प्रकीर्त्तितः ॥ २१८ ॥

यंत्रादिकोंके विना जाने रसादिक सिद्ध हो नहीं सक्ते इसलिये हे तात ! इस नानार्थविवेचनीयाध्यायमें यंत्रादिकोंका कथन कर दिया है ॥ २१८ ॥

इति श्रीटकसालनिवासिरामप्रसादप्रणीते रसेन्द्रपुराणे नानार्थ-विवेचनीयो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथातः पारदसंस्कारवर्णनं नाम तृतीयाध्यायं व्याख्यास्यामः॥

अब हम पारेके संस्कारोंके वर्णनवाले तीसरे अध्यायका वर्णन करते हैं ॥

गुरुरुवाच ।

संस्कारैः शोधितः सूतः भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥
संस्कारेण विना तात पारदोऽयं महाविषः ॥ १ ॥

गुरु कहनेलगे हे पुत्र ! संस्कारोंसे शुद्ध हुआ पारद संपूर्ण भोगोंको और मुक्तिको देनेवाला होताहै। विना संस्कारसे यही पारद विषोंसे बढकर महाविष होजाताहै ॥१॥

रसलिङ्गं तु संस्थाप्य विधिना पूजयेत्ततः ।
गुरून् सिद्धान् तथाचार्यान् पूजयित्वा विधानतः ॥ १ ॥
पूर्वश्चाचारिकीं पूजां कृत्वा वै साधकोत्तमः ।
अहिंसाचन्दनं सत्यं पुष्पमस्तेयधूपनम् ॥ २ ॥
ब्रह्मचर्यं महादीपमप्रतिग्रहघण्टिकाम् ।
पायसान्नमहाभोगाः सर्वभूतदयाम्पराम् ।
संगृह्याराधयेद्देवं स भवेत् सिद्धिभाजनः ॥ ३ ॥

रसलिङ्गकी स्थापना करके विधिवत् पूजन करके गुरुओं सिद्धों तथा आचार्योंकी विधानसे पूजा करके प्रथम आचारिकी पूजा करनी उचित है जो वैद्य अपनी इन्द्रियोंका दमन करके अहिंसारूपी चन्दन, सत्यरूपी पुष्प, अस्तेय (दूसरेका धन हरण करना) रूपी धूप, ब्रह्मचर्यरूपी महादीप, अप्रतिग्रहरूपी घण्टिका, तथा सर्वभूतोंपर अत्यन्त दयारूपी महाभोगसे देवताकी आराधना करता है उसके सब कार्यसिद्ध होते हैं ॥ १-३ ॥

तत्र रसलिङ्गं स्थापयित्वा सम्पूययेत् ।

रसलिङ्गप्रकारमाह ।

निष्कत्रयं हेमपत्रं रसेन्द्रं नवनिष्ककम् ।
त्रिदिनं मर्दयेदम्लैस्तेन लिङ्गं तु कारयेत् ॥ ४ ॥
दोलायन्त्रे सारनाले जम्बीरस्थं दिनं पचेत् ।
तल्लिङ्गं पूजयेत्तत्र शुभैः सर्वोपकारकैः ॥ ५ ॥
लिङ्गकोटीसहस्रस्य यत्फलं सम्यगर्चनात् ।
तत्फलं कोटिगुणितं रसलिङ्गार्चनाद्भवेत् ॥ ६ ॥

ब्रह्महत्यासहस्राणि गोहत्याव्ययुतानि च ।
तत्क्षणात्क्षयमायाति रसलिङ्गस्य दर्शनात् ॥
स्पर्शनाज्जायते शुद्धिरिति सत्यं शिवोदितम् ॥ ७ ॥

वहां रसलिङ्गकी स्थापना करके पूजन करे । तीन निष्क शुद्ध स्वर्णके पत्र लेकर उसमें नव निष्क शुद्ध पारद मिलाकर नीम्बूके रससे तीन दिनतक मर्दन करे । फिर इसका शिवलिङ्ग बनाकर जम्बीरी नीम्बूमें रखकर एक दिनतक दोलायन्त्रद्वारा काञ्जीमें पकावे । किसीभी रससंस्कार करनेसे पहले इस शिवलिङ्गको विधिवत् स्थापना करके पञ्चोपचार या षोडशोपचारसे पूजन करे । इस शिवलिङ्गके पूजनसे सहस्रों करोडों शिवलिङ्गोंके पूजनसे भी अधिक फल होता है । इस रसलिङ्गके दर्शन करनेसे ही ब्रह्महत्यादि पाप दूर होते हैं और स्पर्श करनेसे मन और आत्मा शुद्ध होता है ऐसा महादेवजीका वचन है ॥ ४-७ ॥

धूपैर्दीपैः सनैवेद्यैः पुष्पताम्बूलचन्दनैः ।
शान्तिपाठस्य निर्घोषैः स्तोत्रैर्मङ्गलनिस्वनैः ॥ ८ ॥
घण्टाटङ्कारसंयुक्तैः पूजां कृत्वा यथाविधि ।
" ॐ अघोरेभ्योऽथघोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यश्च
सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः "
सर्वविघ्नोपशान्त्यर्थं मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥ ९ ॥

धूप, दीप, नैवेद्य, चन्दन, ताम्बूल, पुष्पोंसे, शान्तिपाठके निर्घोषोंसे, मङ्गलोंसे स्तोत्रोंसे तथा घण्टाटङ्कारोंसे यथाविधि पूजाकरके " ओ अघोरेभ्यो " इत्यादि मन्त्रसे सर्व विघ्नोंकी शान्तिके लिये पूजा करे ॥ ८ ॥ ९ ॥

पारदसंस्काराः ।

अधुना रसराजस्य संस्कारान्संप्रचक्ष्महे ।
येन येन हि चांचल्यं दुर्ग्रहत्वं च नश्यति ॥ २ ॥

अब हम रसराज पारेके संस्कारोंको कहते हैं जिन जिन संस्कारोंसे पारेकी चंचलता और पकडा न जाना नष्ट होताहै ॥ २ ॥

सदोषपारदजारणनिषेधः ।

सदोषो भस्मितो येन योजितो योगकर्माणि ।
पतेत्स नरके घोरे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ३ ॥

जिस वैद्यने दोषयुक्त पारेका भस्म किया और उसे औषधियोंमें डाला वह चन्द्र और सूर्यकी स्थिति पर्यन्त भयानक नकरमें पडताहै ॥ ३ ॥

शुद्धपारदलक्षणम्।

अन्तः सुनीलो वहिरुज्ज्वलो यो मध्याह्नसूर्यप्रतिमप्रकाशः।
शस्तोऽथ धूम्रः परिपाण्डुरश्च चित्रो न योज्यो रसकर्मसिद्धौ ॥ ४ ॥

जिस पारेमें भीतरसे तो नीलापन झलके और ऊपरसे उज्ज्वल दीखे तथा मध्याह्नके सूर्यके समान प्रकाश हो वह पारा उत्तम है, इसीका रसकर्ममें उपयोग होता है। धुंएके रंगका केवडेके मकरंदके समान रंगवाला तथा चित्र विचित्र रंगका हो उसको रसकर्मकी सिद्धिमें लेना उचित नहीं है ॥ ४ ॥

पारदजातिः।

शुक्लो विप्रः समाख्यातो रक्तः क्षत्रिय एव च।
पीतो वैश्यः समादिष्टः कृष्णः शूद्रः प्रकीर्त्तितः ॥ ५ ॥

अब पारेकी जाति कहते हैं सफेद पारेकी ब्राह्मण जाति है, इसको कल्पोंके लिये लेना चाहिये, लाल पारेकी क्षत्री जाति है, यह गुटका बनानेमें काम आताहै, पीले रंगका पारा वैश्यजातिका है, इसका प्रयोग धातुक्रियामें होताहै और काले रंगका पारा शूद्र जातिका कहाहै यह रसकर्ममें नहीं लिया जाता, इसीसे इसको कलई करने आदि काममें लेते हैं ॥ ५ ॥

नागो रंगो मलो वह्निश्चांचल्यं च विषं गिरिः।
असह्याग्निर्महादोषा निसर्गात्पारदे स्थिताः ॥ ६ ॥

शीशा, रांग, मल, अग्नि, चंचलता, विष, गिरिदोष और अग्निका न सहना ये महान् दोष पारेमें स्वभावसे ही सिद्ध हैं ॥ ६ ॥

व्रणं कुष्ठं तथा जाड्यं दाहं वीर्यस्य नाशनम्।
मरणं जडतां स्फोटं कुर्वन्त्येते क्रमान्नृणाम् ॥ ७ ॥
तस्माद्रसस्य संशुद्धिं विदध्याद्भिषजां वरः।
शुद्धोऽयममृतः साक्षाद्दोषयुक्तो रसो विषम् ॥ ८ ॥
दोषहीनो यदा सूतस्तदा मृत्युर्जरापहः ॥ ९ ॥

उक्त दोष यथाक्रमसे व्रणादि रोगोंको उत्पन्न करते हैं, जैसे पारा सीसेके दोषसे व्रण उत्पन्न करताहै, रांगाके दोषसे कोढको, मलके दोषसे जडता, अग्निदोषसे

दाहको, चंचलतासे वीर्यनाशको, विषदोषसे मृत्युको, गिरिदोषसे जडता और अग्निजन्य असहन दोषसे फोडा रोगको करताहै इससे श्रेष्ठ वैद्योंको अवश्य पारदकी शुद्धि करनी चाहिये शुद्ध पारद अमृतके तुल्य है और दोषयुक्त रस विषके तुल्य है, यदि दोषहीन होवे तो मृत्यु और बुढापेका नाशक है ॥ ७-९ ॥

सप्तकंचुकाः ।

पर्पटी पाटली भेदी द्रावी मलकरी तथा ।
अंधकारी तथा ध्वांक्षी विज्ञेयाः सप्त कंचुकाः ॥ १० ॥

अब पारेकी सात कांचली कहते हैं पर्पटी, पाटली, भेदी, द्रावी, मलकरी, अंधकारी और ध्वांक्षी ये पारेकी सात कांचली हैं ॥ १० ॥

त्रिविधदोषाः ।

विषवह्निमलाश्चेति दोषा मुख्यतमास्त्रयः ।
रसे मरणसंतापमूर्च्छानां हेतवः क्रमात् ॥ ११ ॥
यौगिकौ नागवंगौ द्वौ तौ जाड्याध्मानकारकौ ।
औपाधिकाः पुनश्चान्ये कीर्त्तिताः सप्त कंचुकाः ॥ १२ ॥
भूमजा गिरिजा वार्जा द्वौ तथा नागवंगजौ ।
द्वादशैते रसे दोषाः प्रोक्ता रसविशारदैः ॥ १३ ॥

कोई आचार्य पारेमें विष, अग्नि और मल इन तीन दोषोंको मुख्य मानते हैं, वहां विषसे मृत्यु, अग्निसे संताप तथा मल दोषसे मूर्च्छा होती है । इसी प्रकार नागदोष और वंगदोष ये दो दोष यौगिक हैं । ये क्रमसे जडता और अफरेको करते हैं इसी प्रकार सात कांचली औपाधिक दोष हैं उनमें कोई पृथ्वीसे उत्पन्न हुए, कोई पर्वतसे उत्पन्न, और कोई जलसम्बन्धसे उत्पन्न इसी प्रकार सात कांचली दो सीसा और रांगके दोष, तीन विष आदि प्रधान दोष, ये सब मिलके बारह दोष रसशास्त्रके जाननेवालोंने पारेमें कहे हैं ॥ ११-१३ ॥

प्रत्येकदोषाः ।

भूमिजः कुरुते कुष्ठं गिरिजो जाड्यमेव च ।
वारिजो वातसंघातं दोषाढ्यौ नागवंगयोः ॥
अतो दोषनिवृत्त्यर्थं रसः शोध्यः प्रयत्नतः ॥ १४ ॥

पृथ्वीसे उत्पन्न हुवा दोष कुष्ठको करताहै पर्वतसे हुवा दोष जडताको, मलसे हुवा दोष वायुके रोग और नाग वंग अनेक प्रकारके अवगुण करते हैं इसीसे निर्दोष होनेके लिये यत्नपूर्वक रसका शोधन करना चाहिये ॥ १४ ॥

तस्माद्दोषनिवृत्त्यर्थं सहायैर्निपुणैर्भिषक् ।
सर्वोपस्कारमादाय रसकर्मसमारभेत् ॥ १५ ॥

इस कारण निर्दोष होनेके लिये चतुर मनुष्योंकी सहायतासे तथा संपूर्ण रस बनानेकी सामग्री लेकर वैद्य रसकर्म प्रारंभ करे ॥ १५ ॥

शुद्धिभेदाः ।

व्याधौ रसायने चैव द्विविधा सा प्रकीर्त्तिता ।
या शुद्धिः कथिता व्याधौ सा नेष्टा हि रसायने ॥
रसायने तु या शुद्धिः सा व्याधावपि कीर्त्तिता ॥ १६ ॥

अब रसकी शुद्धि कहते हैं दो तरहकी रसशुद्धि की जाती है एक रोगके लिये दूसरी रसायनके निमित्त, जो शुद्धि रोगोंके लिये कही है वह रसायनमें नहीं करनी और जो रसायनमें कही है वह रोगमें भी करनी चाहिये ॥ १६ ॥

अत्यन्तरम्योपवने चतुर्द्वारोपशोभिते ।
रसशाला प्रकर्त्तव्या सुविस्तीर्णा मनोरमा ॥
सम्यग्वातायनोपेता दिव्यचित्रैर्विचित्रता ॥ १७ ॥

रसशालाके लक्षण अत्यन्त सुन्दर उपवनमें चार दरवाजोंसे शोभित खूब बडी और मनोहर चारों ओरसे उत्तम जाली झरोखोंसे युक्त हवादार उत्तम चित्रोंसे युक्त रसशाला बनानी चाहिये ॥ १७ ॥

रसशालां प्रकुर्वीत सर्वबाधाविवर्जिते ।
सर्वौषधमये देशे रम्यकूपसमन्विते ॥ १८ ॥
नानोपकरणोपेतां प्रकारेण सुशोभिताम् ।
शालायाः पूर्वदिग्भागे स्थापयेद्रसभैरवम् ॥ १९ ॥
वह्निकर्माणि चाग्नेये याम्ये पाषाणकर्म च ।
नैर्ऋते शस्त्रकर्माणि वारुणे क्षालनादिकम् ॥ २० ॥

शोषणं वायुकोणे च वेधकर्मोत्तरे तथा ।
स्थापनं सिद्धवस्तूनां प्रकुर्यादीशकोणके ॥ २१ ॥

सब विघ्नोंसे रहित सब प्रकारकी औषधियोंसे युक्त और जहां सुन्दर कुआ हो वहां रसशाला बनानी चाहिये । जिस शालामें रस बनानेके अनेक यंत्रादि उपकरण विद्यमान हों तथा उसके चारों ओर परकोट घिरा हो, ऐसी रसशालाके पूर्वमें रसभैरवकी स्थापना करे और अग्निकोणमें अग्निकर्म अर्थात् भट्टी चूल्हे आदि बनावे, दक्षिण दिशामें पाषाण कर्म शिल लोढा खरल आदिको स्थापन करे, नैर्ऋत कोणमें शस्त्रकर्म करे, पश्चिममें जलसे प्रक्षालन आदि कर्म करे, वायव्य कोणमें रसका सुखाना आदि कर्म करे, और ईशान कोणमें सिद्धवस्तुओंका स्थापन करे ॥ १८-२१ ॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि पारदस्य विशोधनम् ।
रसो ग्राह्यः शुभे काले पलानां शतमात्रकम् ॥ २२ ॥
पंचाशत्पंचविंशद्वा दश पंचैकमेव वा ।
पलादूनो न कर्त्तव्यो रससंस्कार उत्तमः ।
बहुप्रयाससाध्यत्वात्फलं स्वल्पं तयोर्भवेत् ॥ २३ ॥

इसके पीछे पारेका शोधन कहताहूं । शुभ समयमें सौ, पचास, पच्चीस, दश, पांच, पल पारद लेवे, एक पलसे कम पारेका संस्कार न करे, क्योंकि इसमें अधिक परिश्रम है और फल थोडा मिलता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

मतान्तरम् ।

शतं पंचाशतं वापि पंचविंशद्दशैव च ।
पंचैकं वा पलं चैव पलार्द्धं कर्षमेव वा ॥ २४ ॥
कर्षादूनं न कर्त्तव्यं रससंस्कार उत्तमम् ।
प्रयोगेषु च सर्वेषु यथालाभं प्रकल्पयेत् ॥ २५ ॥

सौ पल व पचास पल पच्चीस पल, वा दश पल, वा पाँच अथवा एक पल वा आधा पल अथवा एक कर्ष पारा ले एक कर्षसे कम पारेका संस्कार न करे और बाकी रसप्रयोगोंमें जैसा वर्णन हो उतना ही ले ॥ २४ ॥ २५ ॥

संपूज्य श्रीगुरुं कन्यां बटुकं च गणाधिपम् ।
योगिनीः क्षेत्रपालांश्च चतुर्द्धा बलिपूर्वकम् ॥ २६ ॥

ततो रहस्ये निलये सुमुहूर्त्ते विधोर्बले ।
सुदिने शुभनक्षत्रे रसशोधनमाचरेत् ॥ २७ ॥
अघोरेण च मंत्रेण रसं प्रक्षाल्य पूजयेत् ॥ २८ ॥

चार प्रकारसे बलिदानपूर्वक श्रीगुरु, कन्या, बटुक, गणपति, योगिनी और क्षेत्रपालका पूजन करे, एकान्त स्थानमें उत्तम मुहूर्त्तमें चन्द्रबलमें और शुभग्रहके दिन तथा शुभ नक्षत्रमें रसशोधनका प्रारंभ करे पहले अघोरमंत्रसे पारदको धोकर पूजन करना चाहिये ॥ २६--२८ ॥

रक्षामंत्रः ।

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः ।
सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः ॥ २९ ॥

यह अघोरमंत्र श्रीशिवजीका है ॥ २९ ॥

पारदसंस्काराः ।

अष्टादश व संस्कारा ऊनविंशतिकाः क्वचित् ।
संप्रोक्ता रसराजस्य वसुसंख्याः क्वचिन्मताः ॥ ३० ॥

अब पारेके संस्कारोंको कहते हैं कहीं पारेके अठारह संस्कार कहे हैं और कहीं उन्नीस संस्कार और किसी आचार्यने आठ ही संस्कार माने हैं उनको आगे कहते हैं ॥ ३० ॥

पारदस्याष्टादशसंस्काराः ।

स्यात्स्वेदनं तदनु मर्दनमूर्च्छनं च स्यादुत्थितिः पतन-
रोध (बोध) नियामनानि । संदीपनं गगनभक्षण-
मानमत्र संचारणं तदनु गर्भगतिर्द्रुतिश्च ॥ ३१ ॥
बाह्यद्रुतिः सूतकजारणा स्याद्ग्रासस्तथा सारणकर्म पश्चात् ॥
संक्रामण वेधविधिः शरीरयोगस्तथाष्टादशधात्र कर्म ॥ ३२ ॥

स्वेदन, मर्दन, मूर्च्छन, उत्थापन, पातन, रोधन, अथवा बोधन, नियमन, संदीपन, गगनभक्षण, संचारण, गर्भगति, गर्भद्रुति, बाह्यद्रुति, सूतकजारण, ग्रास, सारणकर्म, संक्रामण, वेधविधि और किसी किसीके मतमें उन्नीसवाँ शरीरयोग इस प्रकार पारेके अठारह संस्कार हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अष्टसंस्काराः ।

स्वेदो मर्दनमूर्च्छनोत्थितरतः पातोऽपि भेदान्वितो
रोधः संयमनप्रदीपनमिति स्पष्टाष्टधा संस्कृतिः ।
अस्याः सर्वरसोपयोगिकतयात्वन्यानविन्यस्यते
ग्रन्थेऽस्मिन्प्रकृतोपयोगविरहाद्विस्तारभीत्याथवा ॥ ३३ ॥

इति रसपद्धतौ ।

स्वेदन, मर्दन, मूर्च्छन, उत्थापन, भेदयुक्तपातन, रोधन, संयमन, प्रदीपन इस प्रकार पारेके आठ संस्कार होते हैं। यह सब रसोंमें उपयोगी हैं विस्तारके भयसे और भेद यहां नहीं कहे ॥३३॥

इत्यष्टौ सूतसंस्काराः समा द्रव्ये रसायने ।
शेषा द्रव्योपयोगित्वान्न ते वैद्योपयोगिकाः ॥ ३४ ॥

ये आठ ही पारेके संस्कार द्रव्यमें और रसायनविधिमें समान हैं बाकी दश संस्कार द्रव्योपयोगी होनेसे वैद्योंके प्रयोजनके नहीं हैं ॥ ३४ ॥

अथोनविंशतिकर्माणि ।

स्वेदनमर्दनमूर्च्छनोत्थापनबोधननियमनसंदीपनाऽनुवासनगगनादिग्रा-
सप्रमाणचारणगर्भद्रुतियोगजारणरंजनसारणक्रामणवेधनभक्षणाख्या
ऊनविंशतिसंस्काराः सूतसिद्धिदा भवन्ति दीपनान्ता अष्टौ संस्कारा
वा देहसिद्धिदा भवंति ॥ ३५ ॥

स्वेदन, मर्दन, मूर्च्छन, उत्थापन, पातन, बोधन, नियमन, दीपन, अनुवासन, गगनादि ग्रासप्रमाण, चारण, गर्भद्रुति, बाह्यद्रुति, योग, जारण, रंजन, सारण, क्रामण, बेधन, भक्षण ये पारेके उन्नीस संस्कार सिद्धिकारक हैं अथवा दीपन तक आठ संस्कार शरीरकी सिद्धि देते हैं ॥ ३५ ॥

पारदभेदाः ।

आरोटको मूर्च्छितश्च बद्धश्च मृत एव च ।
चतुर्धा रसराजो हि प्रथितो जगतीतले ॥
संस्कारैरष्टभिः शुद्धो ह्यथवा हिंगुलूद्भवः ॥ ३६ ॥

आरोटकश्चलः प्रोक्तो रसज्ञानविचक्षणैः ।
चन्द्रोदयस्तु यः सूतो गंधकेन च जारितः ॥ ३७ ॥
मूर्च्छितः स तु विज्ञेयो बद्धो वह्निसहः स्मृतः ।
भस्मिते मृत इत्युक्तः संस्कारेष्वेव कीर्त्तताः ॥ ३८ ॥

आरोटक, मूर्च्छित, बद्ध और मृत यह चार पारदकी अवस्था हैं जो दीपनतक आठ संस्कारोंसे शुद्ध हुए चंचल पारेको आरोटक कहते हैं । अथवा दीपनतक संस्कार न हुए हों केवल शिंगरफसे ही निकाला हुआ हो उसे रसविद्याके जाननेवाले आरोटक कहते हैं । और षड्गुण गंधक जारणादि और चन्द्रोदय आदि पारेको मूर्छित कहते हैं अग्निमें न उडनेवालेको बद्ध कहते हैं और जिस पारेका भस्म होजावे उसे मृतपारा कहते हैं । ये चारों संस्कार अठारह संस्कारोंके भीतरही हैं इससे वह अठारह संस्कार क्रमसे कहे जाते हैं ॥ ३६-३८ ॥

अथ स्वेदनसंस्कारः ।

नानाधान्यैर्यथाप्राप्तैस्तुषवर्जैर्जलान्वितैः ।
मृद्भांडं पूरितं रक्षेद्यावदम्लत्वमाप्नुयात् ॥ ३९ ॥
तन्मध्ये घनवाग्मुंडी विष्णुक्रान्ता पुनर्नवा ।
मीनाक्षी चैव सर्पाक्षी सहदेवी शतावरी ॥ ४० ॥
त्रिफला गिरिकर्णी च हंसपादी च चित्रकः ।
समूलकाण्डं पिष्ट्वा तु यथालाभं विनिक्षिपेत् ॥ ४१ ॥
पूर्वाम्लभांडमध्ये तु धान्याम्लकमिदं भवेत् ।
स्वेदनादिषु सर्वत्र रसराजस्य योजयेत् ॥ ४२ ॥
अत्यम्लमारनाल च तदभावे प्रयोजयेत् ॥ ४३ ॥

समयानुसार मिलेहुए अनेक प्रकारके धान्योंसे मिट्टीके घडेको भरदे धान्य भूसेवाले न हो फिर उसमें जल भर ढककर एकान्तमें रखदेवे जबतक वह पानी खट्टा न हो तबतक उसकी रक्षा करे फिर नागरमोथा, ब्राह्मी, गोरखमुंडी, सपेद कोयल, गदापुरैना, मछेछी, सरफोंका, सहदेवी, शतावर, त्रिफला, नीले फूलकी कोयल, हंसपदी और चित्रक ये प्रत्येक डाली पत्ते जड जो जो मिले सबको लेकर पीसे और उक्त धान्यके घडेमें डाल देवे तो धान्याम्ल सिद्ध होजावेगा जहां जहां पारेका संस्कार करना हो तहां तहां इस धान्या-

म्लको लेना चाहिये । यदि यह धान्याम्लक न मिलसके तौ वहां अत्यंत खट्टी कांजी लेना चाहिये ॥ ३९-४३ ॥

त्र्यूषणं लवणं राजी मूलकं त्रिफलार्द्रकम् ।
महाबला नागबला मेघनादः पुनर्नवा ॥ ४४ ॥
मेषशृंगी चित्रकं च नवसारं समं समम् ।
रसस्य षोडशांशेन सर्वं युंज्यात्पृथक् पृथक् ॥ ४५ ॥
एतत्समस्तं व्यस्तं वा पूर्वाम्लेनैव पेषयेत् ।
प्रलिंपेत्तेन कल्केन वस्त्रमंगुलमात्रकम् ॥ ४६ ॥
तन्मध्ये निक्षिपेत्सर्वं बद्धा तु त्रिदिनं पचेत् ।
दोलायंत्रेऽम्लसंयुक्ते जायते स्वेदितो रसः ॥ ४७ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, नमक, राई, मूली, त्रिफला, अदरख, महाबला, नागबला, चौलाई, सांठ, मेढासींगी, चित्रक और नौसादर इन प्रत्येक औषधोंको अलग २ पारेका सोलहवां भाग लेना चाहिये, इन सबको अलग अलग वा साथही उक्त धान्याम्लकके साथ पीसे पश्चात् इसको एक साफ मोटे कपडेमें एक अंगुल मोटा लेप कर धूपमें सुखालेवे । पीछे उस कपडेमें पारेको बांध दोलायंत्रद्वारा उसी धान्याम्लमें तीन दिन औटावे तो स्वेदनसंस्कार होता है ॥ ४४-४७ ॥

अथवा—त्र्यूषणं लवणं सूर्यो चित्रकार्द्रकमूलकम् ।
पिष्ट्वा ततो मुहुः स्वेद्यः कांजिकेन दिनत्रयम् ॥ ४८ ॥

दूसरा मत है कि त्रिकुटा, नमक, राई, चित्रक, अदरख, मूली इन सबको पीस कही हुई विधिसे बारं बार तीन दिन कांजीसे स्वेदनसंस्कार करे स्वेदनयंत्रमें यह संस्कार करना ॥ ४८ ॥

अथान्यसिद्धमतम् ।

दिनं व्योषं वरा वह्निः कन्याकल्केषु कांजिके ।
रसं चतुर्गुणे वस्त्रे बद्धा दोलाकृतं पचेत् ॥ ४९ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, चित्रक, घीगुवार, इनका कल्क और कांजी इनमें पारेको चौपर्त्त कपडेमें बांधकर दोला यंत्रकी बिधिसे एक दिन पकावे तौ स्वेदन संस्कार होताहै ॥ ४९ ॥

रसस्य षोडशांशेन द्रव्यं युंज्यात्पृथक्पृथक् ।
द्रव्येष्वनुक्तमानेषु मतं मानमिदं बुधैः ॥ ५० ॥
त्रिदिनं स्वेदयेद्धर्मे दिनमेकं निरंतरम् ।
स्वेदयेद्रसराजं तु नातितीक्ष्णेन वह्निना ॥ ५१ ॥

पारेका सोलहवां हिस्सा प्रत्येक औषधि अलग अलग लेवे स्वेदनादि संस्कारोंमें जहां औषधियोंकी तौल न कही हो वहां यह परिमाण लेना चाहिये फिर उस पारेको पूर्वोक्त कांजी इत्यादिमें डालके तीन दिन धूपमें रखकर स्वेदन करे पीछे दोलायंत्रकी विधिसे मध्यमाग्नि करके एक दिन बराबर पारेका स्वेदन संस्कार करे पारेके खंडत्वदोष दूर करनेके लिये स्वेदन संस्कार इस प्रकार करे पहले पारेको दुहरे कपडेमें बांधे और एक हांडीमें जलभांगरा, लोनियां, गूमा, जलपीपल इन चारोंका रस भरके उसमें पारेकी पोटली लटकादेवे फिर उस हांडीको चूल्हेपर चढाकर चार प्रहरकी दीपक अग्नि देवे तदनंतर पारदके मुख करनेको और पक्ष दूर करनेको मर्दन संस्कार करे ॥ ५० ॥ ५१ ॥

द्वितीयमर्दनसंस्कारः ।

गृहधूमेष्टिकाचूर्णं तथा दधिगुडान्वितम् ।
लवणासुरिसंयुक्तं क्षिप्त्वा सूतं विमर्दयेत् ॥ ५२ ॥
षोडशांशं तु तद्द्रव्यं सूतमानान्नियोजयेत् ।
सूतं क्षिप्त्वा समं तेन दिनानि त्रीणि मर्दयेत् ॥ ५३ ॥
जीर्णाभ्रकं तथा जीर्णबीजं सूतं तथैव च ।
नैर्मल्यार्थं हि सूतस्य खल्वे धृत्वा तु मर्दयेत् ॥ ५४ ॥
गृह्णाति निर्मलो रागान् ग्रासे ग्रासे विमर्दितः ।
मर्दनाख्यं हि यत्कर्म तत्सूते गुणकृद्भवेत् ॥ ५५ ॥

घरका धुँवां, ईंटका चूरा, दही, गुड, नमक और राई इन सबको खरलमें डाल इनसे पारेको मर्दन करे उसमें हरएक औषधि पारेका सोलहवां भाग डालना चाहिये जैसे पारा यदि एक तोला हो तौ प्रत्येक औषधि एक एक आने भर डालनी चाहिये फिर उनके साथ उस पारेको तीन दिन खरल करै जिस पारेमें जीर्णाभ्रक अथवा जीर्णबीज किया हो ऐसे पारेको साफ करनेके लिये खरलमें डालकर

घोटना चाहिये जैसे २ पारेकों ग्रास देवे तैसे २ पारेको मर्दन करे तो वह निर्मल पारा उत्तम रंगको ग्रहण कहता है । जितना पारेका मर्दन संस्कार कियाजावे उतना ही अधिक गुणवाला होता है, अत एव मर्दन संस्कार अवश्य करे ॥५२-५५॥

अथान्यसिद्धमतम् ।

रक्तेष्टिकानिशाधूमसारोर्णाभस्मचूर्णकैः ।
जंबीरद्रवसंयुक्तैर्मुहुर्मर्द्यो दिनत्रयम् ॥ ५६ ॥
दिनैकं वापि सूतः स्यान्मर्दनान्निर्मलः परम् ।
ऊर्ध्वपातनयंत्रेण गृह्णीयाच्च पुनः पुनः ॥
पटसारणतो वापि क्षालनाद्वारनालतः ॥ ५७ ॥

लाल ईंट और हल्दीका चूरा धूँआ ऊनकी भस्म चूना इनमें पारा मिलाकर जंभीरीके रससे तीन दिन खरल करे अथवा एकही दिन खरल करनेसे शुद्ध होजाता है फिर इस पारेको ऊर्ध्वपातनयंत्रसे उडाकर निकाललेवे या वस्त्रसे छानलेवे अथवा कांजीसे धोवे तो पारा शुद्ध होजाता है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

तृतीयमूर्च्छनसंस्कारः ।

गृहकन्यामलं हन्यात् त्रिफला वह्निनाशिनी ।
चित्रमूलं विषं हन्ति तस्मादेभिः प्रयत्नतः ॥ ५८ ॥
मिश्रितं सूतकं द्रव्यैः सप्तवाराणि मूर्च्छयेत् ।
इत्थं संमूर्च्छितः सूतो दोषशून्यः प्रजायते ॥ ५९ ॥

घीगुवारके रसमें घोटनेसे पारेका मलदोष दूर होवे त्रिफलाके काढेमें घोटनेसे पारेका अग्निदोष मिट जाता है चित्रकके काढेमें घोटनेसे विषदोष नाश होता है अत एव इन द्रव्योंमें परिश्रमसे सात बार मिश्रित पारा घोटना चाहिये इस प्रकार मूर्च्छित पारा निर्दोष होता है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

पलत्रयं चित्रकसर्षपाणां कुमारिकन्याबृहतीकषायैः ।
दिनत्रयं मर्दितसूतकस्तु विमुच्यते पंचमलादिदोषैः ॥ ६० ॥

चित्रक, सरसों, घीकुँवार और कटेरी इनको तीन २ पल लेकर क्वाथ करे, इस क्वाथमें तीन दिन पारद मर्दन करनेसे पारदके पंचमलादि दोष दूर हो जाते हैं ॥ ६० ॥

विशालांकोलचूर्णेन वंगदोषं विमुंचति ।
राजवृक्षो मलं हन्ति पावको हन्ति पावकम् ॥ ६१ ॥
चांचल्यं कृष्णधत्तूरस्त्रिफलाविषनाशिनी ।
कटुत्रयं गिरिं हन्ति ह्यसह्यत्वं त्रिकंटकः ॥ ६२ ॥
प्रतिदोषं कलांशेन तत्र सूतं सकांजिकम् ।
सुवस्त्रगालितं खल्वे सूतं क्षिप्त्वा विमर्दयेत् ॥ ६३ ॥
उद्धृत्य चारनालेन मृद्भाण्डे क्षालयेत्सुधीः ।
सर्वदोषविनिर्मुक्तः सर्वकंचुकवर्जितः ॥
जायते शुद्धसूतोऽयं योजयेद्रसकर्मसु ॥ ६४ ॥

इन्द्रायणके फल और अंकोलके चूर्णमें पारेको घोटनसे पारा वंगके दोषको छोडदेता है, अमलतास पारेके मलको दूर करता है। चित्रकका काढा पारेका अग्निदोष नाश करता है। काले धतूरके रसमें घोटनेसे चांचल्य दोष दूर होताहै। त्रिफलाका काढा विषदोषको नाश करता है। त्रिकुटेका काढा पर्वतके दोषोंको और गोखुरूका काढा असह्य अग्निदोषको नष्ट करता है। प्रत्येक दोष दूर करनेके लिये पारेका सोलहवां भाग औषधी और कांजी डालके घोटे पीछे कपडेमें छान लेवे फिर उसे निकालकर कांजीसे मिट्टीके पात्रमें धोवे तो पारा संपूर्ण दोष और सातों कांचलियोंसे अलग हो शुद्ध होजावेगा, ऐसा शुद्ध पारा सभी रस कर्मोंमें ग्रहण करना चाहिये ॥ ६१--६४ ॥

अथ कंचुकीहरणम् ।

कुमारिकाचित्रकरक्तसर्षपैः कृतैः कषायैर्बृहतीविमिश्रितैः ।
फलत्रिकेनापि विमर्दितो रसो दिनत्रयं सप्तमलैर्विमुच्यते ॥ ६५ ॥

घीकुवारका रस, चित्रक, लालसरसों, कटेरी और त्रिफला इनको अलग अलग काढेमें अथवा सबका काढा कर एक साथ तीन दिन मलनेसे पारा सप्तकंचुकी दोषसे शून्य होताहै ॥ ६५ ॥

चतुर्थ उत्थापन संस्कारः ।

तत उत्थापयेत्सूतमातपे निम्बुकार्दितम् ।
उत्थापनावशिष्टं तु चूर्णं पातनयंत्रके ॥
धृत्वाग्नावूर्ध्वभांडात्तं संग्रहेत्पारदं भिषक् ॥ ६६ ॥

इसके अनंतर पारेका उत्थापन संस्कार करै, पारेमें नींबूका रस डालकर धूपमें घोटे सूखनेपर उसको निकाल लेवे, यदि उठानेमें बाकी रहजाय तो उस चूर्णको पातनयंत्रद्वारा अर्थात् डमरूयंत्रमें रखकर अग्नि जलावे, हांडीमें ऊपर लगेहुए पारेको निकाल लेवे इसको उत्थापनसंस्कार कहते हैं ॥ ६६ ॥

पंचम पातनसंस्कारः ।

तच्च त्रिविधं ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्पातनम् ।
अस्माद्विरेकात्संशुद्धो रसः पात्यस्ततः परम् ॥ ६७ ॥
उद्धृतः कांजिकक्काथात्पूतिदोषनिवृत्तये ।
ताम्रेण पिष्टिकां कृत्वा पातयेदूर्ध्वभाजने ॥ ६८ ॥
वंगनागौ परित्यज्य शुद्धो भवति सूतकः ।
शुल्बेन पातयेत्पिष्टिं त्रिधोर्ध्वं सप्तधा त्वधः ॥ ६९ ॥

अब पांचवां पातनसंस्कार दिखाते हैं वह तीन प्रकारका है, जैसे ऊर्ध्वपातन अधःपातन और तिर्यकपातन । उत्थापनसंस्कारसे पारेको लेकर पातन संस्कार इस प्रकार करे कांजीसे क्काथसे पारेको निकाल कर उसकी दुर्गंधि दूर करनेके लिये तांबेके बरतनमें पारेकी पीट्टी भरे और डमरूयंत्रमें रखकर ऊर्ध्वपातन करे तो पारा वंग और नागदोषको छोडकर शुद्ध होजाताहै । तांबेके पात्र द्वारा पारेकी पीट्टीको तीन बार ऊर्ध्वपातन और सात बार अधःपातन करे ॥ ६७-६९ ॥

अथोर्ध्वपातनम् ।

भागास्त्रयो रसस्यार्कभागमेकं विमर्दयेत् ।
जंबीरद्रवयोगेन यावदायाति पिंडताम् ॥ ७० ॥
तत्पिंडं तलभांडस्थमूर्ध्वभांडे जलं क्षिपेत् ।
कृत्वालवालं केनापि ततः सूतं समुद्धरेत् ॥
ऊर्ध्वपातनमित्युक्तं भिषग्भिः सूतसाधने ॥ ७१ ॥

पारा तीन भाग, तांबेका चूरा एक भाग दोनोंको जंभीरीके रसमें गोला न बंधने तक घोटे फिर उस पारेके गोलेको नीचेके बरतनमें रख ऊपरके बरतन पर किसी वस्तुसे थावलासा जल भरदेवे और नीचे अग्नि जलावे । स्वांगशीतल होने पर ऊपरके बरतनमें लगे हुए पारेको निकाल लेवे, इस क्रियाको ऊर्ध्व-

पातन कहते हैं दूसरे ग्रंथोंमें इस ऊर्ध्वपातनयंत्रको विद्याधरयंत्र कहते हैं किसी आचार्यका मत है कि पारा अपामार्ग (चिरचिरा) की भस्म और सोनामक्खी इन तीनोंको घीकुवारके रसमें घोटे गोला बनने पर ऊर्ध्वपातन करे ॥७०॥७१॥

अथाधःपातनम्।

त्रिफलाशिग्रुशिखिभिर्लवणासुरिसंयुतैः।
नष्टपिष्टं रसं कृत्वा लेपयेदूर्ध्वभांडके ॥ ७२ ॥
ऊर्ध्वभांडोदरं लिप्त्वा चाधोभांडे जलं क्षिपेत्।
संधिलेपं द्वयोः कृत्वा तद्यंत्रं भुवि पूरयेत् ॥ ७३ ॥
उपरिष्टात्पुटे दत्ते जले पतति पारदः।
अधःपातनमत्युक्तं सिद्धाद्यैः सूतकर्माणि ॥ ७४ ॥

त्रिफला, सहँजनेकी छाल, अपामार्ग (ओंगा) का क्षार और राई इनमें पारेको खरल कर पिट्टी करै उस (पिट्टी) को ऊपरके पात्रमें लेप कर नीचेके पात्रमें जल भरदेवे दोनोंका मुख बंद कर जोडोंको लीपदे, फिर उस यंत्रको भूमिमें गाडदेवे ऊपरके पात्रकी पेंदीमें कुक्कुटपुट देवे तो पारा जलके पात्रमें गिरता है इसको अधःपातन कहते हैं। कोई आचार्य कहते हैं कि गंधक और पारा दोनों बराबर बराबर कौंचके बीज, ओंगा, सहँजनेके बीज सैंधानमक, सफेद सरसों इन सबको जंबीरीके रसमें एक दिन घोटे फिर इसी पिट्ठीको ऊपरके पात्रमें लेपकर पूर्वोक्त विधिसे पारा निकाल लेवे इसे भी अधःपातन कहते हैं ॥ ७२-७४ ॥

तीर्यक्पातनम्।

घटे रसं विनिक्षिप्य सजलं घटमन्यकम्।
तिर्यङ्मुखं द्वयोः कृत्वा तन्मुखं रोधयेत्सुधीः ॥ ७५ ॥
रसाधो ज्वालयेदग्निं यावत्सूतो जलं विशेत्।
तिर्यक्पातनमित्युक्तं सिद्धैर्नागार्जुनादिभिः ॥ ७६ ॥
मिश्रितौ चेन्नागवंगौ रसे विक्रयहेतुना।
ताभ्यां स्यात्कृत्रिमो दोषस्तन्मुक्तिः पातनाश्रयात् ॥ ७७ ॥
एवं सुसंस्कृतः सूतः पातनावधि यत्नतः।
सर्वदोषविनिर्मुक्तो जायते नात्र संशयः ॥ ७८ ॥

एक बडा घडा लेकर उसमें पारा भरे और उसी प्रकार दूसरा पात्र लेकर उसमें पानी भरदे फिर कुछ तिरछे रखकर दोनोंके मुख मिला बन्द करदेवे और पारेवाले बरतनके नीचे आग इस अन्दाजसे जलावे कि पारा उडकर दूसरे पात्रमें चलाजावे इसको नागार्जुनादिक सिद्ध तिर्यक्पातन कहते हैं । पारेमें सीसे तथा रांगेका दोष तथा कृत्रिम दोष रहते हैं, उनकी शुद्धि पातनयंत्रसे की जासकती है, इस प्रकार पातनयंत्रसे सिद्ध हुवा पारा सर्वदोषरहित होजाता है स्थालीयंत्र, डमरूयंत्र और तिर्यक्पातनयंत्रोंका स्वरूप इस ग्रंथके द्वितीय अध्यायमें है । (कोई आचार्य पातनसंस्कारके अनन्तर फिर स्वेदन करना कहते हैं) ॥७५–७८॥

छठाबोधनसंस्कारः ।

एवं कदर्थितः सूतः षण्ढत्वमधिगच्छति ।
तन्मुक्तयेऽस्य क्रियते बोधनं कथ्यते हि तत् ॥ ७९ ॥

इस प्रकार ताडित पारा नपुंसकत्वको प्राप्त होता है अत एव उस नपुंसकत्वके दूर करनेके लिये छठा बोधनसंस्कार कहा जाता है ॥ ७९ ॥

विश्वामित्रकपाले वा काचकुप्यामथापि वा ।
सृष्टयंबुजं विनिक्षिप्य तत्र तन्मज्जनावधि ॥ ८० ॥
पूरयेत्रिदिनं भूम्यां राजहस्तप्रमाणतः ।
अनेन सूतराजोऽयं षंढभावं विमुंचति ॥ ८१ ॥

नरेली अथवा कांचकी शीशीमें पारा डालके उसमें सैंधव नमकका पानी भरदेवे जिसमें वह पारा डूब जावे कोई सृष्टयम्बुज शब्दसे स्त्रीका रज और मूत्र ग्रहण करते हैं अर्थात् कालिंनी (सोलहवर्षकी स्त्री) के रजमें पारेको डुबा देवे फिर उसको बंद कर सवा हाथका गढा खोदके उसमें गाडदेवे इस प्रकार तीन दिन गडा रहनेसे पारेका नपुंसकत्व दूर होता है ॥ ८० ॥ ८१ ॥

सप्तमो नियमनसंस्कारः ।

सर्पाक्षी चिंचिका वंध्या भृंगाऽब्दकनकांबुभिः ।
दिनं संस्वेदितः सूतो नियमात्स्थिरतां व्रजेत् ॥ ८२ ॥

---

१ यस्यास्तु कुञ्चिताः केशाः श्यामा या पद्मलोचना॥सुरूपा तरुणी भिन्नविस्तीर्णजघना शुभा ॥ संकीर्णहृदया पीनस्तनभारेण संनता ॥ चुंबनालिंगनस्पर्शकोमला मृदुभाषिणी ॥ अश्वत्थपत्रसदृयोनिदेशे सुशोभिता ॥ कृष्णपक्षे पुष्पवती सा नारी कालिनी स्मृता ॥

सरफोंका वा नागफणी, इमली, बांझककोडा, भांगरा, नागरमोथा, धतूरेके रसमें एक दिन स्वेदन करनेसे पारा इस नियमन संस्कारसे स्थिर होता है ॥ ८२॥

मतान्तरम् ।

उत्तराशाभवः स्थलो रक्तसैंधवलोष्टकः ।
तद्गर्भे रंध्रकं कृत्वा सूतं तत्र विनिःक्षिपेत् ॥ ८३ ॥
ततस्तु चणकक्षारं दत्त्वा चोपरि नैम्बुकम् ।
रसं क्षिप्त्वाथ दातव्यं तादृग् सैंधवखोटकम् ॥ ८४ ॥
गर्त्तं कृत्वा धरागर्भे दत्त्वा सैंधवसंयुतम् ।
धूलिमष्टांगुलां दत्त्वा कारीषीं दिनसप्तकम् ॥ ८५ ॥
वह्निं प्रज्वाल्य तद्ग्राह्यं क्षालयेत्कांजिकेन तु ।
अयं नियमनो नाम संस्कारो गदितो बुधैः ॥
अभावे चणकक्षारादर्पयेन्नवसादरम् ॥ ८६ ॥

उत्तर दिशामें लालरंगका बडा सैंधव पाषाण होता है उस पत्थरके बीचमें छेद करके उसमें पारा भरदेवे और उस पारेके ऊपर चनाखार भरकर नींबूका रस भरदेवे फिर उसी सैंधव पाषाणके टुकडेसे उसका मुख बंद करे और भूमिमें गढा खोद-कर उसमें पारेवाले पत्थरको रख अठारह अंगुल ऊंची वनके कंडोंकी राख भरकर दाब देवे फिर उसके ऊपर सात दिन अग्नि जलाकर उस पारेको निकालले और कांजीसे धोडाले इस क्रियाको नियमन संस्कार कहते हैं यदि नियमन संस्कारमें चनाखार न मिले तौ नौसादर डाले कदाचित् वह भी न मिले तो सज्जी-खार डाले ॥ ८३-८६ ॥

अष्टमो दीपनसंस्कारः ।

कासीसं पञ्चलवणं राजिका मरिचानि च ।
भूशिग्रुबीजमेकत्र टंकणेन समन्वितम् ॥ ८७ ॥
आलोड्य कांजिके दोलायंत्रे पाच्यास्त्रिभिर्दिनैः ।
दीपनं जायते सम्यक् सूतराजस्य चोत्तमम् ॥ ८८ ॥

कसीस, पांचों नमक, राई, मिर्च, सहँजनेके बीज, सुहागा, इन सबको कांजीमें मिलावै फिर इस कांजीमें पारेको दोलायंत्रकी विधिसे तीन दिन पकावे तो पारदमें दीपनसंस्कार होवे । अथवा पारेको चित्रकके रस तथा कांजीमें दोला-यंत्रकी विधिसे पकावे तो पारेका परमोत्तम दीपन होवे ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

अनुवासनसंस्कारः ।

दीपितं रसराजं तु जंबीररससंयुतम् ।
दिनकं धारयेद्धर्मे मृत्पात्रे वा शिलोद्भवे ॥ ८९ ॥

दीपित पारेको एक दिन जंबीरीके रसमें डालके मिट्टी या पत्थरके बरतनमें भरके धूपमें रखदे यह अनुवासन संस्कार कहाता है (अनुवासनपर्यन्त नौ संस्कार हो जानेपर शुद्ध पारा अष्टमांश शेष रहता है, ॥ ८९ ॥

स्वेदनादिनवकर्मसंस्कृतः सप्तकंचुकाविवर्जितो भवेत् ।
अष्टमांशमवशिष्यते यदा शुद्धसूत इति कथ्यते तदा ॥ ९० ॥

स्वेदनादि नौ संस्कारोंसे पारा सातों कांचलियोंसे रहित होताहै और अष्टमांश शेष रहता है, अर्थात् पारेमें सात भाग कांचली रहती हैं जब पारा शुद्ध होता है तो कांचली विलकुल नहीं रहती ॥ ९० ॥

अथ हिङ्गुलोः पारदनिस्सारणम् ।

अथवा हिंगुलात्सूतं ग्राहयेत्तद्धि गद्यते ।
जंबीरनिंबुनीरेण मर्दितो हिंगुलोर्दिनम् ॥ ९१ ॥
ऊर्ध्वपातनयंत्रेण ग्राह्यः स्यान्निर्मलो रसः ।
कंचुकैर्नागवंगाद्यैर्निर्मुक्तो रसकर्मणि ॥
विना कर्माष्टकेनैव सूतोऽयं सर्वकर्मकृत् ॥ ९२ ॥

अथवा हिंगुलमेंसे पारा निकालना चाहिये उसकी विधि यह है हिंगुलकी डलीको खरलमें पीस जंबीरिया नींबूके रसमें एक दिन खरल करे फिर इसको ऊर्ध्वपातन (डमरू) यंत्रद्वारा उडा लेवे तो यह पारा कंचुकी और नागवंग इत्यादि संपूर्ण दोषोंसे रहित और निर्मल होजाता है यह पारा विना अष्टसंस्का-रोंके ही शुद्ध होता है इसको संपूर्ण कर्मोंमें ग्रहण करना चाहिये ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

निंबूरसैर्निम्बपत्ररसैर्वा याममात्रकम् ।
पिष्ट्वा दरदमूर्ध्वञ्च पातयेत्सूतयुक्तितः ।
ततः शुद्धतरं तस्मान्नीत्वा कार्येषु योजयेत् ॥ ९३ ॥

नींबूके रस या नींबके पत्तोंके रसमें शिंगरफकी डलीको एक प्रहर घोटे पीछे उसे डमरू यंत्रमें भरके आंच देकर पारेको उडालेवे तो यह पारा सप्तकंचुकी और सर्व दोषरहित हो जाता है इसको सब कार्योंमें लेना चाहिये ॥ ९३ ॥

द्वितीयविधिः ।

हिंगुलं समवस्त्रेतु वेष्टयित्वाऽनले क्षिपेत् ।
मृत्पात्रेण तदाछाद्य हिमं कुर्यात्तु तत्तुलम् ॥ ९४ ॥

सिंगरफकी डलीको बराबरके वजनके वस्त्र अथवा कच्चे सूतमें लपेटकर आग लगा देवे ऊपर एक मट्टीकी बडी हांडीको औंधा करके रखदेवे और उस हांडीके ऊपर गीला करके एक वस्त्र रखदेवे ताकि उसका ऊपरका भाग ठंडा रहे नीचे एक दो छोटी २ कंकडी लगादेवे जिसमें आग न बुझै स्वांगशीतल होनेपर ऊपर हांडीमें लगेहुए पारेको निकाल लेना चाहिये ॥ ९४ ॥

तप्तखल्वद्वारा शुद्धिः ।

भूगर्तेऽजशकृत्तुषानलपुटैः संस्थापिते लोहजे ।
खल्वे जृंभलकांजिकेन बलिना सार्द्धं दशांशेन सः ॥
संमर्द्यः परिपातयंत्रविधिना निष्कासितः सप्तधा ।
शुद्धः पारदकर्मठैर्निगदितो वैद्यैरवैद्येतरैः ॥ ९५ ॥

भूमिमें एक गढा खोदकर उसमें बकरीकी लेंडी और भूसा भरके अग्नि जलावे उसके ऊपर लोहका खरल रखकर पारेका दशवां भाग गंधक लेकर उसको जंबीरीके रस और कांजीमें घोटे इस प्रकार सात बार पारेको खरल करे और उडालेवे तो पारेके कर्म जाननेवालेंने यह शुद्ध पारा कहाहै ॥ ९५ ॥

एकेन लशुनेनापि शुद्धो भवति पारदः ।
तप्तखल्वे मासमेकं पिष्टो लवणसंयुतः ॥ ९६ ॥

एक लहसुनके ही रसमें पारेको घोटनेसे शुद्ध होजाताहै इसको एक महीने तप्तखल्वमें लवण संयुक्त लहसुनके रसमें घोटे तब शुद्ध होताहै ॥ ९६ ॥

शोधितस्य मुखकरणं पक्षच्छेदनं च ।
विषोपविषकैर्मर्द्यः प्रत्येकं दिनसप्तकम् ॥
तेनास्य जायते वह्निः पक्षच्छेदो मुखं तथा ॥ ९७ ॥

शुद्ध पारेको विष और उपविषोंसे अलग २ सात २ दिन घोटे तो उस पारेके भूख उत्पन्न हो तथा पक्षच्छेद और मुख होवे ॥ ९७ ॥

नवविषाणि ।

कालकूटो वत्सनाभः शृंगिकश्च प्रदीपनः ।
हालाहलो ब्रह्मपुत्रो हारिद्रः सक्तुकस्तथा ॥
सौराष्ट्रिक इति प्रोक्ता विषभेदा अमी नव ॥ ९८ ॥

कालकूट, वत्सनाभ, शृंगिक, प्रदीपन, हालाहल, ब्रह्मपुत्र, हारिद्रक, सक्तुक, तथा सौराष्ट्रिक ये विषके नौ भेद कहे गये हैं, इन सब विषोंमें सात २ दिन घोटके डमरूयंत्रमें उडालेवे ॥ ९८ ॥

उपविषाणि ।

अर्कसेहुंडधत्तूरलांगलीकरवीरकाः ।
गुंजाहिफेनावित्येताः सप्तोपविषजातयः ॥ ९९ ॥
एतैर्विमर्दितः सूतश्छिन्नपक्षश्च जायते ।
मुखं च जायते तस्य धातूंश्च ग्रसते त्वरम् ॥ १०० ॥

आक, थूहर, धतूरा, कलिहारी, कनेर, घूंचची और अफीम ये सात उपविषकी जाति हैं इनमें सात २ बार घोटनेसे पारेके पंख कट जाते हैं और मुख होजाताहै तथा शीघ्र सुवर्णादि धातुओंको खा जाताहै नौ विषोंका मिलना कठिन है इससे सुलभ सुलभ सिंगिया विष और उपविषोंमें सात २ दिन पारेको घोटकर डमरूयंत्र द्वारा पारेको उडालेना चाहिये कदाचित् सब न उडाहो तो पुनः डमरूयंत्रद्वारा उडाना चाहिये ऊपरकी हांडीमें ठंडे पानीकी पोती फिरानेसे पारा ऊपर चिपक जाताहै हांडी शीतल करके उसे निकाललेना चाहिये ॥ ९९ ॥ १०० ॥

सास्यो रसः स्यात्पटुशिग्रुतुत्थैः सराजिकैः सोषणकैस्त्रिरात्रम् ॥
पिष्टस्ततः स्विन्नतनुः सुवर्णमुखानयं खादति सर्वधातून् ॥ १०१

सैंधव लवण, सहँजनके बीज, तूतिया, राई, पीपल और त्रिकुटा इन सब औषधियोंमें तीन दिन पारेको खरल करे पश्चात् स्वेदन संस्कार करे तो पारा सुवर्णादि सभी धातुओंको खाताहै ॥ १०१ ॥

अथवा बिंदुकीटैश्च रसो मर्द्यस्त्रिवारकम् ।
लवणाम्लैर्मुखं तस्य जायते धातुघस्मरम् ॥ १०२ ॥

छः[1] बूंदेवाले विषैले कीडेके रससे नमक तथा खटाई डालके तीन वार घोटे तो पारेका मुख होजाताहै जिससे सुवर्णादि धातुओंको शीघ्र खालेताहै ॥ १०२ ॥

अथवा त्रिकटुक्षारौ राजीलवणपंचकम् ।
रसोनो नवसारश्च शिग्रुश्चैकत्र चूर्णितैः ॥ १०३ ॥
समांशैः पारदादेतैर्जंबीरेण द्रवेण च ।
निंबुतोयैः कांजिकैर्वा सोष्णे खल्वे विमर्दयेत् ॥
अहोरात्रत्रयेण स्याद्रसे धातुगरं मुखम् ॥ १०४ ॥

अथवा त्रिकुटा, सज्जीखार, जवाखार, राई, पांचों नमक, लहसन, नौसादर और सहँजना, इन सब औषधोंको पारेके समान लेकर जंभीरीके रससे या नींबूके रस अथवा कांजीसे तप्त खल्वमें तीन दिन रात खरल करे तो पारेमें धातुको भक्षण करनेवाला मुख होजाताहै ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

उक्तौषधिरसैर्वस्त्रे दोलायंत्रे विपाचयेत् ।
अवशिष्टरसैः पश्चान्मर्दयेत्पाचयेदपि ॥ १०५ ॥
मर्दनाख्यं हि यत्कर्म तत्सूते गुणकृद्भवेत् ।
पुनर्विमर्दयेत्तस्माच्चतुर्दशदिनान्यमुम् ॥ १०६ ॥
इत्थं पातनया नपुंसकममुं यत्नेन रुद्धाम्बरे ।
सिन्धुत्र्यूषणमूलकार्द्रहुतभुग्राज्यालिकल्कान्विते ॥
भांडे कांजिकपूरिते दृढतरे भव्ये शुभे वासरे ।
दोलायंत्रविधानवित्रिदिवसं मंदाग्निना स्वेदयेत् ॥ १०७ ॥

---

(१) छः बूंदका कीडा काला २ होताहै और इसके ऊपर सफेदी युक्त पीले रंगकी छः बूंदें होती हैं इसके काटनेसे मनुष्य मरजाताहै यह कीडे वर्षाऋतुके आगमनमें प्रायः देखनेमें आतेहैं यह कीडे सांपके मामा अथवा छः बूंदके नामसे प्रसिद्ध हैं ।

स्वेदसदीपनतोऽसौ ग्रासार्थे जायते सूतः ।
दीपितमेनं सूतं जंबीराम्लेन धारयेद् घर्मे ॥
दिनमनुवासनमेवं नवमं संस्कारमिच्छन्ति ॥ १०८ ॥

उक्त औषधि अर्थात् जलभांगरा, लोनियां, गोमा और जलपीपलके रसमें पारेको वस्त्रमें बांधकर दोलायंत्रमें औटावे । बचेहुए रसोंसे फिर मर्दन करे, फिर पचावे, फिर मर्दनसंस्कार करे, इस प्रकार पहिले कहीहुई चारों औषधियोंके रसमें १४ दिन खरल करे जिससे बहुत मर्दन करनेसे पारेमें गुण बढजावें फिर १४ दिन पीछे उत्थापन संस्कार करे और पारेके षंढत्व दूर करनेके लिये दूसरी बार इस प्रकार स्वेदन संस्कार करे कि सैंधव नमक, सोंठ, मिर्च, पीपल, मूलीके बीज, अदरख, चित्रक और राई इन सब औषधियोंको छदाम छदाम भर लेवे और सबको कांजीमें पीसकर किसी साफ कपडेमें चार पहर तक खूब लेप करे फिर उस कपडेकी चार पर्त कर उसमें पारा बांधकर हांडीमें दोलायंत्र करके लटका देवे फिर उस हांडीमें १५ सेर कांजी भरके तीन दिनतक मन्द अग्नि द्वारा स्वेदन करनेमें पारेमें दीपन संस्कार होताहै और दीपन संस्कारसे पारा भूखा होकर धातुओंको खासकता है और नपुंसकता दूर होकर वह बलवान् होजाताहै । फिर पारेको कपडेसे निकाल कर इस भांति अनुवासन संस्कार करे कि एक हांडीमें पारा और नींबूका रस डालके एक दिन घाममें रखकर निकाललेवे इसे अनुवासन संस्कार कहते हैं ॥ १०५–१०८ ॥

सहस्रनिंबूफलतोयघृष्टो रसो भवेद्वह्निसमप्रभावः ॥ १०९ ॥

हजार निंबुओंके रसमें पारेको घोटनेसे पारा शुद्ध और भूँखा होताहै पारेको क्षारवर्गमें और अम्लवर्गमें घोटनेसे पारेके मुख हो जाता है तथा क्षुधा उत्पन्न होजाती है ॥ १०९ ॥

यथा ।

तत खल्वेन तप्तेन ह्यम्लेनोत्थापयेद्रसम् ।
क्षारा मुखकराः सर्वे सर्वे ह्यम्लाः प्रबोधकाः ॥ ११० ॥

पारेको तप्त खल्वमें अम्लवर्गके रसमें डाल, उत्थापन संस्कार करे कारण कि सभी क्षार मुख करते और सभी अम्लबोधक हैं ॥ ११० ॥

अथाम्लवर्गः ।

अम्लवेतसजम्बीरलुङ्गाम्लचणकाम्लकाः ।
नागरङ्गं तिन्तिडी च चिञ्चापत्रं च निम्बुकम् ॥ १११ ॥

चाङ्गेरी दाडिमश्चैव करमर्दंतथैव च ।
एष चाम्लगणः प्रोक्तो वेतसाम्लं सदोत्तमम् ॥ ११२ ॥

अमलबेत, जंभीरी, बिजौरा, चनाखार, नारंगी, इमली, कोकम, नींबू, खट्टी लोनियां, खट्टा दाडिम और करोंदा यह अम्लवर्ग कहाता है ॥ १११ ॥११२ ॥

क्षारवर्गः ।

पलाशधवपूतीककरञ्जपाटलादिजाः ।
टङ्कणेन समायुक्ताः क्षारवर्गः प्रकीर्तितः ॥ ११३ ॥

पलाश, धव, पूतिकरंज, कंजा, लाललोध, इनसे पैदा होनेवाले तथा जवाखार सज्जीखार सुहागा इत्यादिको क्षारवर्ग कहते हैं ॥ ११३ ॥

तथाच ।

क्षाराम्लैर्लवणैर्मूत्रैर्विषैरुपविषैस्तथा ।
दिव्यौषधिसमूहेन मर्दयेद्दिवसत्रयम् ॥
पारदस्य कलांशेन भेषजेन प्रमर्दयेत् ॥ ११४ ॥

क्षारवर्ग, अम्लवर्ग, लवणवर्ग, मूत्रवर्ग, विषवर्ग, उपविषवर्ग, और ६४ दिव्यौषधि इन प्रत्येकमें तीन ३ दिन घोटे तो पारा शुद्ध होजाताहै पारेका शोडषांश प्रत्येक औषध लेवे अनेक आचार्योंने दुग्धवर्ग, मूत्रवर्ग, तैलवर्ग, बसावर्ग, कृष्णवर्ग, शुक्लवर्ग, रक्तवर्ग, क्रामकवर्ग, और पीतवर्ग मृत्तिकावर्ग इनमें भी पारेको घोटना लिखाहै अब पारेका मूर्च्छाप्रकार लिखते हैं वह दो प्रकारका है एक गंधकके योगसे, दूसरा औषधियोंसे। औषधियोंके द्वारा मूर्च्छाका वर्णन पीछे कर चुके हैं अब गंधकके संयोगसे होनेवाले चन्द्रोदय आदिको लिखते हैं ॥ ११४ ॥

चन्द्रोदयविधिः ।

ततस्तमाद्विनिष्कास्य पारदं तोलयेद्भिषक् ।
तत्तुल्यं गंधकं दत्त्वा कुर्यात्कज्जलिकां द्वयोः ॥
द्रोणाम्बुकणयोर्नीरैर्मर्दयेच्च दिनद्वयम् ॥ ११५ ॥
संशोष्य वालुकायंत्रे यामानष्टौ ततः पचेत् ।
मंदमग्निं ततः कुर्यादाद्ये यामचतुष्टये ॥
ततो द्वितीययत्नेन तीव्रमग्निं प्रयोजयेत् ॥ ११६ ॥

ततः कूप्याः समुद्धृत्य पारदस्यास्य चक्रिकाम् ।
तत्पृष्ठलग्नं गंधं च दूरीकृत्य विचक्षणः ॥
पुनस्तयोरसैरेनं मर्दयेदेकवासरम् ।
चतुर्यामं पचेदग्नौ तेन जीर्यति गंधकः ॥ ११७ ॥

उक्त विधिसे पारेको शुद्ध कर चुके तब पारा १६ पैसे भर और शुद्ध आंवलासार गंधक १६ पैसे भर लेवे, इन दोनोंकी खरलमें कजली करै फिर जलपीपल (जिसे पूर्वप्रान्तमें गंगातिरिया और मध्यदेशमें पनसगा कहते हैं) और गोमा इन दोनोंके रसमें उस कज्जलीको दो दिन घोटे जब सूखजाय तब आतशी शीशीपर कपडमिट्टी करके सुखालेवे और इस कज्जलीको उसमें भरके एक उत्तम हांडीमें रखे हांडीकी पेंदीमें पैसेसे डचौडा छेद करे और छेदके चारों ओर गीली मिट्टी लगाके सुखालेवे जिसमें हांडीकी वारू न निकले और छेदके नीचे लंबी ठीकरी रक्खे। उसके दोनों बाजूके छेद खुले रहें अथवा छेदके ऊपर अभ्रकका टुकडा रक्खे उसके ऊपर शीशी धरे और हांडीके मुख पर्यन्त बालू भरदेवे परन्तु शीशीकी गर्दन बालूसे बाहेर रहै फिर चूल्हेपर चढाकर दो लकडीकी आंच आंठ पहरतक दे वे पहिले चार प्रहर तक मंद आंच देना चाहिये फिर चौथे प्रहरसे आठवें प्रहरतक तीव्र आंच जलाना चाहिये जब ठंढी होजाय तब शीशीको फोडकर पारेकी टिकियाको निकाल लेवे उसमें जो गंधककी राख लगीहो उसको छूरीसे छुडायडाले और पारेकी टिकियाको खरलमें डालकर पीसे फिर गोमा और जलपीपलीके रसमें एक दिन घोटे जब सूखजाय तब पूर्वोक्त रीतिसे शीशीमें भरकर वालुकायंत्रमें चार प्रहरकी अग्नि देनेसे पारेमें बचा हुआ गंधक जल जाता है तब गंधकके जलनेकी परीक्षा करे ॥ ११५-११७ ॥

अथ जीर्णगंधकपरीक्षा ।

याममेकं परित्यज्य यामेषु त्रिषु बुद्धिमान् ।
प्रतियामार्द्धकं कूप्यां क्षिप्त्वा दीर्घं तृणं दृढम् ॥ ११८ ॥
गंधस्य तेन कर्त्तव्यो जीर्णाजीर्णस्य निर्णयः ।
जीर्णे गंधे विधग्धं स्यादजीर्णे गंधकान्वितम् ॥ ११९ ॥

प्रथमका प्रहर छोडकर दूसरे और तीसरे प्रहरमें परीक्षा करे दो दो घडीके अन्तरमें कडी और लंबी बांसकी अथवा लोहेकी सींक शीशीमें डाल जो सींक जली निकले तो गंधक जलगया यह समझना चाहिये और अग्नि जलाना बन्द

करदेवे क्योंकि गंधकके आश्रयसेही पारा अग्निमें ठहरता है यदि गंधक जलजानेपरभी अग्नि जलाई जाय तो शीशी फोरके पारा निकल जाता है यदि पिघली गंधकसे लिपटी हुई सींक निकले तो गंधक नहीं जला है यह समझना चाहिये तब फिर जब तक गंधक न जीर्ण होजाय तब तक निर्भय होकर आंच देवे ऊपर कहीहुई रीतिसे आधे आधे प्रहरमें परीक्षा करतारहै जब गंधक जलजावे तब आग जलाना बंद करे ठंढी होनेपर शीशीको फोडकर पारेकी टिकियाको निकाललेवे और टिकियामें लगीहुई गंधककी राखको छुडाकर साफ करलेवे ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

जीर्णगंधं रसं ज्ञात्वा तोलयेत्कुशलो भिषक् ।
ततो गंधचतुर्थांशं दत्त्वा सूतं विमर्दयेत् ॥ १२० ॥
पूर्वोक्तयो रसैर्मर्द्यं चतुर्यामं च पाचयेत् ।
स्वांगशीतलमुत्तार्य विषं कर्षमितं क्षिपेत् ॥ १२१ ॥
दृढं विमर्दयेत्सूतं तयोरेव रसैर्दिनम् ।
मंदाग्निना पचेत्पश्चाच्चतुर्याममतंद्रितः ॥ १२२ ॥
निर्मुक्तगंधकस्तर्हि जायतेऽसौ रसेश्वरः ।
अंते तुलितसूते तुल्यमानो यदा भवेत् ॥
तदा सिद्धः परिज्ञेयो रसश्चन्द्रोदयो बुधैः ॥ १२३ ॥

गन्धक जीर्ण होगया ऐसा निश्चय होनेपर पारेकी टिकियाको बुद्धिमान् वैद्य तौलकर पारेका चतुर्थांश अर्थात् चार पैसेभर गंधक डालके मर्दन करे पहले कहेहुए जलपीपल और गोमाके रसमें दो दिन घोटके वालुकायंत्रमें चार प्रहर तक मन्दाग्नि जलावे जिससे दो पैसेभर गंधक जलजाय एक प्रहर तेज आँच देनेसे पैसाभर गंधक जलता है और इतनेही समयमें मंदाग्निसे धेलेभर जलता है यह सिद्धान्त है। इस हिसाबसे ४ प्रहरकी मंद आंचसे दो पैसेभर गंधक जलता है, जब दो पैसाभर गंधक जलजाय तब शीशीको फोडकर पारेकी डलीको निकाल ले और गंधकके भस्मको छुरीसे दूर करे फिर खरलमें डार धेलेभर शुद्ध सिंगिया विष डाले और गोमा जलपीपलका रस डाल एक दिन खूब मर्दन करके वालुकायंत्रमें चार प्रहर धीमी आंच देवे। आंचके लिये बबूल महुएकी लकडी चार अथवा पांच अंगुल मोटी और हाथभर लंबी लेवे इस प्रकार

आंच देनेसे पारेमें गंधक जीर्ण होजाताहै विष डालनेसे पारेकी डली गंधककी राख छोडकर बैठ जाती है छुरी आदिसे खुरचनेकी आवश्यकता नहीं रहती आखीरमें पारेकी डलीको तोलना चाहिये पहलेके बराबर हो तो चन्द्रोदय सिद्ध होगया ऐसा निश्चय जाने यदि तोलमें अधिक हो तो फिर गोमा और जलपीपलके रसमें एक दिन घोटकर चार प्रहरकी दी५ रु अग्नि देवे आधिक आंच देनेसे पारा उड जाता है बहुधा ऐसा देखनेमें आया है इसलिये मंद आंच देवे, अथवा ४ पैसेभर शुद्ध सीसा पिघलाकर १६ पैसेभर पारामें मिलाकर शीतल करलेवे तब १६ पैसेभर गंधक मिलाकर प्रथम कहे हुए विधानसे आरंभ करे तो तीक्ष्ण अग्नि देनेसेभी पारा न उडे। इस चन्द्रोदयको पीसकर पक्की शीशीमें रख छोडे ॥ १२०-१२३॥

गुणाः ।

सद्यो जीर्णविपाचनोऽग्निजननो विड्बंधतृड्वान्तिनु-
न्मूत्रस्रावमपाकरोति मदनप्रोद्बोधकर्त्ता रतौ ॥
मच्छा हन्ति सहिक्किकां मधुयुतो बल्यः प्रमादार्ढ्यक-
च्छैत्यस्वेदहरः प्रमेहमथनश्चन्द्रोदयाख्यो रसः ॥ १२४ ॥
कासे श्वासे फिरंगाख्ये रोगे च परमो हितः ।
अपि वैद्यशतैस्त्यक्तामरुचिं च नियच्छति ॥ १२५ ॥

चन्द्रोदय और लौंग दोनों एक२ तोला ले खरलमें एक घडी घोटके दो २ रत्तीकी पुडिया बाँधे रोगीको एक पुडियां खानेको देवे तो अजीर्णका शीघ्र नाश करता है, और भूँख बढाता है, बद्धकोष्ठताको दूर करता है, तृषा तथा वमनको नाश करताहै, मूत्रस्रावको शमन करता है, मैथुनके समय कामदेवको बढाताहै; मूर्च्छा और हिचकीको नाश करताहै, यदि सहतके साथ खाया जावे तो बल और कान्तिको उत्पन्न करता है, प्रसूत अथवा सन्निपातसे शीतल हुई देहको और पसीनेको नाश करताहै, और प्रमेहको दूर करता है, खांसी, श्वास, फिरंगरोगमें अत्यन्त हितकारी है, सैकडों वैद्योंसे त्यागेहुए अरुचिरोगको जो ज्वर दूर होने पर अठारह दिन रहनेसे रोगी मरजाताहै वहभी इस चन्द्रोदयके खानेसे दूर होजाती है ॥ १२४ ॥ १२५ ॥

चन्द्रोदयस्य द्वितीयविधिः ।

पलद्वयं सुवर्णस्य सूतस्याष्टौ च मर्दयेत् ॥
एकीभूते च गंधस्य पलं षोडशकं क्षिपेत् ॥ १२६ ॥

शोणकार्पासकुसुमैः कन्याभिर्मर्दयेत्पृथक् ।
काचकूप्यां च संरुध्य वालुकायंत्रगं त्र्यहम् ॥
पचेत्सिद्धो रसः स स्याच्छ्रेष्ठश्चन्द्रोदयाभिधः ॥ १२७ ॥

सोनेके वर्क ४ पैसेभर शुद्ध पारा १६ पैसेभर दोनोंको मिलाकर घोटे जब मिल जायँ तब शोधा हुवा गंधक ३२ पैसेभर डालकर कपासके लाल फूलोंके साथ १ दिन और घीकुवारके रसमें १ दिन घोटे फिर सुखाकर आतशी शीशीमें सात कपरमिट्टी करके भरदेवे और पूर्वोक्त विधानसे वालुकायंत्रमें रखकर तीन दिन पचावे । चार २ अंगुल मोटी बबूलकी दो लकडियोंकी अठारह प्रहर आंच देवे चार प्रहर आंच देनेके अनंतर शीशीका मुख गुड और चूनेसे बन्द करदेवे जब शीतल होजावे तब उतार शीशीको तोडे और उसमेंसे लाल रंगरंगका कटोरीके समान जमाहुआ रस निकाललेवे यह चन्द्रोदय सर्वोत्तम है॥१२६-१२७॥

भक्षणविधिः ।

जातीफलं सकर्पूरं लवंगं मरिचानि च ।
पृथग्रससमानि स्युः कस्तूरीरसदिग्लवाः ॥ १२८ ॥
मासं हि भक्ष्यः पर्णेन जरारोगविनाशनः ।
सुप्रभाते तदभ्यासाद्विषं च विषवारि च ॥ १२९ ॥
सर्वे प्रशममायांति शीघ्रमेव न संशयः ।
केचिच्चतुर्गुणान्याहुः कर्पूरादीनि तद्रसात् ॥ १३० ॥

चन्द्रोदय, जायफल, भीमसेनी कपूर, लौंग, कालीमिर्च प्रत्येक एक २ रत्ती कस्तूरी पौने तीन चावल इनको मिलाकर एक महीना पानके साथ प्रातःकाल खानेसे जरारोग (बालोंका पकना, त्वचाका सिकुडना आदि) को दूर करता है सब भांतिके विषरोगोंको तथा विषैले पानीके पीनेसे जो रोग होते हैं उनको दूर करता है । किसी २ का मत है कि चन्द्रोदयसे चौगुने कर्पूरादिक लेवे ॥ १२८-१३०॥

चन्द्रोदयस्य तृतीयविधिः ।

रसं शुद्धतरं बद्धं स्थापयेत्खल्वशोभने ।
आनयेद्गंधकं पीतं महादिव्यं मनोहरम् ॥ १३१ ॥
गोदुग्धेन तु संशुद्धं समभागं प्रकल्पयेत् ।
गन्धार्द्धं तु शिलां रक्तां तालकं चैव तत्समम् ॥ १३२ ॥

सूर्यावर्त्तरसैर्दिव्यैर्मर्द्दयेच्च दिनत्रयम् ।
छायाशुष्के तु संजाते तीक्ष्णतैलेन भावयेत् ॥ १३३ ॥
उक्तभावे च संदत्ते शोषयेद्यत्नपूर्वकम् ।
काचकूप्यां कृतं तच्च वालुकेन हठाग्निना ॥ १३४ ॥
एकादशदिनान्येवं पाचयेत्परमं रसम् ।
स्वांगशीतलमुत्तार्य लोहखल्वे च निःक्षिपेत् ॥ १३५ ॥
पुनर्गन्धोऽत्र न प्रोक्तो भावेन भावितं मतम् ।
मर्दयेत्पूर्ववत्सम्यक्काचपात्रे निधापयेत् ॥ १३६ ॥
पुनर्विपाचयेत्सम्यगेकादशदिनान्यमुम् ।
पाचितं रसराजं तु स्वांगशीतलमुद्धरेत् ॥ १३७ ॥
पुनर्विमर्दयेदेनं पूर्वोक्तेन रसेन हि ।
अवशिष्टस्य गंधस्य पाकार्थं तु पुनः पचेत् ॥
संसिद्धे रसराजे तु जायते सिद्धिसाधनम्॥ १३८ ॥

उक्त प्रकारसे अति शुद्ध और बद्ध पारा लेवे और पारेकी बराबर गौके दूधसे शुद्ध किया हुआ आमलासार गंधक लेवे, और गंधकसे आधा मैनासिलका सत्व जो आगपर टिकसके लेवे, और इतनाही हरितालका सत्व अग्नि सहनेवाला लेवे, प्रथम पारे गंधककी कजली करे, फिर इस कजलीमें दोनों सत्व डाल हुरहुलके रसमें तीन दिन घोटे, जब छायामें सूख जाय तब राईके तेलकी भावना देवे, फिर सुखावे जब सूख जाय तब एक बडी आतशी शीशीमें भरकर शीशीको वालुकायन्त्रमें रक्खे और हांडीके नीचे छेदन करे, ग्यारह दिन तेज आंचदेवे जब छूने योग्य हो तब शीशीको फोडकर पारेकी चांदी निकाल लेवे और चांदीकी राख छूरीसे दूर करे फिर और गंधक न डाले और हुरहुरके रसमें तीन दिन घोटे फिर दूसरी शीशीमें भर वालुकायंत्रमें हांडीके नीचे छेदकर चार प्रहरकी आंच ग्यारह दिन देवे परंतु धीमी अग्नि देवे जिससे अवशिष्ट गंधक जलजाय पीछे शीशी फोडकर पारेकी चांदी निकाल लेवे ऊपरकी राख छूरीसे दूर करे फिर पारेकी चांदी और शुद्ध गंधक छः पैसेभर डाल हुरहुरके रसमें तीन दिन घोटकर शीशीमें भर वालुकायंत्रमें हांडीके नीचे छेदकर चार प्रहरकी धीमी आंच देकर उडालेवे फिर शीशीको फोड रस निकाल लेवे और पीठीकी

राख दूर कर धेलेभर विष डालके हुरहुरके रसमें तीन दिन घोटे एक दिन राईके तेलमें घोट फिर हुरहुरके रसमें तीन दिन घोटे फिर शीशीमें भर हांडीके नीचे छेदकर वालुकायंत्रमें चार प्रहरकी मन्दाग्नि देवे कि बाकी गंधक जलजाय फिर रस निकाल उसकी राखको छूरीस दूर करे फिर छः पैसे भर गंधक डालकर हुर-हुरके रससे तीन दिन घोटे और एक दिन राईके तेलमें घोटे फिर हुलहुलके रसमें तीन दिन घोटे और शीशीमें भरकर चार प्रहरकी मन्दाग्नि वालुकायंत्रमें देवे फिर शीशीमेंसे रस निकालकर छूरीसे उसकी पीठके भस्मको छुडाडाले और धेलेभर विषका चूर्ण इसमें डालकर हुलहुलके रससे तीन दिन घोटे और एक दिन राईके तेलमें घोटे पश्चात् हुलहुलके रससे तीन दिन घोटे फिर शीशीमें भरकर चार प्रहरकी मन्दाग्नि जलावे जिससे अवशिष्ट गंधक जलजाय पीछे शीशीको फोड रस निकाल लेवे और उसकी पीठकी राखको छूरीसे दूरकर खरलमें दो वार छः २ पैसेभर गंधक डाल हुलहुलके रसमें घोटे और हरदफे धेले २ भर विष डालकर उडावे उक्त प्रकार बाकी गंधकको जारण करता जाय तो यह चन्द्रोदय सर्वोत्तम बनकर तैयार होवे और सर्वकामना पूर्ण करे ॥१३१-१३८॥

गुणाः ।

शुद्धशुल्बे प्रदातव्यः सहस्रांशेन वेधयेत् ।
सुवर्णं जायते शुद्धं यथा जांबूनदोद्भवम् ॥ १३९ ॥
तिलमात्रप्रयोगेण तांबूलेन प्रयोजयेत् ।
जायते प्रबला बुद्धिर्बलं भीमसमं भवेत् ॥
सप्तरात्रप्रयोगेण भक्ष्योयं सुभगैर्नरैः ॥ १४० ॥

शुद्ध तांबेमें हजारहवाँ भाग इसको डाले तो दिव्य सुवर्ण होजाय एक रत्ती लौंगके चूर्णके साथ पानमें तिलमात्र रोज खानेसे सात दिनमें बुद्धिको तीक्ष्ण करै और भीमसेनके समान बल करै क्षुधा बढावे, रुधिरविकारको और रोगमा-त्रोंको यथायोग्य अनुपानके साथ देनेसे दूर करे। इस क्रमसे सुभग मनुष्योंको इसे खाना चाहिये ॥ १३९ ॥ १४० ॥

अथ चतुर्थविधिः ।

कला (१६) कर्षमितं सूतं तत्समं गंधकं तथा ।
टंकषट्कं विषं दद्यात्तपचेद्यंत्रे च वालुके ॥ १४१ ॥

मंदं मध्यं तथा तीक्ष्णमाग्निना नवयामसु ।
स्वांगशीते च विधिना रक्तवर्णं समाहरेत् ॥
क्षुधाशुद्धिकरो ज्ञेयो वातादिदोषनाशकः ॥ १४२ ॥

अथवा पारा और गंधक दोनोंको सोलह २ पैसे भर लेकर दोनोंकी कज्जली करे इसमें डेढ पैसे भर विषका चूर्ण डाले और कहीहुई विधिसे शीशीमें भर हांडीमें रक्खे और वालू भरदेवे, पीछे ९ प्रहर तेज आंच देवे फिर मंद करे और शीशीका मुख खुला रहनेदे जिससे उसके मुखसे आग बराबर निकलीरहे । इस प्रकार चार घडी पर्यन्त कर पीछे शीशीका मुख चूना और गुडसे बंद कर तीन प्रहर आंच देवे इस प्रकार नौ प्रहर आंच दे लकडियोंको अलग करे और अंगारे रहनेदेवे जब छूने योग्य होजाय तब शीशीको निकाल पानीमें भिगोकर उसकी कपरमिट्टीको अलग करे और शीशीको फोडकर उसके ऊपर जो १६ पैसे भरका लाल रंगका कटोरा निकाललेवे परन्तु शीशीके भीतर जो एक अंगुल मोटा पारेका कटोरा निकले उसको ग्रहण करे और गंधकको न लेवे और इस पारेके कटोरेको खरलमें डाल खूब वारीक पीस किसी उत्तम पात्रमें भरलेवे और इसको दो रत्ती खावे तो भूख बढती है, कोष्ठ शुद्ध होताहै, बादी दूर होती है, यह क्रिया सबसे सुगम है अन्य प्रकारकी क्रियाओंमें आँच देनेसें कभी पारा ठहरता है और कभी उडजाताहै । इस चन्द्रोदयमें आंच देनेके लिये चार या पांच अंगुल मोटी बबूलकी लकडियां जलाना चाहिये पारेको किसी औषधके रसमें घोटे परन्तु आंच इसी प्रकार देवे तौ मूर्खसे भी चन्द्रोदय सिद्ध हो और उडे नहीं और प्रथम चन्द्रोदयकी विधिसे जो आंच देना कहाहै वह चतुर वैद्योंसे बनताहै अन्यसे नहीं बनसकता ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

अथ पंचमविधिः ।

हिंगलूद्भवसूतं च विमर्द्याथ दिनद्वये ।
आरग्वधरसे चाथ तथैव चित्रकोद्भवे ॥ १४३ ॥
अंकोटस्य रसे चाथ कुमारीसंभवे रसे ।
प्रत्येकरससंमर्द्य पातयंत्रेण चोत्क्षिपेत् ॥ १४४ ॥
विषेषूपविषेष्वेवं विधिनोत्पातयेद्बुधः ।
अथ चतुःपलं सूतं सैन्धवं द्विपलान्वितम् ॥ १४५ ॥

निंबूनीरेण संमर्द्य द्वियामं कांजिके तथा ।
सूतमात्रं विनिष्कृष्य ह्यहिफेनसमे क्षिपेत् ॥ १४६ ॥
धत्तूररससंयोगात्त्रिदिनं मर्दयेद्बुधः ।
संपचेद्वालुकायंत्रे ह्यादित्यप्रहरेषु वै ॥ १४७ ॥
एवं कृत्वा त्रिवारं च तं सूतं विधिना हरेत् ।
कर्षाष्टगंधपाषाणं चूर्णं कृत्वा विधानतः ॥ १४८ ॥
यावनालस्य चूर्णे वै संमेल्य गुटिकाः कृताः ।
संभोज्य कुक्कुटं चैकं तस्य विष्ठां समाहरेत् ॥ १४९ ॥
पातालसंज्ञके यंत्रे तस्य तैलं च पातयेत् ।
पूर्वोक्तपारदं तैले त्रिदिनं मर्दयेत्कृशम् ॥ १५० ॥
वालुकायंत्रयोगेन रात्रियामे पचेद्बुधः ।
चन्द्रोदयोऽयं दोषघ्नः पुरुषार्थप्रदायकः ॥
वीर्यस्तम्भकरश्चाथ क्लैब्य व्याधिविनाशकः ॥ १५१ ॥

अथवा प्रथम शिंगरफके पारेको अमलतास, चित्रक, अंकोट और घीकुवार इन प्रत्येकके रसमें दो २ दिन घोटे और प्रत्येक समय पारेको डमरूयंत्रमें डालकर उडालेवे फिर विष और उपविषोंमें दो २ दिन घोटके उडालेवे तिस पीछे यह पारा २० पैसे भर लेवे और उसमें १० पैसे भर सैंधवकी बुकनी डाल दो प्रहर नींबूके रसमें घोटे फिर कांजीके पानीसे दो प्रहर घोटे, उपरान्त उस पारेको सैंधव लवणसे जुदा करलेवे और इसमें २० पैसे भर अफीम मिलाकर तीन दिन धतूरेके रसमें खरल करे रात्रिको न घोटे जब सूखजाय तब शीशीपर सुलेमानी मुद्रा कर और उसके मुखपर कपरमिट्टी कर सुखावै और वालुकायंत्रमें बराबर १२ प्रहरकी आंच देवे इस प्रकार तीन शीशी फेरे पीछे शीशीके पारेको निकालकर रखलेवे । फिर आठ पैसे भर गंधक ज्वारके आटेमें मिलाकर छोटी २ गोलियां बांध मुरगेको खिलावे और उसको एकही स्थानपर बंद रहने देवे और उसकी वीठको इकट्ठा करतारहे फिर उस वीठको धूपमें सुखा कर पातालयंत्र द्वारा उसका तेल निकाललेवे इस तेलमें पूर्वोक्त शीशीके पारेको ३ दिन घोटे रात्रिको न घोटे जब गाढा होजावे तब पूर्वोक्त सुलेमानी मुद्रा की हुई शीशीमें डालके मुख बंदकर वालुकायंत्रमें बराबर १२ प्रहरकी आँच जलावे जब छूने योग्य होजाय तब

शीशीसे सिद्ध चन्द्रोदयको निकाल लेवे यह चन्द्रोदय अत्यन्त गुणकारक है विशेषकरके करमैथुन (हथरस) आदिसे उत्पन्न होनेवाले नपुंसकताको दूर करता है ॥ १४३-१५१ ॥

अथ क्षेत्रीकरणम् ।

प्रथमं मारयेदभ्रं शास्त्रोक्तं सुपरीक्षितम् ।
पश्चात्तं योजयेद्देहे सूतकं वीर्यसूतकम् ॥ १५२ ॥
अक्षेत्रीकरणात्सूतोऽमृतं चापि विषं भवेत् ।
तस्मादभ्रं रसस्यादौ क्षेत्रीकरणमिच्छति ॥ १५३ ॥
सेवनीयं प्रयत्नेन मासयुग्मं निरंतरम् ।
गुंजाद्वयं समारभ्य यावन्माषद्वयं भवेत् ॥ १५४ ॥
क्षेत्रमेवं भवेद्देहे सूतवीर्यप्रसाधकम् ।
अक्षेत्र योजितः सूतो न प्ररोहेत्कदाचन ॥ १५५ ॥
निद्रालस्यं शिरोदाहो ह्यंगभंगोऽरुचिस्तमः ।
नासायां जायते शूलस्त्वन्यथा योजिते रसे ॥ १५६ ॥

आयुर्वेदशास्त्रके कहे हुए विधानसे परीक्षा कियाहुवा सुन्दर कृष्णाभ्रकको भस्मकर उसको पहले खावे, पीछे पारेको खाना उत्तम है, क्योंकि क्षेत्रीकरण किये बिना पारा अमृतके समान गुणदायक होनेपर भी विषके समान होजाता है इससे पहले अभ्रक खाकर क्षेत्र बनालेवे प्रथम दो महीने तक दोरत्तीसे आरंभ करे और दो मासे तक क्रमसे मात्राकी वृद्धि करे इस प्रकार अभ्रक नित्य इलायचीके संग खाय तब क्षेत्र अर्थात् देह पारा खाने योग्य होवे विना क्षेत्रीकरणके पारा कदापि फलदायक नहीं होता; किन्तु निद्रा, आलस्य, मस्तकमें जलन, हडफूटन, अरुचि, आंखोंके सामने अंधेरा दीखना, नाकमें पीडा इन रोगोंको प्रगट करता है अब कहते हैं कि रससिन्दूर भी मूर्च्छित पारेका भेद है इस लिये चन्द्रोदय कहनेके अनन्तर रससिन्दूर बनानेकी विधिं लिखते हैं ॥ १५२-१५६ ॥

रससिन्दूरविधिः ।

सूतं पञ्चपलं स्वदोषरहितं तत्तुल्यभागो बलि-
र्द्वौ टंकौ नवसादरस्य तुवरीकर्षश्च संमर्दितः ।

कुप्यां काचभुवि स्थितश्च सिकतायंत्रे त्रिभिर्वासरैः
पक्वो वह्निभिरुद्भवत्यरुणभः सिन्दूरनामा रसः ॥ १५७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक पांच २ पल, नौसादर ८ मासे, फिटकरी १ तोला, इन सबको घोटकर कपरमिट्टी युक्त आतशी शीशीमें भरकर वालुकायंत्रमें शीशीको रख तीन दिन मंद मध्य और तीक्ष्ण आंच देवे तो सूर्यके समान लाल वर्णवाला रससिंदूर तैयार होवे ॥ १५७ ॥

रससिन्दूरस्य द्वितीयविधिः ।
द्विगुणगंधकः ।

रसभागो भवेदेको गन्धको द्विगुणो मतः ।
खल्वे कज्जलिसंकाशं काचकुप्यां क्षिपेत्सुधीः ॥ १५८ ॥
खर्प्परे वालुकापूर्णे स्थापयेत्तत्र कूपिकाम् ।
इष्टिकां च मुखे दत्त्वा कृत्वा कर्पटमृत्तिकाम् ॥ १५९ ॥
सप्तविंशतियामैश्च सितां कूपीं विपाचयेत् ।
पश्चादूर्ध्वं समायातं रसज्ञाता विचक्षणः ॥ १६० ॥
हंसपादसमं वर्णं निष्पन्नं रसमादिशेत् ।
गुंजायुग्मं प्रदातव्यं सितादुग्धानुपानतः ॥ १६१ ॥
प्रमेहे श्वासकासे च षंढे क्षीणेऽल्पवीर्यके ।
हरगौरीरसो देयः सर्वरोगप्रशांतये ॥ १६२ ॥

शुद्ध पारा एक भाग, शुद्ध गंधक दो भाग, दोनोंको खरलमें खूब घोटे जब काजलके रंगकी कजली होजाय तब आतशी शीशीमें सात कपरमिट्टी करके सुखायके उसमें पूर्वोक्त कजली भर वालुकायंत्रमें रख मुखमें ईंटकी डाट बंद कर उसके नीचे २७ प्रहरतक अग्नि जलावे पारेको ऊपर आया जानकर उतार लेवे इसका रंग लाल होजाता है इसको २ रत्ती दूध और मिश्रीके संग सेवन करनेसे प्रमेह, श्वास, खांसी, नपुंसकता, अल्पवीर्यपन आदिको नाश करता है। यह हरगौरी रस सर्व रोगोंको शांत करता है ॥ १५८-१६२ ॥

रससिन्दूरस्य तृतीयविधिः ।
षड्गुणगंधकः ।

हिंगुलोत्थरसं भागं षड्भागं शुद्धगंधकम् ।
खल्वमध्ये विनिक्षिप्य वालुकायंत्रगं पचेत् ॥ १६३ ॥

काचकुप्यां विनिक्षिप्य वालुकायंत्रगं पचेत् ।
पाचयेत्सप्तरात्राणि सिंदूरं भवति ध्रुवम् ॥ १६४ ॥
वल्लमात्रं प्रयुंजीत मधुना लेहयेत्परम् ।
स्तम्भनं दंडवृद्धिं च वीर्यवृद्धिं बलान्वितम् ॥ १६५ ॥
करोति तेजः पुष्टिं च महामत्तगजेन्द्रवत् ।
षंढत्वं वंध्यरोगं च नाशयेत् सर्वरोगजित् ॥ १६६ ॥
दिनमेकं शतस्त्रीभी रमते तृप्तिवीर्यवान् ।
निरंतरमनोल्लासं रतिं प्रेम्णा सनातनः ॥ १६७॥
शतानि पंच षट्कं च रोगाणां नाशयेद्ध्रुवम् ।
नाम्ना षड्गुणगन्धोऽयं विश्वामित्रेण निर्मितः ॥ १६८ ॥

हिंगुलसे निकाला पारा एक भाग और गंधक ६ भाग दोनोंको खरलमें डाल कजली करे । फिर घीकुवारका रस डाल मर्दन करे, फिर उसे सुखाकर कांचकी शीशीमें भर वालुकायंत्रमें पचावे, सात दिन रात बराबर अग्नि देवे, जब ठंढा होजावे तब शीशीको फोड लालरंगका सिंदूर निकाल लेवे, इस रससिन्दूरको ३ रत्ती शहदके संग खावे तो स्तम्भन करे, लिंग और वीर्यकी वृद्धि करता है बल, तेज और पुष्टिकी वृद्धि मदमत्त हाथीके समान बलवान् करता है नपुंसकत्व, बन्ध्यापना इत्यादि सब रोगोंको दूर करे इसका खानेवाला एक दिनमें सौ स्त्रियोंको भोगे और उनको आनंद देवे और पांचसौ छप्पन रोगोंका नाशक है यह षड्गुण गंधक नाम रससिन्दूर विश्वामित्रऋषिने निर्माण कियाथा ॥१६३-१६८॥

रससिन्दूरानुपानम् ।

वाते सक्षौद्रपिप्पल्यपि च कफरुजि त्र्यूषणं साग्निचूर्णं
पित्ते शैलासितेन्दु व्रणवति च वरा गुग्गुलुश्चारुबद्धः ।
चातुर्जातेन पुष्टौ हरनयनफलाशाल्मलीपुष्पवृन्तं
किंवा कान्താललाटाभरणरसपतेः स्यादनूपानमेतत् ॥ १६९ ॥

वातरोगोंमें पीपल सहतके साथ, कफरोगोंमें सोंठ, मिर्च, पीपल और चित्रकके चूर्णके साथ, पित्तरोगोंमें शिलाजीत, मिश्री और कपूरके साथ, व्रणमें त्रिफला और गूगुलके साथ चातुर्जात (तज, पत्रज, इलायची, नागकेशर) के साथ

पुष्टिके लिये अथवा त्रिफला और सेमरके मूसलेके चूर्णके साथ पुष्टिको देता है, यह रससिन्दूरके अनुपान कहे हैं ॥ १६९ ॥

कृष्णभस्म ।

धान्याभ्रकं रसं तुल्यं मारयेन्मारकद्रवैः ।
दिनैकं तेन कल्केन वस्त्रं लिप्त्वा तु वर्तिकाम् ॥ १७० ॥
विलिप्य तैलैर्वर्तिं तामेरंडोत्थैः पुनः पुनः ।
प्रज्वाल्य च तदा भांडे गृह्णीयात्पतितं च यत् ॥ १७१ ॥
कृष्णभस्म भवेत्तच्च पुनर्मर्द्यं नियामकैः ।
दिनैकं पातयेद्यंत्रे कन्दुकाख्ये न संशयः ॥ १७२ ॥
मृतः सूतोभवेत्सत्यं तत्तद्रोगेषु योजयेत् ॥ १७३ ॥

पारेके बराबर धान्याभ्रक लेवे उसको मारकवर्गसे एक दिन मारण करे। (मारकवर्ग आगे कहेंगे) फिर उसके रससे एक कपडेमें लेप करके धूपमें सुखाकर बत्ती बनावे उसमें उस कजलीको पहलेही रखदे । और उसको अंडीके तेलमें भिगोकर जलावे और उसके नीचे एक पात्र रक्खे उस बत्तीद्वारा जो पारा उसमें टपके उसे लेलेवे वह कृष्णभस्म होगी फिर नियामक द्रव्योंसे उस पारे और अभ्रकको खरल करे, फिर एक दिन कंदुक (डमरूयंत्र) में पातन करे तो पारा मरकर कृष्णभस्म होवे । यह पृथक् २ अनुपानसे सर्व रोगोंको नाश करता है ॥ १७०-१७३ ॥

पीतभस्म ।

भूधात्रीहस्तिशुंडीभ्यां रसं गंधं च मर्दयेत् ।
काचकूप्यां चतुर्यामं पक्वः पीतो भवेद्रसः ॥ १७४ ॥

पारे और गंधककी कजलीको भुइआंवरा और हथसुंडीके रससे घोटे वालुकायंत्रमें चार प्रहरकी अग्नि देवे तो पारेकी पीले रंगकी भस्म होजाती है ॥ १७४ ॥

द्वितीयकृष्णभस्म ।

सूतं गंधकसंयुक्तं कुमारीरसमर्दितम् ।
कृष्णवर्णं भवेद्भस्म देवानामपि दुर्लभम् ॥ १७५ ॥

पारा और गंधककी कजली करके घीकुवारके रसकी भावना देकर वालुकायंत्रमें पाचन करनेसे देवताओंको भी दुर्लभ कृष्णभस्म होजाती है ॥ १७५ ॥

नीलभस्म ।

वाराहीकन्दसंयुक्तं रसकेन समन्वितम् ।
नीलवर्णं भवेद्भस्म वलीपलितनाशनम् ॥ १७६ ॥

पारा, गंधक और खपरियाको वाराहीकंदके रससे घोटकर वालुकायंत्रमें पचानेसे नीलभस्म होती है इसके सेवन करनेसे बाल पकना त्वचा सिकुडना आदि वृद्धतापन दूर होता है ॥ १७६ ॥

श्वेतं पीतं तथा रक्तं कृष्णं चेति चतुर्विधम् ।
लक्षणं भस्मसूतानां श्रेष्ठं स्यादुत्तरोत्तरम् ॥ १७७ ॥

सफेद, पीली, लाल और काली ऐसे पारेकी भस्म है इसमें उत्तरोत्तर एकसे एक श्रेष्ठ हैं ॥ १७७ ॥

द्विविधभस्म ।

सूतभस्म द्विधा ज्ञेयमूर्ध्वगं तलगं तथा ॥ १७८ ॥

पारेकी भस्म दो प्रकारकी होती है । एक तो ऊर्ध्वग जो ऊपरकी शीशीकी पेंदीमें बैठ जाती है ॥ १७८ ॥

यदुक्तं कृष्णपीतादि नायं भस्ममृतस्य च ।
मर्च्छनस्य प्रकारोऽयं ज्ञेयश्चात्र क्रमात्त्वया ॥ १७९ ॥

हे पुत्र ! चन्द्रोदय अथवा कृष्ण पीत आदि भस्म जो हमने कहे हैं वे मृत पारदकी नहीं है, वे केवल मूर्च्छित पारेके प्रकार हैं सो तुमको जानना चाहिये ॥ १७९ ॥

सर्वाङ्गसुंदरो रसः ।

मर्दयेद्रसगंधौ च हस्तिशुंडीद्रवैर्दृढम् ।
भूधात्रिकारसैर्वापि यावच्च दिनसप्तकम् ॥ १८० ॥
विघष्य वालुकायंत्रे मूषायां सन्निवेशयेत् ।
दिनमेकं ददेदग्निं मंदंमंदं निशावधि ॥ १८१ ॥
एवं निष्पद्यते पीतः शीतः सतस्तु गृह्यते ।
पर्णखंडेन तद्गुंजां भक्षयेच्छ्रूयतां मम ॥ १८२ ॥
क्षुद्बोधं कुरुते पूर्वमुदराणि विनाशयेत् ।
ज्वराणां नाशनः श्रेष्ठस्तद्वच्छ्रीसुखकारकः ॥ १८३ ॥

हृदयोत्साहजननः सुरूपतनयप्रदः ।
बलप्रदः सदा देहे जरानाशनतत्परः ॥ १८४ ॥
अंगभंगादिकं दोषं सर्वं नाशयति क्षणात् ।
एतस्मान्नापरः सूतो रसात्सर्वांगसुन्दरात् ॥ १८५ ॥

पारा और गंधकको हथशुंडी तथा भूँई आंवलेके रससे सात २ दिन घोटे, फिर इस पारेकी पिट्टीको एक मूषामें भरके वालुकायंत्रमें रखकर एक दिन रात मंद २ अग्नि देवे तो पारेकी पीली भस्म होजाती है इसमेंसे एक रत्ती पानके टुकडेमें रखके खाय तो भूखको बढावे उदरव्याधियोंको नाश करे, ज्वरोंके नाश करनेमें श्रेष्ठ है आनन्ददायक है, हृदयमें उत्साह उत्पन्न करता है, सुन्दर रूपयुक्त पुत्र देताहै, हमेशा देहमें बलको देताहै बुढापेको दूर करता है, अंगभंगादि सर्व विकारोंको क्षणमात्रमें नाश करता है, इस पारेसे श्रेष्ठ दूसरा पारा नहीं है इसको सर्वांगसुन्दर रस कहते हैं जो वैद्य चन्द्रोदयको नहीं जानते वह रसकर्पूरका संग्रह करते हैं सद्वैद्य इसका उपयोग नहीं करते परन्तु साधारण वैद्योंकी समझमें इससे बढकर दूसरा रस नहीं है लोगोंके ठगनेके लिये इसका नाम पारद भस्म बतलाते हैं रस कर्पूर नहीं कहते क्योंकि उनका भेद खुलजाय और वे इस क्रियाको गुप्त रखते हैं कोष्ठबद्ध जलोदर और रेचन (जुलाब) में चमत्कार दिखानेके लिये इसको देते हैं ॥ १८०-१८५ ॥

गंधकेन विना सूतो द्विधा सम्मूर्च्छितो भवेत् ।
प्रथमं रसकर्पूरं वक्ष्ये गुणगणान्वितम् ॥ १८६ ॥

पारा दो प्रकारसे मूर्च्छित होता है उसमें अनेक गुणयुक्त रसकपूरकी विधि कहते हैं ॥ १८६ ॥

रसकर्पूरविधिः १ ।

शुद्धसूतसमं कुर्यात् प्रत्येकं गैरिकं सुधीः ।
इष्टिकां खटिकां तद्वत् स्फटिकां सिन्धुजन्म च ॥ १८७ ॥
वल्मीकक्षारलवणं भांडरंजनमृत्तिकाम् ।
सर्वाण्येतानि संचूर्ण्य वाससा चापि शोधयेत् ॥ १८८ ॥
एभिश्चूर्णैर्युतं सूतं स्थालीमध्ये परिक्षिपेत् ।
तस्यां स्थाल्यां मुखे स्थालीमपरां धारयेत्समाम् ॥ १८९ ॥

सर्वाङ्गकुंठितमृदा मुद्रयेदुभयोर्मुखम् ।
संशोष्य मुद्रयेद्भूयो भूयः संशोष्य मुद्रयेत् ॥ १९० ॥
सम्यग् विशोष्य मुद्रान्ते स्थालीं चुल्यां विधारयेत् ।
अग्निं निरंतरं दद्याद्यावद्दिनचतुष्टयम् ॥ १९१ ॥
अंगारोपरि तद्यंत्रं रक्षेद्यत्नादहर्निशम् ।
शनैरुद्घाटयेद्यंत्रमूर्द्ध्वस्थालीगतं रसम् ॥
कर्पूरवत्सुविमलं गृह्णीयाद्गुणवत्तरम् ॥ १९२ ॥

शुद्ध पारा, गेरू, पुरानी ईंटका चूर्ण, सफेद खडिया मिट्टी, फिटकरी, सैंधवनमक, बांबीकी मिट्टी, खारी नमकका विष (जिसमें कुम्हार बरतन रंगते हैं) यह सब सम भाग इन सबको अलग २ पीसकर कपडछान करके पृथक् २ पारेके साथ मिलाकर दो दो प्रहर घोटे, पीछे नीचेकी हांडीमें चार कपरमिट्टीकर इसमें पारेको भरकर दूसरी हांडीसे मुख बंद कर डमरूयंत्र बनावे फिर दोनों हांडियोंके मुख पर चार कपडमिट्टी करे और तीन दिन सुखावे पश्चात् चार लकडियोंकी ३२ प्रहर प्रचंड अग्नि देवे, इसके बाद चार प्रहर अंगारोंपर रक्खे जब स्वांगशीतल होजाय तब उतार कर टेढा रक्खे और टेढा ही खोले ऊपरकी हांडीमें जो कपूरके समान पारा लगा है उसको निकाललेवे ॥ १८६–१९२ ॥

स च देवकुसुमचंदनकस्तूरीकुंकुमैर्युक्तः ।
भुक्तो हरति फिरंगव्याधिं सोपद्रवं घोरम् ॥ १९३ ॥
विंदति वह्नेर्दीप्तिं पुष्टिं वीर्यबलं विपुलम् ।
रमयति रमणीशतकं रसकर्पूरस्य सेवकः सततम् ॥ १९४ ॥

लौंग, सफेद चंदन दो दो मासे, कस्तूरी २ रत्ती, केशर ४ रत्ती मिलाकर खावे तो गरमीकी बीमारी उपद्रवसमेत दूर होवे, अग्नि प्रदीप्त होती है, देह पुष्ट होती है, अपार बल और वीर्य उत्पन्न होता है, रसकपूर हमेशा सेवन करनेसे सैकडों स्त्रियोंसे रमण करनेकी शक्ति होती है, रसकपूरकी मात्रा बलवान्‌को एक रत्ती और निर्बलको आधी रत्ती देनेसे लगभग आठ बार वमन और काले पीले लाल रंगके आम संयुक्त रेचन (दस्त) होते हैं इतना होने पर भी बल नहीं क्षीण होता इसके खानेसे कुछ उष्णता (गरम) मालूम होती है इस लिये शिशिर और हेमन्त ऋतुमें इसका सेवन करना योग्य है इसके सेवन करनेसे सात दिनमें वातविकार

दूर हो जाते हैं परन्तु एक मास तक सेवन करना अधिक उपयोगी होता है, दूध भात पथ्य और नमक खटाई लाल मिर्च तेल अपथ्य समझना चाहिये॥१९३॥१९४॥

रसकर्पूरस्य द्वितीयो विधिः २ ।

पिष्टं पांशुपटुप्रगाढममलं वज्राम्बुना चैकतः
सूतं धातुयुतं खटीतवलितं तत्संपुटे रोधयेत् ।
अंतःस्थं लवणस्य तस्य चलते प्रज्वाल्य वह्निं हठा-
द्वस्रं ग्राह्यमथेन्दुकुन्दधवलं भस्मोपरिस्थं शनैः ॥ १९५ ॥

पारेको खारी नमक और थूहरके दूधके साथ घोटे पीछे लोहेके बरतनमें खडियासे मुख बंद कर संपुट करे, पश्चात् नमकभरी हांडीमें उसको रख दूसरी हांडीका मुख मिलाकर मिट्टीसे अच्छी तरह बंद करके सुखानेके बाद एक दिन नीचे अग्नि देवे तो ऊपरकी हांडीमें सफेद रंगकी भस्म चिपक जायगी उसे युक्तिसे निकाल लेवे इसे रसकपूर कहते हैं ॥ १९५ ॥

गुणाः ।

तद्वल्लद्वितयं लवंगसहितं प्रातः प्रभुक्तं नृणा-
मूर्ध्वं रेचयति द्वियाममसकृद्देयं जलं शीतलम् ।
एतद्धन्ति च वत्सरावधि विषं षाण्मासिकं मासिकं
शैलोत्थं गरलं मृगेन्द्रकुटिलोद्भूतं च तात्कालिकम् ॥ १९६ ॥

जो मनुष्य लौंगके साथ रसकपूरको दो वल्ल (छः रत्ती) खाय तो उसे दो प्रहर पीछे दस्त हों उसके उपरान्त शीतल जल पीना चाहिये । एक वर्षका विष या छः महीनेका अथवा एक महीनेका खाया हुआ विष शैलोत्थ (स्थावर अथवा धातुज) विष सिंहनखविष और तात्कालिक (तुरत खाये हुए अथवा सर्प लूता वृश्चिक आदिके जंगम) विषको नाश करता है ॥ १९६ ॥

रसकर्पूरविधिः ३ ।

पारदः स्फटिकश्चैव हीराकासीसमेव च ।
सैन्धवं हि समांशेन विंशांशं नवसादरम् ॥ १९७ ॥
खल्वे विमर्द्य सर्वाणि कुमारीरसभावना ।
क्रमवृद्धाग्निना पक्वो रसः कर्पूरसंज्ञकः ॥ १९८ ॥

पारा, फिटकरी, हीराकसीस तथा सैंधव निमक सब बराबर २ लेवे सबका बीसवां भाग नवसादर ले सबको खरलमें घोट घीकुवारके रसकी भावना देकर क्रमसे मंद मध्य और तीव्र अग्नि देनेसे रसकर्पूरनामक रस तैयार होवे॥१९७॥१९८॥

रसकर्पूरविधिः ४ ।

गैरिकतुवरीकटुकासैंधवगंडीरजःकुडवम् ।
प्रत्येकं दृढहंड्यां कृत्वा रसभूयरजदेयम् ॥ १९९ ॥
कुडवमिताथ तदूर्ध्वं देया हंडी तथास्य मुखे ।
अथ तत्सन्धेर्मुद्रां कृत्वा तदधो हुताशनोज्ज्वाल्य ॥ २०० ॥
अर्द्धमणषट्कप्रमितैर्दारुभिरुनातिदुर्बलस्थूलैः ।
अग्निं क्रमेण दद्याद्गुरुदर्शितवर्त्मना द्युनिशम् ॥ २०१ ॥
तदनु ततो यंत्रवरादुत्तार्य कर्पूरसन्निभं सूतम् ।
आदाय काचकुंभे निधाय नवसादरं दद्यात् ॥ २०२ ॥
संमर्द्य चाथ कोष्ठैरर्द्धमणसंमितैः पचेद्रसम् ।
चुल्लीहंडिकमध्ये वितस्तिचतुरंगुलावकाशं तु ॥ २०३ ॥
कुर्यात्क्रमेण तदधः प्रज्वाल्य मध्यमं चाग्निम् ।
धवलमथोपरि लग्नं युक्त्या संगृह्य रक्षयेद्यत्नात् ॥ २०४ ॥

गेरू, फिटकरी, कुटकी, सैंधवनमक, और ईंटका चूर्ण इन प्रत्येकको एक २ पाव भर लेवे हंडियामें भर उसमें पारा रक्खे पीछे पावभर पहले कहाहुआ चूर्ण पारेके ऊपर रखकर दूसरी हांडीसे उसका मुख बंद कर सन्धियोंको अच्छी तरह लेप कर बन्द करदे पश्चात् भट्टीमें चढाय ३ मनलकडी वा उपलोंकी अग्नि गुरुकी बताईहुई रीतिसे देवे तो रसकपूर सिद्ध होवे शीतल होनेपर धीरजसे हांडीको खोलके ऊपर लगेहुए सफेद रसकपूरको निकाल लेवे और समान भाग नवसादर डालकर पीसे और काचकी शीशीमें भर बीस सेर लकडियोंकी आंच देवे इस प्रकारकी हांडी और अग्निका एकबालिस्त और चार अंगुलका अन्तर रहे इस प्रकार मध्यमाग्नि दे जब शीतल होजाय तब ऊपर चन्द्रमाके समान सफेद भस्मको मानपूर्वक निकाललेवे ॥ १९९–२०४ ॥

रसकर्पूरानुपानम् ।

वल्लवल्लार्द्धमानेन गुडैर्जीर्णैः समं ददेत् ।
यथोचितानुपानेन सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ २०५ ॥

दुग्धौदनं तु पथ्यं देयं चास्मिंश्च तांबलम् ।
हरति समस्तान्रोगान् कर्पूराख्यो रसो नृणाम् ॥ २०६ ॥

रसकपूर तीन अथवा डेढ रत्ती पुराने गुडके साथ खावे अथवा यथोचित रोगके अनुपानसे खावे दूध भातका पथ्य करे पान खावे यह रसकपूर मनुष्योंके समस्त रोगोंको दूर करताहै ॥ २०५ ॥ २०६ ॥

फिरङ्गरोगे दातव्यो रसकर्पूरसंज्ञकः ।
अन्यत्र न प्रयोक्तव्यो रसज्ञानविचक्षणैः ॥ २०७ ॥

बुद्धिमानोंको चाहिये कि प्रायः फिरंगरोगमें ही रस कपूर संज्ञक पारदका उपयोग करे अन्यत्र न करे ॥ २०७ ॥

इति मूर्च्छाप्रकारस्ते विधिना कथितो मया ।
बंधनस्याधुना वक्ष्ये प्रकारं शिष्यसत्तम ॥ २०८ ॥

इस प्रकार मूर्च्छाप्रकारका विधिवत् कथन कर अब हे शिष्यसत्तम ! बंधन प्रकार सुनो ॥ २०८ ॥

द्विधा वै बध्यते सूतः सबीजोऽबीज एव च ।
औषधीभिः सबीजस्तु निर्बीजो दिव्यभेषजैः ॥ २०९ ॥

सबीज और निर्बीज इन दो प्रकारोंसे पारेका बंधन होता है जो अभ्रक सत्व सोना चांदी तांबा और लोहके संयोगसे बांधाजावे उसे सबीज और जा दिव्य औषाधियोंके संबन्धसे बांधाजावे उसे निर्बीज कहते हैं बंधन खोट जलौकादि भेदसे औरभी अनेक प्रकार इसके हैं तिनमें मुख्य २ बंधनोंके नाम और उनके लक्षण लिखते हैं ॥ २०९ ॥

पंचविंशतिसंख्याकान्रसबंधान्प्रचक्ष्महे ।
येन येन हि चांचल्यं दुर्ग्रहत्वं च नश्यति ॥ २१० ॥
प्रोक्तानि रसराजस्य बधनानि च वार्त्तिकैः ।
हठारोटौ तदाभासः क्रियाहीनश्च पिष्टिकः ॥ २११ ॥
क्षारः खोटश्च पोटश्च कल्कबंधश्च कज्जलिः ।
सजीवश्चैव निर्जीवो निर्बीजश्च सबीजकः ॥ २१२ ॥
श्रृंखलाद्रुतिबंधौ च बालकश्च कुमारकः ।
तरुणश्च तथा वृद्धो मूर्त्तिबद्धस्तथा परः ॥ २१३ ॥

जलबद्धोऽग्निबद्धश्च सुसंस्कृतकृताभिधः ।
महाबंधाभिधश्चेति पंचविंशतिरीरिताः ॥ २१४ ॥
केचिद्वदन्ति षड्विंशं जलौकाबंधसंज्ञकम् ।
सतावन्नेष्यते देहे स्त्रीणां द्रावे प्रशस्यते ॥ २१५ ॥

पचीस प्रकारके रसबंधनोंको कहते हैं जिनसे पारदकी चंचलता और दुर्ग्रहत्व दूर होताहै वह भेद यह है १ हठ २ आरोट ३ आभास ४ क्रियाहीन ५ पिष्टिक ६ क्षार ७ खोटक ८ पोट ९ कल्कबन्ध १० कज्जली ११ सजीव १२ निर्जीव १३ निर्बीज १४ सबीज १५ शृंखलाबद्ध १६ द्रुतिबंध १७ बालक १८ कुमार १९ तरुण २० वृद्ध २१ मूर्त्तिबद्ध २२ जलबद्ध २३ अग्निबद्ध २४ सुसंस्कृत २५ महाबंध और कोई आचार्य जलौकाबन्ध छब्बीसवां कहते हैं वह देहके अर्थ तो उत्तम नहीं परंतु स्त्रीद्रावणमें प्रशंसा योग्य हैं ॥२१०-२१५॥

हठरसः ।

हठो रसः स विज्ञेयो सम्यक् शुद्धिविवर्जितः ॥
संसेवितो नृणां कुर्यान्मृत्युं व्याधिं समुद्धतम् ॥ २१६ ॥

शुद्धिहीन पारेको हठरस कहते हैं इसके सेवनसे मनुष्यको अनेक व्याधि और मृत्यु होती है ॥ २१६ ॥

आरोटरसः ।

सुशोधितो रसः सम्यगारोट इति कथ्यते ।
सक्षेत्रीकरणे श्रेष्ठः शनैर्व्याधिविनाशनः ॥ २१७ ॥

विधिपूर्वक शोधन किये पारेको आरोट कहते हैं यह क्षेत्रीकरणमें श्रेष्ठ है और धीरे २ रोगोंको नाश करता है ॥ २१७ ॥

आभासरसः ।

पुटितोऽधो रसो याति योगं मुक्त्वा स्वभावताम् ॥
भावितो रसमूलाद्यैराभासो गुणवैकृते ॥ २१८ ॥

पुट दिया हुआ रस जो योगको छोड अपने स्वभावको प्राप्त हो और नीचेको जावे जिसमें मूलादिके रसकी भावना दी गई हो उसको आभास रस कहते हैं२१८

क्रियाहीनः ।

अशोधितस्तु लोहाद्यैः साधितो यो रसोत्तमः ।
क्रियाहीनः स विज्ञेयो विक्रियां यात्यपथ्यतः ॥ २१९ ॥

जो रस शुद्ध किया न हो और सुवर्णचांदी आदिसे सिद्ध किया जाय उसको क्रियाहीन कहते हैं । यह कुपथ्य करनेसे देहमें विकारको प्राप्त होताहै ॥ २१९ ॥

पिष्टिकबंधः ।

तीव्रातपे गाढतरावमर्दात्पिष्टी भवेत्सानवनीतरूपा ।
ख्यातः ससूतः किल पिष्टिबद्धः संदीपनः पाचनकृद्विशेषात् ॥ २२० ॥

पारेको अत्यन्त तेज धूपमें रखकर घोटनेसे यदि मक्खनके समान पिंडी होजावे तो उस पारेको पिष्टिबद्ध पारा कहते हैं विशेष करके इसको दीपन पाचन कर्त्ता जानना ॥ २२० ॥

क्षारबद्धः ।

शंखशुक्तिवराटाद्यैर्योऽसौ संसाधितो रसः ।
क्षारबद्धः परंदीप्तिपुष्टिकृच्छूलनाशनः ॥ २२१ ॥

जिस पारेको शंख, शीप, कौडी, आदिके खारसे शोधित किया हो उसको क्षारबद्ध कहते हैं यह अत्यन्त अग्निवर्द्धक पुष्टिकारक और शूलनाशक होताहै २२१

खोटबद्धः ।

बद्धो यः खोटतां यातो ध्मातो ध्मातः क्षयं व्रजेत् ।
खोटबद्धः स विज्ञेयः शीघ्रं सर्वगदापहः ॥ २२२ ॥

जो बद्ध पारा चलने फिरनेसे रहित होजावे और धमाते २ क्षीण होवे उसे खोटबद्ध जानना चाहिये शीघ्रही सम्पूर्ण रोगोंको नाश करताहै ॥ २२२ ॥

पर्पटीपोटबद्धः ।

द्रुतिकज्जलिका मोचापत्रके चिपिटीकृता ।
सपोटः पर्पटी सैव बालाद्यखिलरोगनुत् ॥ २२३ ॥

जिस पारेकी कज्जलीकी द्रुति केलाके पत्रमें पतली और चपटी होजावे उसको पोटबद्ध अथवा पर्पटी कहते हैं । यह बालकादिकोंके सर्वरोग नाश करती है२२३॥

कल्कबद्धः ।

स्वेदाद्यैः साधितः सूतः पंकत्वं समुपागतः ।
कल्कबद्धः स विज्ञेयो योगोक्तफलदायकः ॥ २२४ ॥

स्वेदन मर्दनादि संस्कारोंसे जो पारा कीचके समान होजावे उसको कल्कबद्ध कहते हैं यह योगोंके कहे अनुसार फलको देता है ॥ २२४ ॥

कज्जलीबंधः ।

कज्जली रसगंधोत्था सुश्लक्ष्णा कज्जलोपमा ।
तत्तद्योगेन संयुक्ता कज्जलीबंध उच्यते ॥ २२५ ॥

पारे और गन्धककी सुन्दर कज्जलके समान कज्जली होजावे वह अपने २ भिन्न २ योगोंसे युक्त कज्जलीबंध कहाता है ॥ २२५ ॥

सजीवपारदः ।

भस्मीकृतो जीवति वह्नियोगाद्रसः सजीवः स खलु प्रदिष्टः ।
संसेवितोऽसौ न करोति भस्मकार्यं जवाद्व्याधिविनाशनं च ॥ २२६ ॥

जो पारा भस्म होनेपरभी आँचके संयोगसे फिर जीवित होजाताहै उसको सजीव पारा कहते हैं । इसका सेवन पारेकी भस्मके समान गुण नहीं करता, और जल्दी रोगोंकोभी नाश नहीं करता ॥ २२६ ॥

निर्जीवः ।

जीर्णाभ्रको वा परिजीर्णगन्धो भस्मीकृतश्चाखिललोहमौली ।
निर्जीवनामा हि सभस्मभूतो निःशेषरोगान् विनिहन्ति वेगात् ॥ २२७ ॥

जिस पारेमें प्रथम अभ्रक सत्व और गन्ध जीर्ण किये जांय पीछे भस्म करनेसे वह भस्म सम्पूर्ण लोहोंमें श्रेष्ठ होती है उसे निर्जीव कहते हैं यह सर्व रोगोंको शीघ्र नाश करती है ॥ २२७ ॥

निर्बीजः ।

रसस्य पादांशसुवर्णजीर्णः पिष्टीकृतो गन्धकयोगतश्च ।
तुल्यांशगन्धैः पुटितः क्रमेण निर्बीजनामा सकलामयघ्नः ॥ २२८ ॥

जिस पारेमें चौथा हिस्सा सुवर्ण जीर्ण हुवाहो तथा जो गन्धकके मेलसे पिठी किया गयाहो और बराबर गंधकके पुट क्रमपूर्वक दिये गये हों उस सर्व व्याधि-नाशक रसको निर्बीज कहते हैं ॥ २२८ ॥

सबीजः ।

पिष्टीकृतैरभ्रकसत्त्वहेम तारार्ककान्तैः परिजारितो यः ।
हतः स्वतः षड्गुणगन्धकेन सबीजबद्धो विपुलप्रभावः ॥ २२९ ॥

अभ्रक सत्त्व, सुवर्ण, चांदी, ताम्र और लोह इनकी पिष्टीसे जारित हो तथा छः गुने गन्धक जारण कर जो बद्ध किया गया हो उस अमित प्रभाव युक्त पारेको सबीज बद्ध कहते हैं ॥ २२९ ॥

श्रृंखलाबद्धः ।

वज्रादिनिहतः सूतो हतः सूतसमोऽपरः ।
श्रृंखलाबद्धसूतस्तु देहलोहविधानतः ॥ २३० ॥

जो हीरा आदिसे बद्ध किया गयाहो तथा अन्य पदार्थों (अभ्रक, सुवर्ण, गंधक आदि)से बद्ध किया गया हो उस पारेको श्रृंखलाबद्ध कहते हैं यह शरीरको लोहतुल्य दृढ करताहै ॥ २३० ॥

द्रुतिबद्धः ।

युक्तोऽपि बाह्यद्रुतिभिश्च सूतो बद्धं गतो वा भसितस्वरूपः ।
सराजिकापादमितो निहन्ति दुःसाध्यरोगान् द्रुतिबद्धनामा ॥ २३१ ॥

जो बाह्यद्रुतियोंसे युक्त भी हो पर उत्तमरूपसे बद्ध हुवाहो वा भस्म हुवा हो उसकी राईकी चौथाई मात्रा भक्षण करनेसे दुःसाध्य रोग दूर होते हैं इसे द्रुतिबद्धपारा कहते हैं ॥ २३१ ॥

बालबद्धः ।

समाभ्रजीर्णः शिवजस्तु बालः संसेवितो योगयुतो जवेन ।
रसायनो भाविगदापहश्च सोपद्रवारिष्टगदान्निहन्ति ॥ २३२ ॥

जिस पारेमें बराबर अभ्रक जीर्ण हुवाहो उसको बालबद्ध कहते हैं योगयुक्त इसका सेवन करनेसे उपद्रव और अरिष्टयुक्त रोगोंका शीघ्र नाश होताहै और यह होनेवाले रोगोंका नाश करताहै तथा रसायन है ॥ २३२ ॥

कुमारबद्धः ।

हरोद्भवो यो द्विगुणाभ्रजीर्णः स स्यात्कुमारो मिततंदुलोसौ ।
त्रिःसप्तरात्रात्खलु पापयोगसंघातघाती च रसायनं च ॥ २३३ ॥

दूने अभ्रकसे जीर्ण पारेको कुमारबद्ध कहते हैं इसको एक चांवलके बराबर नित्य सेवन करनेसे २१ दिनमें सब पापरोगोंके समूहका नाश होजाता है यह रसायन है ॥ २३३ ॥

तरुणबद्धः ।

चतुर्गुणव्योमकृताशनोसौ रसायनाग्र्यस्तरुणाभिधानः ।
स सप्तरात्रात्सकलामयघ्नो रसायनो वीर्यबलप्रदाता ॥ २३४ ॥

चौगुने अभ्रकको जिसने खायाहो वह रसायनोंका अग्रवर्त्ती तरुणपारा कहाता है इसको सात रात्रि सेवन करनेसे सर्व रोग नाश होते हैं यह वीर्य और बलको बढाता है और रसायन है ॥ २३४ ॥

वृद्धबद्धः ।

यत्राभ्रकः षड्गुणतो हि जीर्णः प्राप्ताग्निसख्यः स हि वृद्धनामा । देहे च लोहे च नियोजनीयः शिवादृते कोऽस्य गुणान्प्रवक्ति ॥ २३५ ॥

जिस पारेमें षड्गुण अभ्रक जारण होचुका हो वह अग्निमें भस्म किया हुवा वृद्धबद्ध नामका पारा है । इसको देहमें और ताम्रादि लोहोंमें योजना करना चाहिये इसके गुणोंको शिवजीके विना और कौन कह सक्ता है ॥ २३५ ॥

यो दिव्यमूलिकाभिश्च कृतोत्याग्निसहो रसः ॥ २३६ ॥
विनाभ्रजारणात्स स्यान्मूर्त्तिबंधो महारसः ।
योजितः सर्वरोगेषु निरौपम्यफलप्रदः ॥ २३७ ॥

अभ्रक जारण किये बिना जो पारा दिव्यौषधियोंके रससे ही बद्ध किया हो और अग्नि सहनेवाला हो गया हो उस महारसको मूर्त्तिबन्ध कहते हैं इसको सर्व रोगोंमें देना चाहिये यह निरुपम फलको देता है ॥ २३६ ॥ २३७ ॥

चतुःषष्टिदिव्यौषधिनामानि ।

सोमवल्ली जलस्था हि पद्मिन्यजगरी तथा ।
गोनसी त्रिजटा चैवेश्वरी वै भूतकेशिनी ॥ २३८ ॥
कृष्णवल्ली रुद्रवन्ती वाराही सर्वरा तथा ।
अश्वस्थपत्र्यम्लपत्री चक्रनासा ह्यशोकिका ॥ २३९ ॥
पुन्नागपत्रा नागा च क्षेत्रिका शवरी तथा ।
देवीलता वज्रवल्ली चित्रका कालपर्णिका ॥ २४० ॥
नीलोत्पल्यथ रजनी पलासतिलका तथा ।
सिंहिका खलु गोशृंगी खदिरस्य तु पत्रिका ॥ २४१ ॥
तृणज्योती रक्तवल्ली ब्रह्मदंडी मधुतृषा ।
पद्मकन्दा हेमदण्डी विजया वै तथाऽजया ॥ २४२ ॥

जया नली च श्रीनाम्नी कीटभारी तु तुम्बिका।
कटुतुम्बी मयूरस्य शिखा हेमलता तथा ॥ २४३ ॥
आसुरी सप्तपर्णी च गोमारी पीतक्षीरिका।
व्याघ्रपादलता तद्वद्धनुर्वल्ली त्रिशूलिनी ॥ २४४ ॥
शृङ्गी त्रिदण्डी वै वज्रवल्लरी महती तथा।
रक्तकन्दवती बिल्वदला वै रोहिणी तथा ॥ २४५ ॥
गोरोचना बिल्वतङ्गी तथा वै कन्दपत्रिका।
विशल्या कन्दक्षीरा च दिव्यौषधिगणः स्मृतः ॥ २४६ ॥

१ सोमवल्ली २ जलपाद्मिनी ३ अजगरी ४ गोनसी ५ त्रिजटा ६ ईश्वरी ७ भूतकेशी ८ कृष्णवल्ली ९ रुद्रवन्ती १० सर्वरा ११ वाराहीकंद १२ अश्वत्थ-पत्री १३ अम्लपत्री १४ चकोरनासा १५ अशोकनाम्नी १६ पुन्नागपत्रिका १७ नागिनी १८ क्षेत्री १९ सवरी २० देवीलता २१ वज्रवल्ली २२ चित्रक २३ काल-पर्णी २४ नीलोत्पली २५ रजनी २६ पलाशतिलका २७ सिंहिका २८ गोष्ठाङ्गी २९ खदिरपत्री ३० तृणज्योति ३१ रक्तवल्ली ३२ ब्रह्मदण्डी ३३ मधुतृष्णा ३४ पद्मकन्दा ३५ हेमदण्डी ३६ विजया ३७ अजया ३८ जया ३९ नली ४० श्रीनाम्नी ४१ कीटभारी ४२ तुंबिका ४३ कटुतुंबी ४४ मयूरशिखा ४५ हेमलता ४६ आसुरी ४७ सप्तपर्णी ४८ गोमारी ४९ पीतक्षीरा ५० व्याघ्रपादलता ५१ धनुर्वल्ली ५२ त्रिशूली ५३ शृंगी ५४ त्रिदण्डी ५५ वज्रनामवल्ली ५६ महावल्ली ५७ रक्तकन्दवती ५८ बिल्वदला ५९ रोहिणी ६० गोरोचना ६१ बिल्वतङ्गी ६२ कन्दपत्रिका ६३ विशल्या ६४ कन्दक्षीरा यह दिव्यौषधि हैं ॥२३८-२४६॥

जलबद्धः।

शिलातोयसुखैस्तोयैर्बद्धोऽसौ जलबद्धकः।
स जरारोगमृत्युघ्नः कल्पोक्तफलदायकः ॥ २४७ ॥

घृतोदक, विषोदक, तैलोदक, अमृतोदक, कर्त्तरी, तप्तोदक, चन्द्रोदक इत्यादि जलोंके योगसे बद्ध हुआ हो वह जलबद्ध कहाता है यह वृद्धावस्थादिके रोगोंको और मृत्युको दूर कर कल्पोक्त फल देता है ॥ २४७ ॥

अग्निबद्धः।

केवलो लोहयुक्तो वा ध्मातः स्याद्गुटिकाकृतिः।
अक्षीणश्चाग्निबद्धोऽसौ खेचरत्वादिकृत्स हि ॥ २४८ ॥

जो पारा खाली या लोहे युक्त अग्निमें धरके धौंकनेसे गुटकाके समान होजावे और कम न पडे उसको अग्निबद्ध पारा कहतेहैं यह खेचरत्वादि सिद्धिको देताहै॥२४८

बद्धाभिधानरस ।

हेम्ना वा रजतेन वा सह यदि ध्मातो व्रजत्येकता-
मक्षीणो निचितो गुरुश्च गुटिकाकारोतिदीर्घोज्ज्वलः ॥
चूर्णत्वं पटुवत्प्रयाति निहता घृष्टो न मुंचेन्मलम् ।
निगन्धा द्रवति क्षणात्स हि मतो बद्धाभिधानो रसः ॥ २४९ ॥

अब बद्ध पारेके लक्षण कहते हैं जो सुवर्ण चांदी आदिके साथ गलानेसे गलकर एक होजावे क्षीण न हो न बिखरे तथा भारी और गुटके समान अति-दीर्घ और उज्ज्वल हो तथा पीसनेसे नमकके समान चूरा होजावे घिसनेसे मल न छोडे गंधरहित हो अग्निपर तत्काल पतला होजावे उसको बद्धाभिधान पारा कहते हैं ॥ २४९ ॥

मतान्तर ।

पोटः खोटो जलौका च भस्म चापि चतुर्थकम् ।
बंधश्चतुर्विधो ज्ञेयः सूतस्य भिषगुत्तमैः ॥ २५० ॥

कोई आचार्य कहते हैं कि पोट, खोट, जलौका और भस्म ये बद्ध पारेके चार भेद हैं ॥ २५० ॥

लक्षणम् ।

पोटः पर्पटिकाबन्धः पिष्टीबन्धस्तु खोटकः ।
जलौकापक्वबंधः स्याद्भस्म भस्मनिभं भवेत् ॥ २५१ ॥

पारा और गंधकी पर्पटीको पोटबद्ध कहते हैं पिष्टीबन्ध खोटक कहाता है पक्वबंधको जलौकाबद्ध कहते हैं तथा भस्मके समान पारेको भस्मबद्ध कहते हैं २५१

सूतभस्म द्विधा ज्ञेयमूर्ध्वगं तलभस्म च ।
ऊर्ध्वं सिंदूरकर्पूररसादन्यदधोगतम् ॥ २५२ ॥

पारेकी भस्म दो प्रकारकी जानना चाहिये एक ऊर्ध्वगत दूसरी अधोगत रस-सिंदूर और रसकपूर आदि ऊर्द्धगत कहते हैं और इनसे भिन्न अधोगत भस्म कहाती है ॥ २५२ ॥

अथ तलभस्मविधिः ।

गन्धकं नवसारं च शुद्धसूतं समं त्रयम् ।
यामैकं चूर्णयेत्खल्वे काचकुप्यां विनिक्षिपेत् ॥ २५३ ॥
रुद्ध्वा द्वादशयामान्तं वालुकायंत्रगं पचेत् ।
स्फोटयेत्स्वांगशीतं तदूर्ध्वगं गंधकं क्षिपेत् ॥
तलभस्मरसो योगवाही स्यात्सर्वरोगहृत् ॥ २५४ ॥

गंधक, नौसादर, शुद्ध पारा हरएक आठ २ पैसे भर लेवे सबको एकमें मिलाय पहर भर कज्जली करे, फिर शीशीमें भर वालुकायंत्रमें १२ प्रहरकी आंच देवे ठंढा होने पर शीशीको फोडकर नाच बैठी हुई पारेकी भस्म ग्रहण करे ऊपर लगे हुए गंधकको दूर करे । यह योगवाही और सर्व रोगनाशक है । शिंगरफसे निकाला हुआ पारा संस्कारोंके विनाही शुद्ध होताहै ऐसा लोग कहते हैं परंतु शिंगरफसे निकाले हुए पारेकी भी पूर्वोक्त स्वेदन, मर्दन, उत्थापनादि संस्कार करना चाहिये यह निर्दोष बात है ॥ २५३ ॥ २५४ ॥

यथोक्तं पुरंदररहस्ये ।

रसगंधकसंभूतं हिंगुलं प्रोच्यते बुधैः ।
तस्मात्सूतं च यद्ग्राह्यं शोध्यं तमपि सूतवत् ॥ २५५ ॥

पारा और गन्धकके योगसे शिंगरफ बनताहै, इस लिये शिंगरफसे जो पारा निकाला जावे वह भी पारेके समान शुद्ध करना चाहिये । इस पारेमें औषधोंसे प्रथम मुख उत्पन्न करना चाहिये, क्योंकि मुख होनेसे पारा सोना, चांदी, अभ्रक सत्त्व, तांबा, लोहा इत्यादिको खाजाताहै सुवर्ण आदि धातुओंकी बाह्य द्रुति करना कठिन है और सुवर्णादिकको पारेमें मिलाकर औषधियोंसे द्रव करते हैं यह अंतर द्रुति कहाती है पहले पारेको भूखा करके ऐसा बनाले कि वह सुवर्ण आदिको खाय तथा पचाय सके इसके लिये सुगम उपाय कहते हैं ॥ २५५ ॥

विषोपविषकैर्मर्द्यः प्रत्येकं दिनसप्तकम् ।
मुखं च जायते सूते बलं वह्निश्च वर्द्धते ॥ २५६ ॥

विष तथा उपविषोंसे पृथक् २ सात २ दिन पारेको मर्दन करना चाहिये इसकी विधि यह है कि ४० तोले पारेमें ५ तोला विषका चूर्ण मिलाकर मर्दन करनेसे पारेमें मुख होजाता है और बल तथा अग्निकी वृद्धि होती है ॥ २५६ ॥

केचिद्वंशस्य सुषिरे रसं क्षिप्त्वा घटे परे ।
गोमूत्रभरिते न्यस्य त्रिसप्ताहं तु पाचयेत् ॥ २५७ ॥

कोई वैद्य पारेके मुख करनेके लिये पारेको बांसकी नलीमें भर देते हैं और एक हांडीमें गोमूत्र भरके उसमें नलीको लटका देते हैं और २१ दिन तक आंच देते हैं जैसे २ गोमूत्र जलता जाता है वैसे २ और डालते जाते हैं इस प्रकारसे पारेके मुख और भूख उत्पन्न होती है । पारेको भूंखा करनेके लिये षड्गुण गंधक जारण करते हैं तब पारा भूंखा होता है ॥ २५७ ॥

गुरुं शास्त्रं परित्यज्य विना जारितगंधकात् ।
मारयेद्यो रसं मूढः तं शपेत्परमेश्वरः ॥ २५८ ॥

गुरु और शास्त्रको छोडकर जो मूढ वैद्य विना गंधक जारणके पारेको मारता है उसको श्रीशिवजी शाप देते हैं गंधक जारण बाहिर्धूम और अन्तर्धूम इन भेदोंसे दो प्रकारका है ॥ २५८ ॥

गंधकजारणावश्यकता ।

रसगुणवलिजारणं विनायं न खलु रुजाहरणक्षमो रसेन्द्रः ।
न जलदकलधौतपाकहीनः स्पृशति रसायनतामिति प्रतिज्ञा ॥ २५९ ॥

षड्गुण गन्धक जारण किये विना पारा रोगोंको नहीं हरसकता और जबतक अभ्रक तथा सुवर्ण जारण न किया जावे तब तक पारा रसायनयोग्य नहीं होता ऐसी प्रतिज्ञा है ॥ २५९ ॥

जीर्णे शतगुणे गन्धे शतवेधी भवेद्रसः ।
सहस्रगुणिते जीर्णे सहस्रांशेन वेधयेत् ॥ २६० ॥
एतत्प्रकारस्तु तत्रैव द्रष्टव्यः प्राधान्यषड्गुणस्य सर्वसंमतम् ॥

सौगुना गन्धक जीर्ण होनेसे पारा शतवेधी होताहै अर्थात् एक भाग पारा तांबे आदिके सौ भागोंको वेध सकताहै, इसी प्रकार सहस्रगुणित गन्धक जीर्ण होनेसे हजारवें हिस्सेको बँधे यह प्रकार रंजनादि संस्कारोंमें देखना मुख्य षड्गुण गन्धक जारण ही सर्वसंमत है ॥ २६० ॥

गंधकजारणफलम् ।

तुल्ये तु गंधके जीर्णे शुद्धाच्छतगुणो रसः ।
द्विगुणे गन्धके जीर्णे सर्वथा सर्वकुष्ठहा ॥ २६१ ॥

त्रिगुणे गंधके जीर्णे सर्वव्याधिविनाशनः ।
चतुर्गुणे तत्र जीर्णे वलीपलितनाशनः ॥ २६२ ॥
गन्धे पञ्चगुणे जीर्णे क्षयरोगहरो रसः ।
षड्गुणे गन्धके जीर्णे सर्वरोगहरो भवेत् ॥ २६३ ॥

पारेके बराबर गंधक जारण करनेसे शुद्ध पारेसे सौगुना अधिक फल दाता होता है दूना गंधक जारणसे सब कुष्ठोंको दूर करताहै तीन गुना गंधक जारण करनेसे सब रोगोंको नाश करताहै, चौगुना जारण करनेसे वृद्धापनसे होनेवाले सफेद बालोंको तथा त्वचा सिकुडनेको दूर करताहै पांच गुना जीर्ण करनेसे क्षयरोगको तथा छः गुना गंधक जीर्ण करनेसे सब व्याधियोंको दूर करताहै ॥ २६१-२६३ ॥

अन्तर्धूमविपाचितषड्गुणगन्धकेन रंजितः सूतः ।
स भवेत्सहस्रवेधी तारे ताम्रे भुजंगे च ॥ २६४ ॥

अन्तर्धूम विपाचित (वालुकादियंत्रोंके मुख अच्छी रीतिसे बंद करके गंधक जीर्ण कियाजाय जिसमें गंधकका धुवाँ बाहर निकले) और षड्गुण गन्धकसे रंजित जो पारा है वह चांदी तांबा और सीसेमें सहस्रवेधी होताहै ॥ २६४ ॥

विपिनौषधिपाकसिद्धमेतद् घृततैलाद्यपि दुर्निवारवीर्यम् ।
किमयं पुनरीश्वरांगजन्मा घनजाम्बूनदचन्द्रभानुजीर्णः ॥ २६५ ॥

जंगलकी जडी बूटी इत्यादिके पाकसे सिद्ध हुए घृत तैलादि भी बडी शक्तिवाले होजाते हैं फिर शिवजीकी बीज पारेमें अभ्रक, सुवर्ण, ताम्र और चांदी होगई हों तो फिर क्या कहनाहै ? ॥ २६५ ॥

अजारयंतः पवि हेमगंधं वांछन्तिसूतात्फलमप्युदारम् ।
क्षेत्रादनुप्तादपि सस्यजातं कृषीवलास्ते भिषजश्च मंदाः ॥ २६६ ॥

जो हीरा, सुवर्ण और गन्धक जारण किये विना पारेसे उदार फल चाहते हैं वे वैद्य विना जोते बोए खेतसे फलकी इच्छा करते हुए किसानोंके तुल्य मंदबुद्धि हैं ॥ २६६ ॥

धनरहितबीजजारणसंप्राप्तफलादिसिद्धिकृतकृत्याः ।
कृपणाः प्राप्य समुद्रं वराटिकालाभसंतुष्टाः ॥ २६७ ॥

अभ्रक जारण किये विना जो वैद्य केवल बीज जारणमें कृतार्थ मानते हैं वे ऐसे हैं कि जैसे कृपण पुरुषोंको समुद्रके किनारे कौडी मिलजानेसे वे उसको सर्वोत्तम लाभ जानकर प्रसन्न होते हैं ॥ २६७ ॥

अभ्रकजारणमादौ गर्भद्रुतिजारणं च हेम्नोन्ते ।
यो जानाति न वैद्यो वृथैव सोऽर्थक्षयं कुरुते ॥ २६८ ॥

पहले अभ्रकका जारण करे पीछे सुवर्ण जारण उसके पीछे गर्भद्रुति करना इस क्रमको जो वैद्य नहीं जानता वह व्यर्थ ही धन व्यय करता है ॥ २६८ ॥

हेम्नि जीर्णसहस्रैकगुणसंघप्रदायकः ।
वज्रादिजीर्णसूतस्य गुणान् वेत्ति शिवः स्वयम् ॥ २६९ ॥

पारेमें यदि सुवर्ण जीर्ण कियाजाय तो हजार गुना गुण करता है, और जिस पारेमें हीरा आदिका जारण कियाजाय तो उसके गुण तो साक्षात् श्रीशिवजी ही जानते हैं ॥ २६९ ॥

सर्वपापक्षये जाते प्राप्यते रसजारणा ।
तत्प्राप्तौ प्राप्तमेव स्याद्विज्ञानं मुक्तिलक्षणम् ॥ २७० ॥

मनुष्यके सब पाप क्षीण होने पर रसजारण सिद्ध होता है इस रसजारणकी प्राप्तिसे मुक्तिलक्षण विज्ञानकी प्राप्ति होती है ॥ २७० ॥

यावद्दिनानि शिवजो वह्निस्थो धार्यते रसः ।
तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥ २७१ ॥
दिनमेकं रसेंद्रस्य यो ददाति हुताशनम् ।
द्रवन्ति तस्य पापानि कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ २७२ ॥

जितने दिन यह प्राणी शिववीर्य पारेको अग्निमें रखताहै उतने ही हजार वर्ष पर्यन्त वह शिवलोकमें विहार करता है जो प्राणी एक दिन भी पारेको अग्निमें रखता है उसके सम्पूर्ण पाप द्रवीभूत होजाते हैं और फिर किये हुए पापोंसे लिप्त नहीं होता ॥ २७१ ॥ २७२ ॥

अथ षड्गुणगंधकजारणम् ।

इष्टिकायां सुपक्वायां मूषांतं चतुरंगुलाम् ।
कृत्वा काचेन संलिप्तां तस्यां तत्पिष्टिकां क्षिपेत् ॥ २७३ ॥

निम्बुद्रावोद्भवो गंधो देयो मूर्ध्नि द्विकार्षिकः ।
मुखं संरुध्य शुष्केऽथ दद्याल्लावपुटं ततः ॥ २७४ ॥
गौरीयंत्रमिदं ख्यातं मूर्च्छिते गंधजारणे ॥ २७५ ॥

सुन्दर पकीहुई आठ अंगुल मोटी पँजावेकी ईंटमें चार अंगुलका गढा कर उसमें कांच फिराकर पारेकी पिट्टी भरे पारेके बराबर अर्थात् पैसेभर गन्धकको कागजी नीबूमें घोटकर पारेके ऊपर रक्खे और गढेको ईंटके टुकडेसे बंद कर कपडमिट्टी करे पीछे जंगली कंडोंकी आंच देवे ठंढा होनेपर निकाल पूर्वोक्त कहे विधानसे फिर आंच देवे जब तक षड्गुण गंधक जले तबतक इसी प्रकार करता जाय यह गौरीयंत्र मूर्च्छना और गंधक जारणके लिये प्रसिद्ध है ॥ २७३-२७५ ॥

पिष्टीकरणम् ।

वस्त्रं हस्तमितं कृत्वा धत्तूररसभावितम् ।
नवनीतं विलिप्याथ चूर्णमेतद्विनिक्षिपेत् ॥ २७६ ॥
मनःशिलं तथा तालं गन्धकं शुद्धसीसकम् ।
अर्धकर्षप्रमाणेन प्रत्येकं च विचूर्णितम् ॥ २७७ ॥
वस्त्रोपरि समाक्षिप्य वर्त्तिकामिव कारयेत् ।
प्रज्ज्वाल्य पतितं तैलं घृतमर्दितभाजने ॥ २७८ ॥
तैलं गृहीत्वा तस्मिंस्तु पारदं मर्दयेद्बुधः ।
संगृह्य पिष्टिकाकारं गंधकाद्याभिजारणे ॥ २७९ ॥

एक हाथ सुन्दर कपडा लेवे उसको सात बार धतूरेके रसमें भिगोकर सुखावे पीछे उस पर मक्खन चुपड कर मैनासिल, हरताल, गंधक, सीसाका चूरा प्रत्येक धेले २ भर ले बारीक पीस उस कपडेपर बिछाकर बत्ती बनावे और एक थालीमें घी लगाकर उसमें जो तेल टपके उसमें पैसे भर पारेको खूब घोटे जब पारा मिलकर पिट्टी होजाय तब जारण करे ॥ २७६-२७९ ॥

रसं मृत्पात्रके क्षिप्त्वा वह्नौ तद्वै विनिक्षिपेत् ।
हंसपाद्या रसे क्षिप्तं गन्धकं तत्र योजयेत् ॥ २८० ॥

एक हांडीमें १६ पैसे भर पारा डाल आग पर रक्खे जब गरम होजाय तब हंसपदीके रसमें घोटाहुआ तोलाभर गन्धक उसमें डाले इसी प्रकार जब तक षड्गुण गंधक जले तब तक करताजावे ॥ २८० ॥

भूधरयंत्रविधिः ।

आरोटकसमगन्धकचूर्णं तुल्यं निरुद्धमूषायाम् ।
भुवि गर्त्तायां मूषां तां क्षिप्त्वाऽष्टांगुलाधस्तात् ॥ २८१ ॥
आपूर्य वालुकाभिस्तं गर्त्तं भूसमीकृत्य ।
प्रज्वाल्योपरि वह्निं त्रिदिनं मूषां समुद्धृत्य ॥ २८२ ॥
जीर्णे तु गंधकेस्मिन् पुनस्तु क्षेप्योऽनया रीत्या ॥ २८३ ॥

लोहेकी घडियामें आठ पैसे भर शुद्ध पारद रक्खे और उसमें आठ पैसे भर शुद्ध गंधक डाल लोहेके पात्रमें मुख बंद कर कपडमिट्टी कर भूमिमें आठ अंगुल गहरा और इतना ही लंबा चौडा गढा खोदकर उसमें मूषाको रखके गढेमें बालू भरके भूमिके समान करदेवे तीन दिन तक उसके ऊपर अग्नि जलावे चौथे दिन स्वांग शीतल होने पर घडियाको निकाले तो इस प्रकार जीर्ण हुए गंधकको पूर्वोक्त विधिसे षड्गुण जारण करे। अथवा वज्रमूषामें षड्गुण गंधक जारण करे ॥ २८१–२८३ ॥

अजीर्णं तु अबीजं तु सूतकं यस्तु घातयेत् ।
ब्रह्महा स दुराचारी ब्रह्मद्रोही न संशयः ॥ २८४ ॥

अजीर्ण (जिसमें गंधक आदि न जलाये गये हों) और अबीज (अभ्रकसत्व सुवर्ण, चांदी, ताम्र और लोह आदिकी पिष्टी जिसमें न जारण की गई हो इस प्रकारके) पारेको जो मनुष्य मारता है वह ब्रह्महत्यारा, दुष्ट आचरणोंवाला ब्रह्मद्रोही है इसमें संशय नहीं ॥ २८४ ॥

तथा च रससिंधौ ।

देव्या रजोद्भवो गन्धो धातुः शुक्रं तथाभ्रकम् ।
आलिंगने समर्थौ द्वौ प्रियत्वाच्छिवरेतसः ॥ २८५ ॥
आश्लेषादेतयोः सूतो न वेत्ति मृत्युजं भयम् ।
शिवशक्तिसमायोगात् प्राप्यते परमं पदम् ॥ २८६ ॥
यथास्य जारणा बह्व्यस्तथा स्याद्गुणदो रसः ॥ २८७ ॥

गन्धक पार्वती रजसे हुवा और उसका शुक्र धातु अभ्रक है इससे अभ्रक और गन्धक दोनों पारेको अत्यन्त प्रिय हैं, इनके संयोगसे पारा मृत्युका भय नहीं करता, शिव और शक्तिके संयोगसे श्रेष्ठ स्थान मिलताहै पारेकी जितनी २ जारण क्रिया अधिक होती है उतना २ अधिक गुण उसमें होताहै ॥ २८५–२८७ ॥

गंधकजीर्णगुणाः ।

समे गंधे तु रोगघ्नो द्विगुणे राजयक्ष्मजित् ।
जीर्णे तु त्रिगुणे गंधे कामिनीदर्पनाशनः ॥ २८८ ॥
चतुर्गुणे तु तेजस्वी सर्वशास्त्रविशारदः ।
भवेत्पञ्चगुणे सिद्धः षड्गुणे मृत्युजिद्भवेत् ॥ २८९ ॥

पारेके बराबर गंधक जारण करनेसे रोगोंको दूर करता है दूना गंधक जारण करनेसे राजयक्ष्मा (क्षय) रोगको निवारण करता है तिगुना जारण करनेसे स्त्रियोंका अभिमान दूर करे, और चतुर्गुण जारणसे तेजकी वृद्धि हो और बुद्धि बढावे पांच गुना जारण करनेसे सिद्ध होजाता है । छः गुना गंधक जारण करनेसे मौतका जय करताहै ॥ २८८ ॥ २८९ ॥

तस्माच्छतगुणो व्योमसत्त्वे जीर्णे तु तत्समे ।
ताप्यखर्परतालादिसत्त्वे जीर्णे गुणावहः ॥ २९० ॥
हेम्नि जीर्णे सहस्रैकगुणसंघप्रदायकः ।
वज्रादिजीर्णसूतस्य गुणान्वेत्ति शिवः स्वयम् ॥ २९१ ॥

पारेमें छः गुना गंधक जारण करनेसे अभ्रक सत्त्व समान जीर्ण किया हुवा सौगुना अधिक है, और सोनामक्खी, खपरिया, हरिताल इत्यादिके सत्त्वोंके जारणसे गुणदायक होता है सुवर्ण जारणसे हजार गुणोंका देनेवाला होताहै हीरा आदि रत्न जीर्ण किय पारेके गुण स्वयं श्रीशिवजी ही जानते हैं सोना, चांदी, अभ्रक आदिका जारण दो तरहसे होता है एक बिडके यागसे दूसरा बिडरहित इन दोनोंमें विडके योगसे जो बीज जीर्ण किया जाता है वह मुख्य उपाय है सो बीजके जारणके लिये बिड कहते हैं ॥ २९० ॥ २९१ ॥

मूलकार्द्रकचित्राणां क्षारैर्गोमूत्रगालितैः ।
गंधकैः शतशो भाव्यो विडोऽयं जारणे मतः ॥ २९२ ॥

एक एक मन मूली, अदरख और चित्रक लेकर सुखालेवे पश्चात् उनको जलाकर भस्मको गोमूत्रमें भिगो देवे और पांच दिन पीछे चार तह कपडेमें गोमूत्रको छानलेवे, और उसमें सवासेर आमलासार गंधकको घोट सौसे अधिक भावना देवे, गाढा होजानेपर सुखाकर रख छोडे यही विड कहाताहै इसके योगसे पारा अभ्रक सत्त्व भक्षण करताहै यह बिड पारेके भीतर सोना चांदी अभ्रक

सत्त्वको पानी करदेता है, और पारेको अत्यन्त भूँखा करता है । क्षुधित पारद अभ्रकसत्त्वादि पतले पदार्थोंको खाय जाता है । सारांश यह कि अभ्रक सत्त्वादि जो पारेके बाहर हैं उनको यह बिड द्रव नहीं करता शास्त्रमें यद्यपि अनेक उपाय उसके द्रव करनेके लिखे हैं पर पारेके बाहर उनका द्रवीभाव भगवानकी कृपासे होता है ॥ २९२ ॥

अथ बीजजारणप्रकारः ।

केवलाभ्रकसत्त्वं हि न ग्रसत्येव पारदः ।
तस्माल्लोहान्तरोपेतं युक्तं वा धातुसत्त्वकैः ।
अभ्रकं जारयेत् सिद्ध्यै केवले न तु सिद्ध्यति ॥ २९३ ॥

खाली अभ्रकके सत्त्वको पारा नहीं खासकता इससे लोह अथवा अन्य धातुओंके सत्त्वोंसे अभ्रकका जारण करे इस प्रकार सब प्रयोग सिद्ध होते हैं केवल अभ्रक सत्त्वसे नहीं होते (वैद्य लोग कहते हैं कि पारेमें उसका अष्टमांश बिड डालना चाहिये और जंबीरीके रसमें १ दिन घोटकर चौसठवां हिस्सा अभ्रकका सत्त्व डाले फिर जंबीरीके रसमें १ दिन घोटे पर इसका स्मरण रहे कि अभ्रकसत्त्वको जंबीरीनिम्बूके रससे घोटनेसे पहले अपने हाथोंमें मोरका पित्ता तथा सरसोंका तेल मललेवे अथवा सोनामक्खीका सत और सहत मिलाकर पीछे सोनामक्खीका सत अभ्रकसतके समान लेकर एक गोला बनाले पीछे सैंधव निमक और जवाखार धेले २ भर लेकर नींबूके रस और गोमूत्रमें खूब घोटे जब गाढा हो जावे तब चार तहके कपडेपर लेप करे जब सूखजावे तब इसमें उस गोलेको रक्खे अथवा भोजपत्र पर लेपकर उसमें गोलेको रक्खे और सूतस बांधकर दोलायंत्रकी भांति एक हांडीमें सैंधव निमक, जवाखार, कांजी, कागजी नींबूका रस और गोमूत्र डालकर तीन दिन स्वेदन करे, परन्तु इसका ध्यान रहे कि अभ्रक सत्त्व जब सोनामक्खीके सत्त्वमें मिलजाय तब पारा अभ्रक सत्त्वको भलीभांति ग्रसताहै। यदि दोनों सत्त्व न मिलें तो समझलेना कि नहीं ग्रसेगा इसीसे अभ्रक सत्त्वकी बराबर सोनामक्खीका सत्त्व मिलावे, पीछे जारण करे इस प्रकार स्वेदन कर चुकने पर उस गोलेको निकाल कांजीसे धोकर उसमेंका पारा निकाललेवे और उस कपडेमें डालकर खूब मले, परन्तु सावधानीसे मले जिसमें इधर उधर गिरकर कमती न पडजावे मलते २ जब निर्मल होजाय तब चार परतके कपडेमें डालकर छानलेवे और पारेको तोले यदि जाने कि केवल पारा रहगया है अभ्रक सत्त्व बाकी नहीं रहा, तो यह समझे कि पारा अभ्रक सत्वको खागया और यदि पारा तोलमें अधिक होवे तो जाने कि पारेमें अभ्रकसत्त्व नहिं

जीर्ण हुआ, जब अभ्रक सत्त्व पारेमें जीर्ण होजाय तब पारा दंडधारी अथवा जीवधारी होजाता है यदि जीर्ण न होय तो दंडधारी नहीं होता तब उस पारेको भूर्जपत्रमें बांधकर दोलायंत्रकी तरह एक हांडीमें लटकाकर हांडीमें कांजीका पानी भरे और पावभर सैंधव लवण डालकर तीन दिन पर्यन्त स्वेदन करे ऐसा करनेसे पारेका अजीर्ण दूर होजाताहै अथवा डमरूयंत्रमें उडानेसे भी पारेका अजीर्ण दूर होजाता है) ॥ २९३ ॥

उक्तञ्च ।

अजीर्णे पातयेत्पिंडं स्वेदयेन्मर्दयेत्तथा ।
रसस्याम्लस्य योगेन जीर्णे ग्रासं तु दापयेत् ॥ २९४ ॥

यदि पारेको अजीर्ण होगया हो तो उसका पातन, स्वेदन और खटाईके योगसे मर्दन संस्कार करे, जीर्ण होनेपर ग्रास देवे ।(इसी प्रकार पारेको अभ्रकके चार ग्रास और देवे, इसी प्रकार दोलायंत्रमें स्वेदन करे प्रक्षालन करे, और पिंड करे, और जीर्णाजीर्णकी परीक्षा करे । कोई २ वैद्य कच्छपयंत्रद्वार पारेमें दूने अभ्रक सत्वादिको जीर्ण करते हैं । यदि बाकी रहजाय तो उसको भट्टीकी अग्निमें जलाकर राख करते हैं । पूर्वोक्त गोलेको पक्की घडियामें गोलेके ऊपर नीचे विड दे, इस घडियाको नींबूके रससे भर देते हैं और घडियाका मुख बंद कर भट्टीमें धौंकते हैं और पारेसे द्विगुणित सत्व आदि कच्छपयंत्रमें जलाते हैं । इस प्रकार पारेको उडनेका भय नहीं रहता । इससे साक्षात् अग्निके संयोगसे बाकी दूनेसे अधिक सत्वादिक जलावे तो कुछ चिंता नहीं । एक और सुगम विधि है कि जमीनमें गोबर रखकर उसमें छः अंगुल गहिरी पक्की हांडी रक्खे उसमें गोलेको रख उसके ऊपर नीचे विड धरके जंभीरीके रससे आधी हांडी भरदेवे हांडीका मुख बंद करके उसके ऊपर अंगारोंका भरा घपरा सत्व न पिघलने तक रक्खे फिर पारेको निकालकर तोले, जो पारा तोलमें बराबर हो तो फिर इसी प्रकार सतको डालकर अग्नि देवे, जब पारेका दूना सत्त्व जमजावे तब साक्षात् अग्निके संयोगसे तिगुना, चौगुना, पँचगुना, छः गुना सत्वादिक जारण करे प्रति समय पारेका षोडशांश सत्त्व आदिक डालके जीर्ण करे उसके पश्चात् बाह्य द्रुतिके योगसे अभ्रक सत्वको पारेमें जीर्ण करे, यद्यपि शास्त्रमें बाह्यद्रुति अनेक प्रकारकी है पर मैं उत्तम प्रकारसे वर्णन करताहूं मूलीके रसमें सफेद अभ्रकको एक दिन भिगोकर कंबलकी थैलीमें भरे अभ्रकसे चौथाई धानकी भूसी मिलाकर तीन दिन एक परातमें भिगोवे चौथे दिन उसी पात्रमें उस थैलीको मले ऐसा करनेसे अभ्रकके छोटे २ टुकडे होकर पानीमें आवेंगे तब पानीको

निकाल डाले पानीके भीतर जो धान्याभ्रक है उसको लेकर और उसीके बराबर साबुन मिलाकर खरलमें घोटे फिर कडाहीमें डाल साबुनका तेजाब दो सेर डाले तीनोंको धीमी आंचसे तप्त करें आधा सेर तेजाब बाकी रहनेपर उतार लेवे फिर उसमें ३६ टंक सहत १७ टंक छोटी मछली ३६ टंक खरगोशका मांस ९ टंक खांड ३६ टंक गुड १८ टंक गुग्गुल १८ टंक अंडीका चोबा इन सबको पीसकर मिलावे और तीन गोले बनाकर सुखावे, पीछे तीनोंको अंगीठीमें रख नीचे ऊपर कोयला धर बंकनाल धोंकनीसे धोंके तो अभ्रकका सत्व ज्वारके समान निकले उसमें पूर्वोक्त मसाला डाल एक खर्गोश मारकर डाले फिर सबको घोटकर गोला बनावे और उक्त प्रकारसे दुबारा रांगके समान अभ्रक सत्व निकाल लेवे, इसी तरह तीसरी बार मसाला डालकर बंकनालसे धोंकनेसे दहीके समान अभ्रक सत्व निकलता है तीसरी बारका निकाला अभ्रक सत्व सदा पतला रहताहै जमता नहीं है यह पारेके संबंध विना द्रवीभूत है ।) ॥ २९४ ॥

लोहस्य द्रवीकरणम् ।

फोलादमें शहत, सुहागा, संखियाको डाल किसी बडी घडियामें डालकर पिघलने तक तप्त करे फिर ठंढा करके २४ टंक लेवे और इसका आठवां हिस्सा नमक डालकर कागजी नींबूके रसमें घोटे सूखने पर उष्ण जलसे धो डाले जब पानी ठंढा हो तब निकाल लेवे पश्चात् ३ टंक नौसादर डालकर नींबूके रससे घोटे और गोला बनाकर शीशेके प्यालेमें रक्खे दो प्रहर तक सुखाकर पीछे तीन टंक नौसादर डाल कागजी नींबूके रसमें घोटे और गोला बनाकर उसी प्यालेमें तीन प्रहर सुखाकर पीस डाले और नौसादर और सिंगरफ तीन ३ टंक डालकर नींबूके रसमें घोटे जब सूखजाय तब उसी प्यालेमें रख खट्टे अनारके रससे प्यालेको भरकर ढक दे व नित्य खट्टे अनारका रस थोडा २ डाला करे एक महीनेतक लोहा रसमें डूबा रहे इससे लोहा पारेके समान पतला हो जाता है पश्चात् पतला अभ्रक सत्व और पतला पतला लोहा दोनोंको तीन २ टंक मिलाकर घोटे और पीछे तीन टंक शुद्ध पारा मिलाकर घोटे जब भली भांति मिलजाय तब एक घरियामें भरकर अग्निमें धरे और बंकनालसे खूब धोंके तो पारा बद्ध होजायगा यह क्रम मिथ्या नहीं है इसी रीतिसे पारा बद्ध होताहै और सोना चांदी आदिभी इसीसे बन जाते हैं इसमें संदेह नहीं जो लोह और गंधक दोनों द्रवीभूतोंको पारेमें मिलावे जिसमें अभ्रक सत्व जीर्ण कियाहै सो अति उत्तम है उसमें इस प्रकारके पारेको एक टंक लेकर एक सर पिघलेहुए रांगेमें डाले वह एक टंक रांगा एक सेर पिघलेहुए तांबेमें डाले वह एक टंक तांबा एक सेर पिघ-

लेहुए कांसेमें डाले वह एक टंक कांसा एक सेर पिघलेहुए शीशेमें डाले तो चांदी होवे और एक तोला तांबेमें डाले तो सुवर्ण होवे इस पारेका नाम सिद्ध सूत है ॥

तुत्थबद्धगुटिका ।

शुद्धपारदमादाय लोहस्थाल्यां विनिक्षिपेत् ।
चुल्लिकोपरि संस्थाप्य ततोऽग्निं ज्वालयेत्क्रमात् ॥
पारदाद्द्विगुणं तुत्थं द्विगुणं तस्माच्च सैन्धवम् ।
प्रस्थत्रयं जलं दत्त्वा निम्बकाष्ठेन घर्षयेत् ॥
प्रहरार्धेन समुत्तार्य क्षालयेदुष्णवारिणा ।
ततो वस्त्रे विनिष्पीड्य गुटिका कारयेद्बुधः ॥
दिनैके विजयाद्रावे स्थापयित्वा प्रयत्नतः ।
कार्पासबीजजे क्वाथे दोलायन्त्रे विपाचयेत् ॥
दुग्धपात्रे विनिक्षिप्य पीत्वा दुग्धं सुखी भवेत् ॥ २९५ ॥

शुद्ध पारदको लेकर लोहेके वर्त्तनमें डालकर अंगीठीपर रखकर क्रमसे आग जलावे । पारदसे द्विगुण तुत्थ और तुत्थसे द्विगुण नमक और तीन प्रस्थ जल लेकर उसमें डालकर नीमकी लकडीसे घिसावे । आधे पहरके अनन्तर उतारकर पारदको गरम पानीसे धोवे । फिर कपडेमें निचोडकर उसकी गोली बनाले । एक दिन विजया (भंग) के रसमें प्रयत्नसे रखकर कपासके बीजोंके क्वाथमें दोलायन्त्रमें रखकर पकावे । ऐसी गुटिकाको दूधमें रखकर पीनेसे मनुष्य सुखी होता है ॥ २९५ ॥

अनेनैव विधानेन शोरकेनापि जायते ।
गुटिका पययोगेन बलपुष्टिविवर्धनी ॥ २९६ ॥

एक पल शुद्ध पारद, दो पल शोरा तथा चार पल नमकको तीन सेर पानीमें मिलाकर पूर्वोक्त प्रकारसे बनाई हुई गुटिका दूधमें डालकर पीनेसे बलकारक तथा शरीरको पुष्ट करनेवाली होती है ॥ २९६ ॥

बद्ध पारदलक्षणम् ।

हेम्ना वा रजते न वा सहि परो ध्मातो व्रजत्येकता-
मक्षीणो निचलो गुरुश्च गुटिकाकारोतिदीर्घोज्ज्वलः ।

चूर्णत्वं पटुवत्प्रयाति निहितो घृष्टेन मुंचेन्मलं
निर्गन्धो द्रवति क्षणात्सहिमतो बद्धाभिधानो रसः ॥ २९७ ॥

जो सुवर्ण या चांदीके संग अग्निमें रखके धोंकनेसे एकमें मिलजाय क्षीण न हो निश्चल और भारी हो गुटिकाके आकारका अथवा लंबा हो जाय स्वच्छ और पीसनेसे नमकके समान चूर्ण होजाय घिसनेसे मलको न छोडे गन्धरहित शीघ्रही पतला होजाय उसे बद्धरस जानना ॥ २९७ ॥

बद्धपारदस्य परीक्षा ।

रसेन बद्धतां यातस्त्रोटयत्येव निश्चितम् ।
घनं लोहमयीं स्थूलां स्पर्शमात्रेण लीलया ॥ २९८ ॥
मृतमुत्थापयेन्मर्त्यं चक्षुसोः क्षेपमात्रतः ।
निहन्ति सकलान् रोगान् घ्रातः शाघ्र न संशयः ॥ २९९ ॥

बद्ध हुआ पारा पैरोंकी बडी भारी लोहेकी बेडियोंकोभी स्पर्शमात्रसे तोड डाले और इसको घिसकर मुर्देकी आंखमें लगावे तो वह जी उठे और इसके सूंघनेसेही सब रोग दूर होवें ॥ २९८ ॥ २९९ ॥

अब सिद्ध गुटिका लिखते हैं ।

अथ खगेश्वरीगुटिका ।

तुत्थकं मूषया कृत्वा स्थापयेन्मध्यपारदम् ।
अर्कसेहुण्डधत्तूररसद्रोणं च पूरयेत् ॥ ३०० ॥
सप्ताहमौषधैर्भाव्यं सिंहनेत्र्या घनप्रिया ।
पश्चात्तदम्लयोगेन गोलकं शुक्रसन्निभम् ॥ ३०१ ॥
धत्तूरविषतैलेन ज्योतिस्मत्यास्तथैव च ।
गुंजा च लांगली चैव भल्लातांकोलकौ तथा ॥ ३०२ ॥
ऐतेषां तैलयोगेन गुटिकां विषमध्यगाम् ।
दोलायंत्रे पचेदेवं चतुःषष्टिदिनानि च ॥
प्रत्येकमौषधी तैले राक्षसी गुटिकोत्तमा ॥ ३०३ ॥

नीलेथोथेकी मूषामें पारेको स्थापित करे आक, धतूरा, थूहर इन तीनोंका रस चार २ सेर लेकर कडाहीमें पूर्वोक्त रीतिसे पारेको रख ऊपरसे सब रसको

डाल तेज आँचदेवे, जब रस गाढा होजाय तब कडाहीको उतारकर पारेको पानीसे अच्छी तरह धोडाले जब पारा गाढा होजावे तब खरलमें डाल सात दिन सिंहनेत्रीके रसमें और सात दिन घनाप्रियाके रसमें घोटे, पश्चात् नींबूके रसमें घोटे फिर एक विषकी बडी और मोटी गांठ लेकर उसमें गढा इस प्रकारका बनावे कि आधा सेर पारा भरजाय उसमें पारा भरकर विषके टुकडेसे मुख बंद कर कच्चे सूतसे विषकी गांठ लपेटकर धतूरेके तेलमें दोलायंत्रकी विधिसे लटकायदेवे और नीचे मन्दाग्नि देवे विषकी डली कराहीसे दोअंगुल ऊँची उठी रहे इस प्रकार ६४ दिनतक आंच देवे जैसे २ तेल घटता जावे तैसे २ और डालता जावे इसी प्रकार मालकांगनी, घूंघची, करियारी, भिलावाँ और अंकोल इन प्रत्येकके तेलमें चौंसठ २ दिन पकावे तो राक्षसी पारा (बहुत भूँखा) होवे ॥ ३००-३०३ ॥

स्वर्णादिद्रवलोहानि भक्षयेन्नात्र संशयः ।
तारमध्ये यदा क्षिप्तं स्वर्णं भवति निश्चितम् ॥ ३०४ ॥
वंगमध्ये यदा क्षिप्तं रजतं जायते ध्रुवम् ।
मुखे क्षिप्तमदृश्यं च नानाकौतुककारकम् ॥ ३०५ ॥
खेचरीजायते सिद्धिर्मनःपवनवेगकृत् ।
जरामृत्युं हरेद्रोगं विषं स्थावरजंगमम् ॥ ३०६ ॥
नानया सदृशं क्वापि त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
नाम्ना खगेश्वरी नाम गुटिका सिद्धिसाधनम् ॥ ३०७ ॥

यह पारा सुवर्णआदि पतली धातुओंको खाजावे चांदीमें डालनेसे सुवर्ण हो और रांगाको चांदी करे मुखमें रखनेसे मनुष्य अदृश्य होवे आकाशमें विचरनेवाला हो एक क्षणमें हजार कोस पहुंचे बुढापा मृत्यु और विषका नाशन करे इसके समान और गुटिका नहीं है ॥ ३०४-३०७ ॥

ब्रह्माण्डगुटिका।

नागवल्लीदलद्रावैः सप्ताहं सिद्धपारदम् ।
मर्दयेत्तप्तखल्वेन कांजिकैः क्षालयेत्ततः ॥ ३०८ ॥
तं गर्भे विषकंदस्य क्षिपेन्निष्कं चतुष्टयम् ।
विषेण तन्मुखं रुद्ध्वा स्थूलवाराहमांसजे ॥ ३०९ ॥
पिण्डवर्गे निरुद्ध्याथ मुखं सूत्रेण बंधयेत् ।
संध्याकाले बलिं दत्त्वा कुक्कुटं मदिरायुतम् ॥ ३१० ॥

ततश्चुल्ल्यां लोहपात्रे तैले धत्तूरसम्भवे ।
विपचेत्तु ततः पश्चात्तत्पिण्डं मन्दवह्निना ॥ ३११ ॥
सन्ध्यामारभ्य यत्नेन यावत्सूर्योदयो भवेत् ।
विषमुष्टिपलं चैकं गुंजाविजययोरपि ॥ ३१२ ॥
तैलं जातीफलस्यापि वीरतालस्य चोत्तमम् ।
पाचयेत्पूर्वयोगेन चान्यथा नैव सिद्ध्यति ॥ ३१३ ॥
तत उद्धृत्य गुटिकां क्षीरमध्ये विनिःक्षिपेत् ।
तत्क्षीरं शोषयेत्क्षिप्रमेतत्प्रत्ययकारकम् ॥ ३१४ ॥
दृष्ट्वा तां धारयेद्वक्त्रे वीर्यस्तम्भकरी नृणाम् ।
क्षीरं पीत्वा रमेद्रामां कामाकुलकलायुताम् ॥ ३१५ ॥
ब्रह्माण्डगुटिका ख्याता शोषयन्ती महोदधिम् ॥ ३१६ ॥

सिद्ध पारेको नागरपानके रससे सात दिन तप्तखल्वमें खरल करे फिर उसको कांजीसे धोवे, विषके रससे ७ दिन घोटके कांजीके पानीसे धोवे, फिर चार टंक पारेको विषकी गांठके भीतर भरकर उसका मुख विषकी डलीसे बंद करदेवे, फिर उस विषकी डलीको पुष्ट सूकरके मांसमें रखकर गोला बनावे, गोलेका मुख सूतसे लपेट कर बंद करदेवे फिर सायंकालमें भैरवदेव और काली देवीको कुक्कुट और मदिराकी बलि देकर एक बडे भारी लोहेके पात्रको चूल्हेपर चढाय उसमें साठ पैसे भर काले धतूरेका तेल छोडदेवे और उसमें पूर्वोक्त मांसके गोलेको छोडदेवे फिर मन्दाग्निसे सायंकालसे प्रातःकाल तक औटावे इसी प्रकार घूंघची, भांग, जायफल, बीरताल इन प्रत्येकका रस दो २ पैसे भर लेकर अलग २ औटावे पीछे पारेको निकालकर दूधमें डाले तो यह क्षणमात्रमें उस दूधको सुखावे तब जाने कि गुटका सिद्ध होगया फिर इस गुटकेको दूध पीकर मुखमें रक्खे तो सैकडों स्त्रियोंको भोगे जब गुटकेको मुखसे निकाले तब स्खलित हो यह ब्रह्माण्डगुटिका समुद्रको भी शोषण करती है। फिर घी दूध पचानेकी क्या कथा है ? ॥ ३०८-३१६ ॥

खेचरीगुटिका ।

रसटंकत्रयं शुद्धं कृष्णधत्तूरबीजजे ।
तैले पलद्वये खल्वे मर्दयेद्दिनसप्तकम् ॥ ३१७ ॥

तावद्यावद्बद्धवेत्तस्य जलौकारूपमुत्तमम् ।
माषान्नपिष्टके नादौ दृढसूत्रेण वेष्टयेत् ॥ ३१८ ॥
कनिष्ठिकासमं गाढं शोषयेद्रविणा च तम् ।
दशप्रस्थमिते तैले सर्षपस्य विपाचयेत् ॥ ३१९ ॥
तल्लक्षया भवेद्यावत्तावत्सोऽप्यवतार्यते ।
स्निग्धच्छाये निवेश्याथ शनैः सिद्धां च तां नयेत् ॥ ३२० ॥
दुग्धेनापूर्यते कुम्भः शुभस्तत्र निवेशयेत् ।
विशुष्येत्सकलं दुग्धं गुटिकां धारयेत्ततः ॥ ३२१ ॥
वर्करस्य मुखे पश्चाद्गुटिकां तां प्रयच्छयेत् ।
प्रविष्टा तंमुखस्यांतर्ज्वलमानेव सा गता ॥ ३२२ ॥
व्याकुलं कुरुते कामं देहस्वास्थ्यं न तस्य वै ।
उदरस्था यदा भूयस्तदासौ म्रियते ध्रुवम् ॥ ३२३ ॥
गुटिकायाः परीक्षां च कृत्वैवं बुद्धिमान्नरः ।
स्वकीयवदने पश्चाद्धृत्वा शुभ्रां निरामयः ॥ ३२४ ॥
योजनानां शतं गच्छेदप्रयासेन साधकः ।
स्त्रीणां शतं तथा गच्छेच्छुक्रस्तम्भकरी मता ॥ ३२५ ॥
मुखस्थायामहो तस्यां प्रहारो नैव जायते ।
अन्यान्बहुविधान्रोगान्मुखस्था हंत्यशंसयम् ॥ ३२६ ॥
जिह्वाताल्लुगता ये च कंठशालूककादयः ।
उपजिह्वाऽधिजिह्वाद्या द्विजिह्वापि सुदारुणः ॥ ३२७ ॥
सप्तषष्टिमितारोगा हृद्रोगाः पीनसादयः ।
सर्वांस्तान्नाशयत्येषा गुटिका नाम खेचरी ॥ ३२८ ॥

शुद्ध पारद तीन टंक लेकर काले धतूरेके बीजोंके तैलमें सात दिन तप्तखल्वमें घोंटे, जब तक वह जोंक समान बद्ध न होजाय तब तक खरल करता जाय। फिर उस बद्धपारदको उरदकी पिट्ठीसे लपेटकर ऊपरसे कच्चा सूत एक अंगुली समान उसपर लपेट देवे फिर धूपमें सुखाकर दश सेर सरसोंके तैलमें पकावे जब

सब तेल जलकर सूखने पर आवे तब उतारले फिर इस सिद्ध पारदको धीरेसे निकालकर सुन्दर छायामें रखदे, फिर एक उत्तम घडा दूधसे भरकर उस सूत पीटी समेत पारदको उस घडेमें रखदे जब सब दूध सूख जावे तो इस पारदको बकरेके मुखमें रखकर परीक्षा करे बकरेके मुखमें यह तीक्ष्ण अग्निके समान प्रतीत होगा और बकरा कामदेवसे अत्यन्त व्याकुल होजायगा यहां तक कि इसको अपने शरीरकी सुध भी नहीं रहेगी यदि वह जलौकारूप गोली बकरेके पेटमें चलीजाय तो वह अवश्य मरजायगा । जब इस प्रकार परीक्षा करले तो बुद्धिमान् मनुष्य अपने मुखमें रक्खे तो वह साधक मनुष्य विनाही परिश्रमके सौ योजन गमन करसक्ताहै । और यह मुखमें रखनेमात्रसे अनेक रोगोंको दूर करे जिह्वाके रोग, तालूरोग, कण्ठरोग, उपजिह्वा, अधिजिह्व आदि ६७ रोगोंका नाश करे तथा हृद्रोग पीनस आदि अनेक रोगोंका नाश करे, इसको खेचरी गुटिका कहते हैं यह गुटिका मुखमें धारण करनेकी ही है, खानेकी नहीं ॥ ३१७--३२८ ॥

यथा पृष्ठस्त्वया पुत्र रसराजस्य संस्कृतिः ।
बन्धनान्ता तथा ह्यस्मिन्नध्याये संप्रकीर्त्तिता ॥ ३२९ ॥

हे पुत्र ! जिस प्रकार तुमने पूंछा उसी प्रकार बद्ध होने पर्यन्तके संस्कार इस अध्यायमें कथन करदिये हैं ॥ ३२९ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादप्रणीते रसेन्द्रपुराणे पारदसंस्कारवर्णनो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथातः पारदमारणं नाम चतुर्थाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब हम पारदमारण नामक चौथे अध्यायका वर्णन करते हैं ।

शिष्य उवाच ।

भगवन् यत्त्वया प्रोक्ता रसराजस्य संस्कृतिः ।
तच्छ्रुत्वा मारणोत्कण्ठा जाता तत्कथ्यतामतः ॥ १ ॥

शिष्य कहने लगा हे भगवन् ! रसराज (पारद) की संस्कारप्रणाली सुनकर मुझे पारद मारणविधि सीखनेकी उत्कंठा हुई है इसलिये कृपा करके मारणकी विधि भी कथन कीजिये ॥ १ ॥

गुरुरुवाच ।

अथ ते संप्रवक्ष्यामि रसराजस्य मारणम् ।
भक्षणादिविधिं तात ह्यध्यायान्ते तथैव च ॥ २ ॥

गुरु कहनेलगे–हे पुत्र ! पारदके मारणकी विधि कथन करताहूं और ऐसेही इस अध्यायके अन्तमें भक्षणादि विधि भी सुनाई जावेगी सो तुम सुनो ॥ २ ॥

अथ मारणप्रकरणम् ।

कृष्णधत्तूरतैलेन सूतो मर्द्यो नियामकः ।
दिनैकं तं पचेद्यंत्रे कच्छपाख्ये न संशयः ॥
मृतः सूतो भवेत्सद्यो सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ ३ ॥

सिद्ध किये पारेमें काले धतूरेका रस डालकर १ दिन घोटे और एक दिन नियामक[1] औषधियोंके रसमें घोटे फिर गोला बना उसे कच्छपयंत्रमें रखकर आँच दे तो पारा निस्सन्देह मरे इस क्रियासे सबीज और निर्बीज पारा मरताहै॥ ३॥

पारदमारणस्य द्वितीयविधिः ।

व्यालस्य गरले सूतं मर्दयेत्सप्तवासरान् ।
शम्भुनालंकृते यंत्रे तन्मध्ये तद्रसं क्षिपेत् ॥ ४ ॥
वह्निं प्रज्वालयेद्गाढं दद्यादूर्ध्वे हिमं जलम् ।
यामद्वादशकं चैव सुसिद्धो जायते रसः ॥ ५ ॥
शुल्बे गुंजार्द्धकं देयं गुंजैकं पर्वतेष्वपि ।
देहे लोहे भवेत्सिद्धिः कामयेत्कामिनीशतम् ॥ ६ ॥
तिलमात्रं प्रदातव्यं सर्वरोगं नियच्छति ।
सेवनाज्जायते सिद्धिरायुर्वृद्धिश्चिरंतनी ॥ ७ ॥

सांपके विषमें पारेको सात दिन घोटे पश्चात् श्रीशिवजीके कहे हुए जलयंत्रमें भरकर १२ प्रहरकी आंच देवे यंत्रके ऊपर ठंढा पानी भर देवे, जिससे ऊपर ठंढा रहे, इस प्रकार पारा सिद्ध होता है, यह आधा रत्ती तांबेको बेधता है और

---

1 नियामकऔषधि–बंदालका रस, सफेदआकका दूध, कबूतरकी बीट, गीली हंसपदीका रस, इन्द्रायनके फलका रस ये नियामक औषधि हैं ।

एक रत्ती पहाडको वेध सकता है, इस रससे देह तथा सुवर्णकी सिद्धि होती है इसको खानेवाला पुरुष सौ स्त्रियोंसे भोग करता है, इसकी तिलके बराबर मात्रा सर्व रोगोंको नाश कर आयुका बढाती है ॥ ४-७ ॥

पारदमारणस्य तृतीयविधिः ।

शुद्धसूतं समं सिन्धुं सोमलं च तदर्धकम् ।
सोमलार्द्धं विषं क्षिप्त्वा हिंगुस्फटिकगैरिकम् ॥ ८ ॥
सामुद्रलवणं चैव सर्वं तुल्यं विनिःक्षिपेत् ।
कांजिकेन पुटं दद्यात्पुटित्वा चेन्द्रवारुणीम् ॥ ९ ॥
स्थाल्यामुत्थापनं कृत्वा अग्निं यामाष्टकं ददेत् ।
स्वांगशात समुद्धृत्य भस्मसूतोर्द्धपातनम् ॥ १० ॥
योजयेत्सर्वरोगेषु कुर्याद्बहुतरां क्षुधाम् ।
पुष्टिदं वर्द्धते कामः योजयेद्रक्तिकाद्वयम् ॥ ११ ॥

शुद्ध पारा, सैंधव नमक सम भाग, संखिया आधा भाग, वच्छनाग विष चतुर्थांश, हिंग, फिटकरी, गेरू, सामुद्रनोन इन सबको समान भाग लेकर कांजीका एक पुट देवे पश्चात् इन्द्रायणका पुट देकर डमरूयंत्रमें रख आठ प्रहरकी अग्नि देवे शातल होनेपर ऊपरकी हांडीकी जमीहुई पारेकी भस्मको निकाललेवे और संपूर्ण रोगोंमें इसकी योजना करे यह भस्म क्षुधा पुष्टि और कामदेवको बढावे इसकी मात्रा दो रत्तीकी है ॥ ८--११ ॥

पारदमारणस्य चतुर्थविधिः ।

पञ्चाग्निवर्वरीलिंगीद्रवे घस्त्रानयं रसम् ।
मर्दितः पिष्टितो भस्म स्वर्णवर्णं प्रजायते ॥ १२ ॥

पारेको चित्रकके रसमें और वनतुलसी (ववई) के रसमें तथा शिवलिंगीके रसमें पांच २ दिन मर्दन करे और इन्हींके पुट देनेसे पारेकी सुवर्णके समान भस्म होजायगी ॥ १२ ॥

पञ्चमविधिः ।

कोरटकाम्बुसंयोगादातपे मर्दयेद्रसम् ।
म्रियतेऽसौ ततः सूतः सर्वकर्माणि साधयेत् ॥ १३ ॥

पियावांसेके रसमें पारेको घोटकर धूपमें रक्खे तो पारा मरे यह सम्पूर्ण कार्य सिद्ध करता है ॥ १३ ॥

षष्ठविधिः ।

भुजङ्गवल्लीनीरेण मर्दयेत्पारदं दृढम् ।
कर्कटीकन्दमूषायां संपुटस्थं पुटे गजे ॥ १४ ॥
भस्म तद्योगवाही स्यात्सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ १५ ॥

पारेको नागरबेलके रसमें दो पहर घोटे फिर ककडी कन्दमें भर और संपुट करके गजपुटमें फूंकदेवे तो पारेकी योगवाही भस्म होवे, इसको सब कामोंमें योजित करे ॥ १४ ॥ १५ ॥

सप्तमविधिः ।

काष्ठोदुम्बरिकादुग्धे रसं किंचिद्विमर्दयेत् ।
तद्दुग्धैर्भृष्टहिंगोश्च मूषायुग्मं प्रकल्पयेत् ॥ १६ ॥
क्षिप्त्वा तत्संपुटे सूतं तत्र मुद्रां प्रकल्पयेत् ।
धृत्वा तद्गोलकं प्राज्ञो मृन्मूषासंपुटेऽधिके ॥ १७ ॥
पचेद्गजपुटे तेन सूतको याति भस्मताम् ॥ १८ ॥

कठूमरके दूधमें पारेको खरल कर कठूमरके दूधसे भुनी हुई हींगके दो मूषा बनाकर उनके बीचमें रखके ऊपर मुद्रा करे, उसको बुद्धिमान् वैद्य माटीकी मूषाके भीतर रखके गजपुटमें पचावे तो पारा भस्म होवे ॥ १६-१८ ॥

अष्टमविधिः ।

वटक्षीरेण सूताभ्रौ मर्दयेत्प्रहरद्वयम् ।
पाचयेत्तेन काष्ठेन भस्मीभवति तद्रसः ॥ १९ ॥

पारे और अभ्रकको दो प्रहरतक बरगदके दूधमें खरल करे पश्चात् कडाहीमें चढाकर वटकी लकडीसे चलातारहे तो पारद भस्म होजाता है ॥ १९ ॥

नवमविधिः ।

कटुतुम्ब्युद्भवे कन्दगर्भे नारीपयःप्लुतः ।
सप्तधा म्रियते सूतः स्वेदितो गोमयाग्निना ॥ २० ॥

पारेको स्त्रीदूधमें घोटकर कडवीतुंबी और जमीकंदमें रख अग्नि देवे इस तरह सातबेर उपलोंकी अग्नि देनेसे पारा भस्म होता है ॥ २० ॥

दशमविधिः ।

अपामार्गस्य बीजानि तथैरंडं च चूर्णयेत् ।
तच्चूर्णं पारदे देयं मूषायामधरोत्तरम् ।
रुद्धा लघुपुटैः पश्चाच्चतुर्भिर्भस्मतां व्रजेत् ॥ २१ ॥

चिडचिडा और अण्डीके बीजोंको पीसकर मूषाके नीचे आधा चूर्ण रखके पारेको धरे ऊपर आधा चूर्ण रखके दूसरे मूषाको बंद करदेवे और चार दफे लघुपुट देवे तो पारा भस्म होजावे ॥ २१ ॥

एकादशविधिः ।

देवदाली हंसपादी यवतिक्ता पुनर्नवा ।
ताभिः सूतो विमृष्टव्यो म्रियते नात्र संशयः ॥ २२ ॥

देवदाली (वंदाल), हंसपदी, यवतिक्ता (शंखाहूली), पुनर्नवा (सांठी) इनमें खरल करनेसे पारदकी भस्म होजाती है ॥ २२ ॥

द्वादशविधिः ।

नवप्रसूतासुरभिजरायुमिश्रितो ध्रुवम् ।
अन्धमूषागतो ध्मातो म्रियते पारदस्तराम् ॥ २३ ॥

नवीन व्याई हुई गौकी जेरमें मिलाकर पारदको अंधमूषामें फूंकनेसे पारद मर जाता है ॥ २३ ॥

त्रयोदशविधिः ।

लज्जालुरससंपिष्टो रसो हिंग्वतसीरसौ ।
ध्मातः शनैः शनैः शुद्धो रसो भस्मत्वमाप्नुयात् ॥
मध्वाज्यटंकणोपेतो ध्मातः शुद्धो भवत्यपि ॥ २४ ॥

लाजवन्तीके रसमें पारद खरल करके हींग और अलसीके रसमें खूब घोट मूषामें रखकर धीरे २ धमावे ऐसे पारदकी शुद्ध भस्म हो जाती है तथा सहद सुहागा घी इनमें मिलाकर मूषामें रख धमानेसे शुद्ध होजाती है ॥ २४ ॥

चतुर्दशविधिः ।

लज्जालुरससंपिष्टो निबद्धः पारदो भवेत् ।
नष्टपिष्टो विधातव्यो मूषिकामध्यसंस्थितः ॥
तद्रसैश्च पुनः सम्यङ् म्रियते पुटपाकतः ॥ २५ ॥

लाजवन्तीके रसमें घोटनेसे पारद बद्ध हो जाता है जब वह बंध जावे फिर लाजवन्तीके रसमें पुटपाक करनेसे पारद मर जाताहै ॥ २५ ॥

पञ्चदशविधिः ।

विष्णुक्रान्ता ह्यपामार्गो ह्यहिफेनेन्द्रवारुणी ।
सर्वेषां च रसे पिष्टो म्रियते सूतकः पुटात् ॥ २६ ॥

विष्णुक्रान्ता, अपामार्ग (चिरचिरा), अफीम, इन्द्रायण इन सबके रसमें घोटकर पुट देनेसे पारद मर जाता है ॥ २६ ॥

मदनमुद्रा ।

औदुम्बरार्कवटदुग्धपलं तथा च लाक्षापलं पलचतुष्टयचुम्बकं च ।
संमर्द्य सम्यगलसीफलतैलयोगाच्छ्रीपारदस्य मरणे मदनाख्यमुद्रा ॥ २७ ॥

गूलर, आक, वट इन प्रत्येकका दूध दो दो पैसे भर चुम्बक पत्थरका चूरा आठ पैसे भर सबको अलसीके तेलमें घोटे तो यह मदनमुद्रा सिद्ध होताहै इससे सन्धिलेप करनेसे संधि दृढ होती है कितनाही गरम पानी हो परन्तु यह मुद्रा नहीं चूती और इसी मुद्राके प्रभावसे जलयंत्रद्वारा गन्धकका तेल निकाला जाताहै॥२७॥

मृतपारदस्य लक्षणम् ।

अतेजाश्च गुरुः शुभ्रो लोहहा चंचलो रसः ।
यदा नावर्त्तते वह्नौ नोर्ध्वं गच्छेत्तदा मृतः ॥ २८ ॥

जो पारा तेजहीन, हलका, सफेद, लोहेको मारनेवाला चंचलता रहित अग्निमें रखनेसे उछले नहीं और उडेभी नहीं उसको मरा हुआ पारा जानना चाहिये॥२८॥

रससेवाफलम् ।

बुद्धिः स्मृतिः प्रभा कान्तिर्बलश्चैव रसस्तथा ।
वर्द्धन्ते सर्व एवैते रससेवाविधौ नृणाम् ॥ २९ ॥

मनुष्योंकी बुद्धि, स्मृति, प्रभा, कान्ति, बल तथा रस पारेके सेवनसे बढते हैं ॥ २९ ॥

रससेवनविधिः ।

प्रातरेव पुरुषो विरेचनं तद्दिनोपवसनं विधाय च।
तत्परेऽहनि च पथ्यसेवनं तत्परेऽहनि रसेन्द्रसेवनम् ॥ ३० ॥

मनुष्य प्रातःकाल जुलाब लेकर उस दिन लंघन करे दूसरे दिन पथ्य सेवन करके तीसरे दिन पारेका भक्षण करे ॥ ३० ॥

पारदस्य मात्रा ।

वल्लमेकं नरेऽश्वे तु गद्याणैकं गजे द्वयम् ।
सर्वरोगविनाशार्थं भिषक् सूतं प्रयोजयेत् ॥ ३१ ॥

मनुष्यको मूर्च्छित अथवा मृत पारदकी मात्रा दो रत्तीकी है, घोडेको एक गद्याणक और हाथीको दो गद्याणक पारा सम्पूर्ण रोगोंके नाश करनेके लिये वैद्य योजना करे ॥ ३१ ॥

घनसत्त्वकान्तकाञ्चनशंकरतीक्ष्णादिसत्त्वजीर्णस्य ।
सूतस्य गुंजवृद्ध्या माषकमात्रं परा मात्रा ॥ ३२ ॥

जिस पारेमें अभ्रकसत्त्व जारण हुवाहो उसकी १ रत्तीकी मात्रा है कान्तलोह-जारित पारदकी मात्रा २ रत्तीकी सुवर्णजारित पारेकी ३ रत्तीकी चांदीजारितकी ४ रत्तीकी और तीक्ष्णजारित पारेकी ५ रत्ती मात्रा कही है, और बडी मात्रा १ मासेकी है जो मनुष्य एक फल तीक्ष्ण जारित पारेको सेवन करताहै उसकी लाख वर्षकी आयु होती है इसी तरह सुवर्ण जारित पारेके भक्षणसेभी लक्षायु होती है॥३२॥

पारदभस्मगुणः ।

यावन्न हरबीजं तु भक्षयेत्पारदं मृतम् ।
तावत्तस्य कुतो मुक्तिर्भोगाद्रोगाद्भवादपि ॥ ३३ ॥

जब तक मनुष्य शिवका बीज मरेहुए पारेका भक्षण नहीं करे तब तक क्या भोग, रोग और संसारसे मुक्ति हो सकती है कभी नहीं ॥ ३३ ॥

तथा च ।

मूर्च्छातो गदहृत्तथैव खगतिं धत्ते विबद्धोर्थदः
स्याद्भस्मामयकार्धकादिहरणं दृक्पुष्टिकान्तिप्रदम् ।
वृष्यं मृत्युविनाशनं बलकरं कान्ताजनानन्ददं
शार्दूलातुलसत्त्वकृच्च भुविजात्रोगान्निहन्ति स्फुटम् ॥ ३४ ॥

मूर्च्छित पारा रोगोंको हरताहै और आकाशमें चलनेकी शक्ति देताहै बद्ध पारा धन देताहै भस्म भया पारा बुढापेके रोगोंको नाश करताहै नेत्रोंमें ज्योति पुष्टि और कान्तिको देताहै । वृष्य है, मृत्युको नाश करता है, बलकारक स्त्रियोंको

आनन्ददायी सिंहके समान पराक्रम देनेवाला और पृथ्वीके सभी रोगोंको दूर करनेवाला है ॥ ३४ ॥

एको दोषो हि सूक्ष्मोऽस्ति भक्षिते भस्मसूतके ।
त्रिसप्ताहात्प्रियवटो कामान्धो जायते नरः ॥ ३५ ॥
नारीसंगाद्विनाऽवश्यमजीर्णं तस्य जायते ।
मैथुनाच्चलिते शुक्रे जायते प्राणसंशयः ॥ ३६ ॥

हे प्रिय शिष्य ! पारदभस्म भक्षणमें एक बडा भारी दोष है कि पारेको खातेही २१ दिनमें मनुष्य कामान्ध होजाताहै उस समय विना स्त्रीसंग किये तो पारेका अजीर्ण होता ह और यदि मैथुन करे तो वीर्य स्खलित होते ही मनुष्यके प्राण बचनेका सन्देह होजाता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

सूते गर्भनियोजितार्धकनके पादांशनागेऽथवा
पञ्चाङ्गुष्ठकशाल्मलीकृतमदश्लेष्मातबीजैस्तथा ।
तद्वत्तेजनिकोलकाख्यफलजैश्चूर्णं तिलं पत्रक
तप्ते खल्वतले निधाय मृदिते जाता जलूका वरा ॥ ३७ ॥

शुद्ध पारेमें आधा भाग सोना अथवा चौथा भाग डालना, पीछे दोनोंको तप्तखल्वमें डाल रेंडीकी मींग, सेमलके फूल या गोंद लसोडेके बीज, मालकांगनी, शीतलचीनी इनका चूर्ण, तमालपत्र, तिल यह हरएक चीज पारेसे सोलहवां हिस्सा डालकर खूब घोटके जलूका बनाना ॥ ३७ ॥

सैषा स्यात्कपिकच्छुरोमपटले चन्द्रावतीतैलके
चन्द्रेटंकटकामपिप्पलिजले स्विन्ना भवेत्तेजिनी ।
तप्ते खल्वतले विमर्द्य विधिवद्यत्नाद्वटी या कृता
सा स्त्रीणां मददर्पनाशनकरी ख्याता जलूका वरा ॥ ३८ ॥

अथवा पूर्वोक्तरीतिसे तैयार की हुई जलूकामें पारेसे सोलहवां भाग कौंचके रोम डालके १ दिन बावचीके तेलमें मलकर १ दिन कपूरके पानीसे खरल करै, फिर गोली बनाकर भोजपत्रमें बाँधे फिर १ पात्रमें सुहागा और पीपलके पानीमें उसे लटकाके २ घंटेतक भापदेवे, पीछे तप्तखल्वमें डाल और मलके जैसी चाहै जलूका बनावे यह जलूका स्त्रियोंके मानको मर्दन करती है ॥ ३८ ॥

बाल्ये चाष्टाङ्गुला योज्या यौवने च दशाङ्गुला ।
द्वादशैव प्रगल्भानां जलौका त्रिविधा मता ॥ ३९ ॥

यह जलूका सोलह वर्षकी स्त्रीके लिये ८ अंगुल लंबी, जवानके लिये १० अंगुल लंबी और स्थिर अवस्थावालीके लिये १२ अंगुलकी काममें आती है ॥ ३९ ॥

धृत्वा सूतमुखे पात्रे मेषीक्षीरं प्रदापयेत् ।
स्थापयेदातपे तीव्रे वासराण्येकविंशतिम् ॥ ४० ॥

किसी हँडियामें पारा रखकर भेंडीका दूध डाले फिर उसे तेज धूपमें रखकर सुखाडाले, इस प्रकार २१ बार करे तो पारा जम जाता है, फिर उसकी बत्तीसी बनाकर अभीष्ट प्रयोग करे ॥ ४० ॥

द्वितीयात्र मया प्रोक्ता जलौका द्रावणे हिता ॥
पुरुषाणां स्थिता मूर्ध्नि द्रावयेद्वनिताकुलम् ॥ ४१ ॥

दूसरी जलूका जो मैंने कही है वह स्त्रियोंको स्खलित करनेमें हित है। मनुष्य यदि उसे अपने शिरमें बांधले तो बहुत स्त्रियोंको स्खलित कर सकताहै ॥४१॥

मुनिपत्ररसश्चैव शाल्मलीवृन्तवारि च ।
जातीमूलस्य तोयं च शिंशपातोयसंयुतम् ॥ ४२ ॥
श्लेष्मातकफलं चैव त्रिफलाचूर्णमेव च ।
कोकिलाक्षस्य चूर्णं च पारदं मर्दयेद्बुधः ॥ ४३ ॥
श्लेष्मातकफलं चैव त्रिफलाचूर्णमेव च ।
कोकिलाक्षस्य चूर्णश्च पारदं मर्दयेद्बुधः ॥ ४४ ॥
जलूका जायते दिव्या सभाजनमनोहरा ।
सा योज्या कामकाले तु कामयेत्कामिनी स्वयम् ॥ ४५ ॥

पारेको खरलमें डालकर अगस्त्यके पत्तोंका रस सेमरके फूलकी डंडीका रस, चमेलीकी जडका रस, सीमलका रस, लसोढाके फल, हरडे, बहेडे और आँवलोंका चूर्ण, तालमखानेका चूर्ण इन प्रत्येककी एक एक दिन पारेमेंभी भाव देवे तो स्त्रियोंको मन हरनेवाली जलूका बनजाती है स्त्रीसंगके समय उसके उपयोगसे स्त्री स्वयं पुरुषको चाहती है ॥ ४२–४५ ॥

त्रिफलाभृंगमहौषधमधुसर्पिश्छागदुग्धगोमूत्रे ।
नागं सप्त निषिक्तं समरसजारितं जलूका स्यात् ॥ ४६ ॥

त्रिफला, भाँगरा, सोंठ, शहद, घी, बकरीका दूध और गोमूत्रमें एक एक बार आगमें पिघलाया हुआ शीशा और उसीके बराबर पारा जारण करनेसे जलूका बन जाती है ॥ ४६ ॥

भानुस्वरदिनसंख्याप्रमाणसूतं गृहीतदीनारम् ।
अङ्कोलराजवृक्षककन्यारसतश्च शोधनं कुर्यात् ॥ ४७ ॥

२६ भाग पारेमें १ भाग सोना मिलाकर अंकोल, अमलतास और ग्वारपाठेसे शोधन करना चाहिये ॥ ४७ ॥

शशिलेखावरवर्णीसकोकिलापामार्गकनकानाम् ।
चर्णैः सहैकविंशति दिनानि सम्मर्दयेत्सम्यक् ॥ ४८ ॥
निशायाः काञ्जिकं यषं दत्त्वा योनौ प्रवेशयेत् ।
बालमध्यमवृद्धासु योज्या विज्ञाय तत्क्रमात् ॥ ४९ ॥
नीरसानामपि नृणां याषा स्यात्सङ्गमोत्सुका ॥ ५० ॥

बावची, रोचना, तालमखाना, चिरचिरा और धतूरेके बीज इन सबका समभाग चूर्ण डालकर हलदी और काँजीसे २१ दिन तक भलीभाँति मर्दन करे पीछे पूर्वोक्त प्रमाणकी जलूका बना, और उसे सुखाकर बाल वृद्धा इत्यादि स्त्रियोंमें यथेच्छ उपयोग करनेसे नीरस मनुष्योंके लियेभी स्त्रियां कामातुर होजाती हैं ॥ ४८–५० ॥

रसभागं चतुष्कं च वङ्गभागं च पञ्चमम् ।
सुरसारससंयुक्त टंकणेन समन्वितम् ॥ ५१ ॥
त्रिदिनं मर्दयित्वा च गोलकं तं रसोद्भवम् ।
लिंगाग्राद्योनिनिक्षिप्तं यावदायुर्वशंकरम् ॥ ५२ ॥

चार भाग पारा पाँचवां भाग वंग और सुहागेको तुलसीके रसमें ३ दिन घोटकर गोली बनालेवे, फिर उसे बत्तीसी बनाकर लिंगके मुखमें रखकर स्त्रीसे संभोगकरे तो जबतक स्त्री जीवे वशमें रहै ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

कर्पूरसूरणसभृङ्गसमेघनादैर्नागं निषिच्य तु मिथो वलयेद्रसेन । लिङ्गास्थितेन वलयेन नितम्बिनीमां स्वामी भवत्यनुदिनं सतुजीवहेतुः ॥५३॥

कपूर जमीकंद भांगरा और चौलाईके रसमें सीसेको बुझाकर फिर पारा मिलाकर छल्ला बनाले इसे इन्द्रीपर धारण करनेसे स्त्रियें वशमें होती हैं ॥ ५३ ॥

टङ्कणपिप्पलिकाभिः सूरणकर्पूरमातुलुङ्गरसैः ।
कृत्वा स्वलिङ्गलेपं योनिं विद्रावयेत्स्त्रीणाम् ॥ ५४ ॥

सुहागा मघपीपल जमीकन्द और कपूरको विजौरे नींबूके रसमें घिसकर इन्द्रीपर लेप करनेसे स्त्री योनी शीघ्र स्खलित होती है ॥ ५४ ॥

अग्न्यावर्तितनागे हरबीजं निक्षिपेत्ततो द्विगुणम् ।
मुनिकनकनागवल्लीरसेन सिंच्याच्च तन्मध्यम् ॥ ५५ ॥

सीसेको अग्निद्वारा गलाकर अगस्त धतूरा और नागरबेलके रसमें बुझावे फिर उससे दूना पारा मिलावे ॥ ५५ ॥

तक्रेण मर्दयित्वा तीक्ष्णेन मदनवलयं कुर्यात् ।
रतिसमये वनितानां रतिगर्वविनाशनं कुरुते ॥ ५६ ॥

तथा थोडा विष डाल तक्रमें मर्दन कर छल्ला बनाले रति समय इसके धारण करनेसे प्रौढाकाभी मद मर्दन होता है ॥ ५६ ॥

व्याघ्रीबृहतीफलरससूरणकन्दं च चणकपत्राम्लम् ।
कपिकच्छुवज्रवल्लीपिप्पलिकामाम्लिकचूर्णम् ॥ ५७ ॥
अग्न्यावर्तितनागं नववारं मर्दयेदिमैर्द्रव्यैः ।
स्मरवलयं कृत्वैतद्वनितानां द्रावणं कुरुते ॥ ५८ ॥

सीसेको गला २ कर कटेरी बडी कटेरीके फल जमीकंद चनाखार कौंच बीज हडसंघारी मघपीपल और इमलीका चूर्ण इनके काढेमें ९ वार बुझाकर छल्ला बनाले इसके धारण करनेसे कामिनी शीघ्र स्खलित होती है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

दोषशमनोपायः ।

युवत्या जल्पनं कार्यं तावत्तन्मैथुनं त्यजेत् ।
लघुतां शेफसो ज्ञात्वा पश्चाद्गच्छन् सुखी भवेत् ॥ ५९ ॥

इससे जबतक पारा पच न जाय तब तक स्त्रियोंसे मधुर २ वार्त्तालाप करता रहे, पर मैथुन न करे पारद भक्षणके पूर्व लिंग लघु होता है, और पश्चात् दीर्घ होजाता है । जब फिर लिंग लघु हो तब मैथुन करे, इससे पारा जीर्ण होने पर जो स्त्रीसंग करै तो सुखी होता है ॥ ५९ ॥

पारदभस्मानुपानम् ।

पिप्पली मरिचं शुंठी भारंगी मधुना सह ।
कासश्वासप्रशमनो शूलस्य च विनाशनः ॥ ६० ॥
हरिद्राशर्करायुक्तो रुधिरस्य विकारनुत् ।
त्र्यूषणं त्रिफला वासा कामलापाण्डुरोगजित् ॥ ६१ ॥
शिलाजतु तथैला च शितोपलसमन्वितः ।
मूत्रकृच्छ्रे प्रशस्तोऽयं सत्यं नागार्जुनोदितम् ॥ ६२ ॥
लवंगकुसुमं पत्री हिंगुलं अकलंकरा ।
पिप्पली विजया चैव समान्येतानि कारयेत् ॥ ६३ ॥
कर्पूरादहिफेनानि नागाद्भागार्द्धकं क्षिपेत् ।
सर्वमेकत्र संमर्द्य धातुवृद्धौ प्रदापयेत् ॥ ६४ ॥
सौवर्चलं लवंगं च भूनिंबं च हरीतकी ।
अस्यानुपानयोगेन सर्वज्वरविनाशनः ॥ ६५ ॥
तथा रेचकरः प्रोक्तः सौवर्चलफलत्रिकम् ।
लवंग कुसुमं चैव दरदेन च संयुतम् ॥ ६६ ॥
तांबूलेन समं भक्ष्यं धातुवृद्धिकरो मतः ।
विजयादीप्यसंयुक्तो वमनस्य विकारनुत् ॥ ६७ ॥
सौवर्चलं हरिद्रा च विजया दीप्यकं तथा ।
अनेनोदरपीडां च सद्योजातां विनाशयेत् ॥ ६८ ॥
चतुर्वल्लीपलाशस्य बीजं च द्विगुणो गुडः ।
अस्यानुपानयोगेन कृमिदोषविनाशनः ॥ ६९ ॥
अहिफेनं लवंगं च दरदं विजया तथा ।
अस्यानुपानतः सद्यः सर्वातीसारनाशनः ॥ ७० ॥
सौवर्चलेन दीप्येन अग्निमांद्यहरः परः ।
क्षुद्बोधजनकश्चैव सिद्धनागेश्वरोदितम् ॥ ७१ ॥
गुडूचीसत्त्वयोगेन सर्वपुष्टिकरः स्मृतः ॥ ७२ ॥

पीपल, मिर्च, सोंठ, भारंगी इनके चूर्ण और सहदके साथ पारदभस्म खानेसे खांसी, श्वासको शमन करती है और शूलको नाश करती है। हलदी और शक्कर युक्त खूनके विकारोंको नाश करती है। सोंठ, मिर्च, पीपल, आँवला, हर्र, बहेडा और अडूसाके साथ कामला और पाण्डुरोगको जीतती है। शिलाजीत, इलायची और शक्करके साथ खानेसे मूत्रकृच्छ्र रोगको निश्चय दूर करती है ऐसा सिद्ध नागार्जुन मुनिने कहा है। लौंग, केशर, तालीसपत्र, हिंगुल, अकरकरा, पीपल, भांग समान भाग लेवे कपूर, अफीम और नाग (शीसा) की भस्म आधा भाग इन सबको एकात्रित चूर्ण करके पारद भस्मके साथ धातुवोंकी वृद्धि करनेके लिये खावे। सोचर (काला) नमक, लौंग, चिरायता और हर्रके अनुपानके साथ सम्पूर्ण ज्वरोंको नाश करे। सोचर नमक, त्रिफला, लौंग, केशर और गिंगरफके संग रेचन (जुल्लाब) करे। पानके साथ तथा विदारीकंदके चूर्णके साथ धातु वृद्धि करे। भांग और अजवायनके साथ वमनको नाश करे। सोचर नमक, हलदी, भांग और अजवायनके चूर्णके संग सेवन करनेसे पेटके दर्दको जल्दी नाश करे। चतुर्वेल्ली, पलाश (ढाक) बीज इनसे दूना गुड लेवे इस अनुपानके योगसे कृमिदोषको नाश करे। अफीम, लौंग, शिंगरफ और भांग इसके साथ सम्पूर्ण अतीसारोंको शीघ्र नाश करे। सोचरनमक और अजवायनके साथ अग्निमांद्यको नाश करके भूंख बढावे ऐसा सिद्ध नागेश्वरने कहा है। गिलोयके सत्त्वके साथ पारदभस्म सेवन करनेसे पुष्टिकारक होती है ॥ ६०-७२ ॥

तथाच ।

पित्ते शर्करयामलेन च समं वाते च कृष्णायुतं
दद्याच्छ्लेष्मणि शृंगवेरसहितं जंबीरनीरैर्ज्वरे ॥
रक्तोत्थे मधुना प्रवाहरुधिरे स्यान्मेघनादोदके
दद्याच्चाथ कृतातिसारविकृतौ रोगारिसंज्ञं रसम् ॥ ७३ ॥

पित्तरोगोंमें पारेकी भस्म शक्कर और आमलोंके चूर्ण सहित देवे। वायुविकारोंमें पीपलके साथ कफरोगोंमें, अदरखयुक्त ज्वरमें जंबीरीके रसमें देवे। रुधिरविकारोंमें सहतके साथ रुधिरस्राव, प्रवाहिका, प्रदर, अतीसारमें चौलाईके रसके साथ पारेकी भस्म देना चाहिये ॥ ७३ ॥

पारदभक्षणकालः ।

अर्चयित्वा यथाशक्ति देवगोब्राह्मणानपि ।
पर्णखण्डे घृतं सूतमद्याद्योग्याऽनुपानतः ॥ ७४ ॥

प्रभाते भक्षयेत्सूतं पथ्यं यामद्वयाधिके ।
नोल्लंघयेत् त्रियामं तु मध्याह्ने नैव सर्वथा ॥ ७५ ॥
ताम्बूलान्तर्गते सूते विड्बंधो नैव जायते ।
सकणं साऽमृतं भुक्त्वा मलबंधं हरेन्निशि ॥ ७६ ॥

यथाशक्ति देवता, गौ, ब्राह्मणोंका पूजन करके पानपर रखकर खावे अथवा पानमें रखकर यथोचित अनुपानसे खावे । पारेकी भस्म (चन्द्रोदय अथवा रसकपूर) को प्रातःकालमें खावे और दो पहर पश्चात् पथ्य करे परन्तु तीन प्रहर न व्यतीत होने देवे और मध्याह्नमें हमेशा भोजन न करे पानके साथ पारद भस्म सेवन करनेसे मलबन्ध नहीं होता अथवा विष और पीपलके साथ रात्रिमें सेवन करनेसे मलबंध नहीं होता ॥ ७४-७६ ॥

पारदे पथ्यानि ।

हितं मुद्गान्नदुग्धाज्यशाल्यन्नानि सुनिश्चितम् ।
शाके पुनर्नवा चैव मेघनादश्च वास्तुकम् ॥ ७७ ॥
सैंधवं नागरं मुस्ता मूलकानि च भक्षयेत् ।
कुंकुमागुरुलेपं च तथा कर्पूरभक्षणम् ॥ ७८ ॥
गोधूमजीर्णशाल्यन्नं गव्यं क्षीरं घृतं दधि ।
हंसोदकं मुद्गयूषं रसेन्द्रे च हितं विदुः ॥ ७९ ॥
अभ्यंगं गालितैः क्षोमैस्तैलैर्नारायणादिभिः ।
अबलाशीततोयं च मस्तकोपरि सेचयेत् ॥ ८० ॥
तृष्णायां नारिकेलाम्बु मुद्गयूषं सशर्करम् ।
द्राक्षादाडिमखर्जूरं रुच्यमन्यत्फलं भजेत् ॥ ८१ ॥

मूंग, दूध, घी, चावल शाकोंमें गदापुरैना, चौलाई, बथुवा, सैंधवनमक, सोंठ, नागरमोथा, मूली भक्षण करना चाहिये केशर और अगरका लेप तथा कपूरका भक्षण करे गेहूं पुराने चांवल गौका दूध, घी, दही, हंसोदक (तप्तं तप्तांशुकिरणैः शीतं शीतांशुरश्मिभिः । समन्तादप्यहोरात्रमगस्त्योदयनिर्विषम् ॥ १ ॥

---

(१) पारदभस्मनिपथ्यम् ॥ घृतसैंधवधान्याकजीरकार्द्रकसंस्कृतम् । तण्डुलीयकधान्याकपटोलाऽलंबुषादिकम् ॥ गोधूमजीर्णशाल्यन्नं गव्यं क्षीरं घृतं दधि । हंसोदकं मुद्गरसः पथ्यवर्गः समासतः ॥

शुचि हंसोदकं नाम निर्मलं मलजिज्जलम् । नाभिष्यान्दि न वा रूक्षं पानादिष्वमृतोपमम् ॥ २ ॥ दिनभर सूर्यकी किरणोंसे गर्म हुआ रातभर चन्द्रमाकी किरणोंसे ठंढा हुआ अगस्त्यके उदय होजानेसे विषदोषरहित शुद्ध धूल तिनका आदि न रहनेसे स्वच्छ, विष्टम्भनाशक, हलका, रूक्षतारहित पीने रसोई बनाने आदि कामोंमें अमृतके तुल्य यह हंसोदक समझना चाहिये) मूंगका यूष, नारायण इत्यादि तैलोंको रेशमी कपडेमें छानकर देहमें मालिश करना स्त्रीद्वारा मस्तकको शीतल जलसे तर कराना चाहिये प्यास लगनेपर चीनी मिलाकर नारियलका जल अथवा सक्करयुक्त मुंगका यूष पीना चाहिये । दाख, अनार, खजूर और रुचिकर दूसरे फलोंका भक्षण करे उपरोक्त पदार्थोंका सेवन पारदभस्मके भक्षणमें पथ्य और हितकारक हैं ॥ ७७-८१ ॥

पारदभक्षणे[1] वर्ज्यपदार्थाः ।

अतियानं चासनं च अतिनिद्रातिजागरम् ।
स्त्रीणामतिप्रसंगं च ध्यानं चापि विवर्जयेत् ॥ ८२ ॥
अतिहर्षं चातिकोपं चातिदुःखमतिस्पृहाम् ।
शुष्कवादं जलक्रीडामतिचिंतां विवर्जयेत् ॥ ८३ ॥
कूष्माण्डं कर्कटीं चैव कारवेल्लं कलिंगकम् ॥
कुसुंभिका च कर्कोटी कदली काकमाचिका ॥ ८४ ॥
ककाराष्टकमेताद्धि वर्जयेद्रसभक्षकः ॥
कुलत्थानतसीतैलं तिलान्माषान्मसूरकान् ॥ ८५ ॥

---

१ पारदभस्मनिकुपथ्यम्—बृहती बिल्वकूष्माण्डं वेत्राग्रं कारवेल्लकम् ॥ माषं मसूरं निष्पावं कुलित्थं सर्षपं तिलम् ॥ १ ॥ लंघनोद्वर्त्तनस्नानताम्रचूडसुरासवान् ॥ आनूपमांसं धान्याम्लं भोजनं कदलीदले ॥ २ ॥ कांस्ये च गुरु विष्टंभि तीक्ष्णोष्णां च भृशं त्यजेत् ॥ ३ ॥ कंटारीफलकांजिकं च कमठस्तैलं तथा राजिकां निंबूकं कतकं कलिंगकफलं कूष्माण्डकं कर्कटी ॥ केकी कुक्कुटकारवेल्लकफलं कर्कोटिकायाः फलं वृंताकं च कपित्थकं खलु गणः प्रोक्तः ककारादिकः ॥ ४ ॥ देवीशास्त्रोदितः सोऽयं ककारादि गणो मतः ॥ शास्त्रान्तरविनिर्दिष्टः कथ्यतेऽन्यप्रकारतः ॥ ५ ॥ कंगुः कंदुककोलकुक्कुटकलक्रोडाः कुलत्थास्तथा कंटारीकटुतैलकृष्णगलकः कूर्मः कलायः कणा ॥ कर्कारु च कटिल्लकं च कतकं कर्कोटकं कर्कटी कालीकांजिकमेषकादिकगणः श्रीकृष्णदेवोदितः ॥ ६ ॥ यस्मिन् रसे च कण्ठोक्त्या ककारादिर्निषेधितः ॥ तत्र तत्र निषेद्धव्यं तदौचित्यमतोऽन्यतः ॥ ७ ॥

कपोतान् कांजिकं चैव तक्रभक्तं च वर्जयेत् ।
कट्वम्लतीक्ष्णलवणं पित्तलं पैत्तिकं च यत् ॥ ८६ ॥
बदरं नारिकेरं च सहकारं सुवर्चलम् ।
वार्त्ताकं राजिकां चैव वातलानि विवर्जयेत् ॥ ८७ ॥
निंदास्त्रीदेवतानां च पापाचरणकं त्यजेत् ॥ ८८ ॥

बहुत चलना, बहुत बैठना, बहुत सोना और अत्यन्त जागरण करना अत्यन्त स्त्रीप्रसंग करना (अर्थात् मैथुन करना तौ सर्वथा वर्जितही है परन्तु स्त्रियोंका अधिक दर्शन और अधिक वार्त्तालापभी न करना चाहिये) और अत्यन्त स्त्रियोंका ध्यान करना वर्जित है बहुत खुशी अत्यन्त क्रोध अतिदुःख और इच्छा इनको न करे व्यर्थ झगडा जलक्रीडा और अतिचिन्ता इनको छोड देवे कुम्हडा, ककडी, करेला, कलींदा, कुसुम, कर्कोटी, केला और मकोय इस ककाराष्टकको पारद भक्षण करनेवाला छोडदेवे । कुलथी, अलसीका तेल, तिल, उडद, मसूर, कबूतरका मांस, कांजी और दहीभात वर्जित है । कटु, खट्टी, तीक्ष्ण, नमकीन अधिक अथवा न्यून पित्त उत्पन्न करनेवाले पदार्थ बेर, नारियल, आम, हुरहुर, बैंगन, राई, और वायुको उत्पन्न करनेवाले पदार्थ वर्जित हैं । स्त्री और देवताओंकी निंदा पापकर्म इतनी बातोंको पारदको सेवन करनेवाला छोड देवे ॥ ८२--८८ ॥

अजीर्णोत्थरोगचिकित्सा ।

एवं चैव महान् व्याधी रसेऽजीर्णे तु भक्षयेत् ।
कर्षकं स्वर्जिकाक्षारं कारवेल्लरसप्लुतम् ॥
सौवर्चलरसोपेतं रसेऽजीर्णे पिबेद्बुधः ॥ ८९ ॥

पारेके अजीर्ण होनेपर बडे २ रोग उत्पन्न होते हैं उनके शान्त करनेके लिये सज्जीखारको करेले और हुरहुरके रसमें मिलाकर खावे ॥ ८९ ॥

रसपाकलक्षणम् ।

अनुलोमगतिर्वायुः स्वस्थता सुमनस्कता ।
क्षुत्तृष्णेन्द्रियवैमल्यं रसपाकस्य लक्षणम् ॥ ९० ॥

भलीभांति अपानवायुका चलना चित्तमें स्वस्थता प्रसन्नमन भूँख और प्यास यथार्थ लगना इन्द्रियोंका निर्मल होना । ये लक्षण पारेके पचनेके हैं ॥ ९० ॥

अशुद्धपारदभक्षणे दोषाः ।

संस्कारहीनं खलु सूतराजं यः सेवते तस्य करोति बाधाम् ।
देहस्य नाशं विदधाति नूनं कुष्ठादिरोगाञ्जनयेन्नराणाम् ॥ ९१ ॥

जो मनुष्य अशुद्ध पारेका सेवन करते हैं उनको अनेकभांतिके विकार होत हैं। देहका नाश और कुष्ठ तथा रुधिरविकार आदि अनेकरोग उत्पन्न होते हैं ॥ ९१ ॥

विकारा यदि जायन्ते पारदान्मलसंयुतात् ।
सेवेत गन्धकं धीमान् पाचितं विधिपूर्वकम् ॥ ९२ ॥

मलयुक्त (अशुद्ध) पारेको भक्षण करनेसे यदि विकार उत्पन्न होवें तो विधिपूर्वक आवलासार गन्धकको शुद्ध करके सेवन करे। अथवा दाख, पेठा, तुलसी, सौंफ, लौंग, तज और नागकेशर सम भाग सबके बराबर गंधक लेकर एकमें मिलाकर इसको दो पहर तक देहमें मर्दन करे ठंढे पानीसे स्नान करे इस प्रकार तीन दिन करनेसे अशुद्ध पारदके विकार दूर होजाते हैं अथवा करेलेकी जडका काढा पीना चाहिये अथवा नागरबेल भांगरा और तुलसीका रस तथा बकरीका दूध प्रत्येक सेर २ भर लेकर सबको मिलाकर सर्वदेहमें मालिस करके ठंढे पानीसे स्नान करे तीन दिन इस प्रकार करनेसे पारदविकार दूर होजाते हैं ॥ ९२ ॥

रसकर्पूरदोषाः ।

सेवितोऽविधिना कुष्ठं संधिवातं कफाधिकम् ।
रसकर्पूरकं कुर्यात्तस्माद्यत्नेन सेवयेत् ॥ ९३ ॥

विधिरहित रसकपूरको सेवन करनेसे कोढ संधिवात (गठिया) और कफवृद्धि करताहै इसलिये इसको अच्छे यत्नसे भक्षण करना चाहिये ॥ ९३ ॥

अथास्य शान्तिः ।

महिषीशकृतो नीरं धान्यकं वा सितायुतम् ।
पिबेन्नीरेण मुक्तः स्याद्रसकर्पूरजैर्गदैः ॥ ९४ ॥

भैंसके गोबरका पानी अथवा सक्करयुक्त धनियांको जलके साथ पीनेसे रसकपूरसे उत्पन्न होनेवाले रोग छूट जाते हैं ॥ ९४ ॥

विकारशान्तिः ।

रससिन्दूरमशुद्धाद्रसाद्धिजातं पारदवद्रोगान् ।
कुर्याच्चेत्तच्छांत्यै घृतमरिचरजः पिबेत्सप्तदिनम् ॥ ९५ ॥

अशुद्ध पारेसे बना हुवा रससिन्दूर तथा (रसकपूर और चन्द्रोदय आदि) पारेके समान रोगोंको उत्पन्न करते हैं उनकी शान्तिके लिये काली मिर्चका चूर्ण घीमें मिलाकर सात दिनतक पीवे ॥ ९५ ॥

पारदविकारउपायाः ।

उद्गारे सति दध्यन्नं कृष्णमीनं सजीकरम् ।
अभ्यंगमनिलक्षोभे तैलैर्नारायणादिभिः ॥ ९६ ॥
अरतौ शीततोयेन मस्तकोपरि सेचनम् ।
तृष्णायां नारिकेराम्बु मुद्गयूषं सशर्करम् ॥ ९७ ॥
रसवीर्यविवृद्ध्यर्थं दधिक्षीरेक्षुशर्कराः ।
शीतोपचारमन्यच्च रसत्यागविधौ पुनः ॥
भक्षयेद् बृहता बिल्वं सकृत्साधारणो विधिः ॥ ९८ ॥

पारदभस्म भक्षण करनेसे यदि उद्गार (डकार) का उपद्रव होवे तो दही भात खावे अथवा जीरा मिलाकर काले रंगकी मछली खावे । यदि देहमें वायुके विकार दीखें तो नारायण आदि तैलोंकी मालिश करे । मस्तकपीडा हो तो शीतलजलसे मस्तकका सेचन करे, तृषाका उपद्रव बढे तो नारिकेलका जल पीवे अथवा खांड मिलाकर मूंगका यूष पीवे । पारदभस्म सेवन करनेवालेको दही, दूध, गन्ना, खांड इनका सेवन वीर्य और बलकी वृद्धिके लिय करना चाहिये औरभी शीतल चिकने उपचार करे । जो पारद भक्षण छोडदेवे तो पहले कटेली और बेलका यूष बनाकर अथवा ऐसेही खावे यह साधारण विधि है ॥ ९६-९८॥

एवंते रसराजस्य मारणादिक्रिया मया ।
प्रोक्ता चतुर्थे ह्यध्याये तथा पथ्यादयोऽपि च ॥९९ ॥

इस प्रकार पारदके मारणकी क्रिया इस चौथे अध्यायमें हमने तुम्हारे सन्मुख कहाहै और वैसेही पथ्यादिकोंका वर्णनभी करदिया है ॥ ९९ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे पारदमारणक्रियावर्णनो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातो हिंगुलूत्पत्तिशोधनमारणादिवर्णनं नाम पंचमाध्याय व्याख्यास्यामः ।

अब हम हिंगलू (सिंगरफ) की उत्पत्ति शोधन मारण आदि प्रकारके वर्णनवाला पांचवां अध्याय कथन करेंगे ॥

शिष्य उवाच ।

श्रुता हि रसराजस्य मारणांताः क्रिया शुभाः ।
किमस्ति हिंगलू विप्र कुत्र चोत्पद्यते कथम् ॥
संस्कारादि क्रियास्तस्य कृपया कथय प्रभो ॥ १ ॥

शिष्य बोला हे प्रभो रसराज (पारद) की मारण पर्यन्त शुभक्रिया सुनी है अब कृपाकरके हिंगलूके विषयमें कहिये हिंगलू क्या वस्तु है और कहांसे किस तरह उत्पन्न होता है तथा उसके संस्कार आदिका कथन कीजिये ॥ १ ॥

हिंगुलनिर्माणविधिः ।

अशुद्धं पारदं भागं चतुर्भागं तु गंधकम् ।
उभौ क्षिप्त्वा लोहपात्रे क्षणं मृद्वग्निना पचेत् ॥ २ ॥
कृत्वाथ खंडशः सम्यक् काचकूप्यां निरुद्ध्य च ।
वस्त्रमृत्तिकया सम्यक्काचकूपीं प्रलेपयेत् ॥ ३ ॥
सर्वतोऽङ्गुलिमानेन च्छायाशुष्कं तु कारयेत् ।
वालुकायंत्रगर्भे तु दिनं मृद्वग्निना पचेत् ॥ ४ ॥
क्रमवृद्ध्यग्निना पश्चात्पचेद्दिवसपंचकम् ।
सप्ताहं तु समुद्धृत्य हिंगुलः स्यान्मनोहरः ॥ ५ ॥

कच्चा पारा १ भाग गन्धक ४ भाग दोनोंको लोहेके बासनमें रखके मन्दाग्नि देवे उन दोनोंके एक होनेपर ठंढा करके देखे जो बंधगया हो तो उसके टुकडे कर आतशी शीशीमें भरे उसके ऊपर १ अंगुल मोटी कपरमिट्टी करके सुखावे और वालुकायंत्रमें १ दिन मन्द अग्निसे पकावे फिर क्रमसे मंद मध्यम और तीक्ष्ण अग्निसे पांच दिन पचावे पीछे सातवें दिन मनोहर हिंगुल (शिंगरफ) निकाल लेवे ॥ २–५ ॥

हिंगुलभेदाः ।

दरदस्त्रिविधः प्रोक्तश्चमारः शुकतुंडकः ।
हंसपादस्तृतीयः स्याद्गुणवानुत्तरोत्तरम् ॥ ६ ॥

हिंगुल ३ प्रकारका है चमार शुकतुंड और हंसपाद इनमें क्रमसे एकसे दूसरेमें अधिक गुण हैं ॥ ६ ॥

हिंगुललक्षणानि ।

चमारः शुक्लवर्णः स्यात्सपीतः शुकतुंडकः ।
जपाकुसुमसंकाशो हंसपादो महोत्तमः ॥
श्वेतरेखाप्रवालाभो हंसपाद इति स्मृतः ॥ ७ ॥

चमार नामका हिंगुल शुक्ल (श्योनाक अथवा लोधके) वर्णका होता है शुकतुंड पीले रंगका होता है । दुपहरियाके फूलके समान लाल वर्णवाला हंसपाद हिंगुल होता है यह परमोत्तम होता है । सफेद रेखावाले मूंगा समान रंगवालेको हंसपाद कहते हैं ॥ ७ ॥

हिंगुलभेदाः ।

सप्तधा चंद्रिकाद्रावैर्लकुचस्यांबुनापि वा ।
हिंगुलो भावितः शुष्को निर्दोषो जायते खलु ॥ ८ ॥

अदरख अथवा बडहलके रसकी सात भावना देकर सुखानेसे शिंगरफ अवश्य निर्दोष होजाता है ॥ ८ ॥

द्वितीयविधिः ।

मेषीक्षीरेण दरदमम्लवर्गैश्च भावितम् ।
सप्तवारं प्रयत्नेन शुद्धिमायाति निश्चितम् ॥ ९ ॥

भेडीका दूध और अम्लवर्गकी सात २ वार भावना देकर सुखानेसे शिंगरफ निःसन्देह शुद्ध होता है ॥ ९ ॥

हिंगुलमारणम् ।

चणकाभानि खंडानि दरदस्य तु कारयेत् ।
शीशजे चायसे पात्रे स्थाप्यं तच्च धमेद्दृढम् ॥ १० ॥
जातायामुष्णतायां वै ततो द्रव्याणि सेचयेत् ।
द्रव्यतुल्यं द्रवद्रव्यमेषास्याद्वह्निभावना ॥ ११ ॥

मेषीक्षीरेण दशधा दशधा क्षीरिजार्कजैः ।
दीप्तवर्गेण दशधा विरेकार्कैश्च पंचधा ॥ १२ ॥
पंचधा दुग्धवर्गेण अंतरास्तस्य भावनाः ।
अयं शतार्कदरदो नानारोगविनाशकः ॥
क्षुद्बोधस्य करा नित्यं योगवाही निगद्यते ॥ १३ ॥

चनेके समान हिंगुलकी डलीके टुकडे कर सीसेके अथवा लोहेके बरतनमें रखके आगके ऊपर गरम करे बरतन लाल होनेपर हिंगुलके बराबर भेडका दूध डालकर जलावे इस प्रकार दशवार जारण करे । इसी प्रकार दशवार खिरनी और आकका दूध जारण करे । दीप्तिवर्गमें दशवार पीलूके अर्कमें पांचवार दुग्धवर्गमें पांचवार इस प्रकार वारंवार भावना देवे यह शतार्क हिंगुल कहाता है अनेक प्रकारके रोगोंको नाश करता है क्षुधाको बढाता है यह योगवाही कहाजाता है ॥ १०-१३ ॥

द्वितीयविधिः ।

वल्लमात्रं तालपिष्टं शरावे स्थापयेत्ततः ।
तस्मिन्कर्षसमं देयं शकलं दरदस्य च ॥ १४ ॥
पूरयेदार्द्रकरसं द्विगुणं तत्र बुद्धिमान् ।
पुष्पाणि शाणमात्राणि परितः स्थापयेत्ततः ॥ १५ ॥
शरावसंपुटे दत्त्वा चुल्ल्यां मध्याग्निना पचेत् ।
घटिकात्रयपर्यन्तं तत उत्तार्य पेषयेत् ॥ १६ ॥
तांबूले गुंजमात्रं तु देयं पुष्टिकरं परम् ।
पांडौ क्षये च शूले च सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ १७ ॥

तीन रत्ती हरितालको पीसकर सकोरेमें रक्खे उसमें १ तोले हिंगुलके टुकडे रखदेवे । बुद्धिमान् वैद्य दो तोले अदरखका रस सकोरेमें डालकर चार मासे लौंग डाले सरावसंपुट करके चूल्हेपर चढाकर ३ घडी तक मध्यम अग्नि देवे पश्चात् उतारकर १ रत्ती नागरबेलपानके साथ भक्षण करे यह अत्यन्त पुष्टिकारक है पाण्डु, क्षय, शूल तथा सर्वरोगोंमें योजना करने योग्य है ॥ १४-१७ ॥

मतान्तरेण शोधनम् ।

जयंत्याः स्वरसे मूत्रे कांजिके निंबुनीरके ।
दोलायंत्रे त्र्यहं पाच्यं दरदादि विशुध्यति ॥ १८ ॥

हिंगुल, हरिताल, खपरिया, सोनामाखी, रूपामाखी, मनसिल, अभ्रक, नीलाथोथा, सुहागा, सुरमा, विष, शिलाजीत, शंख, गूगुल, मुरदाशंख आदि पदार्थोंमें जिसको शुद्ध करनाहो उसे वस्त्रमें बांध दोलायंत्रमें रखके जयंतीके रसमें ३ दिन गोमूत्रमें तीन दिन कांजी और नींबूके रसमें तीन दिन स्वेदन करे तो हिंगुल और पूर्वोक्त हरितालादि शुद्ध होवें इसी प्रकार डलीका शिंगरफ शुद्ध होताहै भेडीके दूधमें शुद्ध किया हुवा शिंगरफ पीसा जाताहै । बहुत स्थानोंमें पीसाहुवा सिंगरफ काममें नहीं आता केवल डलीदार काममें आताहै इसीसे इस प्रकार शोधन करना श्रेष्ठ है ॥ १८ ॥

हिंगुलपाक तृतीयविधिः ।

हिंगुलं द्विपलं शुद्धं बद्ध्वा वस्त्रे चतुर्गुण ।
षट् पलं कंदरीमूलं सम्यक् संकुट्य बुद्धिमान् ॥ १९ ॥
ततस्तस्मिन्परिक्षिप्य गोलमेकं प्रकल्पयेत् ।
एरण्डपत्रैराच्छाद्य मृदा संलेपयेद् दृढम् ॥ २० ॥
पचेत्तद्गोलकं विद्वानुपलैर्दशभिस्ततः ।
एवं सम्यक् प्रकारेण पुटान्येकोत्तरं शतम् ॥ २१ ॥
दत्त्वा प्रतिदिनं खादेल्लवंगस्यानुपानतः ।
गुंजामात्रं गुणैस्तुल्यं प्रागुक्तस्य रसस्य च ॥ २२ ॥

शुद्ध शिंगरफकी डली ८ तोले लेकर चार परतके वस्त्रमें बांधे २४ तोले प्याजको कूटकर उसकी लुगदीके बीचमें वस्त्रमें बंधे हुए सिंगरफको रखके गोला बनावे एरंडके पत्रोंसे लपेट मिट्टी लगाकर धूपमें सुखाकर फिर पांच उपले नीचे और पांच ऊपर रखके अग्निसे फूंकदेवे ठंढा होजानेपर गोलेको निकाल लेवे इस प्रकार १०१ बार आंच देवे प्रति आंचमें चौवीस २ तोले प्याजकी लुगदी भीतर शिंगरफको रखके वस्त्रमें बांध अंडके पत्ते लपेटकर दो अंगुल मोटी मिट्टी चढावे और न तो बहुत मोटे न बहुत पतले दश उपलोंकी आंच देवे इस प्रकारका परिपक्व सिंगरफ चन्द्रोदयसेभी अधिक गुणदायक होताहै कामाग्नि और क्षुधाको बढाताहै । इसमेंसे १ तोला सिंगरफ और १ तोला लौंगको एकसाथ पीसकर दो रत्तीकी मात्रा प्रातःकाल सेवन करे तो पूर्वोक्त चन्द्रोदयके समान गुण करता है ॥ १९-२२ ॥

चतुर्थविधिः ।

पलं गृहीत्वा दरदं वंदालरसभावयेत् ।
हंसपद्यां वटक्काथे सप्तसप्तदिने पृथक् ॥ २३ ॥
अर्कदुग्धं च सप्ताहं वज्रीदुग्धे तथैव च ।
वर्त्तुलाश्च वटीः कुर्यात्कर्षकर्षप्रमाणतः ॥ २४ ॥
संशोष्य संपुटे दत्त्वा द्विप्रस्थे गोमये पचेत् ।
लवंगैर्भक्षयेद्युक्त्या क्षुधापुष्टिविवृद्धये ॥ २५ ॥

४ पैसेभर शिंगरफकी डलीको ७ दिन हंसपदीके रसमें घोटे तथा वंदाल और वटजटाके रसमें आक और थूहरके दूधमें भी सात २ दिन घोटकर पैसे २ भरकी टिकिया बनाय घाममें सुखाकर शरावसंपुटमें बंद करके २ सेर उपलोंसें फूँक देवे तो एकही आंचमें हिंगुल भस्म होजायगा दो रत्ती लौंगके चूर्णके साथ खानेसे क्षुधा बढती है और शरीर पुष्ट होता है ॥ २३-२५ ॥

पञ्चमविधिः ।

तं हिंगुलं सुतनुखण्डपटे दृढे वै कंचूकमध्यगतमुत्तमकं निवेश्य ।
पश्चात्पलांडुदृढकंदगतोंतरस्थं मृत्स्नाविलेप्यरविशुष्कमनातपेवै ॥ २६ ॥
दत्त्वा वनोपलदशक्रममग्निदग्धं तं शीतलं हि विदधीत दिने द्वितीये ।
एवं विधैः शतपुटैश्च पुटांतकाले वृंताकमध्यगतमेव शतं पुटानि ॥ २७ ॥
देयानि तानि सदृशं शतधा क्रमेण वृंदावनीफलभवांतरमध्यभागे ।
देयं च तच्छतपुटं क्रम एष उक्तः पक्वाम्लवेतसफलोदरवैक्रमेण ॥ २८ ॥
गुंजामितार्द्धमितये सहिपर्णखण्डेभक्ष्यं नरो श्वसनकासज्वरादिकानाम् ।
हन्याद्यथामृगपतिःकरिणेव कामं रामासु वश्यकरदिव्यशरीरकारि॥ २९॥

हिंगुलको पतले मजबूत कपडेके टुकडेमें बाँधे, उस पोटलीके चूकाकी लुगुदीमें गोला बनाकर प्याजके मध्यमें रखदेवै फिर कपरमिट्टी कर घाममें सुखालेवे और सन्ध्यासमय दश आरने उपलोंकी हलकी आँच दे, इस भाँति प्याजकी १ सौ आँच देकर बैंगनेके बीचमें उसे रख दे, फिर इन्द्रायनमें १०० पुट देवे, और पकें अमलबेतके भी सौ पुट देवे, इससे हिंगुल भस्म होजाता है । पीछे नागरबेल पानके साथ आधी रत्ती सेवन करनेसे श्वास, खाँसी ज्वर इत्यादि रोग ऐसे नष्ट होते हैं जैसे सिंहके सामने हाथी । इसको सेवन करनेवाला स्त्रियोंको

अत्यन्त प्रिय लगता है और उसका शरीर दिव्य होजाता है, धारणा शक्तिको बढाता है, यह रसायन है वैद्य अपनी बुद्धिकी कल्पनासे अनुपान भेद अनेक रोगोंपर इसे देसकते हैं ॥ २६-२९ ॥

दरदगुणाः।

तिक्तं कषायं कटुहिंगुलं स्यान्नेत्रामयघ्नं कफपित्तहारि।
हृल्लासकुष्ठज्वरकामलाश्च प्लीहामवातौ च गदं निहंति ॥ ३० ॥

हिंगुल तीखा, कषैला तथा कडुवा है नेत्ररोग, कफ तथा पित्तको नाश करता है। हल्लास, कुष्ठ, ज्वर, कामला, प्लीहा, और आमवातको दूर करता है ॥३०॥

अन्यगुणाः।

तिक्तोष्णं हिंगुलं दिव्यं रसगंधसमुद्भवम्।
मेहकुष्ठहरं रुच्य बल्यं मेधाग्निवर्द्धनम् ॥ ३१ ॥
हिङ्गुलः सर्वदोषघ्नो दीपनोऽतिरसायनः।
सर्वरोगहरो वृष्यो जारणे लोहमारणे ॥ ३२ ॥
एतस्मादाहृतः सूतो जीर्णगन्धसमो गुणैः ॥ ३३ ॥

पारा तथा गन्धकसे उत्पन्न शिंगरफ तीखा, गरम तथा दिव्य है प्रमेह और कुष्ठको दूर करता है रुचिकारक है बलदायक है बुद्धि और अग्निकी वृद्धि करता है। हिंगुल सर्व दोषोंको नाश करता है जठराग्निको अत्यन्त प्रज्वलित करता है रसायन है सर्वरोगहारक है वीर्यवर्द्धक है जारणमें तथा लोह मारणमें परमोत्तम है इससे निकाले हुए पारेक गुण गंधकसे जीर्ण किये पारेके समान हैं ॥३१-३३॥

अशुद्धहिंगुलदोषाः।

अशुद्धोदरदः कुर्यात्कुष्ठं क्लैब्यं क्लमं भ्रमम्।
मोहं च शोधयेत्तस्मात्सिद्धवैद्यस्तु हिंगुलम् ॥ ३४ ॥

अशुद्ध हिंगुल कुष्ठ, नामर्दी, क्लम, (विना परिश्रमके थकावट) भ्रम और मोह उत्पन्न करता है। इसलिये सद्वैद्य शिंगरफका शोधन अच्छी रीतिसे करे ॥ ३४ ॥

अस्य शान्तिः।

उत्पद्यते यदाव्याधिर्दरदस्य निषेवणात्।
तदा सूतकवत्सर्वाः कुर्याद्वैद्यः प्रतिक्रियाः ॥ ३५ ॥

जब अशुद्ध हिंगुल सेवन करनेसे रोग उत्पन्न होवे तो पारेके समान विकार-शान्ति वैद्य करे ॥ ३५ ॥

हिंगुलोर्विषये प्रोक्ता यथा पृष्टा त्वया क्रिया ।
सिन्दूरस्यापि ज्ञातव्यं यतः स सूतसम्भवः ॥ ३६ ॥

हिंगुलके विषयमें जैसे तुमने पूंछा वह सुनादिया अव तुमको सिंदूरके विषयमें भी जानना चाहिये क्योंकि सिन्दूर पारेसेही हुआ है ॥ ३६ ॥

सिन्दूरोत्पत्तिः ।

महागिरिषु चाल्पीयः पाषाणान्तःस्थिरो रसः ।
शुष्कः शोणः स निर्दिष्टो गिरिसिंदूरसंज्ञया ॥ ३७ ॥

हिमालय आदि वडे २ पर्वतोंके छोटे २ पत्थरके टुकडोंमें जो पारा सूर्यकी किरणोंसे सूखकर लाल हो जाता है उसे सिंदूर कहते हैं ॥ ३७ ॥

नामानि गुणाश्च ।

सिन्दूरं रक्तरेणुश्च नागगर्भं च सीसकम् ।
सीसोपधातुः सिंदूरं गुणैस्तत्सीसवन्मतम् ॥
सयागजप्रभावेण तस्याप्यन्ये गुणा स्मृताः ॥ ३८ ॥

सिन्दूर, रक्तरेणु, नागगर्भ और सीसक ये सीसेके नाम हैं यह सिन्दूर सीसेका उपधातु है शीशाके समानही गुणभी कहे गये हैं परन्तु संयोगप्रभावसे औरभी गुण कहे हैं ॥ ३८ ॥

औषधार्हसिन्दूरम् ।

सुरंगोऽग्निसहः सूक्ष्मः स्निग्धः स्वच्छो गुरुर्मृदुः ।
सुवर्णाकरजः शुद्धः सिंदूरा मंगलप्रदः ॥ ३९ ॥

सुन्दर वर्णवाला अग्नि सहनेवाला सूक्ष्म, चिकना, स्वच्छ, भारी, नरम सुवर्णकी खानसे उत्पन्न शुद्ध ऐसा सिन्दूर मंगल देनेवाला है ॥ ३९ ॥

शोधन ।

दुग्धाम्लयोगतस्तस्य विशुद्धिर्गदिता बुधैः ॥ ४० ॥

पण्डितोंने दूध और खटाईके योगसे सिन्दूरकी शुद्धि कही है ॥ ४० ॥

द्वितीयविधिः ।

सिंदूरं निंबुकद्रावैः पिष्ट्वा घर्मे विशोषयेत् ।
ततस्तंदुलतोयेन यथाभूतं विशुद्ध्यति ॥ ४१ ॥

सिन्दूरको नींबूके रसमें घोटकर घाममें सुखावे पश्चात् चावलोंके पानीसे घोटकर सुखानेसे सिन्दूर शुद्ध होता है ॥ ४१ ॥

सिन्दूरगुणाः ।

सिन्दूरमुष्णं वीसर्पकुष्ठकंडूविषापहम् ।
भग्नसंधानजननं व्रणशोधनरोपणम् ॥ ४२ ॥

सिन्दूर गरम है, विसर्प, कोढ तथा खाजको दूर करता है, टूटी हड्डियोंको जोडता घावको शुद्ध करता और भरता है ॥ ४२ ॥

किञ्च ।

सिंदूरमारणं तद्वत्सत्त्वपातस्तथैव च ।
भक्षणस्य प्रयोगोऽपि न दृष्टः कुत्रचिन्मया ॥ ४३ ॥

सिन्दूरका शोधन, सत निकलना, तथा खानेका प्रयोग किसी ग्रन्थमें नहीं देखा इससे हमभी नहीं लिखते ॥ ४३ ॥

अपिच ।

सिन्दूरस्य प्रयोगो हि न दृष्टः कुत्रचित्पृथक् ।
तस्माद्युक्तस्थले योज्य उपदेशो गुरोरिति ॥ ४४ ॥

किसी ग्रन्थमें सिन्दूरका अलग प्रयोग लिखा हुआ नहीं देखागया इससे मल्हम और लेप आदिमें जहां आवश्यकता पडे वहां गुरुके उपदेशके अनुसार काममें लाना चाहिये ॥ ४४ ॥

किञ्च ।

गिरिसिन्दूरकं यत्तु गिरौ पाषाणजं भवेत् ।
किञ्चिद्धिङ्गुलतुल्यं तद्रसबन्धे हि तद्विदुः ॥
धातुवादेऽपि तत्पूज्यं नेत्ररोगघ्नमीरितम् ॥ ४५ ॥

पर्वतोंमें पाषाणोंसे गिरिसिन्दूर उत्पन्न होताहै, कोई कोई गुण उसके हिंगुलके समान हैं, रसके बाँधनेमेंभी इसको लेना चाहिये और नेत्रसम्बन्धी अनेक रोगोंको यह अच्छा करता है ॥ ४५ ॥

तथाच ।

सिन्दूराच्चापि भवति पारदो हिङ्गुलोर्यथा ।
परं तन्न प्रयोक्तव्यं शोधनेन विना क्वचित् ॥ ४६ ॥

जैसा हिंगुलसे पारा निकलता है ऐसा सिन्दूरसेभी निकलता है, पर विना सब संस्कारोंसे शोधन किये हुए यह हानिकारक होता है इससे खानेकी औषधोंमें नहीं डालना चाहिये ॥ ४६ ॥

रोपणादिक्रियायां हि सिन्दूरं युज्यते सदा ।
न भोक्तव्यं कदाचिद्धि रसज्ञानविचक्षणैः ॥ ४७ ॥

रोपण मर्हम आदिमेंही सिन्दूर डाला जाता है, इससे बुद्धिमानोंको चाहिये कि खानेमें इसका कभी उपयोग न करें ॥ ४७ ॥

एवं ते दरदस्याथ सिन्दूरस्यापि वै क्रिया ।
पञ्चमेऽस्मिञ्शुभाध्याये विधिवत्परिकीर्तिता ॥ ४८ ॥

इस प्रकार सिंगरफ और सिन्दूर इन दोनोंकी क्रिया इस पांचवें अध्यायमें कही गयी ॥ ४८ ॥

इति श्रीरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे हिंगुल-सिन्दूरवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातो गन्धपाषाणवर्णनं नाम षष्ठाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम गन्धकवर्णन नामक छठे अध्यायका व्याख्यान करते हैं ।

शिष्य उवाच ।

गन्धकेन विना नाथ पारदस्य न संस्कृतिः ।
अतस्तस्य समुत्पत्तिः शोधनं चाति कथ्यताम् ॥ १ ॥

शिष्य बोला–हे स्वामी ! गन्धकके विना पारेका संस्कार नहीं हो सकता, इसलिये गन्धककी उत्पत्ति और शोधन कहिये ॥ १ ॥

गन्धकोत्पत्तिः । श्रीगुरुरुवाच ।

एकदा चोदधेस्तीरे सर्वरत्नविभूषिते ।
श्वेतद्वीपे सखीभिर्हि पार्वत्याः क्रीडने रजः ॥ २ ॥
प्रवृत्तं तेन वस्त्राणि रक्तवर्णानि जज्ञिरे ।
त्यक्त्वा तानि नवीनानि परिधाय गता ततः ॥ ३ ॥
सखीभिः सह कैलासं वस्त्राण्यब्धौ गतानि वै ।
वीचिविक्षोभवशतः क्षीराब्धौ प्रापुरञ्जसा ॥ ४ ॥

देवासुरैर्महावीर्यैर्मथ्यमाने महोदधौ ।
सुधया सह तद्रक्तं जातं गन्धकरूपकः ॥
जारणे मारणे योज्यो रसराजस्य तद्गुणः ॥ ५ ॥

गुरु बोले-किसी समय नाना प्रकारके रत्नोंसे शोभित श्वेतद्वीपमें सखियोंके साथ खेलतीहुई पार्वतीजीका रज प्रवृत्त हुआ। उससे उनके वस्त्र लाल होगये, उनको वहीं छोड दूसरे स्वच्छ वस्त्र पहन वह सहेलियोंके साथ वहांसे कैलासको चली गईं। और वह छोडे हुए वस्त्र समुद्रकी लहरियोंसे क्षीरसमुद्रमें चले गये। जब बडे पराक्रमी देव तथा दैत्योंसे समुद्र मथा गया तब वही रज अमृतके साथ गन्धकरूपसे उत्पन्न हुआ जो पारेके जारण और मारणमें काम आता है, क्योंकि उसमें पारेकेसे ही गुण हैं ॥ २-५ ॥

नामानि ।

गन्धको गन्धपाषाणः शुकपुच्छः सुगन्धकः ।
सौगन्धिकः शुल्बरिपुः पामारिर्नवनीतकः ॥ ६ ॥

संस्कृतमें गन्धकके नाम गन्धक, गन्धपाषाण, शुकपुच्छ, सुगन्धक, सौगन्धिक, शुल्बरिपु, पामारि तथा नवनीतक ॥ ६ ॥

शोधितगन्धकगुणाः ।

शुद्धो गन्धो हरेद्रोगान्कुष्ठमृत्युज्वरादिकान् ।
अग्निकारी महानुष्णो वीर्यवृद्धिं करोति हि ॥ ७ ॥

शोधा हुआ गन्धक कोढ, मरण, ज्वर आदि रोगोंको दूर करता है, अग्निको दीप्त करताहै, बहुत गर्म है, वीर्यको बढाता है ॥ ७ ॥

किञ्च ।

गन्धश्चातिरसायनः सुमधुरः पाके कटूष्णान्वितः
कण्डूकुष्ठविसर्पदर्पदलनोदीप्तानलः पाचनः ।
आमोन्मथशोधनो विषहरः सूतेतिवीर्यप्रदो
गौरीपुष्पभवस्तथा कृमिहरः स्वर्णाधिकं वीर्यकृत् ॥ ८ ॥

रसायनोंमें सबसे अधिक रसायन गन्धक है, मीठा, परिपाकमें कडुआ, गर्म है। खुजली, कोढ और विसर्पका नाश करताहै, जाठराग्निको बढाता है, पाचन है, आमको मथकर शुद्ध करता है, विषको अच्छा करताहै, पारेके योगसे बलकी

वृद्धि करता है, यह गन्धक पार्वतीजीके रजसे उत्पन्न हुआ है, पेटके कीडोंको दूर करता है, सुवर्णभस्मसे भी अधिक बलकारक है ॥ ८ ॥

गन्धकभेदाः ।

स चापि त्रिविधो वत्स शुकचञ्चुनिभो वरः ।
मध्यमः पीतवर्णः स्याच्छुक्लवर्णोऽधमः किल ॥ ९ ॥

हे शिष्य ! वह तीन प्रकारका होता है सबसे अच्छा लाल, पीला मध्यम और सुफेद खराब होता है ॥ ९ ॥

ग्रन्थान्तरे लक्षणानि ।

चतुर्धा गन्धको ज्ञेयो वर्णैः श्वेतादिभिः खलु ।
श्वेतोऽत्र खटिका प्रोक्तो लेपने लोहमारणे ॥ १० ॥
तथा चामलसारः स्याद्यो भवेत्पीतवर्णवान् ।
शुकपिच्छः स एव स्याच्छ्रेष्ठो रसरसायने ॥ ११ ॥
रक्तश्च शुकतुण्डाख्यो धातुवादविधौ वरः ॥
दुर्लभः कृष्णवर्णश्च स जरामृत्युनाशनः ॥ १२ ॥

सुफेद आदि वर्णोंसे गन्धक चार प्रकारका है । खडियानामसे प्रसिद्ध सुफेद गन्धक मकानोंको पोतने और लोहेको मारनेमें काम आता है, पीला आमलासार कहा जाताहै । हरा रस और रसायनमें उपयोगी है, तोतेकी चोंचके समान लाल गन्धक धातुओंके विचारके विधिमें उत्तम है कालागन्धक नहीं मिलसकता, यदि वह मिल तो वृद्धावस्था और मृत्युको नाश करता है ॥ १०-१२ ॥

किञ्च ।

गन्धको द्विविधः प्रोक्तो लोणीयश्चाम्लसारकः ।
योग्यश्चैवाम्लसारो हि रसमार्गे गुणात्मकः ॥ १३ ॥

लोणियां और आमलासार इन भेदोंसे गन्धक दो प्रकारका है, रसकी विधिमें आमलासार ही श्रेष्ठ है, क्योंकि इसमें अनेक गुण हैं ॥ १३ ॥

गन्धशोधनविधिः ।

पयःस्विन्नो घटीमात्रं वारिधौतो हि गन्धकः ।
गव्याज्यविद्रुतो वस्त्राद्गालितः शुद्धिमृच्छति ॥ १४ ॥

एवं संशोधितः सोयं पाषाणानम्बरे त्यजेत् ।
घृते विषं तुषाकारं स्वयं पिण्डत्वमेव च ॥ १५ ॥
इति शुद्धो हि गन्धस्तु नापथ्ये विकृतिं व्रजेत् ।
अपथ्यादन्यथा हन्यात्पीतं हालाहलं यथा ॥ १६ ॥

आमलासार गन्धक पानीमें धोकर घडीभरतक दूधमें भिगाना चाहिये, दूध गन्धककी अपेक्षा लगभग पचगुना लेते हैं । प्रथम गन्धकको पीसकर घीमें गलाना चाहिये, फिर साफ कपडेसे छानकर दूधमें छोडदे, वह जमजायगा । रेतमिट्टी आदि कपडेमें ही रहजावेंगे, और गन्धकेका विष उस दूधमें मिलजायगा । तत्पश्चात् गन्धकको दूधसे निकालकर पानीसे धोवे और सुखाकर रक्षापूर्वक रखछोडे, ऐसा शुद्ध गन्धक कभी विकार नहीं करता । यदि विधिपूर्वक शुद्ध न हो तो हालाहल विषके समान मनुष्यको तत्काल मार देता है ॥ १४-१६ ॥

प्रकारान्तरम् ।

गन्धको द्रावितो भृङ्गरसे क्षिप्तो विशुद्धयति ।
तद्रसे सप्तधा भिन्नो गन्धकः परिशुद्धयति ॥
अथवा काञ्जिके तद्वच्छुद्धः स्यात्पूर्ववत्पटात् ॥ १७ ॥

उक्त प्रकारसे गन्धकको घीमें गलाकर सात बार भाँगरेके रसमें डालनेसे शुद्ध होता है । या किसी बरतनमें काँजी भरकर उसका मुख कपडेसे बांधदे, फिर उस कपडेपर घीके बराबर गन्धकके छोटे छोटे टुकडे छोडदे, ऊपरसे लोहेका तवा रख आँच जलावे, तवा गरम होनेपर जब गन्धक पतला होकर कांजीमें गिर जाय तब उसे निकाल लेवे और धोकर रखदे तथा अवसरमें उसका उपयोग करे ॥ १७ ॥

शुद्धगन्धकात्तैलाकर्षणम् ।

अर्कक्षीरैः स्नुहीक्षीरैर्वस्त्रं लेप्यं तु सप्तधा ।
गन्धकं नवनीतेन पिष्ट्वा वस्त्रं लिपेद्घनम् ॥ १८ ॥
तद्वर्तिं ज्वालितामंशे धृत्वा कुर्यादधोमुखीम् ।
तैलं पतेदधोभाण्डे ग्राह्यं योगेषु योजयेत् ॥ १९ ॥

किसी नवीन गज सवागज कपडेको सात सात बार आँक और थूहरके दूधमें भिगो भिगोकर सुखालेवे पीछे उस कपडेमें मक्खनके साथ पिसे हुए गन्धकका

खूब लेपकर बत्ती बनावे फिर उस बत्तीको जलाकर किसी चिमटे आदिसे पकड-कर नीचेको लटकादे, उसके नीचे कोई स्वच्छ पात्र रखदे तो उसमें तेल टपकेगा। उसको अनेक रोगोंमें अनुपानके योगसे योजित करे तो खांसी दमा आदि अनेक रोग नष्ट होंय और देह बलवान् हो ॥ १८ ॥ १९ ॥

आदित्यास्ते च पयसि दद्याद्गन्धकजं रजः ।
तज्जातदधिजं सर्पिर्गन्धतैलं नियच्छाति ॥
गन्धतैलं गलत्कुष्ठं हन्ति लेपाच्च भक्षणात् ॥ २० ॥

सन्ध्यासमय दूधमें गन्धकका चूर्ण डालकर दही जमाले, जम जानेपर उसे मथकर मक्खन निकालकर उसका घी बनावे यही गन्धकका तेल कहाता है, इसको लगाने और खानेसे गलितकुष्ठतक अच्छा होजाता है ॥ २० ॥

गन्धकदुर्गन्धनिवारणम् ।

विचूर्ण्य गन्धकं क्षीरे घनीभावावधिं पचेत् ।
ततः सूर्यावर्तरसं पुनर्दत्त्वा पचेच्छनैः ॥ २१ ॥
पश्चाच्च पातयेत्प्राज्ञो जले त्रिफलसम्भवे ।
जहाति गन्धको गन्धं निजं नास्तीह संशयः ॥ २२ ॥

गन्धकका चूरा कर दूधमें गाढा होनेतक पकावे, पीछे धीमी आँचसे काले भाँगरेके रसमें पकावे । त्रिफलाके काढेमें डालनेसे गन्धकका दुर्गन्ध निस्सन्देह जाता रहता है ॥ २१ ॥ २२ ॥

गन्धकानुपानम् ।

इत्थं विशुद्धस्त्रिफलाज्यभृङ्गमध्वान्वितः शाणमितोऽवलीढः ।
गृध्राक्षितुल्यं कुरुतेऽक्षियुग्मं करोति रोगोज्झितदीर्घमायुः॥ २३ ॥
शुद्धं गन्धं निष्कमात्रं तु दुग्धैः सेव्यं मासं शौर्यवीर्यप्रवृद्धौ ।
षण्मासात्स्यात्सर्वरोगप्रणाशो दिव्या दृष्टिर्दीर्घमायुः सुरूपम्॥ २४॥

इस प्रकार शुद्ध गन्धक त्रिफला घी और सहतके साथ चार मासे खानेसे गीधकीसी तेज दृष्टि होती है, रोगहीन होकर चिरायु हो । यदि दूधके साथ एक महीनेतक निष्कभर खायाजावे तो बल और पराक्रम बढे । और यही यदि छः महीने खायाजाय तो सभी रोग नष्ट हों, आँख दिव्य हो और सुन्दर रूप हो जावे ॥ २३ ॥ २४ ॥

मोचाफलेन त्वग्दोषं चित्रकेन महाबलम् ।
आटरूषकषायेण क्षयकासाञ्जयेद्भ्रशम् ॥ २५ ॥
मन्दानलत्वं जयति त्रिफलाक्वाथसंयुतः ।
ऊर्ध्वगान्सकलान्रोगान्हन्ति शीघ्रं सुगन्धकः ॥ २६ ॥

यदि गन्धक मोचाफलके साथ खायाजाय तो त्वचाके दोषोंको हटावे, चीतेके साथ खानेसे बहुत बलको करता है, अडूसेके साथ सेवन करनेसे खाँसी और श्वासको दूर करे । त्रिफलाके काढेके साथ मदाग्निको अच्छा करता है, और देहके ऊपरी भागके सभी रोगोंको अतिशीघ्र अच्छा करता है ॥ २५ ॥ २६ ॥

चूर्णीकृत्य पलानि पञ्च नितरां गन्धाश्मनो यत्नत-
स्तच्चूर्णं त्रिगुणे तु मार्कवरसे छायाविशुष्कं कृतम् ॥
पथ्याचूर्णमथाभयामधुघृतं प्रत्येकमेषां पलम्
वृद्धो यौवनमेति मासयुगलं खादन्नरः प्रत्यहम् ॥ २७ ॥
सद्गन्धाश्मविचूर्णितं पिबति यस्तैलेन कर्षोन्मित-
मभ्यङ्गोष्णजलावसेचनरतः काले यथा प्रत्यहम् ॥
सप्ताहत्रितयान्निहंति सव्रणाः पामादिसर्वारुजो
नित्याभ्यासवशाद्विनष्टसकलक्लेशोपतापः पुमान् ॥ २८ ॥

पांच पल गन्धकके चूरेको भाँगरेके रसमें खूब पीसकर छायामें सुखावे, फिर उसमें छोटी हरड मिलाकर शहद और मधुके साथ दो महीनेतक नित्य खावे तो बूढा भी जवान होजावे, और तेलके साथ यदि नित्य दश मासे खावे, मालिस करे और गर्म पानीसे न्हावे तो २१ ही दिनोंमें घाव, खुजली इत्यादि रोग नष्ट हों । यदि सदा इसका अभ्यास कियाजावे तो किसी प्रकारका दुःख नहीं रहता ॥ २७ ॥ २८ ॥

प्रकारान्तरम् ।

यो वाऽप्युग्रमतिः सुचूर्णितमिदं गन्धाश्मकृष्णासमं
पथ्यातुल्यमपि प्रपूजितगुरुर्भूतेशपूजारतः ॥
आहारादिषु यन्त्रणादिरहितः स्यात्पुष्टिवीर्याधिकः
प्रोत्फुल्लाम्बुजनेत्रयुग्मविलसच्चामीकरो भासुरः ॥ २९ ॥

बराबर हरडों और पीपलोंके साथ गन्धकके चूर्णका जो सेवन करे उसे चाहिये कि अपने गुरुकी पूजा करके शिवजीकी पूजा करे उसे आहार विहार आदिमें कुछ भी बाधा न होगी, पुष्टि और बल बढेगा, फूले कमलके समान नेत्रोंकी शोभा होकर सुवर्णके समान कान्ति होगी ॥ २९ ॥

गन्धकरसायनम् ।

शुद्धो बलिर्गोपयसा विभाव्यस्ततश्चतुर्जातगुडूचिकाभिः ॥
पथ्याक्षधात्र्यौषधभृङ्गराजैर्भाव्योऽष्टवारं पृथगार्द्रकेण ॥ ३० ॥
सिद्धे सितां योजय तुल्यभागां रसायनं गन्धकसंज्ञितं स्यात् ।
धातुक्षयं मेहगणाग्निमान्द्यं शूलं तथा कोष्ठगतांश्च रोगान् ॥ ३१ ॥
कुष्ठान्यथाष्टादशरोगसंख्यान्निवारयत्येव च राजयोग्यम् ।
कर्षोन्मितं सेवितमेतिमर्त्यो वीर्यं च पुष्टिं बलवान्प्रदीप्तिम् ॥ ३२ ॥
वमनं रेचनं पूर्वं शुद्धौ चैव समाचरेत् ।
जाङ्गलानि तु मांसानि छागलानि प्रयोजयेत् ॥ ३३ ॥

शुद्ध गन्धकको पहिले गायके दूधमें भावना दे फिर चातुर्जात, गिलोय, हरड, बहेडा, आँवला, सोंठ, भांगरा अदरखका रस इन औषधोंकी आठ आठ भावना देनी चाहिये, फिर गन्धकके बराबर चीनी मिलावे, यह गन्धक रसायन हो जाताहै, इसकी मात्रा आधा या पौन तोला है, यह धातुदौर्बल्य, बीसों प्रकारके प्रमेह, जाठराग्निकी क्षीणता, शूल और पेटके भीतरके दर्द, सब प्रकारके कोढोंको दूर करताहै, राजाओंके सेवन करने योग्य है । यह बल और वीर्यकी पुष्टि करता, अग्निकी दीप्ति करताहै । औषध सेवन करनेके पहिले कय और जुलाब देकर शरीरको शुद्ध करना चाहिये वनके पशुओं तथा बकरीके मांस खाना चाहिये ॥३०-३३॥

गन्धकद्रुतिः ।

कलांशव्योषसंयुक्तं शुद्धगन्धं विमर्दयेत् ।
अरत्निमात्रे वस्त्रे तद्विप्रकीर्य विवेष्टय तत् ॥ ३४ ॥
सूत्रेण वेष्टयित्वा च यामं तैले निमज्जयेत् ।
धृत्वा संदंशतो वर्तिं मध्ये प्रज्वालयेच्च ताम् ॥ ३५ ॥
द्रुतो निपतितो गन्धो बिन्दुशः काचभाजने ।
तां द्रुतिं प्रक्षिपेत्पत्रे नागवल्ल्यास्त्रिबिन्दुकाम् ॥ ३६ ॥

वस्त्रेण भ्रमितं शुद्धं सूतेन्द्रं च विमर्दयेत् ।
अङ्गुल्याथ सपत्रां तां द्रुतिसूतं च भक्षयेत् ॥ ३७ ॥
करोति दीपनं तीव्रं क्षयं पाण्डुं च नाशयेत् ।
कासं श्वासं च शूलार्तिं ग्रहणीमतिदुर्धराम् ॥
आमं विशोषयत्याशु लघुत्वं प्रकरोति च ॥ ३८ ॥

सोलहवां भाग त्रिकुटा मिलाके गन्धकको खरल करे फिर हाथभर कपडेके टुकडेपर उसको फैलाकर बत्ती बनावे, उसे सूतसे लपेटकर १ पहर तेलमें डुबो रखे, फिर उसे संडसीसे पकडकर बीचमें जलादेवे तो गन्धक पिघलकर काचके बर्तनमें बूँद बूँदकर टपकेगा उसमेंसे २ बूँद पानके पत्तेमें रख और तीन रत्ती शोधा हुआ पारा अंगुलीसे घोटकर उसे खावे तो जाठराग्निको दीप्त कर तेज करता है, क्षय, पाण्डुरोग, खांसी, दमा, बडी ग्रहणी, और आमका नाश होता है, और देहको हलका बना देता है ॥ ३४-३८ ॥

वातारितैलसंयुक्तं त्रिफलागुग्गुलेन तु ।
गन्धकं रससंयुक्तं जराव्याधिविनाशनम् ॥ ३९ ॥

त्रिफला और गूगल मिले हुए तिल तैलमें मिलाकर गन्धककी मालिश करे तो वातव्याधि दूर होती है अथवा गूगलके साथ खानेसे वायुके विकार शान्त होते हैं और शुद्ध पारेके संयोगसे गन्धक खावे तो बुढापा और व्याधियां दूर हों॥३९॥

मासमात्रप्रयोगेण शृणु वक्ष्यामि तद्गुणान् ।
अर्शो भगन्दरश्चैव तथा श्लेष्मसमुद्भवाः ॥ ४० ॥
नश्यन्ति व्याधयः सर्वे मासेनैकेन गन्धकात् ।
षण्मासस्य प्रयोगेण देवतुल्यो भवेन्नरः ॥ ४१ ॥

यदि १ महीना इसका प्रयोग किया जावे तो उसके गुणोंको मैं कहता हूं बवासीर और कफसे उत्पन्न हुए सभी रोग नष्ट होजाते हैं, और जो कहीं ६ महीने सेवन किया जाय तो मनुष्य देवताओंके समान (अजर और अमर) होजाता है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

हंसवर्णाश्च ये केशा बलिश्चैव प्रलम्बिनी ।
चला दन्ता मन्ददृष्टिः बलशुक्रादिसंक्षयः ॥ ४२ ॥

निर्जित्य यौवनं याति भ्रमरा इव मूर्धजाः ।
दिव्यदृष्टिर्महाघ्राणो वराह इव कर्णयोः ॥ ४३ ॥

यदि बाल पककर हंसोंके समान सुफेद होगये हों, चमडेमें लंवी २ बखटें पडगयी हों, दांत हिलते हों, दृष्टि कम होगयी हो बल तथा शुक्र आदिका नाश होगया हो इन सबको जीतकर युवावस्थाको मनुष्य प्राप्त होताहै; बाल भौरोंके समान काले काले होजाते हैं, देवताओंकीसी दिव्यदृष्टि होती है, और सूअरके समान तेज कान सुननेवाला होजाताहै ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

चक्षुषा तार्क्ष्यतुल्योऽसौ बलेन बलविक्रमः ।
दृढदन्तो वृद्धकायो द्वितीय इव शङ्करः ॥
तस्य मूत्रपुरीषेण शुल्बं भवति काञ्चनम् ॥ ४४ ॥

आँख देखनेमें गरुडके समान, विष्णुके समान बली, मजबूत दाँतवाला वह मनुष्य होजाता है, (इसमें कुछ अत्युक्ति नहीं कि) वह दूसरा महादेवही सा होता है ऐसे पारेके योगसे तांवा सोना हो जाता है ॥ ४४ ॥

गन्धकस्तुल्यमरिचः षड्गुणत्रिफलान्वितः ।
शम्याकमूलजरसैर्मर्दितोऽखिलरोगहा ॥ ४५ ॥
द्विनिष्कप्रमितो गन्धः पीततैलेन शोधितः ।
पश्चान्मरिचतैलाभ्यामपामार्गजलेन च ॥ ४६ ॥
पाचयित्वा बलिः सर्वदेहलिप्तः प्रयत्नतः ।
घर्मे तिष्ठेत्ततो रोगी मध्याह्ने तक्रभक्तकम् ॥ ४७ ॥
भुञ्जीत रात्रौ सेवेत वह्निं प्रातः समुत्थितः ।
महिषीछगणैर्देहं संलिप्य स्नानमाचरेत् ॥ ४८ ॥
शीतोदकेन पामादि खर्जूकुष्ठं प्रशाम्यति ॥ ४९ ॥

गन्धकके बराबर काली मिर्च हों और छः गुनी त्रिफलासे युक्त हो उन्हें शम्याककी जडके रसमें घोटे तो वह सभी रोगोंको नाश करता है अथवा दो निष्क (टंक) गन्धकको सरसोंके तेलमें शोधन करे फिर मिर्च और अपामार्गका रस मिलाकर तेल पकालेवे इस तेलकी मालिश करके धूपमें बैठे और दही भात खावे । रातको आगसे सेंके फिर सबेरे महिषीकी छाछ तथा गोबर

मलकर ठंढे पानीसे स्नान करें तो पामा खर्जू और कोढ आदि इसके सेवन करनेसे ३ दिनमें शान्त होजाते हैं ॥ ४५--४९ ॥

गन्धकलेपः ।

शम्याकमूलस्वरसैः संघृष्टो गन्धकोत्तमः ।
लिप्तो देहे ध्रुवं खर्जूकुष्ठपामादिमर्दनः ॥ ५० ॥

अमलतासकी जडके रसमें उत्तम गन्धकको घोटकर देहमें मालिश करै तो वह खुजली कोढ और पामा आदिका नाश करता है ॥ ५० ॥

गंधकस्य धातुवेधकं कज्जलम् ।

पीते च गंधके सूतं रक्तं चित्ररसैर्ध्रुवम् ।
वज्रीक्षीरेण संपिष्टं वङ्गस्तम्भकरं परम् ॥ ५१ ॥

पीला गन्धक, पारेकी कज्जली, लाल चन्दन चीता तथा थूहरके दूधमें घोटनेसे वंगका चांदी होजाता है ॥ ५१ ॥

गन्धकेन हतं शुल्बं दरदेन समं कुरु ।
मातुलुङ्गरसे पिष्ट्वा त्रिपुटान्म्रियते फणी ॥ ५२ ॥
सिन्दुराभं भवेन्नागं ताम्रं भवति काञ्चनम् ॥ ५३ ॥

गन्धकसे मारे हुए ताँबेके बराबर हिङ्गुल मिलाकर बिजौरेके रसमें पीस खरल करै, फिर सीसेके पत्रोंपर लेपकर पुट देवे, इस रीतिसे तीन पुट देनेसे सिन्दूरके समान भस्म होजायगा, इसको जब ताँबेमें डालो सोना होजायगा ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

अशुद्धगन्धकदोषाः ।

अशुद्धगन्धः कुरुते च कुष्ठं तापं भ्रमं पापरुजां तथैव ।
रूपं सुखं वीर्यबलं निहन्ति तस्माद्विशुद्धो विनियोजनीयः ॥ ५४ ॥

अशुद्ध गन्धक कोढ, दाह, घुमरी तथा दूसरे पाप रोगोंको करता है। सुन्दर रूप, सुख, बल और पराक्रमका नाश करता है इससे शुद्धही गन्धकका उपयोग करना श्रेष्ठ है ॥ ५४ ॥

गन्धकभक्षणे वर्ज्याणि ।

लवणाम्लानि शाकानि द्विदलानि तथैव च ।
स्त्रियश्वारोहणं यानं पदा चैतानि वर्जयेत् ॥ ५५ ॥

गन्धकके सेवन करनेवाले मनुष्यको चाहिये कि वह खारे व खट्टे पदार्थ, हरे शाक द्विदल अन्न (अरहर आदि) स्त्रीसङ्ग, घोडे आदिकी सवारी, पैदल चलना इत्यादि छोडदे, अर्थात् उष्ण पदार्थोंका सेवन न करे ॥ ५५ ॥

गन्धकस्य क्रिया चैव समासेन मयेरिता ।
अध्यायेऽस्मिंस्त्वया धार्या सावधानतयात्मज ॥ ५६ ॥

हे वत्स ! इस प्रकार संक्षेपसे गन्धककी क्रिया मैंने इस अध्यायमें तुझसे कही है उसको सावधानतासे ध्यानमें रखना ॥ ५६ ॥

इति श्रीपाण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे
गन्धपाषाणवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातोऽभ्रकशोधनमारणवर्णनं नाम सप्तमाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अव हम अभ्रकके शोधन मारण वर्णवाले सातवें अध्यायका कथन करते हैं ।

गुरुरुवाच ।

गगनस्यापि संशुद्धिर्मारणं सत्त्वपातनम् ।
ज्ञातव्यं वै त्वया पुत्र तदर्थं वर्ण्यते क्रिया ॥ १ ॥

गुरु कहने लगे हे पुत्र ! अभ्रककी शुद्धि और मारण तथा सत्त्वपातन यह सब तुमको जानना चाहिये इससे इनकी क्रियाका वर्णन करना चाहिये ॥ १ ॥

तत्रादावष्टौ महारसाः ।

अभ्रवैक्रान्तमाक्षीकविमलाद्रिजसस्यकम् ।
चपलो रसकश्चेति ज्ञात्वा कार्यो हि संग्रहः ॥ २ ॥

अभ्रक, वैक्रान्त, तर्मेरी, सोनामक्खी, रूपामक्खी, शिलाजीत, चंपल[1] और खपरिया यह आठ महारस हैं, वैद्यको चाहिये कि जानकर इनका संग्रह करै ॥ २ ॥

केषांचिद्वै मते तात रसाश्चेमे प्रकीर्तिताः ॥ ३ ॥

हे पुत्र किन्हींके मतमें ये रस कहे गये हैं ॥ ३ ॥

---

१ चपल धातु शीशे और वङ्गमेंसे निकलता है ।

रसाः ।

द्विधा सूतस्त्रिधा गन्धोऽष्टधा खं तालमष्टधा ।
भिन्नाञ्जनं च कासीसं गैरिकं च रसा इमे ॥ ४ ॥

दो प्रकारका पारा तीन प्रकारकी गन्धक, आठ प्रकारके अभ्रक, आठही प्रकारकी हरताल, तथा सुरमा, कसीस और गेरू ये रस हैं ॥ ४ ॥

परश्चोपरसाश्चेमे यथोक्तं रसवादिभिः ।
एक एव रसो ज्ञेयो बहुधोपरसाः स्मृताः ॥ ५ ॥

परन्तु यह सब उपरस हैं जैसा रसके वक्ताओंने कहा है रस केवल पारा है, उपरस तो बहुत हैं । पारा और गन्धकको हम पहले कहचुके अब यहां अभ्रक आदिको लिखते हैं ॥ ५ ॥

तत्रादावभ्रकस्यैव समुत्पत्त्यादिकं शृणु ॥ ६ ॥

उनमें पहले अभ्रकहीकी उत्पत्ति सुनो ॥ ६ ॥

पुरा वधाय वृत्रस्य वज्रिणा वज्रमुद्धृतम् ।
विस्फुलिङ्गास्ततस्तस्य गगने परिसर्पतः ॥ ७ ॥
ते निपेतुर्घनध्वानाच्छिखरेषु महीभृताम् ।
तेभ्य एव समुत्पन्नं तत्तद्गिरिषु चाभ्रकम् ॥ ८ ॥

प्राचीन समयकी बात है कि देवशत्रु वृत्रासुरको मारनेके लिये इन्द्रने अपना वज्र उठाया, उस समय उसके अग्निकण आकाशमें फैलगये फिर वे मेघोंके शब्दोंसे पर्वतोंकी चोटियोंमें गिरे, उनहींसे उन उन पर्वतोंमें अभ्रक हो गया ॥ ७ ॥ ८ ॥

तद्वज्रं वज्रजातत्वादभ्रमभ्ररवोद्भवात् ।
गगनात्पतितं यस्माद्गगनं च ततोऽभवत् ॥ ९ ॥

वज्रसे उत्पत्ति होनेसे उसका नाम वज्र मेघशब्दसे उत्पन्न होनेसे ' अभ्र ' और आकाशसे गिरनेसे गगन नाम हुआ ॥ ९ ॥

श्वेताभ्रकोत्पत्तिः ।

कदाचिद्गिरिजा देवी हरं दृष्ट्वा मनोहरम् ।
मुमोच यत्तदा वीर्यं तज्जातं शुभ्रमभ्रकम् ॥ १० ॥

किसी समय मनको हरलेनेवाले श्रीशिवजीको देखकर वीर्यत्याग करतीथी वही सुफेद अभ्रक होगया ॥ १० ॥

अभ्रकजातयः ।

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रभेदात्तस्याच्चतुर्विधम् ।
क्रमेणैव सितं रक्तं पीतं कृष्णं च वर्णतः ॥ ११ ॥

अभ्रक, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन भेदोंसे चार प्रकारका है । वह क्रमसे सुफेद वर्णका ब्राह्मण, लाल क्षत्रिय, पीला वैश्य, काला शूद्र कहाताहै॥११॥

वर्णानुसारकार्याणि ।

प्रशस्यते सितं तारे रक्तं तत्र रसायने ।
पीतं हेमनि कृष्णं तु गदे शुद्धतयापि च ॥ १२ ॥

सफेद अभ्रक चाँदीके काममें अच्छी होती है, लाल रसायनमें, पीली सुवर्णमें पीली सोनेके काममें, और काली औषधके प्रयोगमें शुद्धहुई लेनी चाहिये ॥१२॥

कृष्णाभ्रकभेदाः ।

पिनाकं दर्दुरं नागं वज्रं चेति चतुर्विधम् ।
कृष्णाभ्रं कथितं प्राज्ञैस्तेषां लक्षणमुच्यते ॥ १३ ॥

पिनाक, दर्दुर, नाग तथा वज्र इस प्रकार विद्वानोंने अभ्रकके चार प्रकार कहे हैं ॥ १३ ॥

पिनाकाभ्रकलक्षणम् ।

मुञ्चत्यग्नौ विनिक्षिप्तं पिनाकं दलसंचयम् ।
अज्ञानाद्भक्षणं तस्य महाकुष्ठप्रदायकम् ॥ १४ ॥

आँचमें छोडनेसे जो कई पर्तोंको छोडे उसे पिनाक अभ्रक कहते हैं । विना जाने यदि कोई उसे खावे तो कुष्ठी हो जावे ॥ १४ ॥

दर्दुराभ्रकलक्षणम् ।

दर्दुरं त्वग्निनिक्षिप्तं कुरुते दर्दुरध्वनिम् ।
गोलकान्बहुशः कृत्वा तत्स्यान्मृत्युप्रदायकम् ॥ १५ ॥

दर्दुर अभ्रक आगमें डालते ही मेंडककासा शब्द करता है, इसके खानेसे पेटमें बहुत गोले हो जाते हैं जिनसे अन्तमें मृत्यु हो जाती है ॥ १५ ॥

नागाभ्रकलक्षणम् ।

नागं तु नागवद्वह्नौ फत्कारं परिमुञ्चति ।
तद्भक्षितमवश्यं तु विदधाति भगन्दरम् ॥ १६ ॥

नाग नामका अभ्रक आगमें डालनेसे सर्पकीसी फूंकार छोडता है, यदि उसे खावे तो अवश्य भगन्दर रोग होजाय ॥ १६ ॥

वज्राभ्रकलक्षणम् ।

वज्रं तु वज्रवत्तिष्ठेन्न चाग्नौ विकृतिं व्रजेत् ।
सर्वाभ्रेषु वरं वज्रं व्याधिवार्धकमृत्युजित् ॥ १७ ॥

वज्र नामका अभ्रक आगमें वज्रकी भांति स्थिर रहता है कोईभी विकार उसमें नहीं होता, सभी अभ्रकोंमें यही वज्र नामक उत्तम है, यह रोग वृद्धपना और मृत्युतक जीतता है ॥ १७ ॥

अत्र केचित् ।

वज्राभ्रक आँचमें डालनेसे वज्रकी भाँति स्थिर रहती है कुछ भी विकार उसमें नहीं होता । यह वज्रनामक अभ्रक सब अभ्रकोंमें श्रेष्ठ है, रोग वृद्धावस्था और मृत्युका जय करनेवाला है ॥

लक्षणान्तरम् ।

यदंजननिभं क्षिप्तं न वह्नौ विकृतिं व्रजेत् ।
वज्रसंज्ञं हि तद्योज्यमभ्रं सर्वत्र नेतरत् ॥ १८ ॥

जो काजलके समान काला हो, आँचमें डालनेसे जिसमें कुछ भी विकार न हो उसको वज्राभ्रक कहते हैं, यह सभी रोगोंमें उपयोग करने योग्य है, दूसरा नहीं ॥ १८ ॥

दिग्विभागेनाभ्रकगुणाः ।

अभ्रमुत्तरशैलोत्थं बहुसत्त्वं गुणोत्तरम् ।
दक्षिणाद्रिभवं स्वल्पसत्त्वमल्पगुणोत्तरम् ॥ १९ ॥

उत्तरके पर्वतोंसे उत्पन्न हुआ अभ्रक बहुत बलवान् और श्रेष्ठ गुणोंवाला होता है दक्षिण पर्वतोंसे उत्पन्न हुआ दुर्बल और कमगुणवाला होता है ॥ १९ ॥

भूमिलक्षणम् ।

अभ्रग्रहे तस्य खनिं भिषग्भिस्तत्खानयित्वा पुरुषप्रमाणम् ।
तद्वारवत्सत्त्वफलप्रदं स्याद्गुणाधिकं स्वल्पगुणं ततोऽन्यत् ॥ २० ॥

अभ्रक निकालनेके लिये वैद्योंको पोरसेभर खान खुदवानी चाहिये, जब गारेके समान निकलने लगे तो उत्तम अभ्रक जानना, यह बहुत सत्त्व और गुणयुक्त है। इसके विपरीत हो तो कमगुणवाली समझना ॥ २० ॥

राजहस्तादधस्ताद्यत्तात्स्थितं भारवत्तरम् ।
खननेऽभ्रं हितं ग्राह्यं मारणार्थं गुणाऽधिकम् ॥ २१ ॥

प्रायः चार गज नीचे खोदनेसे जो बहुत भारी अभ्रक मिले उत्तम गुणवाली और शीघ्रफलप्रद है उसको भस्मके लिये लेना चाहिये, इससे विरुद्धका त्याग करना चाहिये ॥ २१ ॥

कृष्णाभ्रगुणाधिक्यम् ।

तथाभ्रं कृष्णवर्णाभं कोटिकोटिगुणाधिकम् ॥
स्निग्धं पृथुदलं वर्णं संयुक्त भारतोऽधिकम् ।
सुखनिर्मोचपत्रं च तदभ्रं शस्तमीरितम् ॥ २२ ॥

काले रंगका अभ्रक करोडों गुण अधिक है (इसकी पाहिचान यह है) चिकनी, बडे परतेवाली, देखनेमें सुन्दर, भारी, विना परिश्रम जिसके पत्रे निकल जावें, वह अभ्रक उत्तम कही है ॥ २२ ॥

यैरुक्तं युक्तिनिर्मुक्तैः पत्राभ्रकरसायनम् ।
तैर्दृष्टं कालकूटाख्यं विषं जीवनहेतवे ॥ २३ ॥

जिन युक्तिशून्योंन पत्राभ्रकको रसायन कहा है उन्होंने कालकूट विषको प्राणधारणका कारण माना है ॥ २३ ॥

सत्त्वार्थं सेवनार्थं च योजयेच्छोधिताभ्रकम् ।
अन्यथा त्वगुणं कृत्वा विकरोत्येव निश्चितम् ॥ २४ ॥

सत्व निकालने और सेवन करनेके लिये भली भांति शोधे हुए अभ्रकको देना चाहिये। नहीं तो दोष उत्पन्न करके विकार करती है ॥ २४ ॥

अशोधिताभ्रमारणदोषाः ।

पीडां विधत्ते विविधां नराणां कुष्ठं क्षयं पाण्डुगदं च शोफम् ।
हृत्पार्श्वपीडां च करोत्यशुद्धमभ्रं हि तद्धुरुवह्निहृत्स्यात् ॥ २५ ॥

विना शुद्ध किया हुआ अभ्रक नाना प्रकारकी पीडा कुष्ठ, क्षय, पाण्डुरोग, सूजन, हृदय और पसुलियोंमें पीडा करती है, भारी है, जठराग्निको कम करती है ॥ २५ ॥

निश्चन्द्रिकं मृतं व्योम सव्यं सर्वगदेषु च ।
सेवितं चन्द्रिकायुक्तं मेहं मन्दानलं चरेत् ॥ २६ ॥

मारी हुई अभ्रक जो चन्द्रकरहित हो जाय तो सब रोगोंमें सेवन करने योग्य है । यदि चन्द्रिकासहित सेवन की जाय तो प्रमेह मन्दाग्नि करती है ॥ २६ ॥

अभ्रकशोधनम् ।

वज्राभ्रकं वह्नितप्तं निक्षिपेत्सप्तसप्तधा ।
गोदुग्धे त्रिफलाक्काथे कांजिके सुरभीजले ॥
शुद्धिमायाति वै वह्नौ प्रक्षिप्तं वा त्रिधा त्रिधा ॥ २७ ॥

वज्राभ्रकको अग्निमें तपा तपाकर गायके दूध, त्रिफलाके क्काथ, कांजी और गोमूत्रमें सात सात बार अथवा (लघुकल्प करना हो तो) तीन तीन बार बुझावे इससे शुद्ध होती है ॥ २७ ॥

प्रकारान्तरम् ।

अथवा बदरीक्काथे ध्मातमभ्रं विनिक्षिपेत् ।
मर्दितं पाणिना शुष्कं धान्याभ्रादतिरिच्यते ॥ २८ ॥

अथवा अभ्रकको गर्म कर बेरके काढेमें डालदे और निकालकर हाथोंसे खूब मले तौ धान्याभ्रकसे भी गुणकारक होता है ॥ २८ ॥

तथा च ।

आदौ सुतापितं कृत्वा गगनं सप्तधा क्षिपेत् ।
निर्गुण्डीसुरसे सम्यग्गिरिदोषं प्रशान्तये ॥ २९ ॥

अभ्रकको खूब तपा तपाकर सात बार संभालूके रसमें बुझावे तो पर्वतके मिट्टी आदिके दोष उसमें नहीं रहते ॥ २९ ॥

धान्याभ्रकविधिः ।

चूर्णाभ्रं शालिसंयुक्तं बद्धा कम्बलके श्लथम् ।
त्रिरात्रं कांजिकं स्थाप्यं तत्क्लिन्नं मर्दयेद्दृढम् ॥ ३० ॥
तन्नीर एव यत्नेन यावत्सर्वं स्रवेत्ततः ॥
कम्बलाद्गलितं श्लक्ष्णं मारणादौ प्रशस्यते ॥ ३१ ॥

अभ्रकका चूरा और धानोंको कम्बलमें ढीला बांधकर तीन रात कांजीमें भिगोवे, फिर गीले ही उसको पानीसे भली भाँति मले इससे अभ्रकके रवा कम्ब-

लसे छूटकर पानीमें आजाते हैं। यह धान्याभ्रक कहा जाता है और मारणादिक कर्ममें श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

प्रकारान्तरम् ।

चूर्णाभ्रं शालिसंयुक्तं वस्त्रे बद्धं हि कांजिके ।
निर्यातं मर्दनाद्यत्तद्धान्याभ्रमिति कथ्यते ॥ ३२ ॥

धानयुक्त अभ्रकके टुकडोंको वस्त्रमें बांधकर कांजीमें भिगोवे और खूब मले उससे जो महीन अभ्रक निकलता है उसे धान्याभ्रक कहते हैं ॥ ३२ ॥

सचन्द्रिकं च किट्टाभं व्योम न ग्राहयेद्रसः ॥
ग्रसितश्च नियोज्योऽसौ लोहे चैव रसायने ॥ ३३ ॥

चान्द्रिकासहित कीटी सरीखे अभ्रकको पारा नहीं खाता यदि पारा इस खाय ले तो लोहे और रसायनमें काममें लाने योग्य है ॥ ३३ ॥

मारणम् ।

अङ्गारोपरि विन्यस्तं ध्मातमेव दलीकृतम् ।
निक्षिपेत्कांजिके कृत्स्नमभ्रकं वह्निसंज्ञिकम् ॥ ३४ ॥
ततोऽस्य कांजिकस्थस्य चिरं घर्मे विधारणम् ।
पेषणं च विधातव्यं पौनःपुन्येन पण्डितैः ॥ ३५ ॥
चाङ्गेरीस्वाङ्गनिर्यासैरप्येव विधिमाचरेत् ।
तण्डुलीयकमूलस्य रसेनापि ततः परम् ॥ ३६ ॥
ततोऽस्मिन् खदिरांगारैर्नीते नीतेऽग्निवर्णताम् ।
क्षिपेत् पुनः पुनः क्षीरे यथा निश्चन्द्रिकं भवेत् ॥ ३७ ॥

अभ्रक मारनेकी साधारण विधि यह है कि काली अभ्रकको अंगारोंपर रख गर्म गर्म ही जुदे जुदे पत्ते कर कांजीमें भिगोवे फिर उसके बर्त्तनको धूपमें रखदे और वहांसे निकालकर खूब पीसे फिर चूकाके रसमें भिगोकर पीस डाले, इसके पीछे चौलाईके जडके रसमें भिगोकर और दो तीन दिन धूपमें रखकर पीसे, फिर टिकिया बाध तथा सुखाकर खैरके कोयलोंमें खूब गर्म कर निश्चन्द्रक होने तक रक्खे पीछे दूधमें भिगोवे ॥ ३४–३७ ॥

मारणस्य विध्यन्तरम् ।

धान्याभ्रं गुडतुल्यं च श्रेष्ठक्षीरेण मर्दितम् ।
कुर्यात्सुचक्रिकां शुष्कां सम्यग्गजपुटे पचेत् ॥ ३८ ॥

ततो धत्तूरपत्तूरकुमारीशशिवाटिका ।
प्रत्येकं सुरसेनैव पुटादाशु मृतिं व्रजेत् ॥ ३९ ॥

धान्याभ्रक और गुड बराबर लेकर गायके दूधमें घोट तथा टिकिया बनाकर उन्हें धूपमें सुखाले और उनको गजपुटमें पकावे फिर धतूरेके पत्तोंके रस और गजपीपल, गुआरपाठा तथा कुमोदनीके रसकी भावना अलग अलग देकर गज-पुटमें फूके तो अभ्रककी शीघ्र निश्चन्द्रक भस्म होवे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

गन्धर्वपत्रतोयेन गुडेन सह भावितम् ।
अधोर्द्धं वटपत्राणि निश्चन्द्रं त्रिपुटैः खगम् ॥ ४० ॥

रेंडीके पत्रोंमें रस और गुडके पानीसे भावना देकर अभ्रकका गोला बनावे, उस ऊपर और नीचे बरगदके पत्तोंसे लपेटकर गजपुटमें फूंकदेवे इस प्रकार तीन तीन बार करनेसे अभ्रककी निश्चन्द्रक भस्म होजाती है ॥ ४० ॥

चतुर्थविधिः ।

केनाख्यस्य तृणस्यापि रसेनापि प्रमर्दितम् ।
पुटितं दशधा भस्म निश्चन्द्रं जायते ध्रुवम् ॥ ४१ ॥

धान्याभ्रकको केनानामक तृणके रसमें घोटकर दश पुट देनेसे अवश्य निश्च-न्द्रक भस्म होजाता है ॥ ४१ ॥

पंचमविधिः ।

धान्याभ्रकस्य भावैकं भागार्द्धं टंकनस्य च ।
पिष्ट्वा तदन्धमूषायां रुद्ध्वा तीव्राग्निना पचेत् ॥ ४२ ॥
विचूर्ण्य योजयेद्योगे भेषजानामसंशयः ॥ ४३ ॥

एक भाग धान्याभ्रक और आधा भाग सुहागा लेकर दोनोंको पीस अन्ध-मूषामें रख बन्द करके तेज आँच देवे ठंडा होनेपर निकाले और पीसकर औषधि-योंके साथ देवे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

षष्ठविधिः ।

कृत्वा धान्याभ्रकं तच्च शोधयित्वा विमर्दयेत् ।
वेष्टयेदर्कपत्रे च सम्यग्गजपुटे क्षिपेत् ॥ ४४ ॥

पुनर्मर्द्यं पुनः पाच्यं सप्तवारान् पुनः पुनः ।
ततो वटजटाक्काथैस्तद्वद्देयं पुटत्रयम् ॥
म्रियते नात्र सन्देहः प्रयोज्यः सर्वकर्मसु ॥ ४५ ॥

उक्त प्रकारसे धान्याभ्रक करके एक दिन करौंदेके रसमें खरल करे फिर छोटी छोटी टिकियां बांध धूपमें सुखावे और आँकके पत्तोंके बीचमें उनको एक ठीकरेमें दो तीन सेर आरणे उपलोंकी आंच सात बार दे; यदि इतनेसे शुद्धि न हो तो सात बार फिरभी उक्त प्रकारसे आंच दे । फिर वडकी जटाओंके क्काथसे तीन पुट देवे, यदि अधिक लाल करना हो तो वडकी जटाओंके क्काथमें घोटकर कई बार गजपुटमें फूंकदे इस प्रकार करनेसे अभ्रककी उत्तम भस्म बनजाती है और काममें देने योग्य होजाती है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

सप्तमविधिः ।

धान्याभ्रकस्य भागौ द्वौ भागैकं शुद्धगन्धकम् ।
वटक्षीरेण संमर्द्य ह्यन्धमूषां निरोधयेत् ॥
पचेद्गजपुटेनैव वारमेकमृतं भवेत् ॥ ४६ ॥

धान्याभ्रकके दो भाग शुद्ध गन्धक एक भाग, इन दोनोंको वडके दूधमें खरल कर अंधमूषामें सम्पुटके भीतर रक्खे फिर गजपुटकी आंच दे तो एकही आंचमें भस्म होजायगी ॥ ४६ ॥

अष्टमविधिः ।

धान्याभ्रं कासमर्दस्य रसेन परिमर्दितम् ॥ ४७ ॥
पुटितं दशवारं तु म्रियते नात्र संशयः ।
तद्वन्मुस्तारसेनापि तन्दुलीयरसेन च ॥ ४८ ॥

परवरके रसमें धान्याभ्रकको खूब घोटकर दश आँच देनेसे अभ्रक भस्म होजाता है । नागरमोथा और चौलाईके रसमें घोटकर दश पुट देनेसेभी अभ्रक भस्म होती है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

नवमविधिः ।

पीतामलकसौभाग्यपिष्टं चक्रीकृताभ्रकम् ।
पुटितं षष्टिवाराणि सिन्दूराभं प्रजायते ॥
क्षयाद्यखिलरोगघ्नं भवेद्रोगापनुत्तये ॥ ४९ ॥

हरताल आवलेका रस और सुहागा धान्याभ्रकमें मिलाकर पीसे और चकती बनाकर साठ वार आँच दे तो सिन्दूरके रंगकी भस्म हो जाती है, इसके सेवनसे क्षय आदि रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ४९ ॥

दशमविधिः।

धान्याभ्रकं समादाय मुस्ताक्काथैर्दिनत्रयम् ॥ ५० ॥
तद्वत्पुनर्नवानीरैः कासमर्दरसैस्तथा।
नागवल्लीदलरसैः सूर्यक्षारैः पृथक् पृथक् ॥ ५१ ॥
दिनेदिने मर्दयित्वा क्काथैर्वटजटोद्भवैः।
गत्वा पुटत्रयं पश्चात् त्रिपुटैः स्नुग्जटाजलैः ॥ ५२ ॥
त्रिगोक्षुरकषायेण त्रिःपुटेद्वानरीजलैः।
मोचाकन्दरसैः पाच्यं त्रिवारं कोकिलाक्षकैः ॥ ५३ ॥
रसैः पुटेत्ततो धेनुक्षीरैरष्टपुटेन्मुहुः।
दध्ना घृतेन मधुना स्वच्छया सितया तथा ॥ ५४ ॥
एकमेकं पुटं दद्यादभ्रमेवं मृतं भवेत्।
सर्वरोगहरं व्योम जायते योगवाहकम् ॥ ५५ ॥
कामिनीमददर्पघ्नं शस्तं मरणनाशनम्।
वृष्यमायुष्करं भुक्तं प्रजावृद्धिकरं परम् ॥ ५६ ॥

धान्याभ्रक लेकर तीन दिन मोथेके काढेमें मले, फिर पुनर्नवा, विषखपरा, परवल, पानके रस और शोरा इन प्रत्येकमें तीन तीन पुट दे। पीछे बडकी जटाके रसके तीन पुट देकर थूहरके दूध, गोखुरूके काढे, कौंच, कदलीकन्द और तालमखानेके रसमें एक एक करके तीन पुट देकर दूधकी आठ पुट दे, फिर दही, मक्खन, शहत, सफेद चीनी इन सबकी एक एक पुट[1] दे। इस रीतिसे उक्त औषधियोंके पुट देनेसे अभ्रककी सर्वोत्तम भस्म होजाती है। कैसा ही रोग क्यों न हो अनुपानके संग सेवन करनेसे वह अच्छा हो जाता है। मनुष्य इसके सेवनसे स्त्रियोंके दर्पको हरलेता है, मृत्युका पराजय करता। बलवान् होता और सन्तानोंको बढाता है ॥ ५०-५६ ॥

---

१ पुट देनेमें प्रायः १ दिन खरल कर सुखाके पुट देते हैं।

एकादशविधिः ।

पुनर्नवां कुमारीं च चपलां वानरीं तथा ।
मुशलीं चेक्षुवल्लीं च तथा तामलकीरसैः ॥ ५७ ॥
प्रत्येकैकेन पुटयेत्सप्तवारं पुनः पुनः ।
अर्कसेहुण्डदुग्धेन प्रदेयाः सप्तभावनाः ॥ ५८ ॥
एवं तन्म्रियते वज्रं सर्वरोगहरं परम् ॥ ५९ ॥

सांठ, घीकुवार, पीपल, कौंच, मूसली, पौंडा, भूमिआँवला इनके रसोंकी सात सात भावना देकर आँक और थूहरके दूधकी सात सात भावना देवे। और सभी भावनाओंमें आरने उपलोंकी आँचमें फूँकता जावे तो अभ्रकभस्म होजाता और सब रोगोंको हरता है ॥ ५७--५९ ॥

द्वादशविधिः ।

वटमूलत्वचः क्वाथैस्ताम्बूलीपत्रसारतः ।
वासामत्स्याक्षिकाभ्यां वा मीनाक्ष्यासकठिल्लया ॥ ६० ॥
पयसा वटवृक्षस्य मर्दितं पुटितं घनम् ।
भवेद्विंशतिवारेण सिन्दूरसदृशं घनम् ॥ ६१ ॥

अभ्रकको बडके जडकी छालके काढे, पानके पत्रोंके रस, अडूसा, मछेछी, सफेद कनेर, लाल पुनर्नवा और बडके दूधकी अलग २ पुट देकर आँच दे, ऐसी २० पुट देनेसे सिन्दूरके समान लालभस्म होजाता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

त्रयोदशविधिः ।

दुग्धत्रयं कुमार्यम्बु गङ्गापुत्रं नृमूत्रकम् ।
वटाङ्कुरमजारक्तमेभिरभ्रं सुमर्दितम् ॥ ६२ ॥
शतधा पुटितं भस्म जायते पद्मरागवत् ॥ ६३ ॥

आक, थूहर और बडका दूध, घीकुआरका रस, नागरमोथा, मनुष्यका मूत्र, बडकी जटाओंका रस और बकरीके लोहूमें अलग अलग काले धान्याभ्रकको खूब घोटके एक सौ पुट देनेसे उसकी पुखराज माणिके समान भस्म हो जाता है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

चतुर्दशप्रकारः ।

अभ्रकं त्रिफलाशुद्धं क्षिपेच्छुक्के चतुर्गुणे ।
चत्वारिंशद्दिनान्येव स्थापयेत्तत्र बुद्धिमान् ॥ ६४ ॥
पलार्द्धं पारदं शुद्धं पलं बब्बूरजं नवम् ।
कुसुमं च समादाय मर्दयेद्भिषगुत्तमः ॥ ६५ ॥
उभयोर्गुटिकामेकां कृत्वा तत्रैव निक्षिपेत् ।
दंडेन चालयेन्नित्यं त्रिदिनं नाधिकं ततः ॥ ६६ ॥
मर्यादादिवसे पूर्णे खल्वे क्षिप्त्वा विमर्दयेत् ।
घनत्वमागतं दृष्ट्वा चक्रिकां कारयेद्बुधः ॥ ६७ ॥
घर्मे संशोष्य विधिना ततो गजपुटे पचेत् ।
पुनः शुक्तान्तरेणैव मर्दयेदेकवासरे ॥ ६८ ॥
वन्योपलैः पचेदेवं कुर्याद्वारत्रयं ततः ।
भस्मीभूतमिदं खादेद्गुञ्जामात्रं निरन्तरम् ॥ ६९ ॥
अन्धोऽपि दिव्यदृष्टिः स्यात्तीव्रो वह्निश्च जायते ।
वातपित्तकफातंकाँस्तथैव रुधिरामयान् ॥ ७० ॥
प्रमेहान्नाशयेत्सर्वान्नात्र कार्या विचारणा ।
अतीव पुष्टिजनकं व्रणतृणनाशनं परम् ॥ ७१ ॥
कष्टप्लीहोदरग्रन्थिकृमिक्ष्वेडविनाशनम् ॥ ७२ ॥

बुद्धिमान् वैद्य अभ्रकको हड बहेडे और आँवलोंमें शुद्ध कर उससे चौगुने काँजीमें ४० दिन तक रखै, आधा पल पारा शोधा हुआ और पल भर बबूरके नये फूल लेकर घोटे, फिर उन दो चीजोंकी टिकिया बनाकर उसी कांजीमें छोडदेवे और तीन दिन तक बराबर डंडेसे हिलाताजाय अधिक नहीं। पीछे खरलमें डाल घोटे, जब गाढा होजावे तो टिकिया बनाले और धूपमें सुखाकर विधिसे गजपुटमें उसे फूंके, फिर दूसरे काँजीसे १ दिन घोटे और तीन बार आरने उपलोंसे उन्हें फूँकले, वह अभ्रक जब भस्म होजावे तो रत्तीभर रोज खावे इससे अन्धेकी भी आँख तेज होसकती हैं और जाठराग्नि दीप्त होजाती है। वात पित्त कफ और रुधिरविकार इक्कीस प्रकारके प्रमेह नष्ट होजाते हैं इसमें

सन्देह नहीं । यह बडा पौष्टिक. घाव और प्यासको दूर करनेवाला, कुष्ठ तापतिल्लीको दूर करनेवाला पेटमें गाँठसी पडजाना कीडे तथा विषदोषका नाशकारक है ॥ ६४-७२ ॥

पंचदशविधिः ।

वज्रार्कोद्भवदुग्धधेनुसलिलैर्ब्राह्मीरुदन्तीबला
वासाचित्रकशाल्मलीबलवराकूष्मांडिका दाडिमी ।
जातीगोक्षुरशंखपुष्पलतिकामेदामृतावर्वरी
द्राक्षामूलकराक्षसीतुलसिकामुण्डीविशालामदा ॥ ७३ ॥
गोजिह्वासलिलैर्विदारिलतिकाशृङ्ग्यग्रगन्धाजटा
शतपुष्पातपनोद्भवैश्च रसकैः संवेष्टयेद्वैद्यराट् ।
रात्रौ संपरिपाचयेद्गजपुटे सप्तैव वारान् पृथक्
न्यग्रोधस्य जटारसस्य सततं केशेशतोयस्य च ॥ ७४ ॥
भावश्चैव पुटाश्च विंशतिमिता घृष्टा कपित्थस्य वै
चिंचिण्या फलकोद्भवैश्च सलिलैः श्रीमत्पुटेनांचितैः ॥
पश्चान्निम्बुरसेन धेनुपयसा संमिश्र्य गौडस्य च
दध्ना खण्डघृतस्य रम्यमधुना वारांश्च पंचादश ॥
पश्चाच्चन्द्रिकयोर्मिवर्जितमथाभ्रं वै सुशुद्धं भवे-
द्रक्तं रम्यतरं सुसेव्यमवनीशानां गणैः सर्वदा ॥ ७५ ॥

वज्राभ्रकमें आकके दूध, गोमूत्र, ब्राह्मी, रुद्रवन्ती, खरेटी, अडूसा, चित्रक, सेमलके रस, नागरबेल, हरड, बहेडा, आंवला, पेठेका रस, अनारके पत्ते, चमेली, गोखुरू, शंखाहुली, मेदा, गिलोय, वनतुलसी, दाख, मूली, भटेउर, तुलसी, गोरखमुण्डी, इन्द्रायण, धायके फल, गोभीका रस, विदारीकन्द, काकडासिंगी, वच, जटामांसी, सौंफ और जमालगोटेके रसमें भावना देकर टिकिया बनावे, दिनमें उन्हें सुखालेवे उन्हें किसी हांडीमें रख सात कपड मिट्टीकर सातही रात गजपुटमें फूंकदे । प्रत्येक बार ठंडा होने पर निकालकर ऊपर कहेहुए रसोंमें घोटे तब गजपुटमें फूंके फिर बडकी जटाओंके तथा भांगरेके रसमें सात सात भावना देकर गजपुटमें फूंके इसी प्रकार कैथ और इमलीके रसकी तथा कोदोंके काढेकी पुट देकर गजपुटमें फूंके । फिर नींबूके रस और गायका दूध, गुड, दही, चीनी,

घी और शहदकी अलग अलग पन्द्रह पुट दे इस विधिसे अभ्रककी चन्द्रक-रहित शुद्ध रक्तवर्ण और राजाओंके सेवन योग्य भस्म होजाता है ॥ ७३-७५ ॥

षोडशविधिः ।

शुद्धधान्याभ्रकं मुस्ता शुण्ठीषड्भागयोजितम् ।
मर्दयेत्काञ्जिकेनैव दिनं चित्रकजे रसैः ॥ ७६ ॥
ततो गजपुटे दद्यात्तस्मादुद्धृत्य मर्दयेत् ।
त्रिफलावारिणा तद्वत्पुटेदेवं पुटैस्त्रिभिः ॥ ७७ ॥
बलागोमूत्रमुसली तुलसी सूरणद्रवैः ।
मर्दितं पुटितं वह्नौ त्रिस्त्रिवेलं व्रजेन्मृतिम् ॥ ७८ ॥

नागरमोथा और सोंठका चूर्ण ६ भाग मिलाकर शोधित धान्याभ्रकको १ दिनभर कांजीमें खरल करे और गजपुट देकर फूँकदे । फिर चित्रकके रसमें उसे घोट गजपुटमें फूंके । जब ठंढा होजाय तो त्रिफलाके रसमें घोटकर इसी प्रकारसे तीन बार फूंके । फिर नला (खरेंटी) के रस गोमूत्र, मूसलीके काढे, तुलसीके पत्तोंके रस, और जमीकन्दके रसको अभ्रकमें अलग अलग डालकर खरल करनेसे तथा प्रत्येक रसके तीन तीन पुट देनेसे अभ्रकका उत्तम भस्म होजाता है ॥ ७६--७८ ॥

सप्तदशविधिः ।

नागबला भद्रमुस्ता दुग्धं तु वटकस्य च ।
यद्वा वटजटातोयैर्हरिद्रावारिणा पुटेत् ॥ ७९ ॥
मञ्जिष्ठाक्काथतोयेन सर्वैरेभिर्यथाक्रमम् ।
पुटितं भावनायोगाद्वरमेतत्पुटेन्मुहुः ॥
जायते ह्यरुणं चाति भस्म वज्राभ्रकोद्भवम् ॥ ८० ॥

वज्राभ्रकको गुलसकरी, नागरमोथा, बडका दूध, या बडकी जटाओंका रस, हलदीका पानी, मँजीठका काढा इन औषधोंकी क्रमसे भावना दे और प्रत्येक औषधिका उत्तम पुट दे, इससे वज्राभ्रकका सुन्दर लाल भस्म होजाताहै॥७९-८०॥

अष्टादशविधिः ।

ततो धान्याभ्रकं कृत्वा पिष्ट्वा मत्स्याक्षिकारसैः ।
चक्रीकृत्य विशोष्याथ पुटे दत्त्वाभ्रके पुटे ॥ ८१ ॥

पुटेदेव हि षड्वारं पुनर्नवरसैः सह ।
कलांशं टंकणेनापि सम्मर्द्य चक्रिकाकृतम् ॥ ८२ ॥
ऊर्ध्वभागे पुटेत्तद्वत्सप्तवारं प्रयत्नतः ।
एवं वासारसेनापि तन्दुलीयरसेन च ॥ ८३ ॥
प्रपुटेत्सप्तवाराणि पूर्वप्रोक्तविधानतः ।
एतात्सिद्धं घनं सर्वयोगेषु विनियोजयेत् ॥ ८४ ॥

धान्याभ्रक करके उसको मछेछी नामक औषधके रसमें खरल करे, फिर उसकी टिकिया बना धूपमें उन्हें सुखा, सकोरोंके बीचमें रखके गजपुटमें फूंकदे । पीछे गदहपुरैनाके रसकी छः पुट देकर अभ्रकका सोलहवां भाग सुहागा डाले, फिर उसको खरल कर टिकिया बनाले, उन्हें गजपुटमें फूंके । इस प्रकार सात पुट दे । अडूसेके रस और चौलाईके रसकी भी सात सात भावना दे बस उत्तम अभ्रक-भस्म सिद्ध होजावेगा उसे अनुपानभेदसे अनेक रोगोंमें देवे ॥ ८१--८४ ॥

ऊनविंशविधिः ।

सुकुट्टिताभ्रं किल खल्वमध्ये तप्तं निषिञ्चेत्पयसा गवां वै ।
तल्लोहपात्रे मृदुवह्निपक्वं घृतेन किञ्चिच्च विलोडयित्वा ॥ ८५ ॥
शालीविमिश्रं किल वस्त्रमध्ये बद्ध्वा दृढं पोटलिमम्बुपात्रे ।
विघृष्य तोयान्तरसंस्थितं तद्धान्याभ्रकं सिद्धिमुपैति पश्चात् ८६
खल्वे सुरम्ये किल घर्षयित्वा जले चतुःषष्टिवनस्पतीनाम् ।
घर्मेऽथ संशोष्य दिनान्तकाले वनोत्पलानां पुटमाचरेच्च ॥
एवंविधं मारितमभ्रकं च सदोपयुञ्जीत भिषक्क्रियासु ॥ ८७ ॥

बज्राभ्रकको खरलमें कूटकर गर्म करै और उसे गायके दूधमें बुझावे, फिर उसे किसी कढाई आदिमें घृत डालकर मन्दी आँचसे भूंजे । फिर उसमें अभ्रकसे दूने धान मिलाकर किसी मजबूत कपडेसे बाँध उस थैलीको पानीमें भिगोदे । फिर उस अभ्रकको खूब धो दूसरे पानीमें रखदे और थैलीको खूब मले, अनुमानसे ४–५ घंटेमें इस क्रियासे थैलीसे सब अभ्रक पानीमें आजाता है । और शुद्ध धान्याभ्रक हो जाता है । पीछे उस अभ्रकको सुन्दर खरलमें आगे कही जानेवाली औषधियोंके रसमें घोट, धूपमें सुखाकर रातमें सुन्दर सूखेहुए आरने उपलोंकी आँचमें फूंके इस प्रकार सिद्ध किये हुए अभ्रकभस्मको वैद्य उपयोगमें लावे ॥ ८५–८७ ॥

दुग्धं रवेर्वै वटदुग्धवाजिकुमारिकाणामनिलारितिक्ताः ।
मुस्तागुडूचीविजयात्रिकंटवर्ताकिनीपर्णियुगं च गुल्मम् ॥ ८८ ॥
सिद्धार्थको वै खरमञ्जरीणां वटप्ररोहं ह्यजशोणितं च ।
बिल्वाग्निमन्थोग्निसतिन्दुकानां हरितकीपाटलिकासमूहैः ॥ ८९ ॥
गोमूत्रधात्रीकलिभंभकुम्भीतालीसपत्रं च सतालमूली ।
वृषाश्वगन्धामुनिभृङ्गराजरम्भाजलं सार्द्रसुसप्तपर्णम् ॥ ९० ॥
धतूरलोध्रं च सदेवदारु वृन्दासदूर्वाद्वयकासमर्द्दैः ।
मरीचकं दाडिमकाकमाची सशंखपुष्पी नतनागवल्ली ॥ ९१ ॥
पुनर्नवामण्डुकपर्णिका च इन्द्रायणी भार्गिसदेवदाली ।
कपित्थलिङ्गीकटूकिंशुकानां कोषातकीमूषकपर्ण्यनन्ता ॥
मीनाक्षिकाकारवितैलपर्णी कुम्भी तथार्द्रा च शतावरीणाम् ॥ ९२ ॥

आक, बड और थूहरका दूध, घीकुआरका रस, अंडीकी जडका रस, कुटकी, मोथा, गिलोय, भाँग, गोखुरू, कटेरी, शालिपर्णी, पृष्ठपर्णी, सफेद सरसों, खरमंजरी, बडकी जटा, बकरेका लोहू, बेल, अरणी, चित्रक, तेंदू, हरड, पाढलकी जड, गोमूत्र, आँवले, बहेडा, जलकुंभी, तालीसपत्र, मूसली, अडूसा, असगंध, अगस्तियाका रस, भाँगरा, केलेका रस, सतोना, धतूरा, लोध, देवदारु, तुलसी, दोनों दूब, कसौंदी, मिर्च, अनारदानेका रस, मकोय, शंखपुष्पी, बालछड, पानका रस, सोंठ, मण्डूकपर्णी, इंद्रायण, भारंगी, देवदाली, कैथ, शिवालिङ्गी, कटुवल्ली, ढाकका रस, तोरई, मूषकपर्णी, जवासा, मछेछी, कलौंजी, तैलपर्णी, पंचांगुलका रस, टुंटक, गुड, सुहागा, मालती, सप्तपर्णी, नागबला, अतिबला, महाबला, शतावर, कौंचकी जडका रस, गाजर, गर्जर, प्याज, लहसन, उटंगण, अमरबेल, हिलमोचिका, दुद्धी, पातालगरुडी, जटामांसी, दूध, दही, घृत, शहत, खाँड, धाय, पालंकिका इन ९० औषधि तथा पदार्थोंसे कोई कोई वैद्य अभ्रकको घोट तथा सुखाकर भावना देते हैं कोई यथाक्रम ६० औषधियोंसे और कोई ८० संख्याही तकके पदार्थोंसे घोटते हैं पर हम तो " अधिकस्याधिकं फलम् " समझते हैं ॥ ८८-९२ ॥

एभिश्चतोयैः स्थितखल्वमध्ये विघर्षयेच्छुष्कभवं तथैव ।
वन्योत्पलानां पुटमग्निशीतं पुनः पुनःखल्वतले विघर्षेत् ॥ ९३ ॥

एभिः क्रियां षोडशवारमेकं वल्लीजलानां पुटमारभेच्च ।
निश्चन्द्रगोपारुणरङ्गतुल्यं भस्मामृतं दिव्यरसायनं च ॥ ९४ ॥
नानानुपानैरजरामरत्वं शरीरिणां सेव्यमिदं वरिष्ठम् ।
गुणैः सहस्रावधि सेवकानां समस्तरोगघ्नमिदं प्रसिद्धम् ॥ ९५ ॥

उक्त औषधियोंके रसमें अभ्रकको खरलमें खूब घोटे सूखजानेपर जङ्गली उपलोंकी आगमें फूंके, और उसे निकालकर ठंढा होनेपर घोटे और फिर आंच दे इसी प्रकार हरएक औषधिके सोलह पुट देवे और रस निकालने योग्य औषधिका तो रस डाले तथा क्वाथयोग्य औषधिके क्वाथका पुट देवे इस विधिसे यह अभ्रक चन्द्रकरहित भस्म होजाताहै । तथा उत्तम लाल होजाताहै यह अमृतके तुल्य उत्तम रसायन है । और अलग २ अनुपानोंके साथ सेवन करनेसे देहको अजर अमर करताहै इसलिये मनुष्योंको इस उत्तम रसका सेवन करना चाहिये । अपने अनेकगुणोंसे यह रस रोगियोंके सम्पूर्ण दोषोंको दूर करता है ॥ ९३-९५ ॥

कार्यपरत्वेन पुटसंख्या ।

दशादिसुशतान्तः स्यात्पुटो वै व्याधिनाशने ।
शतादिस्तु सहस्रान्तः पुटो देयो रसायने ॥ ९६ ॥

दशसे लेकर सौ पुटतक शोधा हुआ अभ्रक रोगोंको दूर करताहै यदि सौसे लेकर हजारपुट विधिपूर्वक दी गई हो तो यह रसायन होजाता है ॥ ९६ ॥

भावनापुटयोर्निर्णयः ।

सहस्रपुटपक्षे तु भावना पुटनं भवेत् ।
मर्दनं तु तथा न स्यादिति वैद्यवरा जगुः ॥ ९७ ॥

वैद्योंका मत है कि सौ पुटोंतक तो औषधियोंकी भावना दे और घोटे पर हजार पुटोंमें मर्दन न करे ॥ ९७ ॥

अभ्रकभस्मपरीक्षा ।

निश्चन्द्रं च सुसूक्ष्मं च लोचनांजनसन्निभम् ।
तदा मृतमिति प्रोक्तमभ्रकं चान्यथामृतम् ॥ ९८ ॥

चमकरहित खूब महीन आंखमें लगानेवाले काजलकेसी भस्म होजाय तो उसे सिद्ध जानना, नहीं तो कच्ची ही समझना चाहिये ॥ ९८ ॥

किञ्च ।

मृतं निश्चन्द्रतां यातमभ्रकं चामृतोपमम् ।
सचन्द्रं विषवज्ज्ञेयं मृत्युकृद्बहुरोगकृत् ॥ ९९ ॥

जो अभ्रक अच्छी तरह चन्द्रकरहित होजाय वह भस्म अमृतके समान जानना यदि चमकदार ही रहजाय तौ विषके तुल्य मृत्यु और रोगके देनेवाली होती है ॥ ९९ ॥

अमृतीकरणम् ।

त्रिफलात्वक्कषायस्य पलान्यादाय षोडश ।
गोघृतस्य पलान्यष्टौ मृताभ्रस्य पलानि दश ॥ १०० ॥
एकीकृते लोहपात्रे विपचेन्मृदुवह्निना ।
द्रव्ये जीर्णे समादाय योगवाहे प्रयोजयेत् ॥
अन्येषामपि धातूनाममृतीकरणं त्विदम् ॥ १०१ ॥

त्रिफलाकी छालका काढा १६ पल, गायका घृत ८ पल, मारा हुआ अभ्रक १० पल, इन सबको इकट्ठा कर लोहेकी कढाईमें धीमी आंचसे पकावे, जब पानी और घी जल जाय खाली अभ्रक ही रहजाय तो उसे उतार और ठंढा कर रख छोडे और योगोंमें उन २ अनुपानोंके साथ देनेसे यह अभ्रकका अमृतीकरण कहा जाता है इसी रीतिसे और धातुओंका भी अमृतीकरण समझना चाहिये कोई वैद्य मक्खन तथा घृतमें भी अमृतीकरण कहते हैं ॥ १०० ॥ १०१ ॥

किञ्च ।

तुल्यं घृतं मृताभ्रेण लोहपात्रे विपाचयेत् ।
घृतं जीर्णे ततश्चूर्णं सर्वकार्येषु योजयेत् ॥ १०२ ॥

अभ्रकके भस्मकी बराबर गायका घी लेकर लोहेकी कढाईमें चढावे और उसे पकावे, घीके जलजानेपर जब चूर्ण बाकी रहजाय तब उसे सब कामोंमें लावे॥१०२॥

अभ्रकभस्मगुणाः ।

रोगान्हत्वा दृढबलचयं वीर्यवृद्धिं विधत्ते
तारुण्याढ्यं रमयति शतं योषितां नित्यमेव ।
दीर्घायुष्काञ्जनयति सुतान् सिंहतुल्यप्रभावान्
मृत्योर्भीतिं हरति सततं सेव्यमानं मृताभ्रम् ॥ १०३ ॥

उत्तम अभ्रकका भस्म सदा सेवन करनेवालेके सब रोगोंका नाशकर शरीरमें प्रबल पराक्रम करता है, शुक्रको बढाता है, पूर्णयुवती एकसौ स्त्रियोंसे क्रीडा

करसकता है, चिरञ्जीवी और सिंहके समान पराक्रमी पुत्रोंको उत्पन्न करता है और मरनेका भय दूर करता है ॥ १०३ ॥

किञ्च ।

गौरीतेजः परममममृतं वातपित्तक्षयघ्नं
प्रज्ञाबोधि प्रशमितजरं वृष्यमायुष्यमग्र्यम् ।
बल्यं स्निग्धं रुचिदमकफं दीपनं शीतवीर्यं
तत्तद्योगैः सकलगदहृद्व्योम सूतेन्द्रबीजम् ॥ १०४ ॥

अभ्रक श्रीपार्वतीजीका तेज है, श्रेष्ठ अमृत है, वात पित्त और क्षयका नाश करता है, बुद्धिकी स्फूर्ति तथा वृद्धावस्थाका नाश करता है, बल तथा आयुको बढानेवाला है, देहमें कोमलता लानेवाला, भोजनमें इच्छा करानेवाला, कफका नाश करनेवाला, जाठराग्निको प्रज्वलित करनेवाला, ठंढे वीर्यवाला है, अलग २ अनुपानोंसे सम्पूर्ण रोगोंको नाश करता है और पारेको बाँधता है ॥ १०४ ॥

वयःस्तम्भकारी जरामृत्युहारी बलारोग्यधारी महाकुष्ठहारी ।
मृतोऽयं रसः सर्वरोगेषु योज्यः सदा सूतराजस्य वीर्येण तुल्यः॥१०५॥
देहदार्ढ्यस्य सिद्ध्यर्थं त्रिगुञ्जं भक्षयेद्घनम् ।
नातःपरतरं किञ्चिज्जरामृत्युविनाशनम् ॥ १०६ ॥

भली भाँति मरा हुआ अभ्रक अवस्था स्थिर करनेवाला, वृद्धावस्था तथा मृत्युको हरनेवाला, शक्ति तथा आरोग्यताकारक बढे कुष्ठको दूर करनेवाला, सब रोगोंमें दिया जासकता है और पारेके भस्मके बराबर इसमेंभी गुण हैं शरीरके दृढ करनेके लिये ३ रत्ती अभ्रक खाना चाहिये, इससे बढकर बुढापा और मृत्युनाशक दूसरा औषध नहीं है ॥ १०५॥ १०६॥

मृताभ्रकं कामबलप्रदं च विषं मरुच्छ्वासभगन्दराख्यम् ।
मेहभ्रमं पित्तकफं च कासं क्षयं निहन्त्येव यथानुपानात् ॥ १०७ ॥

अच्छी तरह भस्म हुआ अभ्रक काम और बलको देता । विष, वायुविकार, श्वास, बवासीर, प्रमेह, चित्तभ्रम, पित्त, कफ, खाँसी और क्षयको अनुपान-भेदसे दूर करता है ॥ १०७ ॥

शुद्धाभ्रं ननु वल्लकद्वयमितं कृष्णामधुभ्यां युतं
मेहश्वासविषं च कुष्ठमतुलं वातं च पित्तं कफम् ॥

कासक्षीणक्षतक्षयं ग्रहणिकापाण्डुं भ्रमं कामलां
गुल्माद्यं च तथानुपानविधिना मृत्युं च जेजीयते ॥ १०८ ॥

शुद्ध अभ्रककी भस्म १ रत्तीसे ८ रत्तीतक पीपल और शहतके साथ सेवन करनेसे प्रमेह श्वास (दमा), विष, कोढ, वात, पित्त, कफ, खाँसी, दुबलापन, क्षय, घाव, संग्रहणी, पाण्डुरोग, भ्रम, कामला और गोलेका नाश करता है तथा अनुपानके साथ खानेसे मौतकोभी जीतती है ॥ १०८ ॥

प्रकारांतरम्।

अभ्रकं च निशायुक्तं पिप्पलीमधुना सह।
विंशतिं च प्रमेहाणां नाशयेन्नात्र संशयः ॥ १०९ ॥
अभ्रकं हेमसंयुक्तं क्षयरोगविनाशनम्।
रौप्यहेमाभ्रकं चैव धातुवृद्धिकरं परम् ॥ ११० ॥
गोक्षीरशर्करायुक्तं पित्तरोगविनाशनम्।
शैलेयपिप्पलीचूर्णमाक्षिकैः सर्वमेहहृत् ॥ १११ ॥
अभया गुडसंयुक्तं वातरक्तं नियच्छति।
स्वर्णयुक्तं क्षयं हन्ति धातुवृद्धिं करोति च।
रक्तपित्तं निहन्त्याशु चैलाशर्करया सह ॥ ११२ ॥

सबेरे हलदी, पीपल, तथा शहतके साथ अभ्रकभस्म खानेसे बीस प्रकारके प्रमेह नष्ट होते हैं सोनेके वर्कोंके साथ खानेसे क्षय नष्ट होता है। चांदी सोना और अभ्रकका भस्म मिलाकर खानेसे धातुकी वृद्धि होती है। चीनी या मिश्री मिले हुए गायके दूधके साथ खानेसे पित्तरोगोंको, शिलाजीत, पीपल और सोना-मक्खीके भस्मके साथ खानेसे सब प्रमेहोंको, हरड तथा गुडके साथ वातरक्तको नष्ट करती है सोनेके वर्कोंके साथ क्षयको दूर करै और धातुको बढावे, छोटी इलायची और चीनीके साथ खानेसे रक्तपित्तको हरती है ॥ १०९–११२ ॥

सितामृतासत्त्वयुतं मेहं नाशयते ध्रुवम्।
वरामधुघृतैः साकं शुक्रकृन्नेत्ररोगहृत् ॥ ११३ ॥
एलागोक्षुरभूधात्रीशर्करासहितं तथा।
गोदुग्धेन युतं हन्ति मूत्रकृच्छ्रं प्रमेहकम् ॥ ११४ ॥

त्रिसुगन्धवराव्योषशर्करानागकेशरैः ।
माक्षिकेण निहन्त्याशु पाण्डुरोगं क्षयं ज्वरम् ॥ ११५ ॥

अभ्रक मिश्री और गिलोयके सतके साथ खायाजाय तो अवश्य प्रमेहका नाश करता है । त्रिफला शहत और घीके साथ शुक्रकी वृद्धि और नेत्ररोगोंका हरण करता है । इलायची, गोखुरू, भूमिआँवला, गायका दूध और मिश्रीके साथ खानेसे सूजाक तथा प्रमेहको अच्छा करताहै तज, पत्रज, इलायची, हर्ड, बहेडा, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, मिश्री तथा नागकेशरके चूर्णके साथ शहद मिलाकर खावे तो पाण्डुरोग क्षय तथा जीर्णज्वरका नाश करता है ॥ ११३-११५ ॥

किञ्च ।

वेल्लव्योषसमन्वितं घृतयुतं वल्लोन्मितं सेवितं
दिव्याभ्रं क्षयपाण्डुसंग्रहणिकाशूलं च कुष्ठामयम् ।
जूर्तिं श्वासगदं प्रमेहमरुचिं कासामयं दुर्द्धरं
मन्दाग्निं जठरव्यथां परिहरेच्छोषामयान्निश्चितम् ॥ ११६ ॥

१ रत्ती अभ्रकका भस्म वायविडंग, सोंठ, मिर्च, पीपल तथा गायके घीके साथ खावे तो क्षय, पांडुरोग, संग्रहणी, शूल, कोढ, जूडी, श्वास, प्रमेह, खाँसी, मन्दाग्नि, उदररोग, शोष इन रोगोंको निश्चय दूर करै ॥ ११६ ॥

अभ्रकसत्त्वविधिः ।

ऊर्णा सर्जरसश्चैव क्षुद्रमीनसमन्वितम् ।
एतत्सर्वं तु सञ्चूर्ण्य च्छागदुग्धेन पिण्डिकाः ॥
कृता ध्माताः खराङ्गारैः सर्वसत्त्वं निपातयेत् ॥ ११७ ॥

ऊन, राल, छोटी मछली इनको पीसकर चूर्ण बनावे फिर गायके दूधसे सानकर उसकी टिकिया बनाले उनको तेज कोयलोंकी आँचमें बंकलनलसे फूँके तो सत्त्व निकलजावेगा ॥ ११७ ॥

अभ्रकसत्त्वपातनम् ।

पादांशं टंकणोपेतं मुसलीपरिमर्दितम् ।
रुंध्यात्कोष्ठ्यां दृढं ध्मातं सत्त्वरूपं भवेद्घनम् ॥ ११८ ॥
कासमर्दघनाधान्यवासानां च पुनर्भुवः ।
मत्स्याक्ष्याः काकवल्याश्च हंसपद्या रसैः पृथक् ॥ ११९ ॥

पिष्ट्वा पिष्ट्वा प्रयत्नेन शोषयेद्धर्मयोगतः ।
पलं गोधूमचूर्णस्य क्षुद्रमत्स्याश्च टंकणम् ॥ १२० ॥
प्रत्येकमष्टमांशेन दत्त्वा रुद्ध्वा विमर्दयेत् ।
मर्दने मर्दने सम्यक् शोषयेद्रविरश्मिभिः ॥ १२१ ॥
पंचाजं पंचगव्यं च पंचमाहिषमेव च ।
क्षिप्त्वा गोलान्प्रकुर्वीत किंचित्तिंदुकतोऽधिकान् ॥ १२२ ॥
अधःपातनकोष्ठ्यां हि ध्मात्वा सत्त्वं निपातयेत् ।
कोष्ठ्या किट्टं समाहृत्य विचूर्ण्य खकान्हरेत् ॥ १२३ ॥
तत्किट्टं स्वल्पटंकेन गोमयेन विमर्द्य च ।
गोलान्विधाय संशोष्य धमेद्भूयोऽपि पूर्ववत् ॥ १२४ ॥
भूयः किट्टं समाहृत्य मृदित्वा सत्त्वमाहरेत् ॥ १२५ ॥

४ चार सेर अभ्रकमें १ एक सेर सुहागा मिलाकर केलेके कंदके जलमें मर्दन करे फिर सुखाकर कोष्ठीयंत्रमें आध्मापित करे तो अभ्रक सत्त्वके आकारका घन होजाता है । फिर कसौंदी, मोथा, धनियाँ, वासा, पुनर्नवा (साठी), मत्स्याक्षी, काकवल्ली, हंसपदी इन औषधियोंके रसमें अलग २ घोटकर धूपमें सुखाता जाय, फिर ४ चार तोले गेहूँका आटा, छोटी मछली और सुहागा यह दोनों अभ्रकसे आठवाँ आठवाँ हिस्सा मिलाकर खरल करे । फिर बकरीकी मेंगन, मूत्र, दूध, दही, घृत लेकर इनकी अलग २ भावना देकर गोल २ टिकिया बनालेवे और उनको कोष्ठीयंत्रमें रखकर आध्मापित करे तो नीचे सत्त्व निकल जायगा सत्त्वके ऊपर कोष्ठीमें जो किट्ट जमाहुआ हो उसको तोडकर अभ्रकके सत्त्वके कणके निकाललेवे । फिर उस बची हुई किट्टमें थोडा सुहागा और गोबर मिलाकर टिकिया बनावे सूखनेपर पहलेकी तरह कोष्ठीयंत्रमें आँच देवे । इसी प्रकार तीन बारमें सब सत्त्व पतन होगा (सहत, चरबी, घी, तेल) इनमें गरम करके बुझानेसे सत्त्वके कनके नरम होकर मिल जाते हैं ॥ ११८-१२५ ॥

अन्यः प्रकारः ।

चूर्णीकृतं गगनपत्रमथारनाले धृत्वा दिनैकमवरस्थितसूरणं वा ।
भाव्यं रसैस्तदनु मूलरसैः कदल्याः पादांशटंकणयुतं शफरीशमिश्रम् १२६

पिण्डीकृतं तु बहुधा महिषीमलेन संशोष्य कोष्ठगतमाशु धमेन्महाग्नौ ।
सत्त्वं पतत्यतिरसायनजारणार्थं योग्यं भवेत्सकलरोगचयं निहन्ति ॥ १२७

अब अभ्रकसत्त्वपातनका और भी प्रकार कहते हैं । अभ्रकके चूर्णको एक दिन कांजीके और एक दिन सूरण (जमींकंद) के रसमें भिगोय देवे तत्पश्चात् केलाकन्दके रसमें भावना देकर चौथा हिस्सा सुहागा और छोटी मछली मिलाकर भैंसके गोबरके साथ छोटी २ गोली बनाकर धूपमें सुखालेवे तदनन्तर उन गोलियोंको कोष्ठिकामें रख बंकनाल धोंकनीसे खूब तेज आँच देवे तो सत्त्व निकलेगा। यह जारणयोग्य अत्यंत रसायन है इसके सेवनसे अनेक प्रकारके रोग नष्ट होजाते हैं ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

तत्रान्यमतम् ।

गुडः पुरस्तथा लाक्षा पिण्याकं टंकणं तथा ।
ऊर्णा सर्जरसश्चैव क्षुद्रमीनसमन्वितम् ॥ १२८ ॥
एतत्सर्वं तु संचूर्ण्य छागदुग्धेन पिंडिकाः ।
कृत्वा ध्माताः खरांगारैः सत्त्वं मुंचन्ति निश्चितम् ॥
पाषाणमृत्तिकादीनां व्योमसत्त्वस्य का कथा ॥ १२९ ॥

अभ्रक सत्त्वपातनमें किसीका मत है कि, गुड, गुग्गुल, लाख, खल, सुहागा, ऊन, राल, छोटी मछली इन सबको पीसि अभ्रक मिलाय बकरीके दूधमें चकती बांध धूपमें सुखालेवे फिर घडेमें रख बंकनाल धोंकनीसे धोंके तो सत्त्व निकलकर नीचे बैठजायगा। इस विधिसे पत्थर और मिट्टी तकका सत्त्व निकलसकता है और अभ्रकके सत्त्व निकलनेकी तो कौन बडी बात है॥ १२८ ॥ १२९ ॥

अथ सत्त्वस्यैकीकरणम् ।

कणशो यद्भवेत्सत्त्वं मूषायां प्रणिधापयेत् ।
मित्रपंचकयुग् ध्मातमेकीभवति घोषवत् ॥ १३० ॥

अभ्रकका जो सत्त्व है उसके छोटे २ कणोंको इकट्ठा कर उनमें मित्रपंचक मिलाय मूषामें रख तेज आंच देवे तो सत्त्वके रवा मिलकर काँसेके तुल्य होजाते हैं ॥ १३० ॥

अथाभ्रकसत्त्वपातनस्यान्योऽपि प्रकारः ।

अब अभ्रकके सत्त्वपातनका औरभी प्रकार कहते हैं ।

मृताभ्रं कदलीकंदे सप्ताहं भावयेद्बुधः ।
सूरणस्य रसेऽप्येवं मुस्ताक्काथे तथैव च ॥ १३१ ॥
संशोष्यास्मिन्प्रदातव्यं चतुर्थांशं च टंकणम् ।
गुंजागुग्गुललाक्षा च ऊणास्वर्जी तथैव च ॥ १३२ ॥
रालकं लघुमत्स्यं च यवक्षारं खलं तथा ।
सूरणश्चैव गंडूषस्त्रिफला चित्रकी तथा ॥ १३३ ॥
क्षीरकंदं च धत्तूरं लांगली पाटला तथा ।
बला वै गंधपाषाणं मक्षिकिट्टं च गोक्षुरुः ॥ १३४ ॥
चत्वारो लवणान्येवं मधु साँखलमेव च ।
शशकस्यास्थि दातव्यं कपोतोद्भवविट् तथा ॥ १३५ ॥
त्रिकुटा सर्षपाश्चैव तथैव तैलजीवनम् ।
महिष्या दधिदुग्धे च घृतमूत्रे तथैव च ॥ १३६ ॥
सर्वान् संमेल्य तुल्यांशान् ह्यभ्रके मेलयेत्पुनः ।
टंकत्रयमिता गुटिकाः कार्या वैद्यवरेण च ॥ १३७ ॥
शोषयित्वा च सूर्याग्नौ कोष्ठीयंत्रे विपाचयेत् ।
प्रध्माय बंकनालेन सत्त्वं चाधः प्रपातयेत् ॥ १३८ ॥
सत्त्वं निष्कृष्य चाप्येवं त्रिवारं विधिना पुनः ।
सत्त्वं पतति तत्सर्वं तप्तकांचनसन्निभम् ॥ १३९ ॥
मृतो यदि न लभ्येत तदा धान्याभ्रकं भजेत् ।
सत्त्वं तस्य तु कांस्याभं श्वेतवर्णं भविष्यति ॥ १४० ॥

अब अभ्रकके सत्त्वपातनका अन्य प्रकार कहते हैं । मरे हुए अभ्रकको सात दिन केलाके रसमें घोटे इसी प्रकार जमीकंदके रसमेंभी सात दिन पर्यंत तदनंतर सात दिन मोथेके क्काथकी भावना देकर धूपमें सुखाकर चौथा हिस्सा सुहागा फुलाकर डाले और चिरमिठी, गूगल, लाख, ऊन, सज्जी, राल, छोटी मछली, खल, जमीकंद, केंचुआ, हरड, बहेडा, आंवला, चित्रक, क्षीरकंद, धतूरेके बीज, कलिहारी, पाढ, बलबीज, गंधक, मोम, गोखरू, सेंधानोन, संचरनोन,

विडनोन, साँभरनोन, शहत, साँखला, शशेकी हड्डी, कबूतरकी बीठ, सोंठ, पीपल, मिर्च, गोखुरू, सरसों, तेलजीवन, भैंसका दूध, दही, घृत, मूत्र इन सबको समान भाग लेकर कूट पीसकर बारीक करलेवे । फिर तीन २ टंककी टिकरी बना धूपमें सुखालेवे और उन टिकरियोंको कोष्ठीयन्त्रमें रख उत्तम कोयलोंकी आंच देवे बंकनाल धोंकनीसे धोंके तो नरम सत्त्व निकल नीचे बैठजायगा, उसको निकाल खंगरको तोड चुंबकसे सत्त्वको निकाललेवे और फिर पहले कहा हुआ मसाला डालकर धोंके इसी प्रकार तीन बार करनेसे सब सत्त्व निकल आवेगा यदि मरा हुआ अभ्रक न मिले तो अन्याभ्रककाही सत्त्व निकाले लेकिन यह सत्त्व कांसेके तुल्य निकलेगा ॥ १३१-१४० ॥

अथाभ्रकसत्त्वशोधनम् ।

अथसत्त्वकणांस्तांस्तु मुस्ताक्काथाम्लकांजिकैः ।
शोधनीयं गुणोपेतं मूषामध्ये निरुध्य च ॥ १४१ ॥
सम्यक्पक्कं समाहृत्य द्विवारं प्रधमेत्ततः ।
इति शुद्धं भवेत्सत्त्वं योग्यं रसरसायने ॥ १४२ ॥

अब अभ्रक सत्त्वके शोधन करनेकी विधि कहते हैं । अभ्रकसत्वके कणोंको मोथेके क्काथ, अम्लवर्ग और कांजीमें शोधकर मूषामें रक्खे और उसमें कपरमिट्टी करके आँच देवे और फिर उसे निकालकर पहले कही हुई औषधियोंमें शुद्ध कर मूषामें रख आँच देवे तो अभ्रकका सत्त्व शुद्ध होकर पारेका बाँधनेवाला और रसायनके योग्य होताहै ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

अथाभ्रकसत्त्वमारणम् ।

सूततुल्यं व्योमसत्त्वं तयोस्तुल्यं च गंधकम् ।
कुमारीस्वरसैर्मर्द्यं यंत्रे सैकतके पचेत् ॥ १४३ ॥
दिनद्वयांते संग्राह्यं भक्षयेन्माषमात्रकम् ।
क्षयं शोषं तथा कासं प्रमेहं चापि दुष्करम् ॥ १४४ ॥
पांडुरोगं च कार्श्यं च जयेच्छीघ्रं न संशयः ॥ १४५ ॥

अब अभ्रकसत्त्वके मारणकी विधि कहते हैं। अभ्रकसत्त्व और पारा समान भाग लेवे और इन दोनोंके समान गंधक लेकर घीकुआरके रसमें घोटे और वालुकायंत्रमें पकावे दो दिनके अनन्तर उस सत्त्वको निकालकर प्रतिदिन एक

एक मासा सेवन करे तो क्षय, शोष, खांसी, प्रमेह, पांडुरोग, कृशता इन सबको शीघ्र ही नाश करता है ॥ १४३-१४५ ॥

दिव्याभ्ररसायनं रसरत्नसमुच्चयात् ।
सत्त्वस्य गोलकं ध्मातं सस्यसंयुक्तकांजिके ॥ १४६ ॥
निर्वाप्य तत्क्षणेनैव कुट्टयेल्लोहमारया ।
संप्रताप्य घनस्थूलकणान् क्षिप्त्वाथ कांजिके ॥ १४७ ॥
तत्क्षणेन समाहृत्य कुट्टयित्वा रजश्चरेत् ।
गोघृतेन च तच्चूर्णं भर्जयेत्पूर्ववत्त्रिधा ॥ १४८ ॥
धात्रीफलरसैस्तद्वद्धात्रीपत्ररसेन वा ॥
भर्जने भर्जने कार्यं शिलापट्टेन पेषणम् ॥ १४९
ततः पुनर्नवावासारसैः कांजिकमिश्रितैः ।
प्रपुटेद्दशवाराणि दशवाराणि गंधकैः ॥ १५० ॥
एवं संशोधितं व्योमसत्त्वं सर्वगुणोत्तरम् ।
यथेष्टं विनियोक्तव्यं जारणे च रसायने ॥ १५१ ॥

अब हम रसरतनसमुच्चय ग्रन्थमें लिखी हुइ दिव्याभ्ररसायनकी विधि कहते हैं । अभ्रकसत्त्वके गोलेको वार वार अग्निमें तपाकर धान्ययुक्त कांजीमें बुझावे तदनन्तर उस गोलेको कांजीसे अलग निकाल लोहेके खरलमें खूब कूटे और कूटनेपर भी जो बडे २ टुकडे रहजावें उनको फिर भी धानयुक्त कांजीमें बुझावे और उस कांजीसे शीघ्र ही निकाल खरलमें छोड रेतके समान बारीक करे तत्पश्चात् उस अभ्रक चूर्णको गायके घृतमें भूने और पहलेकी भाँति कांजीमें भिगोवे इसी प्रकार तीन बार गोघृतमें, तीन बार आँवलोंके रसमें और तीन बार आँवलोंके पत्तोंके रसमें भूने पर जब २ भूने तब २ एक पत्थरकी शिलपर पीस लिया करे । तत्पश्चात् पुनर्नवा, वासा और कांजी इनको मिलाकर दश पुट देवे । इसी रीतिसे गंधकके भी दश पुट देवे तो दिव्याभ्ररसायन सिद्ध होता है । यह शुद्ध किया हुआ दिव्याभ्ररसायन उत्तम गुणोंसे युक्त होता है, वैद्य इस सत्त्वके अपनी इच्छाके अनुसार पारेके जारणमें और रसायनमें युक्त करे ॥ १४६-१५१ ॥

अथ सत्त्वस्य मृदूकरणम् ।

मधुतैलवसाज्येषु द्रावितं परिवापितम् ।
मृदु स्याद्दशवारेण सत्त्वं लोहादिकं खरम् ॥ १५२ ॥

अब सत्त्वके मृदु करनेकी विधि लिखते हैं । अभ्रकसत्त्वको शहत, तेल, चर्बी, घृत इनमें गला २ कर बुझानेसे सत्त्व और लोह आदि कठिन धातु भी नरम होजाते हैं ॥ १५२ ॥

अथाभ्रकसत्त्वभस्मविधिः ।

पट्टचूर्णं विधायाथ गोघृतेन परिप्लुतम् ।
भर्जयेत्सप्तवाराणि चुल्लीसंस्थितखर्परे ॥ १५३ ॥
अग्निवर्णं भवेद्यावद्वारं वारं विचूर्णयेत् ।
तृणं क्षिप्त्वा दहेद्यावत्तावद्वा भर्जनं चरेत् ॥ १५४ ॥
ततः सगंधकं पिष्ट्वा वटमूलकषायतः ।
पुटेद्विंशतिवारेण वाराहेण पुटेन च ॥ १५५ ॥
पुनर्विंशतिवाराणि त्रिफलोत्थकषायतः ।
त्रिफलामुंडिकाभृंगपत्रपथ्योक्षभृंगकैः ॥ १५६ ॥
भावयित्वा प्रयोक्तव्यं सर्वरोगेषु मात्रया ।
सत्त्वाभ्रात्किंचिदपरं निर्विकारं गुणाधिकम् ॥ १५७ ॥
एवं चेच्छतवाराणि पुटपाकेन साधितम् ।
गुणवज्जायतेऽत्यर्थं परं पाचनदीपनम् ॥ १५८ ॥
क्षुधां करोति चात्यर्थं गुंजार्द्धमितसेवया ।
तत्तद्रोगहरैर्योगैः सर्वरोगहरं परम् ॥ १५९ ॥

अब अभ्रकसत्त्वके भस्म बनानेकी विधि कहते हैं। अभ्रकके मृतसत्त्वको किसी शिलापर खूब बारीक पीस गौका घी मिलादेवे तदनन्तर उसको कडाईमें छोडकर सात बार भूने, भूनते २ जब अग्निके तुल्य सुर्ख होजाय अथवा तिनका लगाते ही जल उठे तब तक भूने और जब ठीक २ भून जावे तब कडाईसे अलग निकालकर फिर शिलापर अच्छे प्रकार पीसे । इसी भाँति सात बार भूनकर गंधक मिला बडकी जडोंके काढेमें घोटकर बाराहपुटमें फूँक देवे इसी रीतिसे बीस

बाराहपुट देवे तथा बीस पुट त्रिफलाके काढेके देकर त्रिफला, गोरखमुंडी, भाँगरेके पत्ते, अडूसा और मूलीके रसोंकी भावना देवे तो दिव्य भस्म सिद्ध होवे इस सिद्धभस्मको सब रोगोंमें मात्रासे सेवन करना चाहिये। इस अभ्रकसत्त्वका भस्मसे आधिक और गुणोंमें उत्तम तथा दोषरहित कोई दूसरी औषधि नहीं है। यदि इस भस्मको १०० सौ वार पुटपाककी रीतिसे सिद्ध करे तो बहुतही गुणकारक होवे। यह पाचन, दीपन और भूँखको बढानेवाली है इसकी मात्रा आधी रत्ती है उन २ रोगोंके नाश करनेवाले योगोंके साथ यदि इस अभ्रकसत्त्व-भस्मको मात्रासे सेवन करे तो सब प्रकारके रोग नष्ट होजाते हैं। इस भस्मके अनुपान पूर्वोक्त अभ्रकके तुल्य जानने चाहिये॥ १५३-१५९॥

द्रुतयो नैव निर्दिष्टाः शास्त्रे दृष्टा अपि ध्रुवम्।
विना शंभोः प्रसादेन न सिध्यन्ति कदाचन॥ १६०॥

शास्त्रमें अभ्रककी द्रुतिका प्रकार नहीं लिखा है और हमने किसीको करते भी नहीं देखा। यद्यपि इसके बनानेकी प्रकार किन्ही २ ग्रथोंमें लिखा है तोभी विना शिवजीकी प्रसन्नताके सिद्ध नहीं होती। ऐसा होनेपर भी हम आगे द्रुतिका प्रकार इसलिये लिखते हैं कि, कदाचित् भाग्यवश शिवजीकी प्रसन्नतासे सिद्ध ही होजावे॥ १६०॥

अथाभ्रकद्रुतिविधिः।

अगस्त्यपत्रनिर्यासैर्मर्दितं धान्यकाभ्रकम्।
सूरणोदरमध्ये तु निक्षिप्तं लेपितं मृदा॥ १६१॥
गोष्ठभूमिं खनित्वा तु हस्तमात्रां हि पूरयेत्।
मासा निस्सारितं तत्तु जायते पारदोपमम्॥ १६२॥

धान्याभ्रकको अगस्तियाके पत्तोंके रसमें घोटकर जमीकंदके भीतर भरदेवे और उसका मुख जमीकंदकेही टुकडेसे बन्द करदेवे। ऊपरसे कपरमिट्टी करके गोष्ठ (गौओंके बाँधनेके स्थान) में एक हाथ जमीन खोदके गाड देवे और फिर उसे एक मासके बाद निकाले तो वह अभ्रक पारेके समान पतला हो जावेगा॥६१॥१६२॥

द्वितियः प्रकारः।

स्वरसेन वज्रवल्ल्याः पिष्टं सौवर्चलान्वितं गगनम्।
पक्कं शरावसंस्थं बहुवारं भवति रसरूपम्॥ १६३॥

अब द्रुतिका दूसरा प्रकार कहते हैं। वज्रवल्लीके रसमें संचरनोन मिलाकर धान्याभ्रकको पीसे तदनन्तर शरावसंपुटमें रख अग्निमें पकावे इसी प्रकार कई बार करनेसे पारेके तुल्य पतला हो जाता है ॥ १६३ ॥

तृतीयः प्रकारः

निजरससंपरिभावितकंचुकिकंदोत्थचूर्णपरिवापात्।
द्रुतमास्तेऽभ्रकसत्त्वं तथैव सर्वाणि लोहानि ॥ १६४ ॥

अब तीसरी विधि कहतेहैं। कंचुकी शाकके चूर्णको उसीके रसकी भावना देकर अभ्रकसत्त्वमें डाले तो वह पतला हो जाता है इसी प्रकार सर्व लोहोंकीभी द्रुति होती है ॥ १६४ ॥

चतुर्थः प्रकारः।

शुद्धकृष्णाभ्रपत्राणि पीलूतैलेन लेपयेत्।
घर्मे शोष्याणि सप्ताहं लिप्त्वा लिप्त्वा पुनः पुनः ॥ १६५ ॥
मर्दितं चाम्लवर्गेण तद्वच्छोष्याणि चाथ वै।
स्नुह्यर्कार्जुनवह्नीनां कटुतुंब्याः समाहरेत् ॥ १६६ ॥
क्षारं क्षारत्रयं चैतदष्टकं चूर्णितं समम्।
वज्रकंदं क्षीरकंदं बृहती कंटकारिका ॥ १६७ ॥
वनवृंताकमेतेषां द्रवैर्भाव्यं दिनत्रयम्।
अनेन क्षारकल्केन पूर्वपत्राणि लेपयेत् ॥ १६८ ॥
आतपे कांस्यपात्रे च धृत्वा धृत्वा पुनः पुनः।
एवं दिनत्रयं कुर्याद्द्रुतिर्भवति निर्मला ॥ १६९ ॥

अब चतुर्थ प्रकार कहते हैं। शुद्ध किये हुए काले अभ्रकके पत्रोंपर पीलूके तेलका लेप करके धूपमें सुखालेवे इसी प्रकार सात दिन तक बार २ पीलूके तेलका लेप कर धूपमें सुखावे और पीछे पारदके प्रकरणमें कहे हुए अम्लवर्गकी औषधोंसे घोटकर उसी प्रकार सुखावे तदनन्तर थूहर, आक, अर्जुनवृक्ष, चित्रक, कडवी तूंबी इनके खार तथा सज्जीखार, जवाखार, सुहागा इन आठोंका बारीक चूर्ण करलेवे और वज्रकंद, क्षीरकंद, बडी कटेरी, वनका बैंगन इनके रसमें उस क्षारचूर्णको मिलाकर घोटे जब ठीक २ घुटजावे तो अभ्रकके पत्रोंपर इसका लेप करके काँसेकी थालीमें रखकर धूपमें सुखालेवे इसी प्रकार तीन दिन

तक बारंबार क्षार कल्कका लेप करके सुखावे तो पारेकी तरह अभ्रककी निर्मल द्रुति होजाती है ॥ १६५--१६९ ॥

पञ्चमप्रकारः ।

कर्कोटीफलचूर्णं तु मित्रपंचकसंयुतम् ।
एतत्तुल्यं च धान्याभ्रमम्लैर्मर्द्यं दिनावधि ॥
अथ मूषागतं ध्मातं तद्द्रुतिर्भवति ध्रुवम् ॥ १७० ॥

अब पंचम प्रकार कहते हैं । ककोडाके फलके चूर्णको मित्रपंचक अर्थात् घृत, शहत, गुग्गुल, घुंघची, गुड इनमें मिलालेवे और इसीके बराबर धान्याभ्रकको मिलाय एक दिन अम्लवर्गकी औषधोंमें खरल कर मूषामें रख भट्टीमें बंकनाल धोंकनेसे खूब धोंके तो निश्चयसे अभ्रककी द्रुति होवे ॥ १७० ॥

षष्ठप्रकारः ।

धान्याभ्रकं च गोमांसमभ्रपादं च सैंधवम् ।
स्नुह्यर्कपयसां द्रावैर्मुनिजैर्मर्दयेत्त्र्यहम् ॥ १७१ ॥
तद्गोलं कदलीकंदे क्षिप्त्वा बाह्ये मृदा लिपेत् ।
करीषाग्नौ त्र्यहं पाच्यं द्रुतिर्भवति निर्मला ॥ १७२ ॥

अब छठा प्रकार कहते हैं । थूहर और आकके दूध तथा अगस्तियाके रसमें धान्याभ्रक, गौका मांस और अभ्रकका चतुर्थांश सेंधानमक डालकर तीन दिन पर्यंत घोटकर गोला बनालेवे और उस गोलेको केलाकंदमें रख कपरमिट्टी करके तीन दिन जंगली उपलोंकी आँच देवे तो अभ्रककी स्वच्छ द्रुति सिद्ध होजावे ॥ १७१ ॥ १७२ ॥

सप्तमप्रकारः ।

अभ्रकं नरतैलेन भावितं च सुचूर्णितम् ।
गोपेन्द्रलेपिता मूषा धमनाद्द्रुतिमाप्नुयात् ॥ १७३ ॥

अब साँतवां प्रकार कहते हैं । अभ्रकको रामकपूरके तेलकी भावना देकर पीसलेवे और उसे मूषामें रक्खे तदनंतर मूषामें बीरवहूटीके रक्तका लेपकर अग्निमें रख धोंकनेसे अभ्रककी द्रुति होती है ॥ १७३ ॥

अष्टमप्रकारः ।

श्वेताभ्रकं च संचूर्ण्य गोमूत्रेण तु भावयेत् ।
कदलीफलसंयुक्तं भावयेत्तद्विचक्षणः ॥ १७४ ॥

धमेत्तदंधमूषायां त्रिवारं च पुनः पुनः ।
द्रुतं भवति तद्वज्रं नात्र कार्या विचारणा ॥ १७५ ॥
अनेनैव प्रकारेण कुर्याद्द्रुतिमथोत्तमाम् ॥ १७६ ॥

अब आठवां प्रकार कहते हैं । सफेद अभ्रकका बारीक चूर्ण बनाकर गौके मूत्र और केलेके कंदकी भावना देकर अंधमूषामें रख अग्निपर रक्खे और इस प्रकार तीन वार भावना देकर बार २ धौंके तो अभ्रककी द्रुति होजाती है । इत्यादि पूर्वोक्त प्रकारोंसे अभ्रककी उत्तम द्रुति होती है ॥ १७४-१७६ ॥

अथानेकधातुद्रुत्येकीकरणम् ।

कृष्णागरुनाभिशिलारसोनसितरामठैरिमा द्रुतयः ।
सोष्णे मिलन्ति सर्वाः श्रीकुसुमपलाशबीजरसैः ॥ १७७ ॥

अब अनेक धातुओंसे बनाई हुई द्रुतियोंके एकमें मिलानेका प्रकार कहते हैं । काला अगर, कस्तूरी, लहसन, सफेद हींग इनको और सब द्रुतियोंको एकमें मिलाकर खरलमें घोटकर धूप वा आँचमें कुछ गर्म कर लौंग और ढाकके बीजोंके रसमें घोटे तो सब द्रुति मिलकर एक होजाती हैं ॥ १७७ ॥

अभ्रकासिद्धेः काठिन्यं दर्शयति ।

भाग्यं विनाभ्रद्रुतयो जायन्ते न कदापि हि ।
विना शम्भोः प्रसादेन न सिध्यन्ति कदाचन ॥ १७८ ॥
तथापि शास्त्ररूढत्वात्कदाचिद्भाग्ययोगतः ॥ १७९ ॥

यद्यपि उत्तम प्रारब्ध और श्रीशिवजीकी कृपा विना अभ्रककी द्रुति अर्थात् द्रावण सिद्ध नहीं होती तोभी शास्त्रमें इस द्रुतिका विधान होनेसे कदाचित् भाग्यवश सिद्ध होजावे इस हेतु मैंने भी यहां इसका विधान कहा है ॥१७८॥१७९॥

अथाभ्रकविद्धाक्रिया ।

श्वेताभ्रं श्वेतकाचं च विषसैंधवटंकणम् ।
स्नुहीक्षीरैर्दिनं मर्द्य तेन वंगस्य पत्रकम् ॥ १८० ॥
लेप्यं पादांशकल्केन चांधमूषागतं धमेत् ।
यावद्द्रावयते वंगं पूर्वतैले च ढालयेत् ॥ १८१ ॥
वार्यादिलेपमेकं च सप्तवाराणि कारयेत् ।

पुत्रजीवोत्थतैलेन ढालयेत्सप्तवारकम्।
तद्वंगं जायते तारं शंखकुन्देन्दुसन्निभम् ॥ १८२ ॥

अब अभ्रकवेधी क्रिया कहते हैं। थूहरके दूधमें सफेद अभ्रक, सफेद काच, सिंगिया विष, सेंधा नोन और सुहागा मिलाकर एक दिन अच्छे प्रकार घोटकर राँगेके पत्रोंपर लेप करदेवे और उन लेप किये हुए पत्रोंको अंधमूषामें रख धोंकनीसे धोंके जब वंग गलनेलगे तब पहले उसको तेलमें ढालदे और फिर पहले कहाहुआ लेप करके आँचमें गर्म करके (पुत्रजीव) जीयापोताके तेलमें ढालदेवे इसी प्रकार सात बार करनेसे वह शंख, कुन्द और चन्द्रमाके तुल्य सफेद चाँदी होजाताहै॥१८१॥१८२॥

द्वितीयप्रकारः।

पीताभ्रं गंधकं सूतं रक्तपुष्पं चतुर्थकम्।
वज्रीक्षीरेण संयुक्तं वंगं तारायते क्षणात् ॥ १८३ ॥

अब दूसरा प्रकार कहते हैं। हरताल, अभ्रक, गंधक, पारा और लाल फूलोंको बारीक पीसकर थूहरके दूधमें घोटे तत्पश्चात् रांगको गलाकर उसमें छोडे तो उत्तम चाँदी बनजाती है ॥ १८३ ॥

अथ पुटिताभ्रकगुणाः।

अभ्रस्त्वष्टादशपुटाद्वातहा द्विगुणेन च।
पित्तघ्नस्त्रिगुणेनैव कफहा मेहशोफहा ॥ १८४ ॥
अम्लपित्तामवातादिरोगे स्याद्गजकेसरी।
अभ्रं शतपुटादूर्ध्वं बीजसंज्ञां ध्रुवं लभेत् ॥ १८५ ॥
वीर्यौजःकान्तिमूलश्च सबीजो देहधारकः ॥ १८६ ॥

अब पुट दिये हुए अभ्रकके गुण कहते हैं। अठारह पुटकी अभ्रक वातरोगोंको नाश करतीहै और छत्तीस पुटकी अभ्रक पित्तरोगोंको नाश करती है। चौअन पुटकी अभ्रक कफरोग प्रमेह और सूजनको हरती है तथा अम्लपित्त और आमवातादि हाथीरूप रोगोंके नाश करनेमें सिंहके समान है। सौ पुटके अनन्तर शास्त्रकारोंने इस अभ्रकका बीज नाम रक्खा है यह सबीज अभ्रक वीर्य पराक्रम और शरीरमें कान्ति तथा देहका धारण करनेवाला है ॥ १८४-१८६ ॥

अथाभ्रककल्पम्।

निश्चंद्रमभ्रकं भस्म धात्रीव्योषविडंगकम्।
निष्कैकं भक्षयेत्प्राज्ञो वर्षमेकं निरंतरम् ॥ १८७ ॥

द्वितीये तु पुनर्वर्षे भक्षयेद्गुटिकाद्वयम् ।
एवं संवत्सरेणैव गुटिकैकां प्रवर्द्धयेत् ॥ १८८ ॥
त्रिवर्षस्य प्रयोगोयमभ्रकस्य प्रकीर्तितः ।
अनेन क्रमयोगेन व्योम्नः शतपलं नरः ॥ १८९ ॥
अद्याद्भवेन्न संदेहो वज्रकायो महाबलः ।
मासत्रयेण रक्ताख्यं क्षयकासं सुदारुणम् ॥ १९०
पंचकासांश्च हृद्गुल्मग्रहण्यर्शोभगंदरम् ।
आमवातं तथा शोषं पांडुरोगं सुदारुणम् ॥ १९१ ॥
मृत्युकल्पं महाव्याधिं वातपित्तकफोद्भवम् ।
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि नृणां पथ्याशिनां ध्रुवम् ॥ १९२ ॥

अब अभ्रककल्पकी विधि कहते हैं चमक रहित अभ्रककी भस्म, आँवले, सोंठ, मिरच, पीपल, वायाविडंग इन सबको सम भाग लेकर पीसे और चार २ मासेकी गोलियाँ बनावे, एक वर्ष पर्यन्त प्रतिदिन एक एक गोली सेवन करे । और जब दूसरे वर्षका प्रारम्भ हो तो प्रतिदिन दो गोली सेवन करना चाहिये । तीसरें वर्षमें तीन गोली नित्य सेवन करना चाहिये । अर्थात् प्रतिवर्ष एक गोलीकी वृद्धि करके सेवन करना उचित है। यदि पूर्वोक्त विधिसे१०० सौ पल (चार सौ तोले) अभ्रक विधिपूर्वक सेवन करे तो उस मनुष्यका शरीर वज्रके तुल्य दृढ होजावे यदि पथ्यसे भोजन करनेवाले मनुष्य तीन महीने तक इसका प्रयोग करे तो रक्तविकार, क्षयी, पांच प्रकारकी प्रबल खाँसी, हृदयरोग, गोला, संग्रहणी, बवासीर, भगंदर, आमवात, शोष अर्थात् सूखना पांडुरोग, मृत्युके तुल्य महाव्याधि, वात, पित्त और कफसे प्रकट अठारह प्रकारके कुष्ठ आदि समस्त रोग दूर होवें ॥ १८७-१९२ ॥

अभ्रकसेवने पथ्यानि ।

क्षाराम्लं द्विदलं चैव कर्कटी कारवेल्लकम् ।
वृंताकं च करीरं च तैलं चाभ्रे विवर्जयेत् ॥ १९३ ॥

अब अभ्रकके सेवनमें अपथ्य पदार्थ कहते हैं। खार और अम्ल अर्थात् खट्टे पदार्थ, दो दलके अन्न चना अरहर, मसूर, मूंग आदि ककडी, करेला, बैंगन, करीलका शाक (ककाराष्टक) और तेल इन सबको अभ्रक सेवन करनेवाला मनुष्य त्याग करे ॥ १९३ ॥

अपक्वाभ्रकसेवनेदोषाः।

चन्द्रिकादियुतमभ्रकं हठाज्जीवितं च झटिति प्रणाशयेत्।
व्याघ्ररोम इव चोदरस्थितं वा तनौ वितनुते गदान्बहून् ॥१९४॥

यदि अपक्व अर्थात् कच्चे अभ्रकका सेवन करे तो जैसे उदरमें रहनेसे व्याघ्रके रोम शरीरमें अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न करते हैं इसी प्रकार जो अभ्रक पकानेमें चमकदार रहगया है अर्थात् ठीक २ नहीं पका वह अनेक रोगोंको पैदा करताहै और बलात् प्राणोंको शीघ्र ही नाश करता है ॥ १९४ ॥

तद्दोषशान्त्यर्थमुपायः।

उमाफलं वने पिष्ट्वा सेवते यो दिनत्रयम्।
अशुद्धाभ्रकदोषेण विमुक्तः सुखमेधते ॥ १९५ ॥

यदि आमलोंको जलमें पीसकर तीन दिन सेवन करे तो अपक्व अभ्रकके भक्षणसे उत्पन्न दोषोंसे निवृत्त होकर सुखको प्राप्त होवे ॥ १९५ ॥

अथोपसंहारः।

एवं वै सप्तमेऽध्याये गगनस्य क्रिया शुभा।
वार्ता तद्विषयिण्यन्या तथा चात्र प्रकीर्तिता ॥ १९६ ॥

इस प्रकार इस सातवें अध्यायमें अभ्रककी उत्तम क्रिया और उसके विषयमें अन्य अनुपानादि भी वर्णन किये गये ॥ १९६ ॥

इति श्रीटकसालनिवासिपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे गगनवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः।

अथातो हरितालशोधनमारणप्रकरणं नामाष्टमाध्यायं वाख्यास्यामः।

अब हम हरितालशोधन मारण प्रकरण नामक आठवें अध्यायका वर्णन करते हैं

श्रूयतामधुना तात तालकस्यापि सत्क्रिया।
मारणं शोधनं चैव तदुत्पत्तिस्तथैव च ॥ १ ॥

हे तात! अब हरितालकी भी श्रेष्ठक्रिया सुनो और उसकी उत्पत्ति, शोधन तथा मारणका प्रकार भी सुनो ॥ १ ॥

शुद्धं तथा मृतं तालं यो जानाति स वैद्यराट् ।
कुष्ठादीनपि संजित्य यशो वै लभते परम् ॥ २ ॥

शुद्ध और मारण की हुई हरितालको जो जानता है वह वैद्यराज कुष्ठ आदि रोगोंको जीतकर संसारमें परमयशको प्राप्त होता है ॥ २ ॥

हरितालोत्पत्तिः ।

संध्यायां नारसिंहेन हिरण्यकशिपुर्हतः ।
तच्छर्द्दितमभूत्तालस्तत्कक्षां लेखनाश्रितः ॥ ३ ॥

संध्याकालमें नरसिंह भगवान्‌ने हिरण्यकशिपुको नाश किया उसको जो कय हुई वह हरिताल होगया सो कि उसकी काँखमें रहती थी ॥ ३ ॥

हरितालभेदाः ।

हरितालं द्विधा प्रोक्तं पत्राख्यं पिंडसंज्ञितम् ।
तयोराद्यं गुणैः श्रेष्ठं ततो हीनगुणं परम् ॥ ४ ॥

पत्राख्य और पिंडसंज्ञक भेदोंसे हरिताल दो प्रकारका होता है, इनमेंसे पत्राख्य (तवाकिया) गुणोंमें श्रेष्ठ है और पिंडसंज्ञक गुणोंमें हीन है ॥ ४ ॥

तत्र मतान्तरम् ।

हरितालं चतुर्धोक्तं पिंडाख्यं पत्रसंज्ञिकम् ।
गोदन्तं वक्कदालं च क्रमाद्गुणकरं परम् ॥ ५ ॥

हरिताल चार प्रकारका होता है, पिंडाख्य, पत्रसंज्ञक, गोदंती और वक्कदाल इन चारोंमेंसे यथाक्रमसे एक दूसरेसे अधिक गुणकारी है ॥ ५ ॥

पिंडताललक्षणम् ।

निष्पत्रं पिण्डसदृशं स्वल्पसत्त्वं तथा लघु ।
स्त्रीपुष्पहारकं स्वल्पगुणं तत्पिण्डतालकम् ॥ ६ ॥

यह पिंडनामक हरिताल पत्रोंकरके रहित गोलेके तुल्य थोडे सत्ववाली, हलका स्त्रियोंके रजोधर्मको बन्द करनेवाला और अल्प गुणवाला है ॥ ६ ॥

पत्रताललक्षणम् ।

स्वर्णवर्णं गुरु स्निग्धं सपत्रं चाभ्रपत्रवत् ।
पत्राख्यतालकं विद्याद्गुणाढ्यं तद्रसायनम् ॥ ७ ॥

पत्रसंज्ञक हरिताल अभ्रकके तुल्य पत्तोंवाला रंगमें सुवर्णके समान भारी, चिकना और अनेक गुणोंसे युक्त रसायन है ॥ ७ ॥

गोदंतीहरिताल लक्षणम्।

दीर्घखंडमतिस्निग्धं गोदंताकृतिकं गुरु।
नीलरेखान्वितं मध्ये पीतं गोदंततालकम् ॥ ८ ॥

गोदन्त हरितालकी बनावट गौके दांतकी समान होती है यह लंबे लंबे टुकडों-वाला, अत्यंत स्निग्ध (चिकना) भारी और मध्यमें नील तथा पीत रंगकी रेखाओंसे युक्त होता है ॥ ८ ॥

वकदालीताललक्षणम्।

अतिस्निग्धं हिमप्रख्यं सपत्रं गुरुतायुतम्।
तत्तालं वकदालं स्यादिन्द्रकुष्ठहरं त्विदम् ॥ ९ ॥

वकदाल उस हरितालका नाम है कि, जिसके पत्ते हिम (बर्फ) के तुल्य सफेद हों और अतिचिक्कण तथा भारी हो इसके सेवनसे इन्द्रकुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है ॥ ९ ॥

मारणे ग्राह्यं हरितालम्।

पिण्डतालं मृतौ त्याज्यं पत्रालं मृतये हितम्।
गोदन्तं तु गलत्कुष्ठे श्वेते कुष्ठेऽन्तिमं विदुः ॥ १० ॥

मारणकर्ममें पत्र (तबकिया) हरिताल लेना चाहिये, पिंडनामक ताल नहीं लेना और गलतकुष्ठमें गोदन्त तथा श्वेत कुष्ठमें वकदाल लेना हितकारी है ॥१०॥

हरितालगुणाः।

हरितालं कटु स्निग्धं कषायोष्णं हरेद्विषम्।
कंडूकुष्ठार्शरोगासृक्कफपित्तमरुद्व्रणान् ॥ ११ ॥

हरिताल स्वादमें कटु और कसैला है चिकना तथा गरम है, विषदोष, खुजली, कुष्ठरोग, बवासीर, रक्तविकार और वात, पित्त, कफसे उत्पन्न हुए दोष तथा फोडा ये सब शुद्ध हरितालके सेवनसे दूर होजाते हैं ॥ ११ ॥

अशुद्धहरितालदोषाः।

अशुद्धं तालमायुघ्नं कफमारुतमेहकृत्।
तापस्फोटांगसंकोचं कुरुतेऽतः प्रशोधयेत् ॥ १२ ॥

अशुद्ध हरितालके सेवनसे आयुका नाश, कफ और वायुसे उत्पन्न प्रमेह रोग, ज्वर, हडकल, अंगसंकोच इन रोगोंकी उत्पत्ति होती है, इस हेतु इसका शोधन अवश्य ही करना चाहिये ॥ १२ ॥

नामभेदकथनम् ।

हरितालीति विख्याता त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।
शृणु तस्याः परं नाम हंसराज इति श्रुतम् ॥
तया संभक्षितस्तालः सुधारूपः प्रजायते ॥ १३ ॥

हरिताली यह तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है उसीका दूसरा नाम हंसराज भी है इसके साथ हरितालके सेवनसे चन्द्रमाके तुल्य सुन्दर रूप हो जाता है ॥ १३ ॥

हरितालशोधनविधिः ।

कूष्मांडत्रितये स्विन्नं तालं शुद्धयति नान्यथा ॥ १४ ॥

पहले एक कूष्मांडमें हरितालको पकावे जब वह कूष्मांड गलजावे तो दूसरेमें पकावे, वह भी जब गलजावे तब तीसरेमें इस प्रकार तीन कूष्मांडोंमें पकानेसे हरितालकी शुद्धि होजाती है। इसकी विधि यह है कि, हरितालको एक स्वच्छ कपडेमें बाँधकर पोटली बनालेवे तत्पश्चात् किसी कूष्मांड (पेठा--कूम्हडा) में चार या पांच अंगुलकी टाँकी लगाकर उसमें हरितालकी पोटलीको रखदेवे और उसी टांकीसे बंद करके एक खपरेमें नीचेके भागकी तरफसे रखकर नीचे चार पहरकी आँच देवे जिससे सब कुम्हडा गलजावे जब चार अंगुल कुम्हडा गलनेसे शेष रहजावे तब उस पोटलीको उससे अलग निकालकर दूसरे कुम्हडेमें पकावे, जब वह भी चार अंगुल बाकी रहजावे तब तीसरेमें पहलेकी तरह पकावे, तत्पश्चात् उस हरितालकी पोटलीको पेठेसे अलग निकालकर शुद्ध जलसे धोलेवे तो अत्युत्तम शुद्ध हरिताल सिद्ध होजाताहै ॥ १४ ॥

द्वितीय प्रकारः ।

तालकं कणशः कृत्वा बद्धा पोटलिकां ततः ।
दोलायन्त्रेण यामैकं सचूर्णे कांजिके पचेत् ॥ १५ ॥
यामैकं दोलया तद्वत्कूष्मांडकरसे ततः ।
तिलतैले पचेद्यामं यामं च त्रैफले जले ॥
दोलायन्त्रे चतुर्यामं पक्कं शुद्धयति तालकम् ॥ १६ ॥

अब हरितालके शुद्ध करनेकी दूसरी विधि कहते हैं। हरितालके छोटे २ टुकडोंको कपडेमें बांधकर पोटली बनालेवे उस पोटलीको दोलायन्त्रके द्वारा

कांजीमें एक प्रहर तक पकावे तदनन्तर कुम्हडेके रसमें एक प्रहर तक पकावे और फिर तिलके तेलमें एक प्रहर तथा त्रिफलाक काढेमें एक प्रहर पकावे, इस प्रकार चारों वस्तुओंमें चार प्रहर पर्यंत पकानेसे हरितालका उत्तम शोधन होजाता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

तृतीयप्रकारः ।

स्विन्नं कूष्माण्डतोये वा तिलक्षारजलेऽपि वा ।
तोये वा चूर्णसंयुक्ते दोलायन्त्रेण शुद्ध्यति ॥ १७ ॥

अब हरिताल शुद्ध करनेकी तीसरी विधि कहते हैं । कुम्हडेके पानी या तिल अथवा क्षारणमें कही हुई औषधाके जल वा चूनेके जलसे यदि दोलायन्त्रके द्वारा हरिताल औटाया जावे तो शुद्ध होजाताहै ॥ १७ ॥

चतुर्थप्रकारः ।

शोधयेत्परया युक्त्या एतत्पत्रीकृतं शुभम् ।
वस्त्रेण पोटलीं बद्ध्वा कांजिके शोधयेत्त्र्यहम् ॥ १८ ॥
कूष्मांडरसमध्ये तु त्र्यहं दुग्धेन शोधयेत् ।
वटदुग्धे त्र्यह शोध्यं तालकं शुद्धिमाप्नुयात् ॥ १९ ॥

अब हरितालक शोधनेकी चौथी विधिको कहते हैं । पहले हरितालके छोटे २ पत्र बनाकर वस्त्रमें बांधकर पोटली बनालेवे फिर कुम्हडेका रस, दूध और वटवृक्षके दूधमें तीन २ दिन पकानेस शुद्ध होजाता है ॥ १८ ॥ १९. ॥

पञ्चमप्रकारः ।

तालकं कणशः कृत्वा दशांशेन च टंकणम् ।
जंबीरोत्थद्रवैः क्षाल्यं कांजिकैः क्षालयेत्पुनः ॥
स्वेद्यं वा शाल्मलीतोयैस्तालकं शुद्धिमाप्नुयात् ॥ २० ॥

हरितालके छोटे २ टुकडे बनाकर और उसमें हरितालका दशवाँ भाग सुहागा मिलाकर पहले जंबीरी नीम्बूके रसमें पुनः कांजीमें औटावे तत्पश्चात् सेमलके रसम आटौनस हरिताल शुद्ध होजाता है ॥ २० ॥

संशुद्धतालगुणाः ।

शोधितं हरितालं तु कान्तिवीर्यविवर्द्धनम् ।
कुष्ठादिपापरोगघ्नं जरामृत्युहरं परम् ॥ २१ ॥

अच्छे प्रकार शुद्ध किया हुआ हरिताल शरीरमें कान्ति और बलका बढाने-वाला और पापसे उत्पन्न कुष्ठादिरोगोंको नाश करनेवाला है, तथा वृद्धावस्था और मृत्युको दूर करता है ॥ २१ ॥

हरितालमारणविधिः ।

पत्राख्यं तालकं शुद्धं पौनर्नवरसेन तु ।
खल्वे विमर्दयेदेकं दिनं पश्चाद्विशोधयेत् ॥ २२ ॥
संशोष्य गोलकं कृत्वा चक्राकारमथापि वा ।
ततः पुनर्नवाक्षारैः स्थाल्यामर्द्धं प्रपूरयेत् ॥ २३ ॥
तत्र तद्गोलकं धृत्वा पुनस्तेनैव पूरयेत् ।
आकण्ठं पिठरं तस्य पिधाय रोधयेन्मुखम् ॥ २४ ॥
स्थालीं चुल्ल्यां समारोप्य क्रमाद्वह्निं विवर्द्धयेत् ।
एवं तु म्रियते तालं मात्रा तस्यैव रक्तिका ॥
अनुपानान्यनेकानि यथायोग्यं प्रयोजयेत् ॥ २५ ॥

अब हरितालके मारणकी विधि कहते हैं । पहिले कही हुई विधिके अनुसार शुद्ध किये हुए पत्र अर्थात् तबकिया हरितालको पुनर्नवा (पथरचटा-साँठ) के रसमें एक दिनभर खरलमें घोटे तत्पश्चात् उसको सुखाकर गोला वा टिकिया बनालेवे पुनः साँठके खारसे आधी हँडिया भरकर उन टिकियोंको उसी हाँडीमें रखदेवे ऊपरसे उसी खारको हांडियामें पूर्ण भरदेवे पुनः हंडीके मुखमें कपरमिट्टी करके चूल्हे पर चढा देवे और क्रमसे मंद, मध्यम, तेज आँच देवे तो हरितालकी सफेद भस्म सिद्ध होजाती है । इसके सेवन करनेकी मात्रा एक रत्ती है, वैद्यको उचित है कि, इसको उचित अनुपानके साथ यथायोग्य रोगोंमें देवे ॥ २२-२५॥

द्वितीयप्रकारः ।

स्वर्णपत्रं शुद्धतालं पलानां दशसंज्ञकम् ।
कौमारीद्रवप्रस्थेन मर्दयेत्तालकं शुभम् ॥ २६ ॥
निंबुप्रस्थरसे चैव बाणपुंखरसैः पुनः ।
प्रस्थं वज्रीरसेनैवमर्कस्य च रसैः पृथक् ॥ २७ ॥
मर्दयेच्च दृढं खल्वे यावद्भवति गोलकम् ।
गोलकं शोषयेत्पश्चाद्धर्मे सप्त दिनानि वै ॥ २८ ॥

पलाशभस्ममृद्भाण्डे क्षिप्त्वोपरि च गोलकम् ।
दत्त्वोपरिपुनर्भस्म भाण्डवक्त्रं निरुंधयेत् ॥ २९ ॥
चुल्ल्यामारोपयेद्यत्नात्पावकं ज्वालयेत्क्रमात् ।
मन्दमध्यदृढाग्नीनां यामानां च द्विषष्टिकम् ॥ ३० ॥
स्वांगशीतलमादाय शुभ्रं तालं मृतं ध्रुवम् ।
तंदुलं तंदुलार्द्धं वा नागवल्लीदलैर्भजेत् ॥ ३१ ॥
अष्टादशापि कुष्ठानि ज्वरमष्टविधं हरेत् ।
पथ्यं मकुष्ठं चणकं लवणस्नेहवर्जितम् ॥ ३२ ॥

अब हरितालके मारणका दूसरा प्रकार कहते हैं । सुवर्णके समान रंगवाले शुद्ध किये हुए तबकिया हरितालको दश पल लेकर १ प्रस्थ (६४ तोले) घीकुवारके रसमें घोटे तत्पश्चात् १ एक प्रस्थ नींबूके रसमें घोटे इसी प्रकार १ एक प्रस्थ बाणपुंख अर्थात् सरफोंकाके रसमें १ एक प्रस्थ थूहरके दूध और १ एक प्रस्थ आकके दूधमें घोटे जब घोटते २ गोला बननेके योग्य होजावे तब उसका गोला बनाकर ७ सात दिन पर्यन्त धूपमें सुखालेवे फिर मिट्टीके एक बडे बरतनमें ढाककी भस्मको भरकर उस भस्मके ऊपर गोलाको रखदेवे और फिर भी उस गोलेके ऊपर इतनी भस्म भरे कि जिससे वह मिट्टीका पात्र पूर्ण भरजावे, पीछे पात्रके मुखको बंद करके चूल्हेके ऊपर चढाकार ६२ प्रहर तक मंद, मध्य और तेज आँच देकर पकावे जब बासठ प्रहर व्यतीत हो जावे तब उतारलेवे और अपने आप ठंढा होनेपर पात्रसे गोलेको निकाललेना इस प्रकार शुद्ध भस्म तयार होजाती है । इसको एक चावल या आधा चावल प्रमाण नागरपानके साथ खानेसे बडे भयंकर रोग तथा अठारह प्रकारके कुष्ठ-रोग, आठ प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं इसके ऊपर मोथी-मोठ चना पथ्य है, और तेल, गुड नमक यह पथ्य नहीं है ॥ २६-३२ ॥

तृतीयप्रकारः ।

तालं विचूर्णयेत्सूक्ष्मं मर्द्यं नागार्जुनीद्रवैः ।
सहदेव्या च बलया मर्दयेद्दिवसद्वयम् ॥ ३३ ॥
तत्तालरोटकं कृत्वा छायायां च विशोषयेत् ।
हंडिकायन्त्रमध्यस्थं पलाशभस्मकोपरि ॥ ३४ ॥

पाच्यं च वालुकायन्त्रे विहितं चंडवह्निना ।
स्वांगशीतं समुद्धृत्य सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ३५ ॥

अब हरितालके मारणकी तीसरी रीति कहते हैं। पहले हरितालको खूब बारीक पीस लेवे तत्पश्चात् नागार्जुनी (दुद्धी) सहदेई और बला (खरैटी) इन तीनोंके रसमें दो दिन पर्यन्त घोटकर रोटीकी तरह बनावे और उसे छायामें सुखालेवे पुनः एक नये मिट्टीके पात्रमें ढाककी भस्म भरकर उसीके ऊपर उस रोटीको रखदेवे और ऊपरसे भस्म भरकर पहलेकी तरह उस हंडीका मुख बंद करके वालुकायन्त्रमें तेज आँचसे पकावे जब अपने आप शीतल होजावे तब हरितालकी रोटीको निकाल लेवे और सब रोगोंमें देवे ॥ ३३-३५ ॥

चतुर्थप्रकारः ।

पलमेकं शुद्धतालं कुमारीरसमर्दितम् ।
शरावसंपुटे क्षिप्त्वा यामान् द्वादश संपचेत् ॥ ३६ ॥
स्वांगशीतं समादाय तालकं च मृतं भवेत् ।
गलत्कुष्ठं हरेच्चैव तालकं च न संशयः ॥ ३७ ॥

अब हरितालके मारणकी चौथी रीति कहते हैं । घीकुवारके रसमें एक पल शुद्ध हरितालको खूब खरल कर उसकी टिकिया बना लेवे फिर उनको दो शरावों (परई) के बीचमें रखकर १२ बारह प्रहर तक पकावे पीछे स्वयं शीतल होजानेपर शरावसंपुटसे निकाललेवे तो उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है इसके सेवनसे गलत्कुष्ठ रोग नष्ट होता है॥ ३६ ॥ ३७ ॥

पंचमप्रकारः ।

वंदालीतालमादाय निर्मलं खल्वमध्यगम् ।
दिनसप्तकपर्य्यन्तं कुमारीद्रवमर्दितम् ॥ ३८ ॥
काचकुप्यां विनिःक्षिप्य मुखमुद्घाटयेत्ततः ।
विरच्य वालुकायंत्रं वह्निं दद्याच्छनैः शनैः ॥ ३९ ॥
ततो धूमोऽस्य नीलाभः पीतवर्णस्तु सर्वथा ।
मुखमार्गे ततः प्राज्ञो न्यसेल्लोहशलाकिकाम् ॥ ४० ॥
तस्य तालस्य मध्ये सा भ्राम्यते च क्षणंक्षणम् ।
आकृष्य नीयते सान्द्रा सा शलाका विलोक्यते ॥ ४१ ॥

नीलं पीतं यदा किंचित्स्वेदरूपं जलं भवेत् ।
दिनैकमपरं स्वेदं दद्याद्वापि दिनद्वयम् ॥ ४२ ॥
जलरूपो यदा स्वेदो दृश्यते तालकस्य वै ।
शीतलं क्रियते तत्र स्वांगशीतं यथा भवेत् ॥ ४३ ॥
खर्जूरखोटिकाकारं तालसत्त्वं महोज्ज्वलम् ।
गुरुरूपं दृढं प्राप्य करस्पर्शे च सौख्यदम् ॥ ४४ ॥

अब हरितालके मारणका पाँचवां प्रकार कहते हैं। पहले कही हुई रीतिसे शुद्ध किये हुए वकदाली हरितालको सात दिन पर्यंत घीकुवारके रसमें खरल करे, और उसको सुखाकर एक आतशी शीशीमें भरदेवे शीशीका मुख खुला ही रक्खे पुनः वालुकायंत्रमें मंद २ आँचसे पकावे जब शीशीसे नीले वा पीले रंगका धूम निकलने लगे तब बुद्धिमान् वैद्य एक साफ लोहेकी सलाई लेकर शीशीमें छोड सब ओर घुमाय बाहर निकाल लेवे यदि सलाई गीली, नीली वा पीली तथा कुछ सफेदी लिये हुए रंगसे युक्त हो तो एक या दो दिन और स्वेदन करना चाहिये। विशेषता यह है कि, नीला पीला धुवाँ निकलनेके बाद बार बार लोहशलाकासे परीक्षा करतारहे जब हरितालका स्वेद, निर्मल जलके समान स्वच्छ हो जाय तब ठण्ढा करके उतार लेवे यह तालका सत्त्व छुहारेके गुठलीके तुल्य उज्ज्वल होता है यह भारी तथा दृढ और हाथसे स्पर्श करनेमें सुखका देनेवाला है ॥ ३८-४४ ॥

तत्सेवनगुणाः तद्विधिश्च ।

टंकमात्रं विचूर्ण्याथ प्रदद्यात्कुष्ठिने खलु ।
शुद्धोऽधो जायतेऽत्यर्थमत्यर्थं सुभगं वपुः ॥ ४५ ॥
अत्यर्थं पच्यते भुक्तमत्यर्थं सुखमाप्नुयात् ।
अरुणौदुंबरं कुष्ठमृक्षजिह्वं कपालकम् ॥ ४६ ॥
काकणं पुंडरीकं च दद्रुकुष्ठं सुदुस्तरम् ।
तथा चर्मदलं हन्याद्विसर्पं चापि कर्कशम् ॥ ४७ ॥
सिध्मं विचर्चिकां पामां श्वेतकुष्ठं च नाशयेत् ।
गरं दूषीविषं हन्यान्मासमात्रोपसेवनात् ॥ ४८ ॥

अब पूर्वोक्त मारण किये हुए हरितालके सेवनकी विधि और गुणोंको कहते हैं। उक्त रीतिसे मारण किये हुए बकदाली हरितालको एक टंक अर्थात् चार मासे

बारीक पीसकर कुष्ठरोगीके लिये देवे तो उसे बहुत भूँख लगे और उसका शरीर सुन्दर दर्शनीय हो । इसके सेवनसे क्षुधाकी वृद्धि और सुखकी प्राप्ति होती है । यदि एक मास पर्यन्त विधिपूर्वक इसका सेवन किया जाय तो अरुण, उदुंबर, ऋक्षजिह्व, कपाल, काकण, पुंडरीक, दद्रु, चर्मदल, कर्कश, विसर्प, सिध्म, विचर्चिका, पामा (खाज) सफेद कुष्ठ इन सब कुष्ठों तथा विष और दूषीविषको नाश करता है। मात्रा इसकी ४ मासे हैं इससे अधिक खानेसे हानि करेगा ॥ ४५-४८ ॥

षष्ठप्रकारः ।

सूक्ष्मं विचूर्णं शुचितालकस्य संभावयेद्विंशतिवासरांश्च ।
अश्वत्थतोयैः शुचिखल्वमध्ये घृष्ट्वा विदध्याद्दृढगोलकं च ॥ ४९ ॥
अश्वत्थभूत्यार्धभृते च भांडे न्यसेत्ततो गोलकमेव मन्दम् ।
संपूर्णभूत्या परिपूर्य पात्रं निरुध्य मुंचेच्च गजाह्वये च ॥ ५० ॥
सहस्रवन्योपलसंयुते वै मृतिं व्रजेद्यामचतुष्टयेन ।
निर्धूममेतद्यदि लोहतप्तं सुश्वेतसुशुद्धं शुभशुक्लवर्णम् ॥ ५१ ॥

अब मारणका छठा प्रकार कहते हैं । पहले कही हुई रीतिसे शुद्ध किये हुए हरितालको बारीक पीसकर स्वच्छ खरलमें पीपलके रसके साथ बीश दिन तक घोटे तत्पश्चात् गोला बनाकर सुखालेवे फिर किसी बडी हंडीके आधे भागमें पीपलवृक्षकी राख भरदेवे और उस राखके ऊपर गोलेको रखकर फिर भी पीपरकी राखसों हंडीके मुखतक पूर्ण भरदेवे तदनन्तर परईसे मुख बन्दकर सात कपरमिट्टी करे और गजपुटमें हजार आरने उपलोंसे चार प्रहरतक आंच देनेसे हरितालका मारण होजाता है । इस शुद्ध हरितालको गरम लोहेके ऊपर छोडे यदि धुआँ न दे और रंग सफेद हो तो उत्तम शुद्ध हुआ जाने ॥४९-५१॥

सप्तमप्रकारः ।

एको विभागः शुचितालकस्य भागद्वयं सुन्दरधूमकस्य ।
अन्तर्विभूतिं शुभतालचूर्णं क्षिपेत्तदूर्ध्वं बहुधूमसारम् ॥
प्रपूरयेद्भूतिकयाथ भांडं शरावकेणैव ततो निरुंध्यात् ॥ ५२ ॥
विमुच्य चुल्ल्यां च हिरण्यरेतसं दहेत्तु वै यामचतुष्टयं च ।
एतैः प्रकारैर्मृतिमेति तालं निर्धूममेवं किल शुक्लवर्णम् ॥ ५३ ॥

अब मारणका सातवां प्रकार कहते हैं । एक हिस्सा शुद्ध हरिताल और दो हिस्सा धूमसा मिलाकर एक मिट्टीके बडे पात्रमें पीपल वा इमलीकी राख आधे

भागतक भरकर उसीके ऊपर रक्खे और ऊपरसे धूमसार रखकर राखसे पूरा पात्र भरदेवे फिर एक परईसे पात्रका मुख बन्द करके कपरमिट्टी करे तत्पश्चात् चूल्हेपर चढाय चार प्रहरकी आँच देनेसे धूमसे रहित सफेद रंगकी भस्म सिद्ध हो जाती है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

अष्टमप्रकारः।

शुद्धं तालं चूर्णयित्वा कन्याकूष्मांडजैर्द्रवैः।
दध्ना त्रिभावितं शुष्कं गोलं कृत्वा निधापयेत् ॥ ५४ ॥
हंडिकायां पटुक्षारैः पूर्णयेच्च षडंगुलम्।
क्षारेणाच्छाद्य च पुनर्लोहपात्रे निधापयेत् ॥ ५५ ॥
पुनः क्षारं तु चाकंठं पूरयित्वा क्रमाग्निना।
द्वात्रिंशत्प्रहरान् पाच्यं भस्म स्याच्चूर्णसन्निभम् ॥
सासितं तंदुलोन्मानं वातरक्तज्वरप्रणुत् ॥ ५६ ॥

अब मारणका आठवाँ प्रकार कहते हैं। शुद्ध किये हुए हरितालको बारीक पीसकर घीकुवार और कुम्हडेके रसमें खरल करके दहीकी तीन भावना देकर गोला बना धूपमें सुखालेवे तत्पश्चात् एक स्वच्छ हंडीमें छः अंगुल ऊँचा नोन और खार बिछाकर गोलेको रखदेवे और फिर गोलेको ऊपरसे खार भरकर हंडीके मुखको पूर्वकी तरह बन्द करके चूल्हेपर चढाय बत्तीस प्रहर तक क्रमसे मंद, मध्य और तेज आंच देवे तो कलीचूनेके समान सफेद भस्म सिद्ध होजाती है इसको शक्करके साथ एक चावलकी बराबर नित्य सेवन करे तो वातरक्तज्वर नष्ट होजाता है ॥ ५४-५६ ॥

नवमप्रकारः।

जंबीरद्रवमध्ये तु प्रक्षाल्य नटमंडनम्।
दशांशं टंकणं दत्त्वा खंडशः परिमेलयेत् ॥ ५७ ॥
चतुर्गुणे गाढपटे निबध्य प्रहरद्वयम्।
दोलायन्त्रेण सुस्वेद्य प्रदीपप्रमितेऽनले ॥ ५८ ॥
चूर्णतोये कांजिके च कूष्मांडे निंबतैलके।
त्रिफलाम्बुनि तत्पश्चात्क्षालयित्वाम्लवारिणा ॥ ५९ ॥

ततः पलाशमूलत्वक्परिपिष्टं प्रशोषयेत् ।
महिषीमूत्रसंपिष्टं पुनस्तत्परिशोषयेत् ॥ ६० ॥
तद्गोलकं शरावाभ्यां संपुटीकृत्य यत्नतः ।
खाते गजपुटे कृत्वा स्वांगशीतं समुद्धरेत् ॥ ६१ ॥
अजादुग्धैः पुनः पिष्ट्वा शोषयेद्गोलकीकृतम् ।
आकंठं भस्म पालाशं हंडिकायां विनिःक्षिपेत् ॥ ६२ ॥
सम्यक् चर्णस्य कुडवं दत्त्वा तत्र विचक्षणः ।
स्थापयेद्गोलकं तत्र पुनश्चूर्णस्य भस्म च ॥ ६३ ॥
यथा धूमो न निर्याति तथा तां च विमुद्रयेत् ।
द्वात्रिंशत्प्रहराग्निं च चुल्ल्यां भक्तवदर्पयेत् ॥ ६४ ॥
स्वांगशीतं समुद्धृत्य सचूर्णं नटमंडनम् ।
हिमकुन्देन्दुसंकाशं निर्धूमं कृष्णवर्त्मना ॥ ६५ ॥

अब मारणका नवम प्रकार कहते हैं । जंबीरी नींबूके रससे हरिताल या मनसिलको धोवे तदनन्तर हरितालके छोटे २ टुकडे करे और उनमें हरितालका दशवाँ हिस्सा सुहागा मिलाकर एक स्वच्छ चार तहके वस्त्रमें बाँध दोलायन्त्रके द्वारा कलीचूनेके पानी कांजी, पेठेके रस, नींबके तेल और त्रिफलाके काढेमें मध्यम आँचसे अलग २ दो दो प्रहर औटाकर नींबूके रससे प्रक्षालन करे और फिर ढाककी जडकी छालके रसमें घोटकर सुखा लेवे फिर भैंसके मूत्रमें खरल करके गोला बना सुखावे तत्पश्चात् उस गोलेको शरावसंपुट अर्थात् दो परइयोंके बीचमें रख कपरमिट्टीसे बंद कर गजपुटमें पकावे जब अपने आप ठंढा होजावे तब उसे निकाल बकरीके दुग्धमें खरल करके गोला बना सुखालेवे तत्पश्चात् एक बडे मिट्टीके पात्रमें आधे भाग तक ढाककी राख भरदेवे और राखके ऊपर गोलेको रख ऊपरसे पात्रके मुखपर्यन्त राख भरकर परईसे हंडीका मुख ढाँककर गुड और चूनेसे सन्धियोंको भी बंद करे । अथवा ढाककी राख और चूना इन दोनोंके मध्यमें उस गोलेको रखकर पात्रका मुख इस प्रकार बंद करे कि जिससे उसका धूम बाहर न निकले तत्पश्चात् सावधानीसे चूल्हेपर चढाय कर बत्तीस प्रहर पर्यन्त आँच देवे और जहांसे धुआँ निकलता हुआ दीखपडे वहीं ढाककी भस्म और चूना मिलाकर उसकी संधि बंद करे फिर स्वयं शीतल होजानेपर हरितालको

निकाल लेवे। यह भस्म हिम, चन्द्रमा और कुन्दके पुष्पके समान सफेद तथा निर्धूम होती है ॥ ५७--६५ ॥

तत्सेवनगुणविधिश्च।

रक्तिकास्य प्रदातव्या पुराणगुडयोगतः।
पथ्यं च चणकस्योक्तं रोटिका षष्टिकोदनम् ॥ ६६ ॥
निर्लोणकं च निष्पन्नं खादेच्चैवैकविंशतिम्।
दिनानि निर्वातगतः सर्वव्यापारवर्जितः ॥ ६७ ॥
गलत्कुष्ठं पुंडरीकं श्वित्रं कापालिकं तथा।
औदुंबर रक्तजिह्वं काकणं स्फोटमेव च ॥ ६८ ॥
वातं तु पाण्डुरोगं च दद्रुं पामां विचर्चिकाम्।
विसर्पमर्द्धशीर्षं च विपादिं च भगंदरम् ॥ ६९ ॥
सर्वं यथाक्रमं हन्ति सेवितं हरितालकम्।
अन्यानपि व्रणान्सर्वानंधकारमिवांशुमान् ॥ ७० ॥

अब पूर्व मारण किये हुए हरितालके सेवनकी विधि और गुणोंको कहते हैं। इस सिद्ध किये हुए हरितालको पुराने गुडके साथ तथा एक रत्ती प्रमाण खाय। इसमें चनाकी रोटी तथा साठीके चावल पथ्य हैं, पर वे नमकसे रहित हों क्योंकि इसमें नमक अपथ्य है। यदि रोगी सब कार्योंको त्यागकर जहाँ वायु न हो ऐसे स्थानमें इक्कीस दिन पर्यन्त इसका सेवन करे और पथ्यसे रहे तो गलत्कुष्ठ, पुंडरीक, श्वेतकुष्ठ, कापालिक, औदुम्बर, रक्तजिह्व, काकण, स्फोट, वातरोग, पांडुरोग, दद्रु, पामा, विचर्चिका, विसर्प, अर्द्धशीर्ष, विपादिका, भगंदर आदि रोग तथा अन्य सब प्रकारके व्रण नष्ट होजाते हैं जैसे सूर्यसे अन्धकार छिन्नभिन्न होकर नष्ट होता है ऐसे ही इस औषधको विधिपूर्वक सेवन करनेसे अनेक रोग दूर होजाते हैं ॥ ६६-७० ॥

दशमप्रकारः।

एतच्च तालकं शुद्धं कर्षैकं मृतलोहकम्।
किंचिद्धेम तथा रूप्यं सर्वमेकत्र रोधयेत् ॥ ७१ ॥
काचकूप्यां मृदा लिप्त्वा सप्तवारान्मुहुर्मुहुः।
तालकं काचकूप्यांतः प्रदद्याच्च प्रयत्नतः ॥ ७२ ॥

वज्रमुद्रां मुखे कृत्वा किंवा मधुरवह्निना ।
संस्थाप्य वालुकायन्त्रे पचेद्यामचतुष्टयम् ॥ ७३ ॥
स्वांगशीतलमुद्धृत्य पूजयेच्चेष्टदैवतम् ।
खल्वे विचूर्णयेत्पूतं रसभांडे निधापयेत् ॥ ७४ ॥

अब मारणका दशवाँ प्रकार कहते हैं । शुद्ध किया हुआ हरिताल और मारण किया हुआ लोहा दोनों एक २ तोला लेवे तथा थोडा सोना और थोडी चाँदी लेकर सबको एकमें मिलाकर काचकी शीशीमें भरकर सात कपरमिट्टी करे और शीशीके मुखपर वज्रमुद्रा करके बालुकायंत्रमें रखकर मधुर आंचसे चार प्रहर पर्यन्त पकावे जब स्वयं शीतल होजावे तब हरितालको निकाल लेवे और अपने इष्टदेव परमात्माका पूजन करे तत्पश्चात् हरितालको खरलमें डालकर घोटे जब खूब बारीक होजावे तब उत्तम शीशीमें रखदेवे ॥ ७१--७४ ॥

एकादशप्रकारः तत्रादौ शोधनम् ।

विमलपत्रकतालसुखंडशः कृततदोत्तरवस्त्रविवेष्टयेत् ।
घृतमथोत्तरपात्रघटोदरे जलरसे स्थिरदोलकया शुभैः ॥ ७५ ॥
प्रहरयुग्मकृशानुक्रमादिभिः स्वतनुशीतलस्वेद्य पुनस्ततः ।
महिषिमूत्रक्रमेण कुमारिकासघनचूर्णरसे शरपुंखिका ॥ ७६ ॥
सजलनिंबुसुपक्करसे पुनः सुदृढकोकिलपक्करसे ततः ।
इदमिहाद्दतस्वेद्य प्रयत्नतो भवति शुद्धमिदं नटमंडनम् ॥ ७७ ॥

अब पहले हरितालके शोधनकी विधि लिखकर पीछे मारण लिखेंगे तबकिया हरितालके पत्रोंको लेकर छोटे २ टुकडे करके किसी स्वच्छ वस्त्रमें रखकर पोटली बनालेवे और उस पोटलीको नेत्रवालाके रसमें दोलायन्त्रके द्वारा दो प्रहरकी मंद, मध्य, तेज आँचसे पकावे फिर स्वांगशीतल होनेपर हरितालको निकालकर भैंसके मूत्र, घीकुवारके रस, नागरमोथाके काढे, शरफोंकाके रस और नींबूके रसमें अलग २ दोलायन्त्रके द्वारा औटावे तो हरिताल शुद्ध होजाताहै ॥७५--७७ ॥

अथ मारणविधिः ।

कूष्मांडतोयेन दिनं विमर्द्य निंबूरसे गोभिरसे तथैव ।
सनाकछिक्कादिकुलत्थतोयैर्धत्तूरजे चार्द्रकभृंगराजम् ॥ ७८ ॥

नागार्जुनी वा सह देविका च सब्रह्मदंडीद्रवकिंशुकानाम् ।
एरंडमूलं लशुनं पलांडुसुवर्णवल्लीरसकाकमाची ॥ ७९ ॥
गोपालिकां वज्रिपयोर्कदुग्धं खल्वे विमर्द्य दिनमेकविंशत् ।
पृथक्पृथङ्मासचतुर्दशान्ते चक्राकृतिं वर्तुलरोटिकाभम् ॥ ८० ॥
अश्वत्थभूत्या मृदुहंडिकायामधोर्ध्वमध्यास्थिततालकं च ।
सुपूर्णपात्रं दृढभस्मसंस्थं मुखे शरावं मृतकर्पटं च ॥ ८१ ॥
दद्याच्च चुल्ल्यां परिरक्षणीयमग्निं क्रमेणापि दिनानि चाष्टौ ।
शिवस्य पूजां द्विजभोजनं च निष्कासयेच्छुभ्ररुचिं हि तालम् ॥ ८२ ॥
कुन्देन्दुशंखस्फटिकावभासं तालं भवेद्वामृततुल्यसिद्धम् ।
सुवर्णरौप्यादिकरंडमध्ये रक्षेत्ततो तालकभस्म युक्त्या ॥ ८३ ॥

अब शुद्ध किये हुए हरितालके मारणकी ग्यारहवीं विधि कहते हैं । पहले हरितालको एक दिन पेठेके रसमें खरल करे तत्पश्चात् नींबू, गोभी, नकछिकनी, कुलथी, धतूरा, अदरख, भाँगरा, दुद्धी, सहदेई, ब्रह्मदंडी, ढाक, अरंडकी जड, लहसन, प्याज, मालकांगनी, काकमाची, कचरिया, थूहर, आक, इन सबके रस और दूधमें अलग २ इक्कीस दिन घोटे इस रीतिसे चौदह मास व्यतीत होनेके पश्चात् उस हरितालकी चक्रके समान गोल और चिपटी रोटी बनावे तत्पश्चात् मिट्टीके किसी बडे पात्रमें पीपल वृक्षकी राख आधे भाग तक भरकर उस रोटीको राखके ऊपर रखदेवे और ऊपरसे फिर भी पीपलकी राखसे पात्रको पूर्ण भरकर परईसे बंद करके कपरमिट्टी करे और चूल्हेपर चढाय आठ दिन पर्यन्त मंद, मध्य और तेज आँचसे पकावे । नवें दिन श्रीशिवजीका पूजन करके ब्राह्मणोंको उत्तम भोजन करावे और सावधानीके साथ कान्तियुक्त श्वेतरंगवाले उस हरितालको पात्रसे बाहर निकाले । इस हरितालकी प्रभा कुन्दपुष्प, चन्द्रमा, शंख और स्फटिकके तुल्य होती है । और सेवन करनेसे अमृतके समान लाभ देनेवाला है इस सुवर्ण या चाँदीके किसी उत्तम पात्रमें बडे प्रयत्नसे रक्खे ॥ ७८-८३ ॥

तद्गुणाः ।

मात्रा ततस्तंदुलकप्रमाणा रोगानुसारैरनुपानकं च ।
द्विकालपथ्यं लवणामृतीक्ष्णं वर्ज्यं ततो वातलतैलपक्वम् ॥ ८४ ॥
त्रिः सप्तवारं ह्यथ मंडलं वा गुणैर्मतं तालकधूम्रहीनम् ।
कुष्ठानि चाष्टादश वातरक्तं ससन्निपातं च भगंदराणि ॥ ८५ ॥

अपस्मृतिं वातव्रणांश्च सर्वान् फिरंगरोगादिकश्लीपदानि ।
सर्वोपदंशप्रभृतींश्च शाफान् सूतेर्गदाञ्श्वासमनेकवातम् ॥ ८६ ॥
कासादिदोषानपि पीनसानामर्शांस्यथोग्रं ग्रहणीविकारम् ।
मेदोऽर्बुदं गृध्रसिगंडमाले कट्यामवातादिकमग्निमान्द्यम् ॥ ८७ ॥
मूत्रादिकृच्छ्रादिकमेहजालं शोषं च सर्वं क्षयराजरोगम् ।
सर्वान्कफाँश्चापि च पित्तरोगं वातं तथा व्याधिज्वरादिकाँश्च ॥ ८८ ॥
स बालसूर्यो दृढमन्धकारं यथा तथा सेविततालभस्म ।
सुवर्णवत्कान्तिमुपैति कामं रामाशतैः संविलसेन्मनुष्यः ॥ ८९ ॥

अब पूर्व मारण किये हुए हरितालके सेवन करनेकी विधि और गुणोंको कहते हैं । जिस रोगमें अनुपान लिखा है उस रोगमें उसी अनुपानके साथ पूर्वोक्त हरितालको एक चावल प्रमाण मात्रासे प्रातःकाल और सायंकाल विधिपूर्वक सेवन करे और नमकीन, खट्टा, चर्परा, बादी तथा तेलमें पके हुए पदार्थोंको न खावे, क्योंकि यह सब इसमें अपथ्य हैं । धुआँसे रहित श्वेत रंगवाले इस हरितालको इक्कीस वा चालीस दिन पर्यन्त सेवन करे तो अष्टादश प्रकारके कुष्ठरोग, वातरक्त, सन्निपात, भगंदर, अपस्मृति (स्मरण न रहना), मृगी, सम्पूर्ण वातज व्रणरोग, फिरंगरोग, श्लीपद, सब प्रकारके उपदंशरोग, सूजन, प्रसूतिके रोग, श्वास, वादीके सब रोग, खाँसी, पीनस, बवासिर, संग्रहणीके विकार, मेदरोग, अर्बुदरोग, गृध्रसी, गंडमाला, कटि (कमर) के रोग, आमवात, मन्दाग्नि, मूत्रकृच्छ्र, सब प्रकारके प्रमेह, शोषरोग, राजयक्ष्मा (क्षयी), कफसे उत्पन्न सब प्रकारके रोग, वातरोग, पित्तरोग तथा ज्वरसे उत्पन्न अनेक प्रकारकी व्याधियाँ सूर्यके उदय होतेही अन्धकारकी तरह नाशको प्राप्त होती है । अर्थात् इस हरितालकी भस्मके सेवनसे सब प्रकारके रोग नष्ट होकर शरीरमें सुवर्णकी समान कान्ति और सैकडों स्त्रियोंके साथ भोग विलास करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है ॥ ८४-८९ ॥

त्रयोदशप्रकारः ।

शुद्धं तालं समादाय द्रोणपुष्पीरसैर्भिषक् ।
दिनानि सप्त संमर्द्य यन्त्रे विद्याधरे क्षिपेत् ॥ ९० ॥
यामानष्टौ पचेदग्नौ स्वांगशीतलमुद्धरेत् ।
ऊर्ध्वपात्रगतं सत्त्वं गृहीत्वा मर्दयेत्पुनः ॥ ९१ ॥

त्रिदिनं तद्रसैरेव ततो यन्त्रे पुनः पचेत् ।
तदधो ज्वालयेदग्निमष्टयाममतन्द्रितः ॥ ९२ ॥
एवं पुनः पुनः कुर्याद्यावत्सत्त्वं स्थिरं भवेत् ।
स्थैर्यं सत्त्वस्य नियतं जायते सप्तमेऽहनि ॥ ९३ ॥
अष्टमेऽर्कस्य दुग्धेन मर्दयेदेकवासरम् ।
यामानष्टौ पचेदग्नौ कुर्यादेवं त्रिवारकम् ॥ ९४ ॥
गलत्कुष्ठं तथा शोथं वातरक्तसमुद्भवम् ।
वातरक्तेषु सर्वेषु योज्यं गुंजाद्वयोन्मितम् ॥ ९५ ॥
चोबचीनीभवं चूर्णं गृहीत्वा टंकमात्रकम् ।
गुंजामात्रेण तालेन मिश्रितं मधुना भवेत् ॥ ९६ ॥
तस्य नश्यति मूलेन फिरंगाख्यो महागदः ।
व्रणाः शुष्यन्ति सर्वे वै फिरंगोत्था न संशयः ।
शीघ्रं श्लेष्मामयं हन्यादनलं च विवर्द्धयेत् ॥ ९७ ॥

अब शुद्ध हरितालके मारणकी तेरहवीं विधि कहते हैं शुद्ध हरितालको लेकर द्रोणपुष्पी (गूमा, गोमा) के रसमें सात दिन पर्यन्त खरल करे गाढा होनेपर छोटी २ पतली टिकिया बनाकर सुखालेवे और उनको आठ प्रहर तक डमरूयंत्रमें पकावे । जब स्वांगशीतल होजावे तब ऊपरके पात्रमें जो सत्त्व लगा हुआ हो उसको छुरीसे खुरच ले और फिर उस सत्त्वको गोमाके रसमें तीन दिन तक घोटकर धूपमें सुखालेवे तत्पश्चात् डमरूयंत्रमें पहिलकी तरह आठ प्रहरकी आँच देवे स्वांगशीतल होनेपर ऊपरके पात्रमें उडकर लगे हुए हरितालको निकाल लेवे "गोमाके रसमें घोटना, टिकिया बनाकर सुखाना, डमरूयंत्रमें आठ प्रहरकी आंच देना, उडे हुए हरितालको खुरचना" यह एक बारकी क्रिया है इसी प्रकार जब तक सत्त्व स्थिर न होजावे तब तक बारबार करता रहे । सत्त्वकी स्थिरता सातवें दिन अवश्य होजाती है इसमें सन्देह नहीं सारांश यह है कि, सात आँच देनेसे हरिताल अग्निस्थायी होजाता है फिर आठवें दिन आकके दूधमें एक दिवस खरल करके टिकिया बना सुखालेवे तदनंतर डमरूयंत्रमें आठ प्रहरकी आँच दे इस प्रकार तीन आँच देनेसे हरिताल तैयार होजाता है । इससे मात्रा दो रत्तीकी है । इसको विधिपूर्वक नित्य सेवन करनेसे गलत्कुष्ठ वातरक्तसे उत्पन्न शोथ और चकत्ते आदि नष्ट

होते हैं, गाँठ, वातरक्तकी वायु और नासिकाकी पपडी दूर होती है यदि सहत और चार मासे चोबचीनीके चूर्णके साथ १ एक रत्ती प्रमाण इसका सेवन करे तो महान् फिरंग रोग और उससे उत्पन्न घाव समूल नष्ट होजाता है । तथा कफसे पैदा होनेवाले रोगोंको नष्ट करता है अग्निको प्रदीप्त करता है ॥ ९०-९७ ॥

चतुर्दशप्रकारः ।

शुद्धं वै तालकं गृह्य निंबुनीरेण मर्दयेत् ।
कुमारिकारसेनैवं द्रोणपुष्पीरसेन वा ॥ ९८ ॥
गंगातिरियाख्यरसैः सप्ताहं मर्दयेद्भृशम् ।
कर्षकर्षप्रमाणेन वटीं कृत्वा तु शोषयेत् ॥ ९९ ॥
डमरूयन्त्रके पाच्यं ह्यष्टयामाग्निना बुधः ।
शीते ह्युत्पतितं सत्वं युक्त्या वै कर्षयेत्ततः ॥ १०० ॥
अर्कदुग्धेन संपेष्य डमरूयन्त्रेण पूर्ववत् ।
अष्टयामाग्निना तद्वद्द्वाविंशत्या पुनः पुनः ॥ १०१ ॥
ततो गृहीत्वा तत्सत्त्वं वटी कार्या प्रयत्नतः ।
ततस्तु मृण्मये पात्रे पलाशभस्मसंयुते ॥ १०२ ॥
विधिवद्भस्ममध्ये वै पुटीकृत्याग्निना पचेत् ।
चतुर्विंशतियामाग्निं दत्त्वा कृष्णं भविष्यति ॥ १०३ ॥
अर्कदुग्धेन संमर्द्य सूर्ययामाग्निना पचेत् ।
शरावसंपुटे दत्त्वा द्विप्रस्थे शुष्कगोमये ॥ १०४ ॥
दत्त्वाग्निं स्वांगशीते च द्विगुंजाभक्षणेन वै ।
नश्यन्त्यसृग्भवा दोषा धातुपुष्टिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ १०५ ॥
कल्याणभट्टानुभूतं निर्दोषं भस्म गीयते ॥ १०६ ॥

अब हरितालके मारणकी चौदहवीं विधि कहते हैं । शुद्ध किये हुए हरितालको कागजी नींबू, घीकुवार, गोमा, गंगतिरिया इन प्रत्येक औषधोंके रसमें सात सात दिन खूब घोटे और अनुमान एक एक तोले वजनकी टिकिया बनाकर धूपमें सुखालेवे तत्पश्चात् उन टिकियाओंको डमरूयंत्रमें आठ प्रहरकी आँच देकर पकावे जब स्वांगशीतल हो तब ऊपरके पात्रमें उडकर लगे हुए हरितालका सत्त्व

छुरी आदिसे खुरचले और फिर आकके दूधमें खरल करके धूपमें सुखाकर डमरू-यंत्रमें आठ प्रहरकी आँच देकर पकावे इसी प्रकार (आकके दूधमें घोटना, टिकिया बना धूपमें सुखाना, डमरूयंत्रमें आठ प्रहरकी आँचसे पकाना) की क्रियासे बाईस आँच देकर हरितालका अग्निस्थायी सत्त्व निकाल प्रयत्नसे टिकिया बनावे तदनन्तर एक मिट्टीके बर्तनमें आधे भागतक ढाककी भस्म भरे और भस्मके ऊपर टिकियाको रखकर पात्रका शेष भाग भस्मसे पूर्ण भरकर पात्रका मुख उचित रीतिसे बंद करके २४ प्रहरकी आँच देवे तो हरितालका रंग काला होजायगा। तत्पश्चात् एक दिन आकके दूधमें घोट टिकिया बना सुखालेवे और फिर किसी हांडीमें नीचे ऊपर ढाककी भस्म बीचमें हरितालकी टिकिया रख पात्रका मुख बंद कर बारह प्रहरकी आँच दे और फिर उस टिकियाको शरावसंपुटमें रखकर दो प्रस्थ जङ्गली उपलाका आँच देवे, स्वांगशीतल होनेपर हरितालको निकाललेवे इसको दो रत्ती प्रमाण सेवन करे तो सब प्रकारके रक्तविकार दूर होवें और धातुकी पुष्टि हो यह भस्म कल्याणभट्टकी अनुभूत तथा दोषोंसे रहित है ॥ ९९-१०६ ॥

पञ्चदशप्रकारः ।

कर्षैकं हरितालं वै गजपिप्पलिके रसे ।
संमर्द्य गुटिका कार्या ह्यातपे शोषयेत्ततः ॥ १०७ ॥
विधाय डमरूयंत्रे सूर्ययामाग्निना पचेत् ।
शीते जाते ततो विद्वान्ह्यर्धगुंजाप्रमाणतः ॥ १०८ ॥
टंकचूर्णं चोबचीन्या मधुयुक्तं प्रदापयेत् ।
फिरंगघ्नं व्रणघ्नं च ग्रंथीशोथं तथैव च ॥ १०९ ॥
वातरक्तोद्भवा पीडा नाशयेन्नात्र संशयः ।
लवणं नैव दातव्यं कुपथ्यं परिवर्जयेत् ॥
दुग्धाज्यतंदुलादीनि पथ्यं देयं प्रयत्नतः ॥ ११० ॥

अब हरितालके मारणकी पन्द्रहवीं विधि कहते हैं। शुद्ध तबकिया हरितालको आधा तोला लेकर गजपीपलके रसमें घोटे तदनन्तर उसकी टिकिया बना धूपमें सुखालेवे और डमरूयन्त्रमें बारह प्रहरकी तेज आँच देवे जब स्वांगशीतल होजावे तब ऊपरकी हाँडीमें उडकर लगे हुए हरितालको चाकू आदिसे खुरचकर किसी उत्तम शीशीमें रक्खे। और शहत तथा ३ तीन मासे चोबचीनीके साथ आधी रत्ती हरिताल सेवन करे तो फिरंगवात, व्रण, गांठ, सूजन और वातरक्तसे

उत्पन्न पीडा निःसन्देह नष्ट होवे । घी, दूध, चावलोंके सिवाय अन्य पदार्थ नमक आदि इसमें अपथ्य हैं ॥ १०७-११० ॥

षोडशप्रकारः ।

गोमूत्रे भावयेत्तालं दिनैकं प्रस्थमात्रकम् ।
स्फोटयित्वा प्रमाणेन तंदुलस्य न चाधिकम् ॥ १११ ॥
चुल्लिकायां निवेश्याथ कांजिकं प्रक्षिपेत्ततः ।
वस्त्रेणाच्छाद्य यत्नेन पटश्चूर्णेन लिप्यते ॥ ११२ ॥
तस्योर्द्ध्वं दीयते तालं चूर्णं तालोपरि क्षिपेत् ।
उपरिष्टात्पुनर्लिप्त्वा तेन चूर्णेन तालकम् ॥ ११३ ॥
तालिकां तूपरि प्राज्ञः पुनर्दत्त्वा मृदार्पिताम् ।
रुद्ध्वा याममधोवह्निं कुर्याच्चुल्ल्या समन्ततः ॥ ११४ ॥
पुनस्तेन प्रकारेण द्विवेलं तालकं तथा ।
कदलीफलदण्डस्य द्रवेण परिमर्दयेत् ॥ ११५ ॥
याममेकं पुनस्तालं शोषयित्वा च तत्तथा ।
पुनर्यामं पुनर्याममेवं वेलात्रयं बुधः ॥ ११६
कुर्यान्मर्दनशोषं च तंदुलीमरसेन वै ।
गण्डदूर्वारसैस्तद्वत्तथा पुष्पफलद्रवैः ॥ ११७ ॥
सर्वं तिक्ता काकमाचीरसैस्तद्वत्प्रमर्दयेत् ।
सेहुण्डपयसा दद्याद्गुडसौभाग्यपीतिकाः ॥ ११८ ॥
पादं कृत्वा काचकुम्भे क्षिपेद्यन्त्रेऽथ सैकते ।
यामद्वादशपर्यन्तमग्निं कुर्यादहर्निशम् ॥ ११९ ॥
कदलीफलादिकं कर्म यत्कृतं विद्यते पुरा ।
तथैव च पुनः कुर्यात्षड्यामं वह्निदीपनम् ॥ १२० ॥
पुनस्तदेव तत्कर्म द्वियामं वह्निदीपनम् ।
एवं तालकसत्त्वं स्यादधस्तिष्ठति निश्चितम् ॥ १२१ ॥
खोटिकामं गुरुतरं सोज्ज्वलं तारसान्निभम् ।
वह्निसंयोगतो नैव समुड्डीय प्रयाति तत् ॥ १२२ ॥

अब हरितालके मारणका सोलहवाँ प्रकार लिखते हैं । एक सेर शुद्ध तब-किया हरिताल लेकर गौके मूत्रमें एक दिन भावना देवे और दूसरे दिन चावलके समान हरितालके छोटे २ टुकडे करलेवे तदनन्तर किसी बडे वस्त्रपर चूनेका लेप करके उसमें उसी हरितालको रखदेवे और हरितालके ऊपर चूनेको बिछायकर पोटली बनालेवे और एक उत्तम मिट्टीके पात्रमें कांजी भरकर दोलायन्त्रकी विधिसे उसमें पोटली लटकावे पात्रका मुख शराव (परई) से बंद कर कपरमिट्टी करे पुनः चूल्हेपर चढायकर बराबरकी आँचसे एक प्रहर पर्यन्त पकावे और जब कांजी सूख जावे तब चूल्हेपरसे उतार लेवे । इसी रीतिसे सब क्रिया करके दो वार और दोलायन्त्रके द्वारा कांजीमें स्वेदन करे तत्पश्चात् केलेकी जडके रसमें एक प्रहर तक खरल करके धूपमें सुखालेवे इसी प्रकार दो बार और करे अर्थात् केलेकी जडके रसमें एक प्रहर तक घोटना तथा धूपमें सुखालेना इस एक बारकी क्रियाको और करे तत्पश्चात् चौलाई, कडवी तूंबी और पुष्पफलके रसमें तीन २ वार पृथक् २ घोटकर सुखालेवे । इसके पीछे कुटकी और मकोयके रसोंमें खरल करके सुखालेवे फिर सुहागा और हलदी डालकर सेहुंडके दूधके साथ खरल करके किसी आतशी शीशीमें भर बारह प्रहर तक वालुकायन्त्रके द्वारा पकावे जब ठण्ढा होजावे तो हरितालको निकालकर पहले कहे हुए केलेकी जड आदिके रसोंमें फिर उसी प्रकार खरल करे और छः प्रहर पर्यन्त धीमी आँचसे पकावे, तदनन्तर पुनः केलेकी जड आदिके रसोंमें घोटकर दो प्रहरकी आँच देवे और स्वांगशीतल होनेपर हरितालको निकाले तो निःसन्देह उस हरि-तालका सत्त्व अग्निस्थायी होवे यह सत्त्व खर्जूरकी खोटिकाके तथा चांदीके तुल्य प्रभासे युक्त उज्ज्वलता लिये हुए भारी होताहै । अब इसमें चाहे जितना अग्निका संयोग किया जाय पर यह उडेगा नहीं ॥ १११-१२२ ॥

प्रस्थैकं तालमादाय कुमारीरसभावितम् ।
संशोष्य च क्षिपेद्भाण्डे पलाशक्षारसंयुते ॥ १२३ ॥
क्षारोपर्यभ्रखण्डानि तदुपर्यालरोटिकाम् ।
तदूर्ध्वं तु पुनः कार्या अभ्रकाणां च विस्तृतिः ॥ १२४ ॥
ततस्तु पात्रमाकंठं पूरयेद्भस्माभिः पुनः ।
आच्छाद्य तन्मुखं सम्यक् शरावमृत्स्नकर्पटैः ॥ १२५ ॥
ततो चुल्ल्यां समारोप्य सूर्ययामाग्निना पचेत् ।
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य तत्सत्त्वं मतिमान्नरः ॥ १२६ ॥

द्रोणपुष्प्या रसे शंखपुष्प्या वज्रार्कदुग्धके ।
गन्धपुष्प्याश्च न्यग्रोधरसे दुग्धे च माहिषे ॥ १२७ ॥
धात्रीद्रुमस्य पर्णे च तथा नागदमेऽपि च ।
पश्चान्मोरशिखाख्यायां ततो कुक्करभृङ्गके ॥ १२८ ॥
ततस्तु जलपिप्पल्यां खर्पराख्ये विषे तथा ।
कृष्णधत्तूरके तद्वत्तथा चामरवल्लिके ॥ १२९ ॥
गुंजापामार्गचिछक्कन्या रसे शोभाञ्जने तथा ।
सहदेवीरसे चैव विषे वै राजसर्षपे ॥ १३० ॥
गोजिह्वायां च पाषाणशाके चैव पलाण्डुके ।
निम्बुनीरे च कूष्माण्डे हुल्हुले शरपुंखके ॥ १३१ ॥
दुग्धिकार्द्रकयोश्चैव भावयेन्मतिमान्भिषक् ।
बलाद्वये च लशुने पीतपुष्प्यां च नागरे ॥ १३२ ॥
श्वेतार्के चित्रके चैव क्वाथे दुग्धे रसे तथा ।
भावयित्वा तु प्रत्येकं दिनैकं तु यथातथम् ॥ १३३ ॥
यन्त्रे विद्याधरे चैव पाचनीयन्तु पूर्ववत् ।
एवं वै हरितालस्य तत्सत्त्वं भवति स्थिरम् ॥ १३४ ॥
पीयूषवच्च विज्ञेयं किम्बहूक्तेन वैद्यराट् ।
राजसर्षपमानेन सेवनस्य फलं शृणु ॥ १३५ ॥
महाकुष्ठादिरोगाश्च लीयन्ते मासमात्रतः ।
जाठराग्निर्भवेद्दीप्तो बहुरामा रमेन्नरः ॥ १३६ ॥
सप्ताहसेवनेनैव शुक्रदोषात्प्रमुच्यते ।
रक्तश्वेतौ च प्रदरौ नश्यतः स्त्रीजनस्य च ॥ १३७ ॥
राजरोगक्षयार्शांसि ह्युपदंशभगन्दरौ ।
नश्यन्ति दुष्टरोगाश्च तपनेन यथा तमः ॥ १३८ ॥

यथा पवनवेगेन मेघा नश्यन्ति सर्वतः ।
तथास्य सेवनाच्चापि रोगा नश्यन्ति मूलतः ॥ १३९ ॥
वमनादिक्रियाभिश्च पञ्चाभिर्मतिमान्भिषक् ।
संशोध्य रोगिणे देयं तदा नीरोगतामियात् ॥ १४० ॥
सर्वदोषहरो ज्ञेयो न करोति ह्युपद्रवान् ।
अनुभूतप्रयोगोऽयं रक्षणीयो भिषग्वरैः ॥ १४१ ॥

अब हरितालके मारणकी सत्रहवीं विधि कहते हैं । एक सेर शुद्ध किये हुए हरितालको लेकर चार प्रहर पर्यन्त ग्वारपाठेके रसमें घोटे जब घोटते २ गाढा होजाय तब उसको रोटीके तुल्य चिपटी और गोल बनाकर धूपमें सुखालेवे, तत्पश्चात् एक मिट्टीके पात्रमें पलाशकी राख आधे भागतक भरे और उस राखके ऊपर अभ्रकके छोटे २ टुकडे बिछाकर ऊपरसे हरितालकी रोटीको रखकर फिर भी अभ्रकके टुकडोंसे उस रोटीको ढाँक देवे ओर फिर पलाशकी राखसे पात्रको पूर्ण भर परईसे मुख आच्छादित कर कपरमिट्टी करे । तदनन्तर चूल्हेपर चढाय बारह प्रहर तक आँच देकर उतार लेवे, स्वांगशीतल होनेपर हरितालको पात्रसे अलग निकाल गोमा, शंखाहुली, थूहर, आक, गेंदाकी पत्ती, वट, भैंसका दूध, आमलेके पत्ते, नागदौन, मोरशिखा, कुकुरभाँगरा, जलपिप्पली, खर्परविष, काला धतूरा, अमरबेल, घुँघची, लटजीरा, नकछिकनी, सहिंजना, सहदेबी, सिंगिया विषका काढा, राई, गोभी, पथरसगा, प्याज, नींबूका रस, कुम्हडा, हुलहुल, शरफोंका, दुद्धी, अदरक, दोनों बरियारी, लहसुन, हेमपुष्पी (पीले फूलवाली यूथिका) सोंठ, सफेद आक, चीता, यथासंभव इन प्रत्येक वस्तुओंका काढा, दूध और रसोंमें एक २ दिन खरल करके टिकिया बनालेवे और पूर्वके तुल्य डमरूयन्त्रके द्वारा पकावे तो हरितालका सत्त्व स्थिर और अमृतके समान गुणकारी सिद्ध होता है फिर उस सत्त्वको किसी उत्तम शीशीमें रखदेवे और नित्य एक राई प्रमाण मात्रासे एक मास पर्यन्त सेवन करे तो असाध्य भी महाकुष्ठ आदि रोग नष्ट होते हैं । जठराग्नि प्रदीप्त होती है तथा अनेक स्त्रियोंके साथ भोगविलास करनेमें समर्थ होताहै और सात दिन सेवन करनेसे समस्त शुक्रसम्बन्धी रोग दूर होजाते हैं । स्त्रियाँ सेवन करें तो उनके रक्त और श्वेत प्रदर आदि रोग नष्ट होवें । राजरोगक्षयी, बवासीर, उपदंश और भगन्दर आदि रोग सूर्यसे अन्धकारके तुल्य तथा वायुसे मेघोंको समान शीघ्र ही समूल नष्ट होवें । बुद्धिमान् वैद्यको चाहिये कि, वमन, विरेचन आदि पाँच कर्मोंसे रोगीको शुद्ध करके उसके

लिये इस हरितालके सत्त्वको उक्त रीतिसे देवे तो निस्सन्देह वह रोगोंसे मुक्त होवे । यह सब दोषोंका नाश करनेवाला है, इसके खानेसे किसी प्रकारके उपद्रव नहीं होते । यह अनुभव किया हुआ प्रयोग है, वैद्योंको चाहिये कि इसकी रक्षा करें ॥ १२३–१४१ ॥

अथाष्टादशप्रकारे धातुविद्धभस्मविधिः ।

रुदंत्या हरितालं च रसेन सह मर्दयेत् ।
ताम्रपत्रप्रलेपेन दिव्यं भवति कांचनम् ॥ १४२ ॥

अब अठारहवीं विधिमें धातुसे विद्ध हरितालके भस्म करनेकी रीति कहते हैं । रुद्रवंती (एक प्रकारका क्षुपवृक्ष) के रसमें शुद्ध किये हुए हरितालको घोटे और जब घोटते २ खूब बारीक हो जावे तब ताँबेके पत्रोंपर उसका लेप करके अग्निको प्रदीप्त करके फूँक देवे तो सुन्दर सुवर्ण बनजाता है ॥ १४२ ॥

एकोनविंशतिप्रकारः ।

तालं ताप्यं दरदकुनटी सूतकं सार्द्धभागं
खल्वे कृत्वा त्रिदिनमथितं काकमाचीद्रवेण ।
तेनालेप्यं रविशशिदलं खर्परे वह्नितुल्यं
शुल्बातीतं भवति कनकं संबलं पांथिकानाम् ॥ १४३ ॥

अब उन्नीसवें प्रकारमें धातुविद्ध भस्म करनेकी दूसरी रीति कहते हैं । पहले एक भाग ताँबा या रांगा लेकर उसके पतले २ पत्र बनवालेवे तत्पश्चात् ताँबेसे ड्यौढा हरिताल, रूपामक्खी, हिंगुल, मनसिल, पारा इनको लेकर तीन दिवस पर्यन्त मकोयके रसमें खरल करे बारीक होनेपर उन पत्रोंपर लेप करके किसी खपडेमें रख आँच देवे तो सुन्दर सोना सिद्ध होजाताहै । यह मार्गस्थ मनुष्यों (सफर करनेवालों) के लिये उपयोगी है ॥ १४३ ॥

विंशत्प्रकारः ।

तालतुल्यां शिलां पिष्ट्वा देवदाल्याद्रवैर्दिनम् ।
द्रावैरीश्वरलिंग्याश्च दिनमेकं विमर्दयेत् ॥ १४४ ॥
नागं वंगं रसं तुल्यं चूर्णितं पलपंचकम् ।
पूर्वकल्केन संयुक्तं समालोड्य घृतं पुटेत् ॥ १४५ ॥
एवं पुनः पुनः पाच्यं पूर्वकल्केन संयुतम् ।

भवेत्षष्टिपुटे शीघ्रवंगस्तम्भकरं परम्।
शतभागेन दातव्यं वेधं तारे करोत्ययम्॥ १४६ ॥

अब मारणकी बीसवीं विधि कहते हैं। शुद्ध किया हुआ हरिताल और मनसिल इन दोनोंको समान भाग लेकर देवदालीके रसमें एक दिन पर्यन्त घोटे और शिवलिंगीके रसमें एक दिन खरल करे, तत्पश्चात् नाग, वंग और पारा इनको एकमें मिलाकर खरल करके पाँच पल अर्थात् २० तोले चूर्णको सिद्ध करे, अब इस चूर्ण तथा पूर्व सिद्ध किये हरिताल और मनसिलके कल्कको एकत्र मिलाकर खरल करके अग्निमें फूँक देवे इसी विधिसे पूर्वकल्कसे युक्त उस चूर्णको वारंवार पकावे ६० पुट देनेसे यह उत्तम भस्म वंगका स्तंभन करने योग्य होता है। यह शतभाग देनेसे तारमें वेध करताहै॥ १४४-१४६ ॥

अथ भस्मपरीक्षा।

तालं मृतं तदा ज्ञेयं वह्निस्थं धूपवर्जितम्।
सधूमं न मृतं प्राहुर्वृद्धवैद्या इति स्थितिः॥ १४७ ॥

अब हरितालकी बनीहुई भस्मकी परीक्षा कहते हैं। सिद्ध की हुई भस्मको अग्निमें छोडनेसे यदि धूम न निकले तो उस भस्मको उत्तम शुद्ध समझना चाहिये नहीं तो नहीं। यह अनुभवी वृद्ध वैद्योंका कथन है।॥ १४७ ॥

अथ तालभस्मगुणाः।

अशीतिवातान्कफपित्तरोगान्कुष्ठं च मेहं च गुदामयांश्च।
निहन्ति गुंजार्द्धमितं तु तालं षड्वल्लखंडेन समं च युक्तम्॥ १४८ ॥

अब हरितालभस्मके गुणोंको कहते हैं। यदि छः वल्ल अर्थात् अठारह मिश्रीके साथ आध रत्ती उत्तम हरितालकी भस्मका विधिपूर्वक सेवन करे तो ८० अस्सी प्रकारके वायुरोग, कफ और पित्तसे उत्पन्न सब रोग कुष्ठ, प्रमेह, तथा गुदामें पैदा होनेवाले सब प्रकारके बवासीर आदि रोग नष्ट होजाते हैं॥ १४८ ॥

अथानुपानानि।

एवं गुणं तु तत्तालं देयं गुंजैकमानतः।
अनुपानान्यनेकानि यथायोग्यं प्रयोजयेत्॥ १४९ ॥
गुडूच्यादिकषायेण गदानेतान्व्यपोहति।
सोपद्रवं वातरक्तं कुष्ठान्यष्टादशापि च॥ १५० ॥

सर्वरक्तविकारेषु देयमाम्रहरिद्रया ।
सुहालाहलजीराभ्यामपस्मारहरं परम् ॥ १५१ ॥
समुद्रफलयोगेन जलोदरविनाशनम् ।
देवदालीरसैर्युक्तं भगंदरहरं परम् ॥ १५२ ॥
फिरंगदोषजं रोगं जातं हन्ति सदुस्तरम् ।
मंजिष्ठादिकषायेण कुष्ठान्यष्टादशाञ्जयेत् ॥ १५३ ॥
त्रिफलाशर्करायुक्तं पाण्डुरोगं जयत्यसौ ।
शुण्ठीचूर्णयुतं हन्यादामवातं सुदुर्जयम् ॥ १५४ ॥
सौवर्णभस्मयोगेन रक्तपित्तविकारनुत् ।
तंदुलीयरसैः साकं ज्वरमष्टविधं जयेत् ॥
एवं सर्वेषु रोगेषु स्वबुद्ध्या कल्पयेद्भिषक् ॥ १५५ ॥

इस प्रकार उत्तम गुणोंसे युक्त हरितालके भस्मकी एक रत्ती प्रमाण मात्रा रोगीके लिये देवे । अनुपान अनेक हैं इस हेतु वैद्यको चाहिये कि वह रोगके अनुकूल अनुपानका प्रयोग करे । यदि वातरक्त रोग या अठारह प्रकारके कुष्ठोंमेंसे कोई कुष्ठ हो तो गिलोयके क्वाथके साथ सेवन करनेसे वे उपद्रवयुक्त वातरक्त रोग तथा समस्त कुष्ठरोग नष्ट होते हैं सब प्रकारके रक्तविकारोंमें आमा-हल्दीके साथ, मृगीरोगमें विष और जीराके, जलंधर रोगमें समुद्रफलके, भगंदर और फिरंगवातमें देवदालीके रसके, अष्टादश कुष्ठोंमें मंजिष्ठादि क्वाथके, पाण्डुरोगमें त्रिफला और मिश्रीके, आमवातमें सोंठके चूर्णके, रक्तपित्तमें सुवर्णकी भस्मके, आठ प्रकारके ज्वरोंमें चौलाईके रसके साथ हरितालभस्मका सेवन करे तो सब रोगोंसे मुक्त होजावे । वैद्यको चाहिये कि, इसी प्रकार अन्य सब अनुक्त रोगोंमें भी अपनी बुद्धिसे अनुपानोंकी कल्पना करके रोगीको भस्मको देवे॥१४९--१५५॥

अथ तालसत्त्वनिर्माणविधिः ।

जयपालवीजवातारिवीजमिश्रं च तालकम् ।
कूपीस्थं वालुकायन्त्रे सत्त्वं मुञ्चति यामतः ॥ १५६ ॥

अब हरितालके सत्त्व निकालनेकी विधि कहते हैं । आधसेर शुद्ध किया हुआ हरिताल वा हरितालकी भस्म, दो छटाँक जमालगोटेकी जड और दो छटाँक अरंडके वीज इन तीनोंको एकमें मिलाकर एक प्रहर पर्यन्त खरल करके किसी उत्तम आतशी शीशीमें भरकर वालुयंत्रके द्वारा एक प्रहर आँच देवे तो हरिता-

लका सत्त्व उडकर शीशीके मुखमें आलगेगा स्वांगशीतल होने पर उसको निकाल लेवे ॥ १५६ ॥

द्वितीयप्रकारः।

शुद्धचूर्णस्य पादांशं मर्दयेन्नवसादरम्।
चूर्णाद्द्विगुणतोयेन तत्तोये निर्मलं पचेत् ॥ १५७ ॥
शनैर्लवणपाकेन यावत्तु लवणं भवेत्।
अथ तत्तालकं शुद्धं पारदं टंकणैर्युतम् ॥ १५८ ॥
टंकणार्द्धेन तच्चूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः।
शरपुंखाद्रवैरेव शुद्धं तत्कूपिकोदरे ॥
पचेद्यामाष्टकं यावत्सत्त्वरूपेण तिष्ठति ॥ १५९ ॥

हरितालके सत्त्व निकालनेका दूसरा प्रकार कहते हैं नोसादर पावभर और विना बुझा चूना एक सेर लेकर दो सेर पानीमें पकावे पकते २ जब गाढा होकर खारके समान होजावे तब निकालकर आधसेर हरिताल, शुद्ध पारा, एक छटाँक सुहागा और पैसे भर खार इनको घीकुवार और शरफोंकेके रसमें दो प्रहरतक खरल करे तत्पश्चात् किसी आतशी शीशीमें भरकर बालुकायंत्रके द्वारा आठ प्रहर तक आँच देवे तो हरितालका सत्त्व उडकर शीशीके मुखमें आलगेगा पीछे स्वांगशीतल होनेपर उसको निकाल लेवे ॥ १५७-१५९ ॥

तृतीयप्रकारः।

लाक्षाराजातिलाञ्छिग्रु टंकणं लवणं गुडम्।
तालकार्द्धेन संमिश्र्य छिद्रमूषां निरोधयेत् ॥
पुटेत्पातालयन्त्रेण सत्त्वं पतति निश्चितम् ॥ १६० ॥

अब सत्त्व निकालनेका तीसरा प्रकार कहते हैं। शुद्ध किया हुआ हरिताल एक भाग और हरितालका आधा भाग लाख, राई, तिल, सहिंजनेकी छाल, सुहागा, नमक और गुड इनको एकमें मिलाकर खूब बारीक खरल करे तत्पश्चात् छिद्र सहित मूषामें रख और मूषाका मुख बंद करके पातालयंत्रमें पुट देवे तो अवश्य सत्त्व निकले ॥ १६० ॥

चतुर्थप्रकारः।

पलैकं तालकं शुद्धं तत्समं टंकणं भवेत्।
मर्दयेन्मेषिकाक्षीरैः कूष्माण्डद्रवजैः पुनः ॥ १६१ ॥

कन्यानिंबुकनीरेण वज्रार्कपयसा तथा ।
वातारितैलसंयुक्तं मर्दयेत्सकृदेव तु ॥ १६२ ॥
वटकान्कारयेत्पश्चात्मध्वाज्येन समन्वितान् ।
काचकुप्यां विनिक्षिप्य लेपयेन्मृत्स्नकर्पटैः ॥ १६३ ॥
बालुकायन्त्रगं कुर्यात्पचेद्दिनचतुष्टयम् ।
सत्त्वं कुलिशसंकाशमूर्ध्वं तिष्ठति नान्यथा ॥ १६४ ॥

अब सत्त्व निकालनेका चौथा प्रकार कहते हैं। शुद्ध किया हुआ हरिताल चार तोले और सुहागा चार तोले इन दोनोंको भेडीके दूध, कुम्हडेके रस, घीकुवारके रस, निंबूके रस, थूहरके रस, आकके रस और अंडीके तेल इन प्रत्येकमें एक एक दिन खरल करके शहद और घी मिलाकर गोला बनालेवे और उसको किसी आतशी शीशीमें छोडकर कपरमिट्टीसे मुख बंद करदेवे तदनन्तर बालुकायंत्रमें चार दिन पर्यन्त आँच देवे तो हीरेके तुल्य कान्तियुक्त सत्त्व उडकर शीशीके मुखपर आ लगेगा स्वांगशीतल होने पर उस सत्त्वको खुरचलेवे ॥ १६१-१६४ ॥

पञ्चमप्रकारः ।

शुद्धं तालं टङ्कणेन माहिषेण घृतेन च ।
कुलत्थक्काथकेनाथ मधुना वै पृथक्पृथक् ॥ १६५ ॥
भावयित्वा हण्डिकायां क्षिप्त्वोर्ध्वं छिद्रसंयुताम् ।
पालिकां न्यस्य तत्सन्धेर्लेपं सम्याग्विधाय च ॥ १६६ ॥
वेदयामेषु क्रमतो वह्निं दद्याद्विचक्षणः ।
नलीकातस्ततो धूमे बहिर्याते विचक्षणः ॥ १६७ ॥
धूमं पाण्डुरमालोक्य वह्निं निर्वाप्य यत्नतः ।
उत्तार्य हण्डिकां स्वाङ्गशीतलं भेषजं हरेत् ॥ १६८ ॥

अब सत्त्व निकालनेकी पाँचवीं विधि कहते हैं। शुद्ध हरितालको सुहागे, भैंसके घृत, शहत और कुलथीके काढेमें अलग २ भावना देकर एक मिट्टीके पात्रमें रखकर ऊपरसे छिद्रयुक्त ढँकना बंद करके संधियोंकोभी लेपसे बंद करदेवे तत्पश्चात् उस छिद्रमें एक लंबी नली लगाकर पात्रको चूल्हेपर चढाय क्रमसे

चार प्रहरकी आँच देवे । जब नलीसे पीले रंगका धूम निकलने लगे तब अग्निको शांत करदेवे और हंडीको चूल्हेपरसे उतार लेवे जब स्वांगशीतल होजावे तब सत्त्वको निकालकर किसी शीशीमें रख देवे ॥ १६५--१६८ ॥

अथ सत्त्वसेवनगुणा अनुपानानि च ।

वातरक्तेऽतिदुःसाध्ये सततं तंदुलोन्मितम् ।
दद्याच्चणकवद्भक्ष्यं पथ्यार्थं घृतसेवितम् ॥
द्विसप्तदिवसैः कान्तिर्जायते रोगवर्जिता ॥ १६९ ॥

अब हरितालके सत्त्व सेवन करनेके गुण और अनुपान कहते हैं । वैद्यको चाहिये कि, वह अति दुःसाध्य वातरक्तरोगमें एक प्रमाण मात्रासे सत्त्वका सेवन करावे और पथ्यके लिये घृतसहित चनेकी रोटी देवे तो चौदह दिनमेंही रोगमुक्त होकर कान्तियुक्त शरीरवाला होता है ॥ १६९ ॥

अथ तालयोजना ।

श्वासे कासे क्षये कुष्ठे पित्ते च वातशोणिते ।
दद्रुपामाव्रणे वाते तालकं च प्रदापयेत् ॥ १७० ॥

अब किन २ रोगोंमें हरितालकी योजना करनी चाहिये सो कहते हैं श्वास, कास, क्षयी, कुष्ठ, पित्त, वातरक्त, दाद, खुजली, व्रण और वादी इन रोगोंमें हरितालका सेवन करना चाहिये ॥ १७० ॥

अथाशुद्धतालसेवनोपद्रवाः ।

अशुद्धतालं खलु पीतवर्णं सधूमकं वातचयं च पित्तम् ।
पंगुत्वकुष्ठं तनुते च तेन देहस्य नाशं प्रकरोति सद्यः ॥ १७१ ॥

विना शुद्ध वा न्यून शुद्ध हरितालके सेवनसे होनेवाले उपद्रवोंको कहते हैं । पीले रंगसे युक्त तथा अग्निमें छोडनेसे धुआँ देनेवाले इस कच्चे हरितालको यदि सेवन करे तो वातापित्तके रोग, पँगुलापन और कुष्ठ आदि रोग उत्पन्न होकर शरीरका नाश होवे ॥ १७१ ॥

अथ तदुपद्रवशान्त्यर्थमुपायः ।

अजाजीं शर्करायुक्तां सेवते यो दिनत्रयम् ।
विकृतिं तालजां हन्याद्यथा दारिद्र्यमुद्यमः ॥ १७२ ॥

अब अशुद्ध हरितालके सेवनसे उत्पन्न हुए उपद्रवोंकी शान्तिके लिये उपाय कहते हैं । जिस प्रकार उद्यम या व्यापारसे दरिद्रता नष्ट होजाती है इसी

प्रकार मिश्री और जीरा मिलाकर तीन दिन सेवन करनेसे सब उपद्रव नष्ट होजाते हैं ॥ १७२ ॥

अन्यच्च ।

यवासकरसैश्चैव कूष्माण्डस्वरसैस्तथा ।
राजहंसरसेनापि विकृतिं तालजां जयेत् ॥ १७३ ॥

उपद्रवोंके शमन करनेके लिये औरभी उपाय कहते हैं । यदि जवासा वा कुम्हडेका रस पीवे तो अशुद्ध हरितालके सेवनसे पैदा हुए उपद्रव शान्त होवें और राजहंस रूखडीके रससेभी सब विकार दूर होते हैं ॥ १७३ ॥

अथ तालसेवने वर्जनीयानि ।

एतद्भेषजसंसेवी लवणाम्लौ विवर्जयेत् ।
तथाकटुरसं वह्निमातपं दुस्तरं त्यजेत् ॥ १७४ ॥
लवणं यः परित्यक्तुं न शक्नोति कथंचन ।
स तु सन्धवमश्नीयान्मधुरोऽपि रसो हितः ॥ १७५ ॥

अब हरिताल सेवन करनेवालेके लिये अपथ्य पदार्थोंका वर्णन करते हैं । हरितालसेवी मनुष्य नमक, अम्ल (खट्टे) पदार्थ, कटुरससे युक्त कोईभी पदार्थ, अग्निका तापना, धूपमें रहना इत्यादिको त्याग करे अर्थात् यह हितकारी नहीं है । यदि नमकका परहेज किसी प्रकार न करसके तो फिर कुछ सैन्धव नमकसे काम चलावे और मधुर रसका सेवन इसमें हित है ॥ १७४ ॥ १७५ ॥

एवं ते हरितालस्य शोधनादिविधिक्रमात् ।
भक्षणादिक्रियाश्चापि ह्यध्यायेऽस्मिन्निवेदिता ॥ १७६ ॥

हे पुत्र ! इस प्रकार हरितालके शोधनकी रीति तथा भक्षणादिक्रिया अर्थात् सेवन करनेकी मात्रा और पथ्यापथ्यका वर्णन आदि इस अष्टमाध्यायमें तुमको समझा दिया है ॥ १७६ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे
हरितालप्रकरणं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ।

अथातोऽञ्जनकासीसगैरिकवर्णनं नाम नवमाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

वत्स ते संप्रवक्ष्यामि ह्यञ्जनस्याथ सत्क्रियाः ।
कासीसगैरिकस्यापि क्रमात्तत्त्वं हि श्रूयताम् ॥ १ ॥

हे वत्स ! अब मैं तुम्हारे बोधार्थ इस नवम अध्यायमें अञ्जन, कासीस, गैरिक (गेरू) इनके भेद तथा शोधन आदिका वर्णन करूंगा ॥ १ ॥

अञ्जनभेदाः ।

प्रथमं चाञ्जनस्यैव भेदादीन्कथयामि ते ।
अञ्जनं यामुनं वापि कापोताञ्जनमित्यपि ॥ २ ॥

हे वत्स ! पहले अञ्जनके ही भेद तथा गुण आदिका वर्णन करताहूं । अंजनके दो भेद हैं एक यामुन दूसरा कापोत ॥ २ ॥

स्रोतोञ्जनभेदौ ।

स्रोतोञ्जनं तु द्विविधं श्वेतकृष्णाविभेदतः ।
तत्र स्रोतोञ्जनं रूक्षं सौवीरं श्वेतमीरितम् ॥ ३ ॥

स्रोतोंजनके दो भेद हैं एक सफेद, दूसरा काला, जो काला है उसका नाम स्रोतोंजन है और वह रूक्ष है । जिसका रंग सफेद है वह सौवीरांजन नामसे प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥

अथान्यमतम् ।

सौवीरमंजनं प्रोक्तं रसांजनमतः परम् ।
स्रोतोञ्जनं तदन्यच्च पुष्पाञ्जनमतः परम् ॥
नीलाञ्जनं तथा प्रोक्तं स्वरूपमिह वर्ण्यते ॥ ४ ॥

किसीका मत है कि, अंजनके दोही भेद नहीं हैं किन्तु पाँच भेद हैं जैसे सौवीरांजन, रसांजन, स्रोतोंजन, पुष्पांजन और नीलांजन ॥ ४ ॥

तत्रादौ सौवीरांजनलक्षणम् ।

सौवीरमंजनं धूम्रं रक्तपित्तहरं हिमम् ।
विषनेत्रामयहरं व्रणशोधनरोपणम् ॥ ५ ॥

सौवीरांजनका रंग धूमके समान होताहै और वह शीतल है रक्तपित्त, विषरोग, नेत्ररोगका नाश करनेवाला तथा व्रणको शोधन और रोपण करता है ॥ ५ ॥

रसाञ्जनलक्षणम् ।

पीतचन्दननिर्यासं रसाञ्जनमितीरितम् ।
तत्क्वाथजं वा भवति पीताभं वक्त्ररोगनुत् ॥ ६ ॥
श्वासहिक्काहरं वर्ण्यं वातपित्तास्रनाशनम् ।
नेत्र्यं सिध्मविषच्छर्दिकफपित्तास्रकोपनुत् ॥ ७ ॥

रसांजन जिसको रसौत भी कहते हैं वह पीले चन्दनका गोंद या काढा है इसका रंग पीला होता है । इसको विधिपूर्वक सेवन करनेसे मुखके सब रोग, श्वास, तथा वातपित्तज रक्तविकार, नेत्ररोग, सिध्म, विष, वमन तथा कफपित्तज, रक्त विकार दूर होते हैं और शरीरका वर्ण उत्तम कान्तियुक्त होता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

स्रोतोञ्जनलक्षणम् ।

वल्मीकशिखराकारं भिन्नमञ्जनसन्निभम् ।
घृष्टं तु गैरिकाकारमेतत्स्रोतोऽञ्जनं स्मृतम् ॥
रसाञ्जनं तरुभवं स्रोतोञ्जननदीभवम् ॥ ८ ॥

यह स्रोतोंजन नदीसे पैदा होता है और रसांजन (जो कि पहले लिख चुके हैं) वृक्षसे पैदा होता है । स्रोतोंजनका रंग देखनेमें तो काला होता है पर घिसनेसे उसका रंग गेरूके तुल्य होता है और उसका आकार सर्पकी बाँबीके सदृश होता है ॥ ८ ॥

पुष्पाञ्जनलक्षणम् ।

पुष्पाञ्जनं सितं स्निग्धं हिमं नेत्रामयापहम् ॥ ९ ॥

पुष्पांजनका रंग श्वेत होता है स्पर्शमें चिक्कण है ठण्ढा है और नेत्रके रोगोंका दूर करनेवाला है ॥ ९ ॥

नीलाञ्जनलक्षणम् ।

नीलाञ्जनं परं नेत्र्यं छर्दिहिक्कानिवारणम् ।
रसायनं सुवर्णघ्नं लोहमार्दवकारकम् ॥
नीलाञ्जनं नीलवर्णं स्निग्धं गुरुतरं स्मृतम् ॥ १० ॥

यह नीलांजन नेत्रके रोगोंमें बडा फायदा देनेवाला है । इसको विधिपूर्वक सेवन करे तो वमन और हिचकीका नाश होता है । यह लोहेको नरम तथा सुवर्णको भस्म करनेवाला रसायन है इसका रंग नीला होताहै और अत्यन्त भारी तथा स्पर्शमें चिकना होता है ॥ १० ॥

अथाञ्जनशोधनम् ।

अञ्जनान्याशु शुध्यन्ति भृङ्गराजनिजद्रवैः ॥ ११ ॥

अब सब अंजनोंका शोधनका सामान्य नियम कहते हैं । भांगरेके स्वरसमें खरल करनेसे सब अंजन शीघ्र शुद्ध होजाते हैं ॥ ११ ॥

द्वितीयप्रकारः ।

त्रिफलावारिणा शोध्यं तद्वय शुद्धिमृच्छाति ।
भृङ्गराजरसे वापि स्रोतः सौवीरकं शुचि ॥ १२ ॥

अब शुद्ध करनेका दूसरा विशेष नियम कहते हैं । भांगरेके रसमें वा त्रिफलाके क्वाथमें स्रोतोञ्जन या सौवीरांजनको औटावे तो शुद्ध हो जाते हैं ॥ १२ ॥

तृतीयप्रकारः ।

गोशकृद्रसमूत्रेषु घृतक्षौद्रवसासु च ।
भावितं बहुशस्तं च शुद्धिमायाति ह्यञ्जनम् ॥ १३ ॥

अब फिर भी शुद्ध करनेके सामान्य प्रकारको कहते हैं । गौके गोबरका रस, गौका मूत्र, घृत, शहत और वसा अर्थात् चर्वी इन सबोंकी अनेक वार भावना देवे तो अंजन शुद्ध हो जाता है ॥ १३ ॥

चतुर्थप्रकारः ।

सर्वाञ्जनं चूर्णयित्वा जंबीरद्रवभावितम् ।
दिनैकमातपे शुष्कं भवेत्कार्येषु योजयेत् ॥ १४ ॥

चाहे जो अंजन हो, एक दिन जंबीरी नींबूके रसमें भावना देकर धूपमें सुखालेवे तो शुद्ध हो जाता है । और इसका सब कार्योंमें उपयोग करे ॥ १४ ॥

पञ्चमप्रकारः ।

सूर्यावर्तादियोगेषु शुध्यत्याशु रसांजनम् ।
सर्वाणि चाञ्जनानीह तूर्णं बध्नन्ति सूतकम् ॥ १५ ॥

यदि काले भांगरा वा हुलहुलके रसमें अंजनको खरल करे तो शुद्ध होजाता है । सब अंजन पारेके बंधन करनेवाले हैं ॥ १५ ॥

रसांजनोत्पत्तिः ।

दार्वीक्काथमजाक्षीरे पादपक्कं यथा घनम् ।
तदा रसांजनं ख्यातं नेत्रयोः परमं हितम् ॥ १६ ॥

अब रसांजन (रसौत) कीं उत्पत्ति कहते हैं । दारुहल्दीका क्काथ बनाकर बकरीके दूधमें पकावे जब चौथाई भाग शेष रहे और गाढा होजावे तब उतार लेवे इसीका नाम रसांजन है यह नेत्रोंके लिये अत्यन्त लाभदायक है ॥ १६ ॥

कुलत्थाञ्जनगुणाः ।

कुलत्थिका तु चक्षुष्या कषाया कटुका हिमा ।
विषविस्फोटकंडूनां व्रणार्तेश्च निबर्हणा ॥ १७ ॥

कुलत्थिकांजन स्वादमें कसैला और कडवा है । इसको विधिपूर्वक सेवन करनेसे नेत्ररोग, विष, विस्फोटक, खुजली और व्रणका नाश होताहै ॥ १७ ॥

अन्यच्च ।

कुलत्थो दृक्प्रसादश्च चक्षुष्यश्च कुलत्थकः ।
कुंकुणालिनिहंता च कुंभकारिमलापहः ॥ १८ ॥

कुलित्थांजनको नेत्रमें लगानेसे दृष्टि स्वच्छ होती है । और नेत्रोंके लिये हित करताहै कुंकुण एक प्रकारका रोग विशेष जो बालकोंके होताहै उसको तथा कुंभक और मलका नाश करनेवाला है ॥ १८ ॥

अथ नीलाञ्जनशोधनम् ।

नीलाञ्जनं चूर्णयित्वा जंबीरद्रवभावितम् ।
दिनैकमातपे शुद्धं भवेत्कार्येषु योजयेत् ॥ १९ ॥

अब नीलांजनका शोधन कहते हैं । जंबीरी नींबूके रसमें एक दिन सुरमेके चूर्णको खरल करके धूपमें सुखालेवे तो शुद्ध होजाता है । इस शुद्ध किये नीलांजनको विधिपूर्वक रोगोंमें उपयोग करे तो अवश्य लाभ होताहै ॥ १९ ॥

एवं गैरिककासीसटंकणानि वराटिका ।
शंखस्तोरी च कंकुष्ठं शुद्धिमायान्ति निश्चितम् ॥ २० ॥

इसी प्रकार गेरू, कसीस, सुहागा, कौडी, शंख, मनसिल और मुरदासंगको भी शोधन करना चाहिये ॥ २० ॥

अथाञ्जनसत्त्वविधिः ।

पिञ्जरसत्त्ववत्सत्त्वमञ्जनानां समाहरेत् ।
राजा वर्तकवत्सत्त्वं ग्राह्यं स्रोतोंजनादिकम् ॥ २१ ॥

अब अंजनके सत्त्व निकालनेकी विधि कहते हैं हरितालके सत्त्व निकालनेके समान अंजनका भी सत्त्व निकालना चाहिये अर्थात् जो विधि हरितालके सत्त्व

निकालनेकी आठवें अध्यायमें कहचुके हैं वही विधि इसकी भी है । आगे कहे हुए राजावर्तके सत्त्वके तुल्य सब अंजनोंका सत्त्व निकालना चाहिये ॥ २१ ॥

व्याख्यातं चाञ्जनस्यैवं कासीसस्याथ श्रूयताम् ।
कासीसं त्रिविधं प्रोक्तं सितं श्यामं च पीतकम् ॥ २२ ॥
पीतं च पुष्पकासीसं न गरीयो भवेन्मृदु ।
तैजिकं कालमेघाभं नीलं स्यान्मुक्तकालिकम् ॥ २३ ॥
श्यामं पीतं भवेच्चान्यदुत्तमाधममध्यमम् ॥ २४ ॥

हे वत्स्य ! अंजनके भेद तथा गुण आदिका वर्णन करचुके अब कासीसके भेद गुण तथा शोधन आदिका वर्णन करते हैं सो सावधान होकर सुनो । कासीस तीन प्रकारका होताहै सफेद, श्याम, पीला, इनमेंसे जो पीला है उसका नाम पुष्पकासीस है यह हलका और नरम होताहै । जो काले रंगवाला हो वह तैजिक कहाताहै और जो बादलके समान नीले रंगका हो वह मुक्तिकालिक कहाता है । इन उक्त तीन प्रकारोंसे भिन्न कुछ कालापन और कुछ पीलापन लिये हुए एक औरभी कासीस होता है । इनमेंसे सफेद रंगका उत्तम, श्यामरंगका मध्यम और पीले रंगका अधम होता है ॥ २२–२४ ॥

अथान्यमतम् ।

कासीसं बालुका ह्येकं पुष्पपूर्वमथापरम् ।
क्षाराभं गुरुधूमं च सोष्णं वीर्यविषापहम् ॥ २५ ॥
बालुकापुष्पकासीसं श्वित्रघ्नं केशरंजनम् ॥ २६ ॥

किसीके मतमें हीराकसीसके दो भेद हैं एक वालुक दूसरा पुष्प वालुक यह स्वादमें खारके समान है भारी है, धुआँके तुल्य रंगवाला है, वीर्य, विष, सफेद कुष्ठ इनको नाश करता है और बालोंमें उत्तम रंग लानेवाला है ॥ २५ ॥ २६ ॥

अथकासीसशोधनम् ।

सकृद्भृङ्गाम्बुना खिन्नं कासीसं निर्मलं भवेत् ।
अथवा भावयेद्धर्मे दिनं जंबीरवारिणा ॥ २७ ॥

अब हीराकसीसके शोधनकी विधि कहते हैं । हीराकसीसको एक वार भांगरेके रसमें पकावे अथवा जंबीरी नींबूके रसमें एक दिन भावना देकर सुखालेवे तो शुद्ध होजाता है ॥ २७ ॥

द्वितीयप्रकारः ।

कासीसं चूर्णयित्वाथ जंबीरद्रवभावितम् ।
दिनैकमातपे शुष्कं सर्वकार्येषु योजयेत् ॥ २८ ॥

अब कसीसके शोधनेकी दूसरी विधि कहते हैं। जंभीरी नींबूके रसमें एक दिन हीराकसीसको खरल करके सुखालेवे तो शुद्ध होजाता है। इसको यथाविधि सब कार्योंमें देना चाहिये ॥ २८ ॥

तृतीयप्रकारः ।

कासीसं शुद्धिमाप्नोति पित्तैश्च रजसा स्त्रियाः ।
अथवा निंबुनीरेण शुद्धिर्भवति निश्चितम् ॥ २९ ॥

अब हीराकसीसके शुद्ध करनेकी तीसरी विधि कहते हैं कसीसको स्त्रियोंके रजके रक्त या बकरे आदि किसी पशुके पित्ते या नींबूके रसमें भावना देवे तो शुद्ध होजाता है ॥ २९ ॥

अथ कसीससेवनविधिः ।

बलिनाहतकासीसं कांतकासीसमीरितम् ।
उभयं समभागं हि त्रिफलावेल्लसंयुतम् ॥ ३० ॥
निष्कमात्रे घृते क्षौद्रे प्लुतं शाणमितं ददेत् ।
सेवितं हन्ति वेगेन श्वित्रपांडुक्षयामयान् ॥ ३१ ॥
गुल्मप्लीहं गदं शूलं मूत्ररोगमशेषतः ।
नाशयेन्नात्र सन्देहो योगोऽयं परिकीर्तितः ॥ ३२ ॥
रसायनविधानेन सेवितं वत्सरावधि ।
आमसंशोषणे श्रेष्ठं मंदाग्निपरिदीपनम् ॥ ३३ ॥
वलितं पलिभिः सार्द्धं विनाशयति निश्चितम् ।
जयते सर्वरोगांश्च तृणं वह्निर्द्रुतं यथा ॥ ३४ ॥

अब कसीसके सेवनकी विधि कहते हैं। गंधकसे मरे हुए कसीस और कांत कासीस इन दोनोंको बराबर लेवे और इनमें त्रिफला तथा काली मिर्चका चूर्ण मिलादेवे तत्पश्चात् चार २ मासे घृत और शहद मिलाकर एक वर्ष पर्यंत रसायनविधिसे नित्य चार मासे सेवन करे तो सफेद कुष्ठ, पांडुरोग, क्षयी, गुल्मरोग, प्लीहा, शूल और मूत्रके सब रोग नष्ट होते हैं आमवातके सुखानेमें श्रेष्ठ है मंदाग्निको

प्रदीप्त करता है, वलीपलित रोगको दूर करता है । जिस प्रकार अग्नि तृणको शीघ्र ही जला देता है इसी प्रकार इसके सेवनसे सब प्रकारके रोग शीघ्र ही नष्ट होजाते हैं यह निश्चय है ॥ ३०-३४ ॥

अथ कासीसगुणाः ।

पुष्पादिकासीसमतिप्रशस्तं सोष्णं कषायाम्लमतीवनेत्र्यम् ।
विषानिलश्लेष्महरं व्रणघ्नं श्वित्रक्षयघ्नं कचरंजनं च ॥ ३५ ॥
पित्तापस्मारशमनं रसवद्गुणकारकम् ।
वातश्लेष्महरं केश्यं नेत्रकंडूविषप्रणुत् ॥
मूत्रकृच्छ्राश्मरीश्वित्रनाशनं परिकीर्तितम् ॥ ३६ ॥

अब शुद्ध किये हुए हीराकसीसके गुणोंको कहते हैं। यह हीराकसीस अत्यन्त श्रेष्ठ है । उष्ण है, स्वादमें कसैला और खट्टा है, नेत्रोंके लिये हितकारी है । विष, बादी, कफ, व्रण, श्वेत कुष्ठ, क्षयी रोग, पित्त, मृगीरोग, खुजली, मूत्रकृच्छ्र और पथरीरोगको नाश करता है । बालोंमें उत्तम रंगका लानेवाला है। इसका गुण पारेके समान है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अथ कासीससत्त्वपातनम् ।

क्षाराम्लाभ्यां विमर्द्याथ यन्त्रे निक्षिप्य ध्मापयेत् ।
सत्त्वं मुञ्चति कासीसो विधिरेष सुनिश्चितः ॥ ३७ ॥

अब हीराकसीसके सत्त्व निकालनेकी विधि कहते हैं । हीराकसीसको क्षारवर्ग और अम्लवर्गमें कही हुई औषधियोंसे खरल करके कोष्ठीयन्त्रमें रख आध्मापित करनेसे सत्त्वपतन होताहै । यह निश्चित विधि है ॥ ३८ ॥

श्रूयतां गैरिकस्यापि शोधनादीनि वच्म्यहम् ॥ ३८ ॥

हे वत्स ! अब मैं गेरूके शोधन आदिको कहताहूँ तुम सुनो ॥ ३८ ॥

तत्रादौ गैरिकभेदौ ।

गैरिकं द्विविधं प्रोक्तं पाषाणं स्वर्णगैरिकम् ।
पाषाणगैरिकं प्रोक्तं कठिनं ताम्रवर्णकम् ॥ ३९ ॥
अत्यन्तशोणितं स्निग्धं मसृणं स्वर्णगैरिकम् ।
परैस्त्रितयमप्युक्तं पाषाणाख्यं तु गैरिकम् ॥ ४० ॥

गेरूके दो भेद हैं एक पाषाण गैरिक, दूसरा स्वर्ण गैरिक, जिसका रंग ताँबेके समान हो और कठिन हो वह पाषाण गैरिक कहाताहै । जिसका रंग बहुत सुर्ख हो स्पर्शमें चिक्कण तथा निर्मल हो उसका नाम स्वर्णगैरिक है । कोई २ इसको स्वर्णगैरिक, रक्तगैरिक और पाषाणगैरिक भेदोंसे तीन प्रकारका कहते हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥

अथ गैरिकशोधनम् ।

गैरिकं तु गवां दुग्धैर्घर्षितं शुद्धिमृच्छति ।
अथवा किंचिदाज्येन भृष्टं शुद्धं प्रजायते ।
गैरिकं सत्त्वरूपं हि नन्दिना परिकीर्तितम् ॥ ४१ ॥

अब गेरूके शोधनकी विधि कहते हैं । गौके दूधमें गेरूको खरल करे तो शुद्ध होजाता है । अथवा थोडासा घृत मिलाकर यदि इसको भूँने तो भी शुद्ध होजाता है । गेरू स्वयं सत्त्वरूप है इसी कारणसे इसके सत्त्व निकालनेकी विधि नहीं कही गई यह नन्दी आचार्यका मत है ॥ ४१ ॥

अथ गैरिकगुणाः ।

स्वादु स्निग्धं हिमं नेत्र्यं कषायं रक्तपित्तनुत् ।
हिक्कावमिविषघ्नं च रक्तघ्नं स्वर्णगैरिकम् ॥
पाषाणगैरिकं चान्यत्पूर्वस्मादल्पकं गुणैः ॥ ४२ ॥

अब शुद्ध किये हुए गेरूके गुणोंको कहते हैं । स्वादमें उत्तम है, चिक्कण है, शीतल है, नेत्रोंके लिये अत्यन्त हितकारी है, कसैला है, रक्तपित्त, हिचकी, वमन, विष, तथा रक्तके विकारोंको दूर करता है यह सब गुण स्वर्णगैरिकके हैं पाषाणगैरिकमें स्वर्णगैरिकसे न्यून गुण हैं ॥ ४२ ॥

अथान्योक्तपारदगैरिकमेलनम् ।

कैरण्युक्तं पचेत्पंचक्षाराम्लैः स्निग्धगैरिकम् ।
उपतिष्ठति सूतेन्द्रं एकत्वं गुणवत्तरम् ॥ ४३ ॥

स्वर्णगैरिकको पंचक्षार और अम्लवर्गमें पकाकर पारेमें मिलावे तो दोनों मिलकर एकरूप हो जाते हैं उसका गुण उत्तम होताहै यह किसीका मत है॥४३॥

कासीसाञ्जनयोः प्रोक्तं गैरिकस्यापि सत्क्रियाः ।
मया ते नवमे वत्स ग्राह्यं तत्तु सुखैषिणा ॥ ४४ ॥

हे वत्स ! मैंने इस नवम अध्यायमें तुम्हारे लिये कासीस, अंजन और गैरिककी समस्त उत्तम क्रियाओंका वर्णन किया वह नीरोगताकी वाञ्छा करनेवाले तुमको ग्रहण करना चाहिये ॥ ४४ ॥

इति श्रीरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणेऽञ्जनका-
सीसगैरिकवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः ।

अथात उपरसवर्णनं नाम दशमाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम उपरसवर्णन नामक दशवें अध्यायका व्याख्यान करेंगे ॥

भक्तिभावयुतः शिष्यो मन्यमानः शिवं गुरुम् ।
के वै ह्युपरसास्तेषां क्रियाः काश्चेति पृष्टवान् ॥ १ ॥

भक्तिभावसे युक्त शिष्य अपने गुरुको शिवकी समान देखता हुआ यह पूछने लगा कि हे गुरो ! उपरस कौनसे हैं ? और क्या क्रिया है ? यह कृपापूर्वक मुझसे आप कहें ॥ १ ॥

गुरुरुवाच ।

पारदाद्दरदो जातष्टंकणं गन्धकात्तथा ।
स्फटिकाभ्रकतो जाता हरितालान्मनःशिला ॥ २ ॥
अंजनाच्छुक्तिशंखाद्याः कासीसः शंखमर्दरः ।
गैरिकान्मृत्तिका जाता तस्मादुपरसा इमे ॥ ३ ॥

गुरुने उत्तर दिया कि, पारेसे हिंगुल, गंधकसे सुहागा, अभ्रकसे फटकरी, हरितालसे मनशिल, सुरमासे सीप, शंख, कसीस, समुद्रफेन, उत्पन्न हुए और गेरूसे मृत्तिका उत्पन्न हुई इसी कारणसे इनका नाम उपरस है ॥ २ ॥ ३ ॥

अथोपरसशोधनम् ।

त्रिक्षारे लवणे देयमम्लवर्गे त्रिधा पचेत् ।
एवं ह्युपरसाः शुद्धा जायन्ते दोषवर्जिताः ॥ ४ ॥
रसाभावे प्रदातव्यास्तस्यैवोपरसा इमे ।
सेविता बहुकालं च सर्वे विदधते गुणान् ॥ ५ ॥

अब हम उपरसोंके शुद्ध करनेकी रीति लिखते हैं । हिंगुल, आदि सब उपरसोंको जवाखार, सज्जीखार, सुहागा और नमक तथा अम्लवर्ग इन प्रत्येकमें तीन २ बार पकानेसे दोषरहित शुद्ध होजाते हैं । यदि पारद, गन्धक आदि रस न मिलसकें तो उन्हीं रसोंके उपरस हिंगुल, सुहागा आदि डालना चाहिये । बहुत समयतक सेवन करनेसे सब गुणोंके देनेवाले होते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

हिङ्गुलस्तेषु पूर्वोक्तं टंकणाद्यधुना शृणु ॥ ६ ॥

इन उपरसोंमें हिंगुल (सिंगरफ) का वर्णन तो पारद प्रकरणमें करचुके अब यहां सुहागा आदिका वर्णन तुम सुनो ॥ ६ ॥

तत्रादौ टंकणभेदाः ।

टंकणस्त्रिविधः प्रोक्तः स्फाटिकाभो गुडप्रभः ।
तृतीयः पांडुरः प्रोक्तः शृणु तस्य गुणागुणम् ॥ ७ ॥
पर्यायः पाण्डुरस्यापि नीलकण्ठ इति श्रुतः ।
उत्तमो नीलकण्ठश्च स्फाटिकाभश्च मध्यमः ॥
गुडाभश्चाधमः प्रोक्तो रसशास्त्रविशारदैः ॥ ८ ॥

अब सुहागेके भेद कहते हैं तथा इनके गुण अवगुणको कहते हैं । सुहागा तीन तरहका होता है । एक फिटकरीके तुल्य, दूसरा गुडके तुत्य है और तीसरा पीले रंगका होता है इनमेंसे जो पाण्डुर अर्थात् पीले रंगका होता है उसका दूसरा नाम नीलकण्ठ भी है । यह नीलकण्ठ सबोंमें श्रेष्ठ है और पहला स्फाटिकाभ मध्यम है और तथा दूसरा गुडप्रभ सबोंमें अधम होता है यह रसशास्त्रके जाननेवाले चतुर वैद्योंने कहा है ॥ ७ ॥ ८ ॥

टंकणशोधनम् ।

जंबीरजरसेनैव अहोरात्रं विभावयेत् ।
टंकणः शुद्धिमायाति नात्र कार्या विचारणा ॥ ९ ॥

अब सुहागेका शोधन कहते हैं सुहागेको जंभीरी नींबूके रसमें एक दिन रात भावना देनेसे शुद्ध होजाता है ॥ ९ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

टंकणः शुध्यति ह्याशु गोमयेनावृतोऽनघ ॥

हे अनव ! गोबरमें रखनेसे भी सुहागेकी शुद्धि होजाती है ॥

अथ शुद्धटंकणगुणाः ।

टंकणो द्रावणो भेदी विषहारी ज्वरापहः ।
गुल्मामशूलशमनो वातश्लेष्महरः परः ॥
तथैव वह्निकृत्स्वर्णरूप्ययोश्शोधनः परः ॥ १० ॥

अब सुहागेके गुण कहते हैं । यह सुहागा द्रावण अर्थात् पिघलानेवाला है, भेदी है, विषरोग, ज्वर, गुल्म, आमवात, शूल, तथा वात और कफका नाश करनेवाला है । जठराग्निको प्रदीप्त करता है तथा सुवर्ण और चाँदीको शुद्ध करता है ॥ १० ॥

अशुद्धटंकणसेवनोपद्रवाः ।

अशुद्धष्टंकणो वांतिभ्रांतिकारी प्रयोजितः ।
अतस्तं शोधयेद्वह्नौ भवेदुत्फुल्लितः शुचिः ॥ ११ ॥

विना शुद्ध किया सुहागा सेवन करनेसे वमन और भ्रांति होती है इस कारण इसको अग्निपर रखकर फुलावे तो शुद्ध होजाता है ॥ ११ ॥

टंकणानुपानानि ।

मधुना श्वासकासघ्नो घृतेन विषनाशनः ।
अतिविषेन संयुक्तः सर्वज्वरविनाशकः ॥ १२ ॥
जंबुनीरेण गुल्मघ्नः नागरेणामनाशकः ।
उष्णेन चाम्भसा शूलकफवातादिहारकः ॥ १३ ॥
भर्जितः शिशुभिर्भुक्तः कफकासादिनाशकः ।
पाचको रेचकश्चापि नानायोगैः फलप्रदः ॥ १४ ॥

अब सुहागेके सेवन करनेमें जिस रोगमें जो अनुपान कहा है सो लिखते हैं । यदि सुहागेको सहदके साथ सेवन करे तो श्वास और कास रोग नष्ट होते हैं । घृतके साथ विषविकारको, अतीसके साथ सब ज्वरोंको, जामुनके सिरकेके साथ गुल्मरोगको, सोंठके साथ आमवातको, गरम जलके साथ शूल, कफ, वायुके विकार आदिको नष्ट करता है । इसकी खील बालकोंके कफ, खाँसी आदि रोगोंको नष्ट करती है और पाचन तथा रेचन है । इसी प्रकार अनुपानभेदसें अनेक रोगोंको नाश करता है ॥ १२–१४ ॥

एवं ते टंकणं प्रोक्तं ह्यधुना तुवरीं शृणु ॥ १५ ॥

इस प्रकार सुहागेके विषयमें कहा अब तुवरी अर्थात् फिटकरीके विषयमें सुनो ॥ १५ ॥

अथ तुवरीभेदाः लक्षणानि च ।

सौराष्ट्रभूमिसंभूता मृत्स्ना सा तुवरी मता ।
वस्त्रेषु लिप्यते यासौ मंजिष्ठा रसबंधनी ॥ १६ ॥
स्फाटिका छिल्लिका चेति द्विविधा परिकीर्तिता ।
ईषत्पीता गुरुस्निग्धा पैत्तिका विषनाशिनी ॥ १७ ॥
निर्भरा शुभ्रवर्णा च स्निग्धा साम्ला परा मता ।
सा फुल्लतुवरी प्रोक्ता लेपात्ताम्रे च रंगदा ॥ १८ ॥
सौराष्ट्री चामृताकांक्षी स्फटिका मृत्तिका मता ।
आढकी तुवरी धन्या मृत्स्ना मृत्सूरमृत्तिका ॥ १९ ॥
व्रणकुष्ठहरा सर्वा कुष्ठघ्नी च विशेषतः ।
दुकूलेषु च सर्वेषु लेपनाद्रंजनी भवेत् ॥
उत्तमा लिप्यते यासौ मंजिष्ठा रंगवर्धिनी ॥ २० ॥

अब तुवरीके भेद और लक्षण कहते हैं । सौराष्ट्र (सोरठ) देशकी पृथ्वीमें तुवरी नामवाली एक तरहकी मिट्टी होती है उसीको गोपीचंदन भी कहते हैं । यदि किसी वस्त्रपर इसका लेप किया जावे तो उस वस्त्रमें मंजीठके रंगके तुल्य दाग पडजाता है इससे पारा बँध जाता है, यह दो प्रकारकी होती है एक स्फटिका दूसरी छिल्लिका इनमें स्फटिका जिसको गोपीचंदनभी कहते हैं वह कुछ पीला-पन लिये हुए चिकना और भारी होता है इसके सेवनसे पित्त और विषजनित विकार नष्ट होते हैं । दूसरी छिल्लिका सफेद, स्निग्ध, खट्टी और भारी होती है इसीका दूसरा नाम फुल्लतुवरी भी है । ताम्रमें लेप करनेसे रंग करनेवाली है । इसी सौराष्ट्रीके दूसरे नाम अमृता, कांक्षी, स्फटिका, आढकी, तुवरी, धन्या, मृत्स्ना और सूरमृत्तिका भी हैं । यह सब व्रणरोग और कुष्ठरोगको नाश करने-वाले हैं । और सब तरहके कपडोंपर लेप करनेसे अपने रंगको लानेवाले हैं । पर जिसका सफेद वस्त्रमें लेप करनेसे मंजठिके तुल्य रंग होजावे वह गोपीचन्दन श्रेष्ठ है ॥ १६–२० ॥

तुवरीशोधनम् ।

तुवरी कांजिके क्षिप्ता त्रिदिनाच्छुद्धिमृच्छति ॥ २१ ॥

तीन दिन कांजीमें भिगोनेसे फिटकरी शुद्ध होजाती है ॥ २१ ॥

तत्र विशेषः ।

स्फटिका निर्मला श्वेता श्रेष्ठा स्याच्छोधनं क्वचित् ।

न दृष्टं शास्त्रतो लोके वह्नावुत्फुल्लयन्ति हि ॥ २२ ॥

जो फिटकरी निर्मल तथा सफेद होती है वह अति उत्तम है वैद्यकशास्त्रमें उसकी शुद्धि नहीं लिखी पर लोकमें अग्निपर रख फुलाते हैं और यही इसकी शुद्धि मानते हैं ॥ २२ ॥

तुवरीसत्त्वपातनम् ।

क्षाराम्लमर्दिता ध्माता सत्त्वं मुंचति निश्चितम् ॥ २३ ॥

अब फिटकरीके सत्त्वपातनकी विधि कहते हैं । फिटकरीको क्षारवर्ग तथा अम्लवर्गकी औषधियोंमें घोटकर मिट्टीमें रख धोंकनेसे सत्त्व निकलता है किसीका यह पक्ष है कि, स्फटिका दो प्रकारकी है तुवरी और सौराष्ट्री इनमेंसे तुवरीके भेद तो पूर्व कहचुके अब सौराष्ट्रीके गुण कहते हैं ॥ २३ ॥

सौराष्ट्रीगुणाः ।

सुसैंधवसमाना च कषाया स्फटिका मता ।

व्रणोरःक्षतशूलघ्नी स्फटिका सूतघातिनी ॥

शोधनश्चापि सौराष्ट्याः कर्तव्यः पूर्ववत्तथा ॥ २४ ॥

जो सेंधानमकके तुल्य हो और स्वादमें कषैली हो वह फिटकरी कहाती है इसके सेवनसे व्रण, उरःक्षत तत्कालही नष्ट होते हैं तथा पारेको मारण करती है इसका शोधन पहले कही हुई रीतिसे करना ॥ २४ ॥

अन्यच्च ।

कांक्षी कषाया कटुकाम्लकंठ्या केश्या व्रणघ्नी विषनाशिनी च ।

चित्रापहा नेत्रहिता त्रिदोषशांतिप्रदा पारदरंजनी च ॥ २५ ॥

यह फिटकरी स्वादमें कषैली, तीखी, खट्टी तथा कंठ और बालोंके लिये लाभ देनेवाली है । और व्रण, विष, चित्रकुष्ठ इनको नाश करती है नेत्रोंके लिये हितकारिणी है तथा त्रिदोषको शांत करती और पारेको रंगती है ॥ २५ ॥

स्फटिकानुपानानि ।

गैरिकेण समायुक्ता गोदुग्धेन च भक्षिता ।
शुक्रकृच्छ्रं पित्तजं वा मेहं नाशयति ध्रुवम् ॥ २६ ॥
भर्जिता सितया युक्ता ह्यन्येद्युज्वरहा तथा ।
रसांजनेन संयुक्ता अक्षिरोगं निहंत्यसौ ॥ २७ ॥
बबूलत्वक्समायुक्ता पोटली ह्यक्षिशूलहा ।
नानारोगसमायुक्ता नानारोगविनाशिनी ॥ २८ ॥

अब फिटकरीके सेवनमें रोगभेदसे अनुपान कहते हैं। तीन मासे गेरूके साथ तीन मासे फिटकरीकी खीलोंको बारीक पीसे इसको फाँककर ऊपरसे कच्चा गोदुग्ध पीवे तो दर्दसहित वीर्यका बहना तथा पित्तदोषसे उत्पन्न हुए प्रमेह रोग निस्सन्देह दूर होते हैं। और एक मासा फिटकरीकी खील मिसरी या बतासेके साथ खावे ऊपरसे दूधका घूँट लेवे तो तिजारी ज्वर दूर होवे। अफीम और रसौतके साथ नेत्ररोगोंको नष्ट करती है। और कीकरके छिलकेको कूटकर उसमें फिटकरी मिलाकर पोटली बनावे उस पोटलीको जलमें भिगोकर नेत्रोंमें फिरानेसे नेत्रशूल दूर होताहै। इसी प्रकार अनेक योगोंसे अनेक प्रकारके रोगोंको दूर करती है ॥ २६-२८ ॥

ज्ञातव्या तुवरी ह्येवं शृण्वेतर्हि मनःशिलाम् ॥ २९ ॥

इस प्रकार उक्त रीतिसे फिटकरीके विषयमें जानलो अब तुम मनशिलके विषयमें सुनो ॥ २९ ॥

मनःशिलवर्णनम् ।

तालकस्यैव भेदोस्ति मनोह्वा प्रोच्यते जनैः ।
तालकस्त्वतिपीतः स्याद्भवेद्रक्ता मनःशिला ॥ ३० ॥
मदायतनसंभूता मनोह्वा तेन कीर्तिता ।
सा पीवरी हेमवर्णा मनोह्वा विविधा मता ॥ ३१ ॥

शिवजी पार्वतीजीसे कहते हैं यह मनशिल हमारे हिमालय स्थानमें उत्पन्न है इसी कारण इसको मनोह्वा कहते हैं और जो मनशिल सुवर्णके तुल्य हो उसको पीवरी कहते हैं यह अनेक प्रकारकी होती है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

मनःशिलाभेदाः ।

मनःशिला त्रिधा प्रोक्ता श्यामांगी करवीरिका ।
द्विखंडाख्या च तासां तु लक्षणानि निबोध मे ॥ ३२ ॥

श्यामा रक्ता च गौरा च भाराढ्या श्यामिका मता।
तेजस्विनी च निर्गौरा ताम्राभा करवीरिका ॥ ३३ ॥
चूर्णभूता तु रक्तांगी सभारा खंडपूर्विका।
त्रिविधासु च श्रेष्ठा स्यात्करवीरा मनःशिला ॥ ३४ ॥

अब मनशिलके भेद कहते हैं। मनशिल तीन तरहकी होती है। पहली श्यामांगी, दूसरी करवीरिका, तीसरी द्विखंडा इनमेंसे जो श्यामरंगवाली और भारी हो उसको श्यामिका कहते हैं और जो लाल रंग, तेजयुक्त गौर वर्णरहित ताम्रके तुल्य हो उसको करवीरिका कहते हैं। और जो गौरवर्ण हो तथा पीसने पर जिसका लाल रंग हो और भारी हो उसे द्विखंडा कहते हैं। इन पूर्वोक्त तीनोंमें करवीरासंज्ञक गुणोंमें श्रेष्ठ होती है ॥ ३२-३४ ॥

अशुद्धमनःशिलादोषाः।

अश्मरीमूत्रकृच्छ्राणि अशुद्धा कुरुते शिला।
मंदाग्निं मलबंधं च कुरुते तेन शोधयेत् ॥ ३५ ॥

यह मनशिला यदि विना शुद्ध किये हुए ही सेवन की जावे तो पथरी, मूत्रकृच्छ्र, मंदाग्नि और मलबंध रोगोंको पैदा करती है इस हेतु इसका शोधन अवश्य करे॥३५॥

मनःशिलाशुद्धिः।

जयंतिकाद्रवे दोलायंत्रे शुद्धा मनःशिला ॥ ३६ ॥

भँगरे, हल्दी, और अदरखके रसोंमें दोलायंत्रके द्वारा मनशिलको पकावे तो शुद्ध होजाताहै ॥ ३६ ॥

द्वितीयः प्रकारः।

अगस्त्यपत्रतोयेन भाविता सप्तवारकम्।
शृंगवेररसैर्वापि विशुध्यति मनःशिला ॥ ३७ ॥

अब मनशिलके शुद्ध करनेकी दूसरी रीति लिखते हैं। अगस्तियाके पत्तोंके रसमें वा अदरखके रसमें सात भावना देवे तो मनशिल शुद्ध होजाता है ॥ ३७ ॥

तृतीयः प्रकारः।

भृंगागस्त्यजयंतीनामार्द्रकस्य रसेषु च।
दोलायन्त्रेण संस्विन्ना विशुध्यति मनःशिला ॥ ३८ ॥

अब मनाशिलके शुद्ध करनेकी तीसरी विधि कहते हैं । भांगरा, अगस्तिया, हल्दी और अदरखके रसमें मनशिलको दोलायंत्रद्वारा पकावे तो शुद्ध हो जाता है ॥ ३८ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

पचेत्त्र्यहमजामूत्रैर्दोलायंत्रे मनःशिलाम् ।
भावयेत्सतथा पित्तैरजायाः शुद्धिमृच्छति ॥ ३९ ॥

अब मनाशिलके शुद्ध करनेका चौथा प्रकार लिखते हैं । बकरीके मूत्रमें दोलायंत्रके द्वारा मनशिलको तीन दिन पकाके तदनन्तर खरलमें छोडकर बकरीके पित्तेकी भावना देनेसे मनशिल शुद्ध होजाता है ॥ ३९ ॥

मनःशिलामारणविधिः ।

वक्ष्येऽधुना मनोह्वायाः मारणस्य विधिं शुभाम् ।
वटार्कवज्रदुग्धेषु हंसपद्या रसे तथा ॥ ४० ॥
वन्दारसे दिनैकैकं मर्दयेच्च पृथक् पृथक् ।
प्रत्येकमर्दनान्ते तु देयश्चाग्निर्विधानतः ॥ ४१ ॥
घनीभूते त्वतस्तस्याः टिक्किकाः कारयेद्भिषक् ।
डमरूयंत्रे च सम्यक् चतुर्यामात्मकैस्तथा ॥ ४२ ॥
पाचयेद्विधिवद्वैद्यः सप्तवह्निभिरेव च ।
एवं हि म्रियते वत्स मनोह्वा रोगहारिणी ॥ ४३ ॥

अब हम मनोह्वा (मनशिला) के मारणकी विधि कहते हैं। बड, आक, थूहर, हंसपदी, वन्दाल, इन सबके दूध और रसोंमें अलग २ एक २ दिन मनशिलको घोटे और प्रत्येक मर्दनके अन्तमें अग्नि देता जाय जब गाढा होजाय तब टिकिया बनाकर डमरूयंत्रमें चार २ प्रहरकी सात आँच देकर पकावे तो मनशिलका मारण होजाता है ॥ ४०--४३ ॥

मनःशिलासत्त्वपातनम् ।

तालवच्च शिलासत्त्वं ग्राह्यं तैरेव चौषधैः ॥ ४४ ॥

हारितालके सत्त्व निकालनेकी जो विधि और औषधें हैं उन्हीं औषधोंसे उसी प्रकार मनशिलकाभी सत्त्व निकालना चाहिये ॥ ४४ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

नागांशं गुग्गुलुं ग्राह्यं लोहकिट्टं च सर्पिषा ।
मर्दयित्वा च मूषायां ध्मानात्सत्त्वं विमुंचति ॥ ४५ ॥

अब सत्त्वपातनका दूसरा प्रकार कहते हैं । जितना मनाशिल हो उसका आठवाँ भाग गुगुल लेवे और उसमें लोहकिट्ट तथा घृत मिलाकर अच्छे प्रकार घोटे तदनन्तर अंधमूषामें रखकर बंकनाल धोंकनेसे धोंके तो सत्त्वपातन होगा ॥ ४५ ॥

मनःशिलागुणाः ।

मनःशिला गुरुर्वर्ण्या सरोष्णा लेखनी कटुः ।
तिक्ता स्निग्धा विषश्वासकासभूतविषास्रनुत् ॥ ४६ ॥

यह मनःशिला–गुरु, वर्ण करनेवाली, सर, उष्ण, लेखनी, तीखी, कटु और स्निग्ध है इसको विधिवत् सेवन करे तो विषके विकार, श्वास, खाँसी, भूतोंकी बाधा तथा रक्तके उपद्रव दूर होते हैं ॥ ४६ ॥

अन्यच्च ।

मनःशिला सर्वरसायनाख्या तिक्ता कटूष्णा कफवातहन्त्री ।
सत्त्वात्मिका भूतविषाग्निमाद्यं कंडूं च कासक्षयहारिणी च ॥ ४७ ॥

यह मनःशिला सर्वरसायन है तथा कटु, तीखी और गरम है । कफ और वातको नाश करती है सत्त्वयुक्त है इसके सेवनसे भूतबाधा, विषदोष, मंदाग्नि, खुजली, खाँसी और क्षयीरोग नष्ट होते हैं ॥ ४७ ॥

अशुद्धशिलासेवनोपद्रवाः ।

मनःशिला मंदबलं करोति जंतून्ध्रुवं शोधनमन्तरेण ।
मलस्य बन्धं किल मूत्ररोगं सशर्करं कृच्छ्रगदं च कुर्यात् ॥ ४० ॥

अशुद्ध मनाशिलके सेवनसे बलका नाश, मलबंध, शर्करा, कृच्छ्ररोग और कृमिरोग आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं ॥ ४८ ॥

तद्दोषशमनोपायः ।

गोक्षीरं माक्षिकयुतं पिबेद्यस्तु दिनत्रयम् ।
कुनटी तस्य देहे च विकारं न करोति हि ॥ ४९ ॥

शहद डालकर गौके दुग्धको तीन दिन पीवे तो मनशिल देहमें विकार नहीं करती ॥ ४९ ॥

शंखादीनामथो वत्स शोधनादिक्रियां शृणु ॥ ५० ॥

हे वत्स । अब तुम शंख आदिकी शोधनादि क्रियाको सुनो ॥ ५० ॥

अथ शंखभेदा गुणाश्च ।

द्विधा स दक्षिणावर्ती वामावर्ती शुभेतरः ।
दक्षिणावर्ति शंखस्तु पुण्ययोगादवाप्यते ॥ ५१ ॥
यद्गृहे तिष्ठति सदा स लक्ष्म्या भाजनं भवेत् ।
दक्षिणावर्तिशंखस्तु त्रिदोषघ्नः शुचिर्निधिः ॥
ग्रहालक्ष्मीक्षयक्ष्वेडक्षामताक्षिक्षयक्षयी ॥ ५२ ॥

अब शंखके भेद और गुण कहते हैं । शंख दो प्रकारके होते हैं एक दक्षिणावर्त दूसरा वामावर्त इन दोनोंमेंसे दक्षिणावर्त शंख पुण्ययोगसे प्राप्त होता है और जिसके गृहमें रहता है उसके यहाँ लक्ष्मी निवास करती है इसके विधिवत् सेवनसे त्रिदोष नष्ट होता है नव निधियोंमेंसे यह भी एक प्रकारकी पवित्र निधि है यह ग्रहरोग, अलक्ष्मी, क्षयी, विष, दुर्बलता और नेत्ररोगोंको दूर करता है ॥ ५२ ॥

ग्राह्यशंखवर्णनम् ।

शंखश्च विमलः श्रेष्ठश्चंद्रकांतिसमप्रभः ।
अशुद्धो गुणदो नैव शुद्धश्च स गुणप्रदः ॥ ५३ ॥

चन्द्रमाकी कांतिके सदृश जिसकी कांति हो और निर्मल हो वह शंख श्रेष्ठ है। अशुद्ध शंख गुणदायक नहीं होताहै और शुद्ध किया हुआ शंख गुणदायक होताहै ॥ ५३ ॥

शंखशोधनम् ।

अम्लैः सकांजिकैश्चैव दोलास्विन्नः स शुद्धयति ॥ ५४ ॥

दोलायंत्रके द्वारा शंखको अम्लवर्ग और कांजीमें पकावे तो शुद्ध हो जाताहै ॥ ५४ ॥

शंखगुणाः ।

शंखः क्षारो हिमो ग्राही ग्रहणीरेचनाशनः ।
नेत्रपुष्पहरो वर्ण्यस्तारुण्यपिटिकाप्रणुत् ॥ ५५ ॥

यह शंख खारी, शीतल, ग्राहक, तथा वर्णको सुधारनेवाला है । संग्रहणी और दस्तोंको बंद करताहै आँखके फूले और युवावस्थाके मुहाँसोंको नाश करताहै५५॥

खटीभेदाः ।

खटी गौरखटी चेति द्विधाद्या मलिना स्मृता ।
मृदुपाषाणसदृशी खटी शुभ्रादिका गुरुः ॥ ५६ ॥

खटी जिसको भाषामें खडिया भी कहते हैं । वह दो प्रकारकी होती हैं एकका नाम केवल खटी है और दूसरीका नाम गौरखटी है इनमेंसे खटी कुछ काले रंगकी होती है और गौरखटी नरम पत्थरके तुल्य अत्यन्त श्वेत तथा भारी होती है यही श्रेष्ठ है ॥ ५६ ॥

खटीगुणाः ।

खटीदाहास्रनुच्छीता मधुरा विषशोषजित् ।
कफघ्नी नेत्रयोः पथ्या लेखनी बालकोचिता ॥ ५७ ॥
तद्वत्पाषाणखटिका व्रणपित्तास्रजिद्धिमा ।
लेपादेतद्गुणा प्रोक्ता भक्षिता मृत्तिकासमा ॥ ५८ ॥

इस खडियाके लेपसे जलन और रक्तके सब विकार नष्ट होते हैं । यह शीतल तथा मधुर गुणसे युक्त है विषविकार और शोषको नाश करती है कफनाशक है आँखोंके लिये हित करनेवाली, लेखनी और बालकोंके लिये लाभदायक है दूसरी पाषाणखटी भी उसीके तुल्य है व्रण, पित्त तथा रक्तविकारोंको हरती है शीतल है । यह पूर्वोक्त गुण इसके लेप करनेसे होते हैं और यदि इसका भक्षण करे तो मिट्टीके तुल्य हानि करती है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

वराटिकाभेदादिवर्णनम् ।

वराटिका त्रिधा प्रोक्ता श्वेता शोणा तथापरा ।
पीता च तीक्ष्णा चक्षुष्या श्वेता शोणा हिमा व्रणा ॥ ५९ ॥
अतिबिन्दुभिरश्वेतैर्लाछिता रेखयाथवा ।
बालग्रहहरा नानाकौतुकेषु च पूजिता ॥ ६० ॥
पीता गुल्मयुता पृष्ठे रसयोगेषु योजयेत् ।
सार्द्धनिष्कप्रमाणासौ श्रेष्ठा योगेषु योजयेत् ॥
निष्कप्रमाणा मध्या सा हीना पादोननिष्किका ॥ ६१ ॥

वराटिका जिसको भाषामें कौडी कहते हैं वह तीन प्रकारकी होती है सफेद, सुर्ख, और पीली इनमेंसे श्वेत रंगवाली तीक्ष्ण तथा नेत्रोंके लिये हितकारिणी है । लाल रंगकी शीत तथा व्रणके लिये लाभदायक है । जिसमें कालापन लिये हुए अनेक बिन्दु अथवा रेखा हों वह बालग्रहको दूर करती है और सब कुतूहलोंमें काम देती है । जिसका रंग पीला हो पीठपर गाँठ होवे उस कौडीको

रसयोगमें युक्त करे जिस कौडीका तोल छः मासे हो वह श्रेष्ठ होती है, जिसका वजन चार मासे हो वह मध्यम होती है और जो तीन ही मासेकी हो वह हीन अधम होती है ॥ ५९-६१ ॥

अन्यदपि ।

पीताभ्रा ग्रंथिला पृष्ठे दीर्घवृत्ता वराटिका ।
रसवैद्यैर्विनिर्दिष्टा सा वरा वरसंज्ञिका ॥ ६२ ॥
सार्द्धनिष्कभरा श्रेष्ठा दंतैर्द्वादशभिर्युता ।
रसे रसायने योज्या निष्कभारा च मध्यमा ॥
पादोननिष्कभारा च कनिष्ठा परिकीर्तिता ॥ ६३ ॥

और भी कौडीके विषयमें कहते हैं । जो पश्चात्भागमें गाँठ युक्त लंबी और गोल हो, रंग पीला हो । रसायनशास्त्रके जाननेवाले वैद्योंने उसको उत्तम कहा है। यह वर और अवर भेदसे दो प्रकारकी होती है । जो बारह दांतोंसे युक्त हो और तोलमें बारह मासेकी हो वह प्रशस्त है, रस, तथा रसायनमें इसीका उपयोग करे । चार मासेकी मध्यम होती है , और तीन मासे वजनकी कनिष्ठ या अधम जानना चाहिये ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

वराटिकाशोधनम् ।

वराटा कांजिके स्विन्ना यामाच्छुद्धिमवाप्नुयात् ॥ ६४ ॥

यदि एक प्रहर पर्यन्त कांजीमें कौडियोंको औटावे तो शुद्ध होजाती हैं॥६४॥

वराटिकामारणम् ।

अंगाराग्नौ स्थिता ध्माता सम्यक्प्रोत्फुल्लिता यदा ।
स्वांगशीता मृता सा तु पिष्टा सम्यक्प्रयोजयेत् ॥ ६५ ॥

अब कौडीका मारण कहते हैं । कौडियोंको प्रदीप्त अंगारों पर रक्खे और धोंकनीसे धोंके जब अच्छे प्रकार फूलजावे तब अग्निपरसे उठालेवे स्वांगशीतल होनेपर बारीक पीसकर काममें लावे ॥ ६५ ॥

वराटिकागुणाः ।

कपर्दिका हिमा नेत्रहिता स्फोटक्षयापहा ।
कर्णस्रावाग्निमांद्यघ्नी पित्तास्रकफनाशिनी ॥ ६६ ॥
परिणामादिशूलघ्नी वृष्यातिसारनाशिनी ।
नेत्र्या संग्रहणीं हंति कटूष्णा दीपनी मता ॥ ६७ ॥

पाचनी वातकफहा श्रेष्ठा सूतस्य जारणे।
तदन्ये पुंवराटाः स्युर्गुरवः श्लेष्मपित्तदाः॥ ६८॥

अब कौडीके गुणोंको कहते हैं। कौडी शीतल तथा नेत्रोंके लिये हित करती है, फोडा, क्षयी, कर्णस्राव, अग्निमांद्य, पित्त, रक्त, कफ और परिणामादि शूलोंको नाश करती है, वृष्य है, इसके सेवनसे अतिसार, संग्रहणी शान्त होते हैं। यह कडवी तथा गरम है दीपन है, पाचन है, वात और कफको हरती है पारेके जारणमें श्रेष्ठ है। पूर्वोक्त तीन प्रकारकी कौडियोंके अतिरिक्त अन्य पुंवराट कहाते हैं, वे कडे और गुरु होते हैं, तथा कफ और पित्तको पैदा करते हैं॥ ६६-६८॥

मुक्ताशुक्तिगुणाः।

मुक्ताशुक्तिः कटुस्निग्धा श्वासहृद्रोगहारिणी।
शूलप्रमथनी रुच्या मधुरा दीपनी परा॥ ६९॥

मोतीकी सीप स्वादमें कडवी तथा स्पर्शमें चिकनी है यह श्वास, हृदयके रोग, और शूलको नष्ट करती है और रुचि करनेवाली, मधुर तथा दीपनी है॥ ६९॥

जलशुक्तिगुणाः।

जलशुक्तिः कटुस्निग्धा दीपनी गुल्मशूलनुत्।
विषदोषहरी रुच्या पाचनी बलदायिनी॥ ७०॥

जलकी शुक्ति कटु, चिकनी, दीपनी, गुल्म और शूलको नष्ट करनेवाली, विषके दोषोंको दूर करती है, रुचि उत्पन्न करनेवाली पाचक और बल देनेवाली है॥ ७०॥

शुक्तिशोधनम्।

शोधनं शंखवत्तस्या मृतिः प्रोक्ता कपर्दिवत्॥ ७१॥

पूर्वोक्त मोतीकी सीप और जलकी सीपका शोधन पहले कहे हुए शंखके तुल्य होता है और इसका मारण कौडीकी तरह करना चाहिये इसमें कुछ विशेषता नहीं है॥ ७१॥

अथ सामान्यतया शुक्तिगुणवर्णनम्।

शुक्तिश्च शिशिरा पित्तरक्तज्वरविनाशिनी॥ ७२॥

अब सामान्यतासे शुक्तिके गुण कहते हैं। सीप शीतल है पित्त, रक्तविकार तथा ज्वरको नाश करती है॥ ७२॥

शंबुकगुणाः ।

शंबुका शीतला नेत्ररुजास्फोटविनाशिनी ।
शीतज्वरहरी तीक्ष्णा ग्राही दीपनपाचनी ॥ ७३ ॥

शंबुक जिसको भाषामें घोंघा कहते हैं वह शीतल होता है,. नेत्ररोग, स्फोट (फोडा), शीतज्वर इनको दूर करता है । यह तीक्ष्ण, ग्राही, दीपन और पाचन होता है ॥ ७३ ॥

शंबुकशोधनम् ।

शंखवच्छोधनं कुर्याद्यामं शुद्ध्यति शंबुका ।
शुक्तिवद्भस्मकं कुर्यात्सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ ७४ ॥

बडे शंखोंके शुद्ध करनेका प्रकार जो पहले लिख चुके हैं उसीके तुल्य इन शंबुक या छोटे शंखोंका शोधन भी करना चाहिये और यदि भस्म करना होवे तो पूर्वोक्त सीपकी भस्मके समान क्रिया करे । इस शुद्ध शंखको सब रोगोंमें उपयोग करे ॥ ७४ ॥

सिकतागुणाः ।

बालुका सिकता प्रोक्ता शर्करा रेतजापि च ।
बालुका मधुरा शाता संतापश्रमनाशिनी ॥ ७५ ॥
सेकप्रयोगतश्चैव शाखाशैत्यानिलापहा ।
तद्वच्च लेखनी प्रोक्ता व्रणोरःक्षतनाशिनी ॥ ७६ ॥

अब सिकताके गुण कहते हैं । इसीको बालुका, रेतजा और शर्करा भी कहते हैं । यह मधुर तथा शीतल होती है, इसका सेंक करनेसे संताप और श्रम दूर होता है तथा हाथ पाँव आदि अङ्गोंकी शीतलता और वादीको नाश करती है, लेखनी है, व्रण और उरःक्षतको हरती है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

सिकतामिश्रितलोहरजग्रहणोपायः ।

शर्कराभ्यश्चुम्बकेन केचिद्गृह्णंत्ययोरजः ॥
सुकरं त्विदमाख्यातं तत्तु संशोध्य मारयेत् ॥ ७७ ॥

अब कोई २ चतुर वैद्य बालूमें मिले हुए लोहकणोंको यह चुंबक पत्थरके द्वारा निकालते हैं यह प्रकार सुगम है अतः इस विषयमें अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं किन्तु निकाले हुए लोहेको शुद्ध करके मारण करे ॥ ७७ ॥

एवं चोपरसानां ते गुणादि परिकीर्तितम् ।
विस्तरेण मया वत्स लोकानां हितकाम्यया ॥ ७८ ॥

हे वत्स ! इस प्रकार विस्तारपूर्वक उपरसोंके गुण तथा शोधन, मारणादि क्रियाको लोकोंकी हितकामनासे तुम्हारे लिये कहा ॥ ७८ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे उपरसवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ॥

अथातः स्वर्णशोधनादिक्रियावर्णनं नामैकादशाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम सुवर्णके शोधन क्रियाके वर्णनवाले ग्यारहवें अध्यायका कथन करते हैं ॥

अथ ते संप्रवक्ष्यामि धातूनां शोधनादिकम् ।
स्वर्णं रूप्यं च ताम्रं च रंगं यशदमेव च ॥ १ ॥
सीसं लोहं च सप्तैते धातवो गिरिसंभवाः ।
केषाञ्चित्तु मते तात धातवोऽष्ट प्रकीर्तिताः ॥ २ ॥

अब हम तुम्हारे बोधके अर्थ धातुओंकी शोधनादि क्रियाको कहते हैं। सोना, चाँदी, ताँबा, रांगा, जसद, सीसा, लोहा यह सात धातुएं होती हैं । हे पुत्र ! कोई २ आठ धातु कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अष्टलोहनामानि ।

सुवर्णं रजतं ताम्रं त्रपुशीशकमायसम् ।
षडेतानि च लोहानि कृत्रिमौ कांस्यपित्तलौ ॥ ३ ॥

सोना, चाँदी, ताँबा, राँगा, सीसा, लोहा यह छः लोह अकृत्रिम अर्थात् किसीके मेलसे बने हुए नहीं हैं किन्तु स्वयं उत्पन्न हैं । काँसा और पीतल यह दोनों कृत्रिम अर्थात् अन्यधातुओंके मेलसे बने हुए हैं ॥ ३ ॥

सुवर्णस्त्वादिमः श्रेष्ठो लोहेषु परिकीर्तितः ।
अतस्तस्योद्भवादिर्हि प्रथमं श्रूयतां त्वया ॥ ४ ॥

हे वत्स ! पूर्वोक्त लोहोंमें श्रेष्ठ होनेसे सुवर्ण प्रथम कहा है इस कारण सबसे पहले इसीकी उत्पत्ति आदिको सुनो ॥ ४ ॥

स्वर्णोत्पत्तिः ।

पुरा निजाश्रमस्थानां सप्तर्षीणां जितात्मनाम् ।
पत्नीर्विलोक्य लावण्यलक्ष्मीः संपन्नयौवनाः ॥ ५ ॥
कंदर्पदर्पविध्वस्तचेतसो जातवेदसः ।
पतितं यद्धरापृष्ठे रेतस्तद्धेमतामगात् ॥ ६ ॥

किसी समय निज आश्रममें स्थित जितात्मा सप्तर्षियोंकी सौंदर्यमें लक्ष्मी-रूप तथा युवावस्थासे सम्पन्न स्त्रियोंको देखकर कामपीडित हो अग्निदेवका जो पृथिवीमें वीर्य पतन हुआ वही सुवर्ण होगया ॥ ५ ॥ ६ ॥

स्वर्णं सुवर्णं कनकं हिरण्यं हेमहाटकम् ।
तपनीयं शातकुम्भं गांगेयं भर्म कर्बुरम् ॥ ७ ॥
चामीकरं जातरूपं महारजतकाञ्चने ।
रुक्मं कार्तस्वरं जाम्बूनदमष्टापदोऽस्त्रियाम् ॥ ८ ॥

स्वर्ण, सुवर्ण, कनक, हिरण्य, हेम, हाटक, तपनीय, शातकुम्भ, गांगेय, भर्म, कर्बुर, चामीकर, जातरूप, महारजत, काञ्चन, रुक्म, कार्तस्वर, जाम्बूनद, अष्टापद यह १९ नाम सुवर्णके हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

स्वर्णभेदाः ।

प्राकृतं सहजं वह्निसम्भूतं खनिसम्भवम् ।
रसेन्द्रवेधसंजातं स्वर्णं पञ्चविधं स्मृतम् ॥ ९ ॥
आच्छादितब्रह्मांडं च रजोगुणसमुद्भवम् ।
प्राकृतं चेति विख्यातं देवैरपि सुदुर्लभम् ॥ १० ॥
ब्रह्मणा सह यज्जातं सहजं तन्निगद्यते ।
शिवस्य दुःसहं तेजः पीत्वा त्यक्तं च वह्निना ॥ ११ ॥
तद्वह्निसंभवं ख्यातं दिव्यान्येतानि त्रीण्यपि ।
धारणादेव मनुजान्कुर्वंति ह्यजरामरान् ॥
खनिजं खनिसंभूतं वेधजं पारदादिभिः ॥ १२ ॥

अब सुवर्णके भेद कहते हैं। १ प्राकृत, २ सहज, ३ वह्निसंभूत, ४ खनिसंभूत, ५ पारेके वेधसे उत्पन्न इन भेदोंसे सुवर्ण पाँच प्रकारका होता है। जो सोना

रजोगुणसे प्रकट हुआ तथा सम्पूर्ण ब्रह्मांडको जिसने आच्छादन करलिया और देवताओंको भी दुर्लभ है उसका नाम प्राकृत है। जो ब्रह्माके जन्मके साथ उत्पन्न हुआ वह सहज कहाता है और अग्निने जिस शिवके दुःसह तेजको प्राप्त करके फिर त्याग करदिया वही तेज सुवर्ण होगया जिसका नाम वह्निसंभव रक्खा गया है। यह पूर्वोक्त प्राकृत, सहज और वह्निसंभूत तीनोंही दिव्य हैं, धारण-मात्रसेही मनुष्योंको अजर अमर करते हैं। जो सोना खानसे पैदा होता है वह खनिज और जो पारेके वेध अर्थात् रसायनक्रियासे तैयार होता है वह वेधज कहाता है ॥ ९-१२ ॥

तत्र यद्भक्षणार्हं स्यात्स्वर्णं तल्लक्षणं शृणु ।
दाहे रक्तं सितं छेदे निकषे कुंकुमप्रभम् ॥ १३ ॥
तारशुल्बोज्झितं स्निग्धं कोमलं गुरु हेम सत् ।
तच्छ्वेतं कठिनं रूक्षं विवर्णं समलं दलम् ॥ १४ ॥
दाहे छेदे सितं श्वेतं कषे त्याज्यं लघु स्फुटम् ।
कृत्रिमं चापि भवति सिद्धसूतस्य योगतः ॥ १५ ॥
मेरुसानूपतज्जम्बूफलाम्भोयोगतः परम् ।
दिव्यौषधिमणिस्पर्शादन्यद्भवति कांचनम् ॥
एवं नानाविधान्यत्र जायंते कांचनानि वै ॥ १६ ॥

अब जो सोना भक्षण करनेके योग्य है उसके लक्षण सुनो। जो सुवर्ण तपानेमें लाल, काटनेमें सफेद, कसौटीके द्वारा कसनेमें केसरके तुल्य, चांदी और तांबारहित चिकना, कोमल और भारी हो वह उत्तम है। जो सोना सफेद कठोर, रूखा, खराब वर्णवाला, मलसहित, गांठके सदृश, तपानेमें तथा काटनेमें सफेद, कसनेमेंभी सफेद, हलका और चोट मारनेमें फूटजावे वह सुवर्ण त्यागने योग्य है। जो मेरुपर्वतके शिखरसे नदीके जलमें गिरेहुए जम्बूफलके योगसे उत्पन्न होताहै वह जाम्बूनद नामसे प्रसिद्ध है। दिव्य औषधि और मणियोंके स्पर्शसे जो सुवर्ण सिद्ध होता है वह और है इस प्रकार अनेक तरहके सुवर्ण होते हैं ॥ १३-१६ ॥

अशुद्धसुवर्णदोषाः ।

सौख्यं वीर्यं बलं हन्ति रोगवर्गं करोति च ।
अशुद्धं नामृतं स्वर्णं तस्माच्छुद्धं च मारयेत् ॥ १७ ॥

अब अशुद्ध सुवर्णके दोष कहते हैं । विना शोधा सोना सुख, वल और वीर्यको नाश करता है । इसके सेवनसे शरीरमें अनेक रोग पैदा होते हैं । यह अमृत रूप नहीं है इस हेतु अशुद्ध सुवर्णका जारण वर्जित है ॥ १७ ॥

सुवर्णशोधनम् ।

हेम्नः श्रेष्ठस्य यत्नेन सूक्ष्मपत्राणि कारयेत् ।
शोधयेत् कांजिकेनैव पश्चाद्वा निम्बुकद्रवैः ॥ १८ ॥
तक्रेण शोधयेद्धेम दुग्धे चैव पुनः पुनः ।
शोधयेदौषधैः सर्वैः क्षालयेदुदकैः पृथक् ॥ १९ ॥

उत्तम सोना लेकर उसके कंटकवेधी पत्र बनवावे और उन पत्रोंको अग्निमें तपा २ कर कांजी, नींबूका रस, मठा और दूध इन प्रत्येकमें तीन २ बार बुझावे और पीछे अथवा सब औषधियोंके क्वाथमें तपा २ कर बुझावे और पीछे शुद्ध जलसे धोडाले तो सोना शुद्ध होजाता है ॥ १८ ॥ १९ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

मृत्तिकामातुलुंगाद्यैः पंच वासरभाविता ।
सभस्मलवणं हेम शोधयेत्पुटपाकतः ॥ २० ॥

सुवर्णको गेरू और विजौरा नींबू आदि अम्लवर्गमें पांच दिन भिगोकर रक्खे तदनन्तर गेरू, भस्म और लवणको सुवर्णपत्रोंपर लेप करके अग्निमें पुटपाककी रीतिसे पकावे तो वह सुवर्ण शुद्ध होजाता है ॥ २० ॥

तृतीयः प्रकारः ।

सुवर्णमुत्तमं वह्नौ विद्रुतं निक्षिपेद्बहुशः ।
कांचनारद्रवे शुद्धं कांचनं जायते भृशम् ॥ २१ ॥

सुवर्ण शुद्ध करनेका एक प्रकार यहभी है कि, श्रेष्ठ सोनेको अग्निमें गला २ कर कई बार कांचनारके काढेमें बुझावे तो शुद्ध होजाता है ॥ २१ ॥

सामान्येन सर्वधातुशोधनम् ।

तैले तक्रे गवां मूत्रे कांजिके च कुलत्थके ।
त्रिधा त्रिधा विशुद्धिः स्यात्स्वर्णादीनां समासतः ॥ २२ ॥

अब हम संक्षेपसे स्वर्णादि धातुओंका शोधन कहते हैं । सोना, चांदी, तांबा इनमेंसे जिसको शुद्ध करना हो उसको एक तोला भर लेकर आठ कंटकवेधी पत्र बनावे और इन पत्रोंको अग्निमें तपा २ कर मीठे तेल, मट्ठा, गोमूत्र, कांजी. कुल-

थीके काढा इन प्रत्येकमें तीन २ बार बुझावे तो शुद्ध होजाते हैं। राँगा, जस्ता और सीसेको अलग २ गलाकर पूर्व कहे हुए तैल, मठा आदिमें बुझावे तो ये भी शुद्ध होजाते हैं। और लोहेके पत्रोंकोभी तपा २ कर तीन २ बार बुझावे तो लोहा शुद्ध होता है ॥ २२ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

सामान्येनाथ धातूनां शोधनं वच्मि साम्प्रतम् ।
आदौ तेषां तु पत्राणि सूक्ष्माणि कारयेद्भिषक् ॥ २३ ॥
गृहकन्यारसे ह्यर्कदुग्धे गुंजारसे ततः ।
विडं च सर्जिकाक्षारं गैरिकं नवसादरम् ॥ २४ ॥
खल्वे विमर्द्य पत्रेषु लेपं कुर्याच्चिकित्सकः ।
वह्नौ संतापयेत्सम्यक्छुद्ध्यन्ति सकलानि वै ॥ २५ ॥

अब सामान्यरीतिसे सब धातुओंका शोधन कहते हैं । सोना चाँदी आदि धातुओंमेंसे जिसको शुद्ध करना हो उसके कंटकवेधी पत्र बनवाकर ग्वारपाठेके रस, आकके दूध, घूँघचीके रसमें, विड नमक, सज्जीखार, गेरू और नौसादरको खरलमें घोटकर पत्रोंके ऊपर लेप करे और फिर उन पत्रोंको अग्निमें तपावे तो शुद्ध हो जाते हैं ॥ २३–२५ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

अथ वक्ष्ये पुनर्वत्स शोधनस्य क्रियां खलु ।
उत्तमानां तु धातूनां सूक्ष्मपत्राणि कारयेत् ॥ २६ ॥
वह्नौ ततस्तु संताप्य वर्गे क्षारे च दुग्धके ।
तैले तक्रे तथा मूत्रे कांजिके ह्यथ चाम्लके ॥ २७ ॥
रंगे पुष्पे फले तद्वद्रक्ते चापि तथा भिषक् ।
निर्वापयेच्च प्रत्येकं दिग्दिग्वारान्पृथक्पृथक् ॥
ततस्तु जायते शुद्धिर्धातूनां वत्स शोभना ॥ २८ ॥

हे वत्स ! अब फिर भी सुवर्णादि धातुओंके शोधनका दूसरा प्रकार कहते हैं। पहले सुवर्णादि श्रेष्ठ धातुके बारीक पत्र बनवावे और उन प्रत्येक धातु पत्रोंको अग्निमें तपा २ कर दश दश बार क्षारवर्ग, दुग्धवर्ग, तैलवर्ग, तक्रवर्ग, मूत्रवर्ग, कांजी, अम्लवर्ग, रंगवर्ग, पुष्पवर्ग, फलवर्ग और रक्तवर्गकी औषधियोंके क्काथमें अलग दश दश बार बुझावे तो उनकी उत्तम शुद्धि होजाती है ॥ २६–२८ ॥

मारणस्योत्तममध्यादिवर्णनम् ।

लोहानां मारणं श्रेष्ठं सर्वत्र रसभस्मना ।
मध्यमं मूलिकाभिश्च अधमं गन्धकादिभिः ॥
अरिलोहेन लोहस्य मारणं दुर्गुणप्रदम् ॥ २९ ॥

यहाँ लोहशब्दसे केवल लोह धातुका ही ग्रहण नहीं है । किन्तु सोना, चाँदी, ताँबा, सीसा, काँसा, राँगा, लोहा और पीतल इन आठ धातुओंका ग्रहण है । यदि इनका मारण पारेकी भस्मके द्वारा किया जावे तो श्रेष्ठ है, जडी बूटीके द्वारा मध्यम और गंधक आदिके द्वारा अधम है । सुवर्णादि धातुओंमें जो धातु जिस धातुका गुणोंमें शत्रुरूप है उससे उसका मारण दुष्ट गुण पैदा करनेवाला है जैसे ताँबेका शत्रु जस्त है इस कारण इससे मारण करना दुर्गुण करनेवाला है ॥ २९ ॥

स्वर्णमारणस्य प्रथमः प्रकारः ।

पारावतमलैर्लिंपेदथवा कुक्कुटोद्भवैः ।
हेमपत्राणि तेषां च प्रदद्यादधरोत्तरम् ॥ ३० ॥
गन्धचूर्णं समं दत्त्वा शरावयुगसंपुटे ।
प्रदद्यात्कुक्कुटपुटं पञ्चभिर्गोमयोत्पलैः ॥ ३१ ॥
एवं नवपुटं दद्याद्दशमं च महापुटम् ।
त्रिंशद्वनोत्पलैर्देयं जायते हेमभस्मकम् ॥ ३२ ॥

अब सुवर्णके मारणका पहला प्रकार कहते हैं । सोनेके सूक्ष्म पत्रोंपर कबूतर अथवा मुर्गेकी विष्ठाका लेप करे और लेपके ऊपर समान गंधकके चूर्णको बुरकता जाय और एक पत्रके ऊपर दूसरा पत्र रखता जाय तथा प्रत्येक पत्रमें लेपके अनन्तर गंधकचूर्ण बुरकता जाय इस प्रकार सम्पूर्ण पत्रोंको नीचे ऊपर रखके एक शरावसंपुटमें गंधक बिछा ऊपरसे पत्रोंको रखदेवे और शेष गंधकचूर्ण भी उन पत्रोंपर बिछाय देवे तत्पश्चात् दूसरा शराव उसके ऊपर ढाँककर कपरमिट्टी करदेवे और पाँच गोबरके कंडोंसे नौ कुक्कुटपुट देकर पकावे । नव कुक्कुटपुट देनेके अनन्तर ३० तीस जङ्गली उपलोंसे दशवाँ महापुट देनेसे सुवर्णकी भस्म सिद्ध होजाती है । कुक्कुटपुटका लक्षण शास्त्रकारोंने इस प्रकार किया है कि, "वितस्तिमात्रगर्ते यत्पुटच्यते तत्तु कौक्कुटम्" अर्थात् एक बालिश्तभर गहरे और एक ही बालिश्त चौडे गढेमें कंडोंकी आँचसे जो औषध पुटित की जाती है वह कौक्कुटपुट कहाती है ॥ ३०-३२ ॥

पूर्वोक्तमृतस्वर्णगुणाः ।

सुवर्णं च भवेत्स्वादु तिक्तं स्निग्धं हिमं गुरु ।
बुद्धिविद्यास्मृतिकरं विषहारि रसायनम् ॥ ३३ ॥

सुवर्ण स्वादमें मधुर, तीखा, स्निग्ध, शीतल और गुरु है, यह बुद्धि, विद्या और स्मरणशक्तिको बढानेवाला तथा विषसे उत्पन्न बाधाओंका नाशकारक श्रेष्ठ रसायन है ॥ ३३ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

सौवीरमंजनं पिष्ट्वा मार्कवस्वरसैर्देहेत् ॥ ३४ ॥
जातरूपस्य पत्राणि शरावे संपुटे पुटेत् ।
गजाख्येन पुटेनैव सुवर्णं याति भस्मताम् ॥ ३५ ॥

अब मारणका दूसरा प्रकार कहते हैं। जलभाँगरेके रसमें सुरमेकी डलीको अच्छे प्रकार घोटकर सुवर्णके कंटकवेधी पत्रोंपर लेप करे और उन लेप किये हुए पत्रोंको शरावसंपुटमें रख कपरमिट्टी करके गजपुटके द्वारा आँच देवे तो एक आँचसे ही शुद्ध भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

सूतस्य द्विगुणं गन्धमम्लेन कृतकज्जलिम् ।
द्वयोः समीकृतं स्वर्णं सम्यगम्लेन मर्दयेत् ॥ ३६ ॥
शरावसंपुटांतःस्थमध ऊर्ध्वं च सैन्धवम् ।
अष्टयामाद्भवेद्भस्म सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ ३७ ॥

अब मारणका तीसरा प्रकार कहते हैं। शुद्ध किया हुआ पारा १ टंक और उसका दुगुना अर्थात् २ टंक गंधक लेकर नींबूके रसके साथ कज्जली करे तदनन्तर इसमें पारा और गंधककी बराबर अर्थात् तीन टंक शुद्ध सोनेके वर्क मिलाकर नींबूके रसके साथ अच्छे प्रकार घोटे जब गाढा होजावे तो उसकी टिकिया बनाकर धूपमें सुखालेवे तत्पश्चात् एक शरावमें नमक बिछाकर उसके ऊपर टिकियोंको रखदेवे और टिकियोंके ऊपर भी अच्छे प्रकार नमक बिछाकर ढँकदेवे अर्थात् टिकिया खुली न रहे और फिर दूसरे शरावसे ढँक कपरमिट्टी करके धूपमें सुखालेवे फिर आठ प्रहरकी गजपुट आँच देवे तो सुवर्णकी उत्तम भस्म सिद्ध हो जाती है। यही रीति चाँदी और ताँबेके भस्म बनानेकी भी है, परन्तु विशेषता यह है कि, ताँबेकी कज्जलीमें पारा गंधककी कज्जली मिलाकर एक प्रहर पर्यन्त कागजी नींबूके रसमें अच्छे प्रकार खरल करे तत्पश्चात् उसकी टिकिया बनाकर पूर्ववत्

क्रिया करे । ताँबेको नींबूके रसके साथ अधिक समय तक घोटनेसे जी नहीं मचलाता ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

शुद्धं हेम श्लक्ष्णपत्रीकृतं तद्वारंवारं सूतगन्धानुलिप्तम् ।
तीव्रे वह्नौ कांचनारे हलिन्या ज्वालामुख्याः सम्पुटे भस्म कुर्यात् ॥ ३८ ॥

पारा और गंधककी कज्जली करके शुद्ध किये हुए सोनेके पत्रोंपर लेप करे तदनन्तर कचनार करियारी और ज्वालामुखी इन तीन औषधोंकी लुगदीमें उन पत्रोंको रख शरावसंपुटमें रक्खे और सात कपरमिट्टी करके अच्छे प्रकार बन्द करदेवे तत्पश्चात् वारंवार गजपुटकी आँचमें पकावे तो सुवर्णकी उत्तम भस्म सिद्ध हो जाती है॥३८॥

पञ्चमः प्रकारः ।

माक्षिकं नागचूर्णं च पिष्टमर्करसेन च ।
हेमपत्रं पुटेनैव म्रियते क्षणमात्रतः ॥ ३९ ॥

आकके दूधमें शुद्ध किये हुए सोनामक्खी और सीसेको घोटकर सोनेके कंटकवेधी पत्रोंपर लेप करके गजपुटमें फूँक देवे तो बहुत शीघ्र सोनेकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ३९ ॥

षष्ठः प्रकारः ।

सुशुद्धं पारदं दत्त्वा कुर्याद्यत्नेन पिष्टिकाम् ।
दत्त्वोर्द्ध्वाधो नागचूर्णं पुटेन म्रियते ध्रुवम् ॥ ४० ॥

दो भाग शुद्ध पारा और एक भाग सोनेके पत्रोंको खरल करके यत्नसे पिट्ठी बनालेवे और पिट्ठीके ऊपर तथा नीचे सीसेका चूर्ण बिछायकर गजपुटमें फूँकदेवे तो सोनेकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ४० ॥

सप्तमः प्रकारः ।

रसस्य भस्मना वाथ रसेनालिप्य वद्दलम् ।
हिंगुहिंगुलसिंदूरशिलासाम्येन मेलयेत् ॥ ४१ ॥
संमर्द्य कांचनद्रावैर्दिनं कृत्वाथ गोलकम् ।
तद्भाण्डस्य तले दत्त्वा भस्मना पूरयेद्दृढम् ॥ ४२ ॥
अग्निं प्रज्ज्वालयेद्गाढं द्विनिशं स्वांगशीतलम् ।
उद्धृत्य सावशेषं चेत्पुनर्देयं पुटद्वयम् ॥
अनेन विधिना स्वर्णं निरुत्थं जायते मृतम् ॥ ४३ ॥

पारेसे अथवा पारेके भस्मसे सोनेके कंटकवेधी पत्रोंको लपेटकर हींग, हिंगुल, सिन्दूर और मनशिल इन सबको समान भाग लेकर एक दिवस कचनारके रसमें घोटकर गोला बनालेवे और उस गोलेको पात्रके भीतर पेंदीमें रख ऊपरसे दाब २ कर राख भरदेवे और फिर चूल्हेमें अग्नि जलाकर चढाय देवे तत्पश्चात् दो रात्रि पर्यन्त समान आँचसे पकाकर उतारलेवे जब स्वयंशीतल होजावे तो पात्रसे अलग उसको निकाल लेवे यदि पकनेमें कसर रहजावे तो फिर पुट देकर अग्नि दे तो सोनेकी निरुत्थ भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ४१--४३ ॥

अष्टमः प्रकारः ।

कांचनारप्रकारेण लांगली हन्ति कांचनम् ।
ज्वालामुखी तथा हन्यात्तथा हंति मनःशिला ॥ ४४ ॥

जिस तरह कचनारके रसकी पुट देनेसे सोनेकी भस्म सिद्ध होती है उसी प्रकार कलियारीके रसकी पुट देनेसे तथा ज्वालामुखी या मनशिलके पुटसे भी सुवर्णकी भस्म सिद्ध होती है ॥ ४४ ॥

नवमः प्रकारः ।

शिलासिंदूरयोश्चूर्णं समयोरर्कदुग्धतः ।
सप्तधा भावयित्वा तु शोषयेच्च पुनःपुनः ॥ ४५ ॥
ततस्तु गलिते हेम्नि कल्कोयं दीयते समः ।
पुनर्धमेदतितरां यथा कल्को विलीयते ॥
एवं वारत्रयं दद्यात्कल्कं हेममृतिर्भवेत् ॥ ४६ ॥

मनशिल और सिंदूर दोनोंका बराबर चूर्ण लेकर आकके दूधमें सात भावना देवे और प्रत्येक भावनामें सुखाताजाय तत्पश्चात् सोनेको गलाकर उसमें पूर्वोक्त भावना दिया हुआ चूर्ण छोडताजाय और धोंकनीसे खूब धमे कि, जिससे सोनेका जलांश सूख जावे, इसी प्रकार तीन बार कल्क देनेसे सुवर्णकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

मृतसुवर्णगुणाः ।

वर्णं विधत्ते हरते च रोगान्करोति सौख्यं प्रबलेन्द्रियत्वम् ।
शुक्रस्य वृद्धिं बलतेजऋद्धिं क्रियासु शक्तिं च करोति हेम ॥ ४७ ॥

अब मृत सुवर्णके गुण कहते हैं। यह सुवर्णभस्म देहमें कान्ति पैदा करती है, रोगोंका नाश करती है, सुख देती है इन्द्रियोंको बलयुक्त करती है, शुक्र, बल और तेजको बढानेवाली तथा काम करनेकी शक्तिको पैदा करनेवाली है ॥ ४७ ॥

स्वर्णभस्मगुणाः ।

स्वर्णं स्वर्णसमानरूपजनकं सर्वक्षयोन्मूलकृत्
बल्यं वृष्यमनुष्णवीर्यमसकृत्क्षुद्वर्द्धनं बृंहणम् ।
निःशेषामयसंघसंहृतिकरं तेजस्करं शुक्रकृ-
च्चक्षूरोगजराहरं नवसुधापानोपमं प्राणिनाम् ॥ ४८ ॥

सुवर्णकी भस्म सेवन करनेसे शरीरमें सुवर्णके तुल्य कान्ति होती है और यह सब प्रकारके क्षयीरोगोंको जडसे नाश करती है, बलको लानेवाली है, वृष्य है, अनुष्णवीर्य है, क्षुधाको बढाती है, संपूर्ण रोगोंके समूहको संहार करनेवाली है, तेज तथा वीर्यको बढाती है, नेत्रोंमें उत्पन्न हुए रोग और वृद्धावस्थाको दूर करती है। तथा मनुष्योंको अमृतके तुल्य गुण देनेवाली है ॥ ४८ ॥

अन्यगुणाश्चापि ।

स्वर्णं शीतं पवित्रं क्षयवमिकसनश्वासमेहास्रपित्त-
क्षैण्यक्ष्वेडक्षतास्रप्रदरगदहरं स्वादुतिक्तं कषायम् ।
वृष्यं मेधाग्निकान्तिप्रदमधुरसकं कार्श्यहानित्रिदोषो-
न्मादापस्मारशूलज्वरजयिवपुषो बृहणं नेत्रपथ्यम् ॥ ४९ ॥

सुवर्णकी भस्म शीतलतासे युक्त तथा पवित्र है, इसके विधिपूर्वक सेवन करनेसे क्षयी, वमन, खाँसी, श्वास, प्रमेह, रक्तपित्त, क्षीणता, विषविकार, घाव, रुधिरविकार और रक्तप्रदर रोग नष्ट होते हैं, यह स्वादिष्ठ तथा कडवा और कसैला है, वृष्य है, बुद्धिको बढानेवाली, जठराग्निको प्रदीप्त करनेवाली तथा शरीरमें कान्तिको पैदा करनेवाली है खाँडके समान मीठा, देहकी दुर्बलता, त्रिदोष, उन्माद, मृगी और शूलको नाश करती है, शरीरको पुष्ट करती तथा नेत्रोंके लिये हितकारी है ॥ ४९ ॥

सुवर्णप्रशंसा ।

सर्वौषधिप्रयोगेण व्याधयो न गता यदि ।
कर्मभिः पंचभिश्चापि सुवर्णं तेषु योजयेत् ॥ ५० ॥

शिलाजतुप्रयोगात्तु ताप्यसूतकयोस्तथा ।
रसायनानामन्येषां प्रयोगाद्धेम चोत्तमम् ॥ ५१ ॥

यदि रोगीके रोग अनेक प्रकारकी औषधियोंके सेवन तथा वमन विरेचन आदि पाँच प्रकारके कर्मोंसे भी न नष्ट हुए हों तो उनकी निवृत्तिके लिये सुवर्णका सेवन करावे क्योंकि यह सुवर्णका प्रयोग शिलाजतु, चाँदी, पारा तथा अन्य सब रसायनके प्रयोगोंमें अतिश्रेष्ठ है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

सुवर्णप्रयोगौ ।

अपक्वं हेमसंघृष्टं शिलायां जलयोगतः ।
द्रवरूपं तु तत्पेयं मधुना गुणदायकम् ॥ ५२ ॥
अथवा वरकाख्यं तु स्वर्णपत्रं विचूर्णितम् ।
मधुना संगृहीतं च सद्यो हंति विषादिकम् ॥ ५३ ॥

किसी स्वच्छ पत्थरके खरलमें शुद्ध किये हुए सुवर्णको जलके साथ अच्छे प्रकार घिसे तत्पश्चात् उसमें थोडासा सहत मिलाकर पीनेसे उत्तम गुणोंका करनेवाला होताहै । अथवा सोनेके वर्कोंको बारीक चूर्ण करके सहतके साथ सेवन करे तो विष आदिके विकार नष्ट होवें ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

स्वर्णदलगुणाः ।

सिद्धं स्वर्णदलं समस्तविषहृच्छूलाम्लपित्तापहं
हृद्यं पुष्टिकरं क्षयव्रणहरं कायाग्निमांद्यं जयेत् ।
हिक्कानाहविनाशनं कफहरं भ्रूणां हितं सर्वदा
तत्तद्रोगहरानुपानसहितं सर्वामयध्वंसनम् ॥ ५४ ॥

सुवर्णके वर्क समस्त विषविकार, शूल और अम्लपित्तको नाश करते हैं, हृदयके लिये हितकारी तथा शरीरमें पुष्टि करनेवाले हैं इसके सेवनसे क्षयीरोग, घाव, अग्निमांद्य हिचकी, आनाहवात और कफविकार, नष्ट होते हैं । गर्भस्थ बालकोंके लिये सर्वदा हितकारी हैं और उन २ रोगोंके नाश करनेवाले अनुपानोंके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारके रोगोंको हरते हैं ॥ ५४ ॥

सुवर्णभस्मानुपानानि ।

मत्स्यपित्तस्य योगेन स्वर्णं तत्कालदाहजित् ।
भृंगयोगाच्च तद्वृष्यं दुग्धयोगाद्बलप्रदम् ॥ ५५ ॥

पुनर्नवायुतं नेत्र्यं घृतयोगाद्रसायनम् ।
स्मृत्यादिकृद्वचायोगात्कान्तिकृत्कुंकुमेन च ॥ ५६ ॥
राजयक्ष्माणि पयसा निर्विष्या च विषं हरेत् ।
शुंठीलवंगमरिचैस्त्रिदोषोन्मादहारकम् ॥ ५७ ॥

सुवर्णभस्मको मछलीके पित्तके साथ खावे तो तत्काल दाह दूर करती है स्त्री-प्रसगमें भाँगरेके रसके साथ खानेसे हित करती है, दूधके साथ सेवन करनेसे बलकी वृद्धि होती है, पुनर्नवाके साथ नेत्रविकारोंको नाश करती है, घृतके साथ वृद्धावस्था तथा समस्त व्याधियोंको दूर करती है, वचके साथ स्मृति आदिको उत्पन्न करती है, केशरके साथ शरीरमें कान्ति पैदा करती है, दूधके साथ राज-यक्ष्मा और निर्विषीके साथ विषरोगोंको दूर करती है, सोंठ, लौंग और काली मिर्चके साथ त्रिदोष तथा उन्मादको हरती है ॥ ५५–५७ ॥

मध्वामलकंचूर्णं तु सुवर्णं चेति तत्त्रयम् ।
प्राश्यारिष्टगृहीतोऽपि मुच्यते प्राणसंकटात् ॥
शंखपुष्प्या वयोर्थं च विदार्या च प्रजार्थकः ॥ ५८ ॥

आमलोंका चूर्ण, सोनेकी भस्म और सहत इन तीनोंको एकमें अच्छे प्रकार मिलाकर खावे तो अरिष्टयुक्त भी मनुष्य प्राणसंकटसे छूटजाता है, शंखपुष्पीके साथ सेवन करनेसे आयुकी वृद्धि और विदारीकन्दके साथ पुत्रको उत्पन्न करनेवाली है ॥ ५८ ॥

रोगविशेषे स्वर्णभक्षणपथ्यम् ।

दुग्धं वै शर्करोपेतं स्निग्धमन्नं च पेशलम् ।
वलीपलितनाशाय स्वर्णपथ्यानि दापयेत् ॥ ५९ ॥

यदि वलीपलित रोगके नाश करनेके लिये सुवर्णभस्मका सेवन करे तो खाँड-संयुक्त दूध और चिकना तथा उत्तम अन्न हितकारी है ॥ ५९ ॥

स्वर्णभक्षणेऽपथ्यानि ।

ककारसहितं चान्नं व्यंजनं तु कपूर्वकम् ।
ककारपूर्वमांसानि स्वर्णभुग्दूरतस्त्यजेत् ॥ ६० ॥

---

१ किसीका मत है कि, " मध्वामलकवर्णं तु प्रबलां ग्रहणीं हरेत् " अर्थात् सुवर्णभस्म, आमलोंका चूर्ण, सहद यह तीनों प्रवल ग्रहणी रोगोंको नाश करते हैं ॥

सोनेकी भस्म तथा वर्कोंको सेवन करनेवाला मनुष्य जिन अन्न व्यंजन और मांसके नामोंकी आदिमें ककार हो उनका त्याग करे क्योंकि वह अपथ्य हैं॥६०॥

स्वर्णद्रुतिप्रकारः।

चूर्णं सुरेन्द्रगोपानां देवदालीफलद्रवैः।
भावितं सदृशं हेम करोति जलवद्द्रुतिम् ॥ ६१ ॥

विदारीफलके रसमें पारा और बीरबहूटीके चूर्णको घोटकर सुवर्णके चूर्णमें भावना देवे तो सोना पानीके तुल्य पतला हो जाता है ॥ ६१ ॥

मण्डूकास्थिवसाटंकहयलालेन्द्रगोपकैः।
प्रतिवापेन कनकं सुचिरं तिष्ठति द्रवम् ॥ ६२ ॥

मेंढककी हड्डी, और वसा (चर्वी), सुहागा, घोडेकी मुखकी लार, बीरबहूटी इन सबोंको बराबर लेकर इनमें सोनेको गलाकर छोडनेसे बहुत काल तक सोना जलके तुल्य पतला बना रहता है ॥ ६२ ॥

अशुद्धसुवर्णदोषाः।

बलं च वीर्यं हरते नराणां रोगव्रजान्पोषयतीह कामे।
असौख्यकार्यं च सदैव हेमाऽपक्वं सदोषं मरणं करोति ॥ ६३ ॥

विना शुद्ध किया हुए सुवर्ण सेवन करनेसे मनुष्योंके बल और वीर्यको नाश करता है, देहमें अनेक प्रकारके रोगोंको पैदा करता है और क्लेश तथा मृत्युको करता है ॥ ६३ ॥

अपक्वहेमदोषहरोपायः।

अभया सितया युक्ता भक्षणीया दिनत्रयम्।
हेमदोषहरी ख्याता सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ६४ ॥

अशुद्ध सोनेके सेवनसे जो दोष उत्पन्न हुए हों उनकी शान्तिके लिये खाँडके साथ हरडका तीन दिन पर्यन्त भक्षण करे क्योंकि खाँड सहित हरीतकीको शास्त्रकारोंने हेमदोषहरी कथन किया है इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ६४ ॥

एवमेकादशे प्रोक्तो सुवर्णस्य विधिः शुभः।
धनिकैश्चाधिराजैश्च सेवनीयो प्रयत्नतः ॥ ६५ ॥

इस प्रकार इस ग्यारहवें अध्यायमें सुवर्णके शोधन, मारणादि विधि कही गई । यह विधान धनी और महाराजाओंको प्रयत्नसे करना चाहिये ॥ ६९ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे
सुवर्णवर्णनो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः ।

अथातो रौप्यशोधनमारणादिवर्णनं नाम द्वादशाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब चांदीके शोधन मारणवाले बारहवें अध्यायका व्याख्यान करेंगे ॥

शिष्य उवाच ।

श्रुतो स्वर्णविधिर्नाथ तथा शोधनमारणौ ।
अधुना रौप्यविषये कृपया कथय प्रभो ॥ १ ॥

शिष्य बोला कि, हे नाथ ! सुवर्णकी विधि तथा शोधन मारणादिक सब सुना अब कृपा करके चांदीके विषयमेंभी कथन कीजिये ॥ १ ॥

गुरुरुवाच ।

अथ रौप्यविधानं ते प्रवक्ष्यामि विशेषतः ।
यस्य प्रयोगमात्रेण नरश्चारोग्यतां व्रजेत् ॥ २ ॥

गुरुने कहा कि, हे पुत्र ! अब मैं तुझको चाँदीके शोधन तथा मारणादि विधानको सुनाताहूँ । जिसके प्रयोगमात्रसे मनुष्य आरोग्यताको प्राप्त होता है ॥ २ ॥

रौप्योत्पत्तिः ।

त्रिपुरस्य वधार्थं वै ह्येकदा कुपितो हरः ।
उल्कैकनेत्रतो जाता वीरभद्रो द्वितीयतः ॥ ३ ॥
तृतीयनेत्रतो ह्यश्रु पतितं रौप्यतां गतम् ।
प्रकारैर्बहुभिःसोऽद्य पृथिव्यां परिदृश्यते ॥ ४ ॥

किसी समय त्रिपुरके संहार करनेके लिये महादेवजीने अत्यन्त क्रोध किया उसी कालमें उनके एक नेत्रसे उल्का पैदा हुई, दूसरे नेत्रसे वीरभद्रगण पैदा हुआ और तीसरे नेत्रसे जो आँसूकी बूँद गिरी वही चांदी होगया और वह चांदी पृथिवीमें अनेक तरहकी देख पडती है ॥ ३ ॥ ४ ॥

रौप्यभेदाः।

सहजं खनिसंजातं कृत्रिमं च त्रिधा मतम्।
रजतं पूर्वपूर्वं हि स्वगुणैरुत्तरोत्तरम्॥ ५॥
कैलासाद्यादिसंभूतं सहजं रजतं भवेत्।
तत्पृष्टं हि सकृद्व्याधिनाशनं देहिनां भवेत्॥ ६॥
हिमाचलादिकूटेषु यद्रूप्यं जायते हि तत्।
खनिजं कथ्यते तज्ज्ञैः परमं हि रसायनम्॥ ७॥
श्रीरामपादुकान्यस्तं वंगं यद्रूप्यतां गतम्।
तत्पादरूप्यमित्युक्तं कृत्रिमं सर्वरोगनुत्॥
कृत्रिमं चापि भवति वंगादेः सूतयोगतः॥ ८॥

अब चांदीके भेद कहते हैं। चांदी तीन तरहकी होती है पहली सहज, दूसरी खानिज, और तीसरी कृत्रिम, इनमेंसे उत्तरोत्तर एकसे दूसरीमें और दूसरीसे तीसरीमें अधिक गुण होते हैं। जिस चांदीकी उत्पत्ति कैलासपर्वतसे है वह सहज कहाती है, इसके स्पर्शमात्रसेही मनुष्योंकी समस्त व्याधियोंका नाश होता है। जो चांदी हिमालय आदि पर्वतोंमें पैदा होती है वह खनिज कहाती है यह श्रेष्ठ रसायन है। जो राँगा रामकी पादुका अर्थात् खडाओंके नीचे पडनेसे रौप्यभावको प्राप्त हुआ उसको कृत्रिम तथा पादरूप्यभी कहते हैं। इसके सेवनसे सब रोगोंका नाश होता है किसीका यहमत है कि, जो चांदी पारा और राँगेके मेलसे बनी हो उसे कृत्रिम कहते हैं॥ ५-८॥

त्रिविधं परिकीर्तितं च रूप्यं खनिजं वंगवेधजं तथैव।
अवलोक्य रसोदधींश्च ग्रंथोन्सकलैर्वैद्यवरैर्विशारदैश्च॥ ९॥

अनेक रसग्रन्थोंको अवलोकन करके श्रेष्ठ वैद्योंने चांदीके तीन भेद बतलाये हैं उनमेंसे पहला खनिज, दूसरा वंगज और तीसरा वेधज है॥ ९॥

ग्राह्यरौप्यम्।

उभे वंगजेनैव ग्राह्य च रूप्ये यतो नैव शुभ्रत्वमेवं मृदुत्वम्।
अतोग्राह्यमेकं खनीजं च रूप्यं यतः श्वेतवर्णं च कौमल्ययुक्तम्॥ १०॥

पहले जो तीन प्रकारकी चांदी कही गई है उनमेंसे वंगज और वेधज तो ग्रहण करने योग्य नहीं है क्योंकि इनमें सफेदी और कोमलता नहीं है और तीसरी

जो खनिज है वह ग्रहण करनेके योग्य है क्योंकि यह सफेदी और कोमलतासे युक्त है ॥ १० ॥

घनं स्वच्छं मृदु स्निग्धं दाहे छेदे सितं गुरु ।
शंखाभमसृणस्फोटरहितं रजतं शुभम् ॥ ११ ॥

जो चाँदी घन, स्वच्छ, नरम और स्निग्ध हो, अग्निमें तपाने और तोडनेसे जिसका रंग श्वेत हो, भारी हो, शंखके तुल्य जिसकी कान्ति हो और घनकी चोटसे जो फूटती न हो वह उत्तम होती है ॥ ११ ॥

त्याज्यरौप्यम् ।

दाहे रक्तं च पीतं च कृष्णं रूक्षं स्फुटं लघु ।
स्थूलाङ्गं कर्कशाङ्गं च रजतं त्याज्यमष्टधा ॥ १२ ॥

जो चाँदी अग्निमें तपानेसे लाल, पीले या काले रंगवाली हो, रूक्ष हो, घनकी चोटोंसे फूटती हो, वजनमें हलकी हो पर देखनेमें स्थूल हो अर्थात् दृढ न हो, तथा कठिन हो यह पूर्वोक्त आठ प्रकारकी चाँदी त्याग करने योग्य है ॥ १२ ॥

अशुद्धरौप्यमारणे दोषः ।

आयुः शुक्रं बलं हन्ति तापविड्बंधरोगकृत् ।
अशुद्धं न मृतं तारं शुद्धं मार्यमतो बुधैः ॥ १३ ॥

विना शुद्ध कीहुई चाँदीका मारण करना चतुर वैद्योंने निषेध किया है क्योंकि उसके सेवनसे आयु, वीर्य और बल नष्ट होजाता है, ज्वर तथा मलबंध आदि रोग पैदा होते हैं इसी कारण शुद्ध की हुई चाँदीका मारण करना श्रेष्ठ वैद्योंने कहा है ॥ १३ ॥

रौप्यशुद्धिः ।

पत्रीकृतं तु रजतं सन्तप्तं जातवेदसि ।
निर्वापितमगस्त्यस्य रसे वारत्रयं शुचि ॥ १४ ॥

उत्तम चाँदीके कंटकवेधी पत्र बनवाकर अग्निमें तपावे और उन तपाये हुए पत्रोंको अगस्तवृक्षके पत्तोंके रसमें तीन बार बुझावे तो शुद्ध होजाते हैं ॥ १४ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

रौप्य शुद्धं समादाय नागमुख्यं तु शोधयेत् ।
शुद्धे तारे पुनस्तस्य सूक्ष्मपत्राणि कारयेत् ॥
तानि चिंचिणिद्राक्षाभिः शोधयेच्च पृथक्पृथक् ॥ १५ ॥

श्रेष्ठ चाँदीमें नाग अर्थात् सीसा देकर शुद्ध करे और उनके कंटकबेधी पत्र बनवाकर इमली और दाखके रसमें पृथक् २ शोधन करे तो चाँदीकी उत्तम शुद्धि होजाती है ॥ १५ ॥

रौप्यमारणविधिः ।

भागैकं तालकं मर्द्यं याममम्लेन केनचित् ।
तेन भागत्रयं तारं पत्राणि परिलेपयेत् ॥ १६ ॥
धृत्वा मूषापुटे रुद्ध्वा पुटेत्रिंशद्वनोत्पलैः ।
समुद्धृत्य पुनस्तालं दत्त्वा रुद्ध्वा पुटे पचेत् ॥
एवं चर्तुदशपुटैस्तारभस्म प्रजायते ॥ १७ ॥

अब चाँदीके मारणकी विधि कहते हैं । एक भाग हरिताल लेकर उसको कागजी नीबू या किसी अन्य अम्लद्रव्यके रसमें एक प्रहर पर्यन्त खरलमें घोटे जब गाढा होजाय तो तीन भाग चाँदीके पत्रोंपर उसका लेप करके तीस जङ्गली उपलोंकी आँचसे शरावसंपुटमें रखकर पकावे, और फिर उन पत्रोंको निकाल पहलेकी समान अम्लरसके साथ मर्दन किये हुए हरितालका लेप करके पकावे इसी प्रकार सब मिलकर चौदह आँचें देवे तो चाँदीकी उत्तम भस्म सिद्ध हो जाती है ॥ १६॥ १७ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

कनकमाक्षिकसूक्ष्मविचर्णकं स्थविरस्नुकूपयसा सह मर्दितम् ।
रजतपत्रवराणि विलेपयेत्कथिततालकवत्परिपाचयेत् ॥ १८ ॥

अब चाँदीके मारणका दूसरा प्रकार कहते हैं । पुराने थूहरके दूधके साथ सोनामक्खीके बारीक चूर्णको अच्छे प्रकार घोटे और जब वह गाढा होजाय तो चाँदीके पत्रोंपर उसका लेप करके शरावसंपुटमें पकावे इसी प्रकार सब मिलकर सोलह पुट देवे तो चाँदीकी उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है ॥ १८ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

सिद्धवंगबलिना च तालकं तारपत्रसुविशेषलेपितम् ।
इन्द्रदण्डपुटपिण्डपाचितं तारयोगपुटयोगसिद्धदम् ॥ १९ ॥

अब चांदीके मारणका तीसरा प्रकार कहते हैं—बंगकी भस्म, हरिताल गंधक और इन तीनोंको खरलमें डालकर अच्छे प्रकार घोटे जब बारीक होजावे तो इस कजलीका चांदीके पत्रोंपर लेप करे और ऊपरसे कलियारीके फलोंकी लुगदी

लगाकर शरावसंपुटमें कपरमिट्टी करके गजपुटकी आंचसे पकावे तो चांदीकी उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है ॥ १९ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

गंधपारदयोरैक्यं किंचिद्वंगं च घर्षयेत् ।
द्राक्षायां चैव संयुक्तं तारपत्राणि लेपयेत् ॥ २० ॥
संपुटे तद्विनिःक्षिप्य लेपयेद्वस्त्रमृत्तिकाम् ।
प्रक्षिप्य पुटगर्ते च ज्वालयेद्गृहछाणकैः ॥ २१ ॥
स्वांगशीतलमुद्धृत्य खल्वे तन्मर्दयेद्बहु ।
पंचामृतपुटं देयं वस्त्रपूतं च कारयेत् ॥ २२ ॥
वल्लार्द्धं भक्षयेत्प्रातः पूजयेत्सर्वदेवताः ।
पूजयेद्भिषजो देवान् काचभाण्डे निधापयेत् ॥ २३ ॥

अब मारणका चौथा प्रकार कहते हैं । गंधक, पारा, और कुछ राँगा मिलाकर तीनोंकी कजली करे तत्पश्चात् इस कजलीको दाखके रसमें घोटकर चांदीके कंटकवेधी पत्रोंपर अच्छे प्रकार लेपकरके शरावसंपुटमें रखके कपरमिट्टीसे बन्द करदेवे और गजपुटमें फूंकदेवे जब स्वांगशीतल होजावे तब शरावसंपुटसे उन पत्रोंको अलग निकालकर खरलमें बारीक चूर्ण करे तदनन्तर पंचामृत[२] अर्थात्

---

१ गजपुटलक्षणम् ।

१ दैर्घ्यविस्तृतिपिण्डेषु सार्द्धहस्ते तु गर्तके ।
पूर्ववद्दीयते चाग्निस्तत्पुटं गजसंज्ञकम् ॥
माहिषं वेति संज्ञेयं सूरिभिः समुदाहृतम् ॥ १ ॥

जिस गर्तकी लम्बाई, चौडाई और गहिराई डेढ २ हाथ हो उसका आधा भाग उपलोंसे भरकर औषधको संपुट रख शेष आधे भागमें फिर उपलोंको भरकर अग्नि देवे इसका नाम गजपुट या माहिषपुट है ॥ १ ॥

२ गुडूची गोक्षुरं चैव मुशली मुण्डिका तथा ।
शतावरीति पञ्चानां योगः पञ्चामृताभिधः ॥ १ ॥

गिलोय, गोखुरू, मुसली, गोरखमुण्डी, शतावरी इन सबको एकमें मिलाकर पञ्चामृत योग कहाता है ॥ १ ॥

गिलोय, गोखरू, मुसली, गोरखमुण्डी, शतावरी इनका पुट देकर किसी बारीक वस्त्रमें छानकर उत्तम शीशीमें भरकर रखलेवे, प्रतिदिन प्रातःकाल एक रत्ती सेवन करे । और सर्व देवताओंकी यथायोग्य पूजा तथा वैद्योंका सत्कार करे तो बहुत शीघ्र नीरोग होवे ॥ २०-२३ ॥

पञ्चमः प्रकारः ।

शुकप्रिये पीतकपत्रकल्के चतुर्गुणे तारकमेव रुद्धा ।
शरावके संपुटके पुटेच्च त्रिभिः पुटैरेव वराहसंज्ञैः ॥ २४ ॥

अब मारणका पांचवाँ प्रकार कहते हैं। चार भाग अनार तथा हरितालके पत्रोंकी पिसी हुई लुगदीको लेकर एक भाग चांदीके कंटकबेधी पत्रोंपर लगाकर शराव-संपुटमें रख कपरमिट्टीसे बंद करदेवे और वाराहपुटमें फूंकदेवे जब स्वांगशीतल होजावे तब संपुटसे पत्रोंको निकालकर लुगदी लगा फिर वाराहपुटमें फूंकदेवे इसी प्रकार सब मिलाकर तीन वार फूंकनेसे चांदीकी उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है ॥ २४ ॥

रौप्यभस्मगुणाः ।

तारं च तारयति रोगसमुद्रपारं देहस्य सौख्यदमिदं पलितं निहन्ति ।
हन्तीह रोगविषदोषमलं प्रसह्य वृष्यं पुनर्नवकरं कुरुते चिरायुः ॥ २५ ॥

चांदीकी भस्म रोगसमुद्रसे पार लगानेवाली है, शरीरको सुख देनेवाली तथा वलीपलितरोग और विषके विकारोंको बलपूर्वक दूर करती है, वृष्य है, युवा वस्थाको प्राप्त करती है, दीर्घायुको देनेवाली है ॥ २५ ॥

अनुपानभेदेन रौप्यभस्मगुणाः ।

भस्मीभूतं रजतममलं तत्समं व्योमभानुः
सर्वैस्तुल्यं त्रिकटुरसवरं सारमाज्येन युक्तम् ।

---

१ अरत्निमात्रगर्ते यद्दीयते पूर्ववत्पुटम् ।
करीषाग्नौ तु तत्प्रोक्तं पुटं वाराहसंज्ञकम् ॥ १ ॥

जिस गर्तकी लम्बाई, चौडाई, गहराई, अरत्निमात्र अर्थात् मूठी बंधे हुए हाथके प्रमाण हो उसका आधा भाग उपलोंसे भर औषधका संपुट रख शेष आधे भागको फिर उपलोंसे भरकर अग्नि देना इसको वाराहपुट कहते हैं ॥ १ ॥
विशेष-चांदीकी भस्म बनाना हो तो हाथभर गर्त बनाना ॥

लीढं प्रातः क्षपयति नृणां यक्ष्मपाण्डूदरार्शः-
श्वासान्कासान्नयनतिमिरं पित्तरोगानशेषान् ॥ २६ ॥

उत्तम चांदीकी भस्म बराबर अभ्रक, तांबा और इन सबके बराबर त्रिकटु अर्थात् सोंठ, मिर्च, पिप्पली इनका चूर्ण और घृत मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करे तो क्षयी, पाण्डु, उदररोग, बवासीर, श्वास, खांसी, तिमिर तथा सम्पूर्ण पित्तरोग नष्ट होते हैं ॥ २६ ॥

सितया हन्ति दाहाद्यं वातपित्तं फलत्रिकात् ।
त्रिसुगन्ध्या प्रमेहादि गुल्मे क्षारसमन्वितम् ॥ २७ ॥
कासे कफेऽटरूषस्य रसे त्रिकटुकान्विते ।
भार्ङ्गीविश्वयुतं श्वासे क्षयाजित्साशिलाजतु ॥ २८ ॥
क्षीणे मांसरसे देयं दुग्धे वा ललनोत्तमे ।
यकृत्प्लीहहरं प्रोक्तं वरा पिप्पलिसंयुतम् ॥ २९ ॥
पुनर्नवायुतं शोफे पाण्डौ मण्डूरसंयुतम् ।
वलीपलितहं कान्तिक्षुत्करं घृतसंयुतम् ॥ ३० ॥

उत्तम चाँदीकी भस्मको मिश्रीके साथ सेवन करे तो दाह अर्थात् जलन आदि नष्ट होते हैं । वातपित्तसे उत्पन्न हुए रोगोंमें त्रिफलाके साथ और प्रमेहमें त्रिसुगंधि अर्थात् इलायची, दालचीनी और तेजपातके साथ, गुल्मरोगमें क्षारके साथ, खाँसी और कफरोगमें त्रिकटु अर्थात् सोंठ, मिर्च, पीपलके चूर्णसे युक्त अडूसेके रसके साथ, श्वासरोगमें भारंगी और सोंठके साथ क्षयी रोगमें शिलाजीतके साथ, क्षीणतामें मांसरस वा स्त्रीके उत्तम दूधके साथ, यकृत् प्लीहामें आमला, हरड, बहेडा और पीपलके साथ, शोफमें पुनर्नवा (साँठ) के साथ, पाण्डुरोगमें मंडूरके साथ, वलीपलितरोगमें घृतके साथ देवे । इत्यादि अनुपानोंके साथ भस्मका सेवन करनेसे समस्त रोग नष्ट होकर क्षुधा तथा शरीरमें उत्तम कान्ति उत्पन्न होती है ॥ २७-३० ॥

रौप्यदलगुणाः ।

सिद्धं रौप्यदलं काये करोति विविधान्गुणान् ।
मेहघ्नं शीतलं वृष्यं बलं वीर्यं विवर्द्धयेत् ॥ ३१ ॥

सिद्ध रूपेके वर्क शरीरमें अनेक प्रकारके उत्तम गुण उत्पन्न करते हैं, प्रमेह रोगको नाश करते हैं, शीतल हैं, वृष्य हैं, बल और वीर्यको बढाते हैं ॥ ३१ ॥

रौप्यद्रुतिविधिः ।

शतधा नरमूत्रेण भावयेद्देवदालिकाम् ।
तच्चूर्णं वापमात्रेण द्रुतिःस्यात्स्वर्णतारयोः ॥ ३२ ॥

मनुष्यके मूत्रकी १०० सौ भावना देवदालीके चूर्णमें देवे और उस चूर्णको चाँदी या सोनेमें डाले तो वह पानीके समान पतले होजावे ॥ ३२ ॥

अशुद्धरौप्यभस्मसेवनोपद्रवाः ।

अशुद्धं रजतं कुर्यात्पाण्डुकण्डुगलग्रहान् ।
विबंधं वीर्यनाशं च बलहानिं शिरोरुजम् ॥ ३३ ॥

विना शुद्ध कीहुई चाँदीकी भस्म सेवन करनेसे पाण्डुरोग, खुजली, गलग्रह, मलबंध, वीर्यका नाश, बलकी हानि और शिरमें शूल उत्पन्न करती है ॥ ३३ ॥

अशुद्धभस्मजदोषशान्त्युपायः ।

शर्करामधुसंयुक्तं सेवते यो दिनत्रयम् ।
अपक्वरौप्यदोषेण विमुक्तः सुखमश्नुते ॥ ३४ ॥

जिसने अशुद्ध रौप्यभस्म सेवन किया हो वह मनुष्य यदि तीन दिन पर्यन्त मिश्री और सहत मिलाकर सेवन करे तो अपक्व रौप्यदोषसे मुक्त होकर सुखको प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

एवं वै रौप्यविषये चोत्पत्त्यादि यथाक्रमात् ।
द्वादशेऽस्मिन्नथाध्याये शिष्य तेऽद्य प्रकीर्त्तितम् ॥ ३५ ॥

हे शिष्य ! इस प्रकार आज चाँदीके विषयमें उसकी उत्पत्ति, शोधन, मारण आदि यथाक्रमसे तुम्हारे लिये इस बारहवें अध्यायमें मैंने बर्णन किया ॥ ३५॥

इति श्रीटकसालनिवासिपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते
रसेन्द्रपुराणे रौप्यवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥

त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथातस्ताम्रवर्णनं नाम त्रयोदशाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम ताम्रवर्णन नामक तेरहवें अध्यायका वर्णन करेंगे ॥

गुरुरुवाच ।

ताम्रस्य शोधनं वत्स मारणं चापि श्रूयताम् ।
यस्य प्रयोगमात्रेण मुच्यते रोगपाशतः ॥ १ ॥

हे वत्स ! अब इस बारहवें अध्यायमें ताँबाकी शोधन तथा मारणादि क्रियाको कहताहूँ सो तुम सुनो, जिसके प्रयोगमात्रसे मनुष्य रोगोंकी फांसीसे छूट जाता है ॥ १ ॥

ताम्रोत्पत्तिः ।

शुक्रं यत्कार्तिकेयस्य पतितं धरणीतले ।
तस्मात्ताम्रं समुत्पन्नमिदमाहुः पुराविदः ॥ २ ॥

पृथिवीमें जो कार्तिकेयका वीर्य गिरा उससे ताम्रकी उत्पत्ति हुई यह बुद्धिमान् मनुष्य कहते हैं ॥ २ ॥

ताम्रभेदाः ।

म्लेच्छं नैपालकं चेति द्विविधं ताम्रमीरितम् ।
नेपालादन्यखन्युत्थं म्लेच्छमित्यभिधीयते ॥ ३ ॥

बुद्धिमान् वैद्योंने ताँबाके दो भेद बतलाये हैं,उनमेंसे पहला म्लेच्छ और दूसरा नैपालक है, नेपालकी खानमें जो पैदा होता है वह नैपालक कहाताहै और इसके अतिरिक्त जो अन्य खानोंसे निकलता हैं वह सब म्लेच्छ नामसे कहा जाताहै॥३॥

तत्रादौ म्लेच्छताम्रलक्षणम् ।

कृष्णं रूक्षमतिस्तब्धं श्वेतं चापि घनासहम् ।
क्षालितं च पुनः कृष्णमेतन्म्लेच्छस्य लक्षणम् ॥
लोहनागयुतं शुल्वं दुष्टं मृत्यौ त्यजेद्बुधः ॥ ४ ॥

अब म्लेच्छ ताम्रके लक्षण कहते हैं । जो ताँबा काला, रूखा, कडा, सफेद और घनकी चोटको न सहसकता हो तथा धोनेपर जिसका रंग फिर कालापन ले आवे उसको म्लेच्छ कहते हैं, और जो ताम्र, लोहा तथा सीसेसे युक्त हो वह श्रेष्ठ नहीं है इसी कारण वैद्यको उचित हैं कि, मारण कर्ममें इसका त्याग करे ॥ ४ ॥

नेपालताम्रलक्षणम् ।

जपाकुसुमसंकाशं स्निग्धं मृदु घनक्षमम् ।
लोहनागोज्झितं ताम्रं नेपालं मृत्यवे शुभम् ॥ ५ ॥

अब नेपाल ताम्रके लक्षण कहते हैं। जा ताम्र दुपहरियाके पुष्पके तुल्य हो, स्निग्ध और नरम हो, घनकी चोटके योग्य हो, लोह और सीसेका जिसमें मेल न हो उसको नैपाल कहते हैं। वह मारण कर्ममें श्रेष्ठ है ॥ ५ ॥

ताम्रस्य सदोषत्ववर्णनम् ।

न विषं विषमित्याहुस्ताम्रं तु विषमुच्यते ।
एको दोषो विषे सम्यक्ताम्रे त्वष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ ६ ॥

वैद्यक शास्त्रक जाननेवाले श्रेष्ठ वैद्य विषको विष नहीं कहते किन्तु ताँबाको विष कहते हैं, क्योंकि विषमें तो एक ही दोष है और ताँबेमें आठ दोष हैं ॥ ६ ॥

ताम्रस्थाष्टविधदोषाः।

अतःपरं ताम्रसमाश्रितांश्च दोषांश्च वक्ष्ये बहुधा विलोक्य ।
वान्तिर्भ्रान्तिः संक्लमस्तापशूले कण्डुत्वं वै रेचता वीर्यहन्त्री ॥
अष्टौ दोषाः कीर्तितास्ताम्रमध्ये तेषां सर्वं शोधनं कीर्तयिष्ये ॥ ७ ॥

हे वत्स ! अब मैं ताम्रस्थित अनेक दोषोंको देख तुमसे कहताहूँ ताँबेमें वान्ति' भ्रान्ति, ग्लानि, दाह, शूल, खुजली, दस्त और शुक्रकी हानि यह आठ दोष होते हैं इस कारण इन दोषोंके दूर करनेके लिये ताँबेका शोधन कहते हैं ॥ ७ ॥

ताम्रशोधनम् ।

तक्रं तैलं धेनुमूत्रं च वान्तिं भ्रान्तं हन्यात्कांजिकं कौलथाम्भः ।
वज्रीदुग्धं धेनुदुग्धं क्लमं च तापं हन्यात्तिन्तिणी निम्बुतोयम् ॥ ८ ॥
शूलं हन्यात्कन्यकाशीर्षिकोयं हन्याद्दुग्धं गोघृतं कण्डुतां च ।
रेचं हन्यात्सौरणं मस्तुतोयं क्षौद्रं द्राक्षावीर्यहन्तृत्वमाशु ॥ ९ ॥
तप्तानि तप्तानि च पत्रकाणि ताम्रस्य सूक्ष्माणि विशोधयेद्वा ।
सप्तैव वारांश्च पृथग्पृथग्वै ततः परं शुद्धतराणि नूनम् ॥ १० ॥

यदि ताँबेको मठा, तेल वा गायके मूत्रमें शुद्ध करे तो वान्ति अर्थात् वमन दूर होताहै, कांजी और कुलथीके क्वाथमें शोधनेसे भ्रान्तिदोषको हरता है, थूह-

रके दूध और गौके दूधमें क्लम (ग्लानि) को नाश करता है, इमली वा निंबूके रसमें ज्वरको दूर करता है, घीकुवार और नारियलके रसमें शूलको मारता है, दूध और घृतमें खुजलीको नष्ट करता है, सूरण (जमीकन्द) तथा दहीके पानीमें बहुत दस्तोंको रोकताहै, सहत और दाखमें वीर्यके सब दोषोंको नाश करता है। इसके शोधनेकी यह रीति है कि, ताँबेके कंटकवेधी पत्र बनवाकर अग्निमें तपा २ कर पूर्वोक्त औषधियोंके काढा और दुग्ध आदिमें सात २ बार अलग २ बुझावे तो इसकी उत्तम शुद्धि होजाती है ॥ ८–१० ॥

ताम्रशोधनस्यानेकप्रकाराः ।

अथवा ताम्रपत्राणां तैले तक्रे च शोधनम् ।
कारयेत् पूर्ववद्वैद्यो शुद्धिश्चैषापि संस्मृता ॥ ११ ॥
वज्र्यर्कवृक्षदुग्धस्य लवणस्य तथा शुभम् ।
कल्कन्तु सूक्ष्मपत्रेषु लेपयेच्च भिषग्वरः ॥ १२ ॥
ततस्तु तानि पत्राणि वह्नौ संतापयेन्मुहुः ।
अनन्तरन्तु निर्गुण्ड्या रसे सिञ्चेत्त्रिवारकम् ॥
एवं वै ताम्रपत्राणां शुद्धिश्च भवति ध्रुवम् ॥ १३ ॥
अथवा चाग्नितप्तानि पत्राणि च मुहुर्मुहुः ।
वह्नौ संताप्य वज्र्यर्कदुग्धे सिञ्चेत्पुनःपुनः ॥
एवं चापि रक्तधातोः शुद्धिः प्रोक्ता चिकित्सकैः ॥ १४ ॥
अथवैतानि पत्राणि चिञ्चापटुसमन्विते ।
गवां मूत्रे च तीव्राग्नौ पाचयेद्यामममात्रतः ॥ १५ ॥

अथवा ताँबेके कंटकवेधी पत्रोंको तेल, मठामें, शुद्ध करावे क्योंकि यह भी शोधनेका प्रकार है। अथवा थूहर और आकवृक्षके दूधमें नमक मिलाकर कल्क बनावे और उस कल्कको पत्रोंपर लेप करके अग्निमें तपा २ कर निर्गुण्डी (सम्हालू) के स्वरसमें तीन बार बुझावे तो ताम्रपत्रोंकी शुद्धि होजाती है इसमें सन्देह नहीं है अथवा ताँबेके कंटकबेधी पत्रोंको अग्निमें तपा २ कर थूहर और आकके दूधमें बुझानेसे भी वैद्योंने शुद्धि कही है अथवा गायके मूत्रमें इमली और नमक मिलाकर और उसीमें ताँबेके पत्रोंको एक प्रहरमात्र पकावे तो उत्तम शुद्धि होजाती है ॥ ११–१५ ॥

ताम्रमारणविधिः ।

पलानि पञ्च शुद्धानि ताम्रपत्राणि बुद्धिमान् ।
गृहीत्वा योजयेत्तत्र तदूर्द्धं शुद्धपारदम् ॥ १६ ॥
मर्दयेन्निम्बुकद्रावैस्त्रिदिनान्युभयं भिषक् ।
ताम्रपत्रैः समं शुद्धं गन्धकं तत्र निःक्षिपेत् ॥ १७ ॥
मर्दयित्वा घटीयुग्मं काचकुप्यां निधापयेत् ।
यामानष्टौ पचेदग्नौ स्वाङ्गशीतलमुद्धरेत् ॥ १८ ॥
एष ताम्रेश्वरो हन्यात्कुष्ठादीनखिलान्गदान् ।
धातुपुष्टिकरश्चैव सूतिकारोगनाशनः ॥ १९ ॥

अब ताँबेके मारणकी विधि कहते हैं । पाँच पल अर्थात् बीश तोले शुद्ध कियाहुआ ताँवा और पाँच तोले शुद्ध कियाहुआ पारा इन दोनोंको खरलमें डालकर कागजी निंबूके रसमें एक प्रहर पर्यन्त मर्दन करे और दूसरे दिवस निंबूका रस निकालडाले तत्पश्चात् नवीन रस छोडकर फिर घोटे इस प्रकार तीन दिन पर्यन्त घोटे और प्रतिदिन रस निकाल डाले, चौथे दिवस पारा युक्त उन ताम्रपत्रोंको स्वच्छ जलस धोडाले, पाराके संयोगसे जो ताँबेके पत्र श्वेत रंगके होगये हैं उनको खरलमें छोडे और जितना ताँवा हो उसका आधा शुद्ध गंधक डालकर दो घडी पर्यन्त रसके विना खरलकरे जब बारीक होजावे तब काचकी शीशीमें भरकर शीशीका मुख बंद करदेवे (कोई वैद्य शीशीका मुख बंद नहीं करते) और आठ प्रहरकी आँच देकर वालुकायंत्रमें पकावे जब स्वांगशीतल होजावे तब सावधानीके साथ शीशीको फोडडाले उसमें नीचेके भागमें जो ताँबा हो उसको अलग निकाल लेवे और ऊपर जो सिंदूर हो उसे पृथक् निकाले अर्थात् एकमें न मिलनेपावें । इस रसका नाम ताम्रेश्वर है यदि प्रतिदिन प्रातःकाल लौंगके साथ इसकी एक रत्ती सेवन करे तो कुष्ठ तथा श्वास आदि रोगोंको दूर करताहै, धातुको पुष्ट करताहै, सूतिकाके रोगोंको हरताहै ॥ १६-१९ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

तिलपर्णिरसैस्ताम्रपत्राणि परिलेपयत् ।
शुभ्रवर्णं भवेद्भस्म नात्र कार्या विचारणा ॥ २० ॥

ताँबेके कंटकबेधी पत्रोंपर तिलपर्णीके रसका लेप करे और उनको गजपुटमें फूँक देवे तो सफेद रंगवाली उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है ॥ २० ॥

तृतीयः प्रकारः ।

शुद्धार्कपत्रं च रसार्द्धलिप्तं द्विभागगन्धान्वितदुग्धिकाम्बु ।
स्मृतं ततो भस्मपुटैर्दिनैकं तदाशु मृत्युं समुपैति ताम्रम् ॥ २१ ॥

शुद्ध किये हुए ताँबेके एक भाग कंटकबेधी पत्रोंपर आधा भाग पारा और दो भाग गंधकको दुद्धीके रसमें अच्छे प्रकार बारीक घोटकर लेप करे और गजपुटकी आँचमें फूँक देवे तो शीघ्र ही वे ताँबेके पत्र मृत होवें ॥ २१ ॥

सोमनाथताम्रविधिः ।

सूताद्द्विगुणितं ताम्रपत्रं कन्यारसैः प्लुतम् ।
पिष्ट्वा तुल्येन बलिना भाण्डमध्ये विनिःक्षिपेत् ॥ २२ ॥
धृत्वा शरावके चैतत्तदूर्ध्वं लवणं क्षिपेत् ।
मुखे शरावकं दत्त्वा वह्निं यामचतुष्टयम् ॥ २३ ॥
ज्वालयेदवचूर्ण्यैतद्वल्लमात्रं प्रयोजयेत् ।
पिप्पलीमधुना सार्कं सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ २४ ॥
श्वासं कासं क्षयं पाण्डुमग्निमान्द्यमरोचकम् ।
गुल्मप्लीहयकृन्मूर्च्छाशूलं पक्त्यर्ध्वसुद्धन्ति ॥ २५ ॥
दोषत्रयसमुद्भूतानामयाञ्जयति ध्रुवम् ।
रोगानुपानसहितं जयेद्धातुगतं ज्वरम् ॥ २६ ॥
रसे रसायने चैव योजयेद्युक्तमात्रया ।
सोमनाथाभिधं ताम्रं पुरा प्रोक्तं चिकित्सकैः ॥ २७ ॥

अब सोमनाथ नामके ताम्रके बनानेकी विधि कहते हैं । शुद्ध किये हुए ताँबेके पत्र एक भाग और शुद्ध पारा दो भाग खरलमें डालकर घीकुवारके रसमें घोटे तत्पश्चात् ताँबेके बराबर गंधक मिलाकर जब तक अच्छे प्रकार बारीक न होजावें तब तक फिर घोटे और एक नवीन शरवेमें नमक बिछाय उसमें इस घोटी हुई औधषको रखकर ऊपर भी नमक बिछाय देवे और दूसरे शरवेसे ढाँप सन्धियोंको भी बंद करदेवे तत्पश्चात् गजपुटमें रख चार प्रहरकी आँचसे पकावे, जब स्वांगशीतल होजावे तब शरावसंपुटसे अलग निकाल खरलमें बारीक पीसकर किसी उत्तम शीशीमें भरकर रखदेवे और पीपल तथा सहतके साथ सब रोगोंमें देवे तो मनुष्य रोगरहित होवे रोगानुसार अनुपानके साथ सेवन करनेसे श्वास, कास, क्षयी, पाण्डु, मन्दाग्नि, अरुचि, गुल्म, तापातिल्ली, मूर्च्छा, परिणाम

शूल तथा त्रिदोषसे उत्पन्न रोग और धातुगत रोगोंको नाश करताहै । वैद्यको उचित है कि, वह रस और रसायनमें इसकी योग्यमात्राकी कल्पना अपनी बुद्धिसे करे । यह योगनाथ नामक रस पुराने वैद्योंने कहा है ॥ २२-२७ ॥

सोमनाथोक्तताम्रयोगः ।

रसेन्द्रस्य च भागैकं भागैकं गन्धकस्य च ।
चतुर्थांशं च वै तालमष्टभागां शिलां तथा ॥ २८ ॥
सञ्चित्य मर्दयेत्खल्वे कज्जलीं कारयेत्ततः ।
निम्बुतोयस्य योगेन ताम्रपत्रेषु लेपयेत् ॥ २९ ॥
ततस्तु वालुकायन्त्रे पचेद्यामचतुष्टयम् ॥
स्वांगशीतं समुद्धृत्य तथैव कारयेत्पुनः ॥ ३० ॥
एवं वारत्रयं कृत्वा गृह्णीयाद्भस्म चोत्तमम् ।
गुञ्जाद्वयप्रयोगेण क्षीयते रोगसञ्चयः ॥ ३१ ॥
शूलं पाण्डुज्वरं गुल्मं प्लीहरोगं क्षयं तथा ।
अग्निमान्द्यं च कासं च ग्रहणीं नाशयेत्परम् ।
एष योगो मयाख्यातः सोमनाथेन कीर्तितः ॥ ३२ ॥

एक भाग पारा, एक भाग गंधक, चार भाग हरिताल और ८ भाग मनाशिल इन सबको एकत्र करके खरलमें घोटकर बारीक कज्जली करे और नींबूके रसके साथ ताँबेके कंटकबेधी पत्रोंपर लेपकरे तत्पश्चात् वालुकायन्त्रमें चार प्रहर पर्यन्त पकावे और जब स्वांगशीतल हो तब पत्रोंको बाहर निकाल फिर भी पूर्ववत् लेप करके बालुकायन्त्रमें पकावे इसी प्रकार सब मिलाकर तीन बार पकावे और फिर उस सिद्ध भस्मको काचकी शीशीमें रखछोडे इस भस्मको प्रतिदिन दो रत्ती प्रमाण विधिपूर्वक सेवन करनेसे रोगोंका समूह नष्ट होताहै तथा परिणाम शूल, उदर-शूल, पाण्डुज्वर, गोला, तापतिल्ली, क्षयी मंदाग्नि, श्वास कास और ग्रहणी आदि रोग तो बहुत ही शीघ्र दूर होते हैं । यह सोमनाथका कहाहुआ योग मैंने तुमसे कहा ॥ २८-३२ ॥

ताम्रपरीक्षा ।

बर्हिकण्ठच्छविनिभं ताम्रं भवति केवलम् ।
पिष्टं चूर्णत्वमायाति रसश्चेत्तुसचन्द्रिकम् ॥ ३३ ॥

ताँबेकी यह पहचान है कि, जिस ताँबेका रंग मोरके कंठके समान हो और पीसने पर बारीक चूर्ण होजावे तथा पारेके संबधसे जिसमें झलक पैदा हो वह श्रेष्ठ जानना ॥ ३३ ॥

रसेन्द्रेण विना ताम्रं यः करोति पुमानिह ।
उदरे तस्य कीटानि जायन्ते नात्र संशयः ॥ ३४ ॥

जो मनुष्य पारेके संबन्ध विना ताँबेकी भस्म बनाताहै और उसका सेवन करताहै उसके उदरमें कृमिरोग पैदा होताहै इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ३४ ॥

ताम्रमारणविधिः ।

रसगन्धकयोः कृत्वा कज्जलीमर्धजां तथा ।
पत्रं लिम्पेत्कण्टवेध्यं म्रियते ताम्रमातपे ॥ ३५ ॥

जितना ताँबा हो उसका आधा पारा और गंधकको कजली बनाकर ताँबेके कंटकवेधी पत्रोंपर लेप करके धूपमें सुखावे तो ताँबा भस्म होजाय ॥ ३५ ॥

अम्लपिष्टं मृतं ताम्रं सूरणस्थं बहिर्मृदा ।
पुटेत्पञ्चामृतैर्वापि त्रिधा वान्त्यादिनाशनम् ॥ ३६ ॥

उत्तम ताँबेको लेकर अम्लवर्गमें कहे हुए अनार अम्लवेत तथा बिजोरा नींबू आदिके रसमें घोटे और उस घोटी हुई औषधको जिमीकन्दमें गढा करके रखदेवे तत्पश्चात् जिमीकन्दके टुकडेसे उसका मुख बन्द करके कपरौटी करे और गज-पुटकी आँचमें फूँकदेवे । इसी रीतिसे पञ्चामृत अर्थात् गिलोय, गोखुरू, मुसली, गोरखमुंडी, शतावर इनकी तीन पुट देनेसे ताँबेके वान्ति, भ्रान्ति, ग्लानि, दाह, खुजली, दस्त, वीर्यनाश और ज्वर यह आठ प्रकारके दोष नष्ट होते हैं ॥ ३६ ॥

ताम्रगुणाः ।

कुष्ठप्लीहज्वरकफमरुच्छ्वासकासार्तिशोफाँ-
स्तंद्राशूलोदरकृमिवमीपाण्डुमोहातिसारान् ।
अर्शोगुल्मक्षयभ्रमशिरोव्याधिमेहादिहिक्काः
शुद्धं शुल्बं हरति सततं वह्निवृद्धिं करोति ॥ ३७ ॥

अब ताम्रके गुण कहते हैं । अच्छे प्रकार शुद्ध किये हुए ताँबेकी बनाई हुई भस्मके सेवनसे अठारह प्रकारके कुष्ठ, पिलही, ज्वर, कफज रोग, वायुसे उत्पन्न रोग, श्वास, खाँसी, पीडा, शोथ, तंद्रा, शूल, उदरव्याधि, कृमिरोग, वमन, पाण्डु-मोह, अतिसार, बवासीर, गुल्म, क्षयी, भ्रम, शिरके रोग, बीस प्रकारके प्रमेह, और हिक्कारोगको नाश करता है तथा जठराग्निको निरन्तर प्रदीप्त करताहै ॥ ३७ ॥

ताम्रभस्मसेवनानुपानानि ।

शाल्मलीरससंयुक्तं घृतमाक्षिकसंयुतम् ।
रक्तिकं ताम्रजं भस्म षण्मासं नित्यमभ्यसेत् ॥ ३८ ॥
दुग्धं खण्डं चानुपानं प्रदद्यात्साज्यं भोज्यं त्याज्यमम्लेन युक्तम् ।
वीर्यं पुष्टिर्दीपनं देहदार्ढ्यं दिव्या दृष्टिर्जायते कामरूपम् ॥ ३९ ॥

अब ताम्रभस्मके सेवनका अनुपान कहते हैं । एक रत्ती ताम्रकी भस्ममें सेमरका रस, घी, और शहत मिलाकर छः मास पर्यन्त प्रतिदिन सेवन करे और ऊपरसे मिश्रीयुक्त दुग्धका पान करे नित्य घृतयुक्त भोजन करे तथा अम्लयुक्त भोजनका त्याग रक्खे इसके सेवनसे वीर्यकी दृढता, जठराग्निकी दीप्ति, शरीरकी पुष्टता, दिव्यदृष्टि और कामके तुल्य मनोहर रूप होता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अनुपानकल्पना ।

पूर्वेषां मतमालोक्य वैद्यैराधुनिकैर्बुधैः ।
स्वबुद्ध्या दीयते ताम्रं रोगनाशनवस्तुभिः ॥ ४० ॥

वैद्यको चाहिये कि, वह पूर्व वैद्योंकी सम्मतिको अच्छे प्रकार देख तथा आधुनिक कार्यकुशल वैद्योंकी भी सम्मति लेकर और निज बुद्धिसे दोनोंमें पूर्वापर हानि लाभ विचारकर रोगनाश करनेवाली औषधोंके साथ इस ताम्र-भस्मको रोगीके लिये देवे ॥ ४० ॥

भूनागोत्पत्तिस्तद्भेदाश्च ।

वर्षासु वृष्टिसंक्लिन्ने भूगर्भे सम्भवन्ति हि ।
जन्तवः कृमिरूपा ये ते भूनागा इति स्मृताः ॥ ४१ ॥
चतुर्विधास्तु भूनागाः स्वर्णादिखनिसम्भवाः ।
स्वर्णादिभूमिसंभूता दुर्लभास्ते प्रकीर्तिताः ॥ ४२ ॥
ताम्रभूमिभवाः प्रायः सुलभा गुणवत्तराः ॥ ४३ ॥

वर्षामें जब पृथिवी वृष्टिजलसे आर्द्र होती है, तब भूगर्भमें जो कृमिरूप जन्तु पैदा होते हैं संस्कृतमें उन्हें भूनाग और हिन्दी भाषामें केंचुआ कहते हैं वह सुवर्ण आदिकी खानियोंसे उत्पन्न चार प्रकारके होते हैं, उनमेंसे सुवर्ण आदिकी खानसे उत्पन्न केंचुआ मिलना कठिन है पर ताम्रभूमिसे उत्पन्न तो सहजमेंही मिलसकते हैं और यह अत्यन्त गुणकारी हैं ॥ ४१-४३ ॥

भूनागादिताम्रसत्त्वग्रहणविधिः ।

ताम्रभूभवभूनागान्गृहीत्वा यत्नतः पुमान् ।
गुडगुग्गुललाक्षोर्णामत्स्यपिण्याकटंकणैः ॥ ४४ ॥
दृढमेतांश्च संयोज्य मर्दयित्वा धमेत्सुखम् ।
मुञ्चति ताम्रवत्सत्त्वं तद्वत्पक्षोऽपि बर्हिणाम् ॥ ४५ ॥

अब केंचुआ और मोरपंखोंसे ताँबा निकालनेकी विधि कहते हैं । ताम्रभूमिमें पैदा हुए केंचुओंको खरलमें डाले और उसीमें गुड, गूगल, लाख, ऊन, छोटी मछली, तिलकी खल और सुहागेको मिलाकर घोटे जब अच्छे प्रकार घुट जावे तब मूषामें रख बंकनालसे धोंके तो ताम्रके सदृश यह भी सत्त्वको छोडता है । जो विधि केंचुओंसे ताम्र निकालनेकी कही है उसी विधिसे मोरपंखोंसे भी ताम्र निकालना चाहिये ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

भूनागताम्रसत्त्वग्रहणस्य प्रकारः ।

भूभुजंगं समादाय चतुष्प्रस्थसमन्वितम् ।
प्रक्षाल्य रजनीतोयैः शीतलैश्च जलैरपि ॥ ४६ ॥
उपोषितमयूरं च शूरं वा चरणायुधम् ।
क्रमेण चारयित्वाथ तद्विष्ठां समुपाहरेत् ॥ ४७ ॥
क्षाराम्लैः सह संपेष्या विशोष्य च खरातपे ।
ततः खर्परके क्षिप्त्वा भर्जयित्वा मषिं चरेत् ॥ ४८ ॥
मषिं द्रावणवर्गेण संयुक्तं सुप्रमर्दितम् ।
निरुध्य कोष्ठिकामध्ये प्रधमेद्धटिकाद्वयम् ॥ ४९ ॥
शीतलीभूतमूषायां खोटमाहृत्य पेषयेत् ।
प्रक्षाल्य रवकान्शुद्धान्समादाय प्रयत्नतः ॥ ५० ॥

चार सेर केंचुओंको लाकर हल्दीके पानीसे धोडाले तत्पश्चात् ठण्ढे पानीसे धोकर किसी भूँखे मोर वा मुर्गेको खिलावे जब वह विष्ठा करे तब उस विष्ठाको एकत्र कर उसमें खार और खटाई मिलाकर पीसडाले और तेज धूपमें सुखाकर खपरेमें भूँने, जब कोयलाके समान काला होजावे तब उसे उतारकर द्रावणवर्गके साथ घोटे और मूषामें रख दो घडीतक अग्निपर रखकर बंकनालसे धोंके जब दो

घडी व्यतीत होजावें तो उतारलेवे और स्वांगशीतल होनेपर मूषासे अलग निकालकर पीस लेवे पश्चात् पानीसे धाकर उसमेंसे तांबेके रवाओंको प्रयत्नसे बीनलेवे ॥ ४६-५० ॥

नागताम्रविधिः ।

मयूरपक्षमादाय ज्वालयेदाज्यसर्पिषा ।
खलगुग्गुलमीनोर्णटंकणं सर्जिकामधु ॥ ५१ ॥
गुञ्जां पिप्पललाक्षां च घृतं चैकत्र कारयेत् ।
धमेत्तदंधमूषायां नागताम्रं प्रजायते ॥ ५२ ॥

मोरपक्षीके पंखोंको लाकर बकरीके घीमें अच्छे प्रकार डुबाकर जलावे, जब जलकर राख होजावे तब उसमें तिलोंकी खल, गूगल, छोटी मछली, ऊन, सुहागा, सज्जीखार, शहद, घूंघची, पीपलकी लाख और घृत इन सबको एकमें मिलाकर अंधमूषामें रख अग्निपर रक्खे और बंकनालसे धोंके तो मोरपखोंसे तांबा निकले इसका नाम नागताम्र है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

भूनागमयूरपिच्छोत्थसत्त्वगुणाः ।

भूनागसत्त्वं शिशिरं सर्वकुष्ठव्रणप्रणुत् ।
तद्युक्तं जलपानेन स्थावरं जङ्गमं विषम् ॥ ५३ ॥
विषं नश्यति सूतोत्र गतः सूतेऽग्निधीरताम् ।
एवं मयूरपिच्छोत्थसत्त्वस्यापिगुणामताः ॥ ५४ ॥

अब भूनाग और मोरपंखसे निकाले हुए ताम्रसत्त्वके गुण कहते हैं । भूनाग अर्थात् केंचुओंसे निकाला हुआ सत्त्व शीतल है, और अठारह प्रकारके कुष्ठ और व्रणको दूर करता है और यदि इस सत्त्वसे युक्त जलका पान करे तो स्थावर तथा जंगम दोनों प्रकारके विषोंको नष्ट करता है, तथा इस सत्त्वसे युक्त शुद्ध पारा भी विषको हरता है और पारा इसके संबंधसे अग्निस्थाई होता है । यही सब गुण मयूरपिच्छसे निकाले हुए सत्त्वमेंभी हैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

तुत्थस्थितताम्रसत्त्वग्रहणविधिः ।

तुत्थस्य टंकणं पादं चूर्णयन्मधुसर्पिषा ।
तुत्थेन मिश्रितं ध्मातं कोष्ठीयन्त्रे दृढाग्निना ॥ ५५ ॥
धामितं द्रवते सत्त्वं कीरतुण्डसमप्रभम् ॥
तुत्थस्य टंकणं पादं तैले चाथ करञ्जके ॥ ५६ ॥

दिनैकं मर्दयेत्खल्वे तुलायन्त्रे दृढाग्निना ।
धामितं मुञ्चते सत्त्वं शुकतुण्डसमप्रभम् ॥ ५७ ॥
मनुजस्याथवा कृष्णकेशैर्युक्तं च तुत्थकम् ।
पूर्ववत्प्रधमेत्सम्यक्सत्त्वं चाशु विमुञ्चति ॥ ५८ ॥
एवं मयूरपिच्छास्तु भूमिनागास्तथैव च ।
मुञ्चन्ति ताम्रवत्सत्त्वं सन्देहो नास्ति कश्चन ॥ ५९ ॥

अब तुत्थ अर्थात् नीलेथोथेसे ताम्रसत्त्व निकालनेकी विधि कहते हैं । जितना नीलाथोथा हो उसका चौथाई भाग सुहागा मिलाकर घी और शहदके साथ खरलमें अच्छे प्रकार घोटे तत्पश्चात् कोष्ठीयन्त्रमें रख तीव्र आँच देवे तो शुक-पक्षीके मुखके समान लाल रंगका ताम्र सत्त्व निकलता है । अथवा तीन भाग नीलाथोथामें एक भाग सुहागा मिलाकर एक दिन कंजके तैलमें घोटके तुला-यन्त्रमें रख तीव्र आँचसे पकावे तो शुकतुण्डके तुल्य लालरंगका सत्त्व निकलता है । अथवा मनुष्यके काले रंगके बालोंके साथ नीलाथोथेको पहलेकी तरह कोष्ठीयन्त्रमें रखकर फूँकदेवे तो शीघ्र ही ताम्रसत्त्व निकलता है । इसी विधिसे मोरपंख और भूनाग भी ताम्रके समान सत्त्वको छोडते हैं इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ ५५–५९ ॥

अखिलताम्रसत्त्वोपयोगः ।

पूर्वोक्तैस्तु त्रिभिः सत्त्वै रवौ निर्माय मुद्रिकाम् ।
जले प्रक्षालयेत्सम्यक्तज्जलं च पिबेन्नरः ॥ ६० ॥
विषं च नश्यति ह्याशु स्थावरं जङ्गमं तथा ।
प्रसूतिस्तु भवेत्सद्यो योगेनानेन निश्चितम् ॥ ६१ ॥
नेत्रामयांस्त्रिदोषांश्च व्रणदोषांस्तथैव च ।
भूतबाधां ग्रहव्याधिं शूलं हन्याच्च सत्त्वरम् ॥ ६२ ॥
एष प्रशस्तयोगस्तु भालुक्याख्येन कीर्तितः ।
कथितस्तु मया वत्स तुभ्यं लोकहितैषिणा ॥ ६३ ॥

पहले कहेहुए भूनाग मोरपंख और नीलाथोथा इन तीनोंसे निकालेहुए ताम्र सत्त्वोंसे रविवारके दिन एक अँगूठी बनाकर पानीमें धोवे और उस जलका पान करे तो स्थावर जङ्गम दोनों प्रकारके विष नष्ट होते हैं, इस योगके सेवनसे

निस्सन्देह स्त्रियोंको प्रसूति शीघ्र सुखसे होती है, यह सत्त्वयुक्त जल समस्त नेत्ररोग, त्रिदोष, व्रणदोष, भूतोंकी बाधा, ग्रहव्याधिऔर शूलरोगको नाश करता है हे वत्स ! भालुकिसे कहा हुआ उत्तम योग यह लोकके हित चाहनेवाले मैंने तुमसे कहा ॥ ६०–६३ ॥

पूर्वोक्तसत्त्वयुक्तजलाभिमन्त्रणमन्त्र ।

रामवत्सोमसेनानीर्मुद्रितेति तथाक्षरम् ।
हिमालयोत्तरे पार्श्व स्वकर्णश्च मरुद्रुमः ॥ ६४ ॥

तीनों सत्त्वोंसे बनाई हुई अँगूठीको पानीमें धोवे और उस पानीको ऊपर कहे हुए मन्त्रसे अभिमान्त्रित करके पीवे ॥ ६४ ॥

ताम्रद्रुतिः ।

लवणक्षारमत्राणि क्षाराश्चौषधसम्भवाः ।
एषां क्षारसमास्तेषां औषधीः कन्दसम्भवाः ॥ ६५ ॥
यच्चस्याद्द्रावकं कल्कफलत्रयक ्त्रयम् ।
कुलत्थक्काथतोयं च सर्वं मृद्वग्निना पचत् ॥ ६६ ॥
गालयद्वस्त्रयागन पुनः पाकं च कारयेत् ।
तेनैव भावयेच्चैव शुद्धं शुल्बस्य चूर्णकम् ॥ ६७ ॥
एकविंशतिवारांश्च भावयित्वा विशोषयेत् ।
लीदमध्ये तु भूगर्भ धान्यराशौ च भास्करे ॥ ६८ ॥
सप्ताह धारयेत्तं तु दोलायां चैव स्वेदयेत् ।
एकविंशद्दिने जाते शुल्बस्यैव द्रुतिर्भवेत् ॥
सा द्रुतिः सर्वथोत्कृष्टा रसरूपा च निर्मला ॥ ६९ ॥

अब ताम्रकी द्रुति करनेका विधान कहते हैं । सामुद्र, सैंधव, रौमक जिसको साँभरिभी कहते हैं विड (क्षार मृत्तिकासे निकाला हुआ), सौवर्चल जिसको संचर या काला नमकभी कहते हैं यह पांच प्रकारके नमक सब मूत्रोंके क्षार, सब औषधियोंके क्षार, कंदोंके क्षार तथा पूर्वोक्त द्रव्योंसे अन्यभी जो द्रुति करनेवाली औषधें हों वह सब और त्रिफला, त्रिकटु आदिको एकत्र करके कुलथीके क्वाथमें मंद आंचसे पकावे जब ठीक २ पकजावे तो उतारकर कपडेसे छान लेवे और फिर पकावे, पकते २ जब गाढा होजाय तब उतारकर शुद्ध तांबेके

चूर्णमें भावना देवे इसी प्रकार इक्कीस पुट देवे और प्रत्येक पुटमें धूपमें सुखालियाकरे तत्पश्चात् जमीनके भीतर लीदमें तथा अन्नकी राशि और धूपमें सात २ दिन रखकर दोलायन्त्रमें विधिपूर्वक स्वेदन करे। इस प्रकार इक्कीस दिन व्यतीत होनेपर ताम्रकी रसरूप स्वच्छ द्रुति सिद्ध होती है ॥ ६५-६९ ॥

ताम्रजदोषशान्त्युपायः।

मुनिव्रीहिसितापानं धान्याकं वा सितायुतम्।
ताम्रदोषमशेषं वै पिबन्हन्याद्दिनत्रयम् ॥ ७० ॥

अब ताम्रदोषोंकी शान्तिका उपाय कहते हैं। मुनिव्रीही अर्थात् नीवार (तृणधान्यविशेष) को शक्करके साथ बारीक पीस जल मिलाकर पीवे तो तीन दिनमें ताम्रजनित दोष शान्त होवे ॥ ७० ॥

एवं त्रयोदशाध्याये ताम्रस्य हि शुभाः क्रियाः।
वर्णिता विधिवद्वत्स मया लोकहितैषिणा ॥ ७१ ॥

हे वत्स ! लोकके हित चाहनेवाले मैंने इस तेरहवें अध्यायमें विधिपूर्वक ताम्रकी उत्तम क्रियाओंका तुमसे वर्णन किया ॥ ७१ ॥

इति श्रीटकसालनिवासीपाण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते
रसेन्द्रपुराणे ताम्रवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः।

अथातो वंगवर्णनं नाम चतुर्दशाध्यायं व्याख्यास्यामः।

अब हम वंगवर्णन नामक चौदहवें अध्यायका वर्णन करते हैं ॥

शिष्य उवाच।

वंगभस्म शोधनादीनि प्रकाराण्यपि वर्णय।
तत्सेवनविधिं चापि शरणागतवत्सल ॥ १ ॥

शिष्यने कहा कि हे शरणागतवत्सल गुरो अब वंगकी शोधन तथा मारण आदि श्रेष्ठ क्रियाओं और उसके सेवन करनेकी विधिको मुझसे कहो ॥ १ ॥

एवं शिष्यमुखाच्छ्रुत्वा प्रहृष्टो गुरुरब्रवीत् ॥ २ ॥

इस प्रकार शिष्यके पूछने पर प्रसन्न हुए गुरु कहने लगे ॥ २ ॥

गुरुरुवाच ।

वंगस्य शोधनादीनि प्रकाराण्यपि श्रूयताम् ।
यस्य भस्मप्रयोगेण शुक्रदोषात्प्रमुच्यते ॥
मेहादीनपि संजित्य हृष्टपुष्टो भवेन्नरः ॥ ३ ॥

हे शिष्य ! अब तुम वंगके शोधन तथा मारण आदिके विधानको भी सुनो, जिस भस्मके प्रयोगमात्रसे मनुष्य वीर्यके समस्त रोगोंसे छूटजाता है और प्रमेहादि रोगोंको जीतकर हृष्ट पुष्ट होजाता है ॥ ३ ॥

वङ्गभेदौ ।

खुरक मिश्रकश्चेति द्विविधं वङ्गमुच्यते ।
खुरकश्च गुणैः श्रेष्ठं मिश्रकं न रसे हितम् ॥ ४ ॥

वंग दो प्रकारका होता है पहला खुरक और दूसरा मिश्रक इन दोनोंमेंसे गुणोंमें खुरक श्रेष्ठ होता है और मिश्रक रसमें हितकारी नहीं है ॥ ४ ॥

द्विविधवंगलक्षणम् ।

धवलं मृदुलं स्निग्धं द्रुतद्रावि च गौरवम् ।
निःशब्दं खुरवङ्गं स्यान्मिश्रकं श्यामशुभ्रकम् ॥ ५ ॥

अब पूर्वोक्त दोनों वंगोंका लक्षण कहते हैं जो वंग सफेद रंग हो, और नरम, चिकना, शीघ्र पिघलनेवाला, गुरु तथा शब्दरहित हो उसका नाम खुरक वंग है और जो श्याम अर्थात् सफेदी लिये कृष्ण रंगका हो वह मिश्रक कहाता है ॥ ५ ॥

वंगशोधनम् ।

त्रपूं मूत्रवर्गेऽम्लवर्गे बहूनां जले क्षारतोये च वज्रार्कवर्गे ।
ततः क्षालयित्वा कदम्बस्य नीरे शुभं क्षालयेत्ततकं सप्तवारान् ॥ ६ ॥

अब वंगके शोधनकी विधि कहते हैं। वंग अर्थात् रांगेको आँचमें वार २ तपाकर मूत्रवर्गमें सात वार बुझावे इसी प्रकार अम्लवर्ग, सब क्षारोंके पानी, थूहरके दूध और आकके दूधमें भी सात २ वार बुझावे तत्पश्चात् फिर अग्निमें तपाकर कदम्बके पानीसे धोवे तो वंगकी उत्तम शुद्धि होजाती है ॥ ६ ॥

खुरकवंगशोधनविधिः ।

द्रावयित्वा निशायुक्तं क्षिप्तं निर्गुण्डिकारसे ।
विशुद्ध्यति त्रिवारेण खुरवङ्गं न संशयः ॥ ७ ॥

खुरक संज्ञक राँगेको आँचमें पिघलावे और सम्हालूके रसमें हलदीका चूर्ण मिलाकर उसमें तीन बार बुझावे तो शुद्ध हो जाता है ॥ ७ ॥

बङ्गमारणविधिः ।

मृत्पात्रे द्राविते वङ्गे क्षिपेत्तत्र सुवर्चिकाम् ।
घर्षयेल्लोहदर्व्या तु यावत्तस्मात्तनूनपात् ॥ ८ ॥
निस्सृत्य प्रदहेत्सर्वं स्वांगशीतलमुद्धरेत् ।
सुवर्चिकापनोदार्थं सलिलैः क्षालयेन्मुहुः ॥ ९ ॥
ततोतिनिर्मलं ग्राह्यं वङ्गभस्म भिषग्वरैः ॥ १० ॥

एक पाव शुद्ध राँगेको ठिकडेमें पिघलावे और उसमें चार पैसे भर कच्चा सोरा डालकर लोहेकी कलछीसे चलाता जाय, जब गाढा होजाय तब फिर भी चार पैसे भर सोरा डालकर कलछीसे चलावे इसी प्रकार सब मिलाकर छः बार सोरा डाले और कलछीसे रगडता जावे यदि छहों बार गाढा होजावे तो फिर सातवें बार सोरा न डाले । पकाते २ इसमेंसे जब अग्निकी ज्वाला निकलकर शान्त होजाय तब अग्निसे उतारकर राँगेको करछी आदिसे खुरचलेवे तत्पश्चात् इस सोरा युक्त पक्व राँगेको किसी स्वच्छ प्यालेमें डालकर ऊपरसे पानी छोडे और भस्मको हाथसे पानीमें अच्छे प्रकार मसलकर कुछ समय तक कहीं रख दे, जब राँगा नीचे बैठ जाय तब तिरे हुए पानीको अलग निकाल दे और दूसरा जल छोडकर पूर्ववत् क्रिया करे इसी रीतिसे सब मिलाकर तीन बार उसको धोवे यदि तीन बारमें सोरेकी राख निकलजावे तो फिर न धोवे और शेष रही अति निर्मल वंगकी भस्मको धूपमें सुखाकर शीशीमें भरकर रख छोडे ॥ ८-१० ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

मृत्पात्रं द्राविते वङ्गे चिञ्चाश्वत्थत्वचोरजः ।
क्षिप्त्वा वङ्गचतुर्थांशमयो दर्व्या प्रचालयेत् ॥ ११ ॥
ततो द्वियाममात्रेण वङ्गभस्म प्रजायते ।
अथ भस्मसमं तालं क्षिप्त्वाम्लेन विमर्दयेत् ॥ १२ ॥
ततो गजपुटे पक्त्वा पुनरम्लेन मर्दयेत् ।
तालेन दशमांशेन याममेकं ततः पुटेत् ॥
एवं दशपुटैः पक्वं वङ्गं भवति मारितम् ॥ १३ ॥

अब रांगेके मारणका दूसरा प्रकार कहते हैं । मिट्टीके पात्रमें रांगेको पिघलाकर रांगेका चौथा हिस्सा पीपल और इमलीकी छालका चूर्ण बुरकता जाय और लोहेकी करछीसे चलाता जाय इसी प्रकार दो पहर अग्नि देनेसे रांगेकी उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है तत्पश्चात् भस्म और उसीकी बराबर हरिताल मिलाकर नींबूके रसमें अच्छे प्रकार खरल करके शरावसंपुटमें रख गजपुटमें फूँक देवे, स्वांगशीतल होनेपर भस्मको अलग निकाल उसका दशवाँ भाग हरिताल मिलाकर नींबूके रसमें पूर्ववत् खरल करके फिर गजपुटमें एक पहरकी अग्नि देकर फूँक देवे इसी प्रकार सब मिलाकर दश पुट देनेसे वंग मृत होजाताहै॥११-१३॥

तृतीयः प्रकारः ।

आभीरं शोधयेदादौ मुद्रावद्धाण्डिकान्तरे ।
अपामार्गचतुर्थांशं चूर्णितं मेलयेत्ततः ॥ १४ ॥
स्थूलाग्रया लोहदर्व्या शनैस्तमवचालयेत् ।
यावद्भस्मत्वमायाति तावन्मर्द्यं च पूर्ववत् ॥ १५ ॥
तत एकीकृतं सर्वं भवेदङ्गारवर्णकम् ।
नूतनेन शरावेण रोधयेदन्तरे भिषक् ॥
पश्चात्तीव्राग्निना पक्वं वङ्गभस्म भवेद्ध्रुवम् ॥ १६ ॥

अब वंगभस्म बनानेकी तीसरी विधि कहते हैं । पूर्वोक्त शोधनविधिसे रांगेको शुद्ध करे और फिर मिट्टीके पात्रमें रखकर पिघलावे तत्पश्चात् रांगेकी चौथाई भाग लटजीराकी भस्म लेकर बुरकता जाय और और लोहेकी करछीसे धीरे २ चलाता रहे जब तक भस्म न हो तब तक पूर्वकी भांति करछीसे चलाता रहे और लटजीराकी भस्म छोडता जाय, जब रंग लाल होजाय तब सब एकत्र कर नवीन शरावसंपुटम रख तेज आंचसे पकावे तो वंगकी उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है ॥ १४-१६ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

वङ्गं सतालमर्कस्य पिष्ट्वा दुग्धेन संपुटेत् ।
शुष्काश्वत्थभवैर्वल्कैः सप्तधा भस्मतां व्रजेत् ॥ १७ ॥
वङ्गं तिक्तोष्णकं रूक्षमीषद्वातप्रकोपनम् ।
मेहश्लेष्मामयघ्नं च कृमिघ्नं मोहनाशनम् ॥ १८ ॥

अब वंगभस्म बनानेका चौथा प्रकार कहते हैं । रांगेमें शुद्ध किया हुआ हरिताल छोडकर आकके दूधमें खरल करे और सूखे पीपलकी छालका चूरा मिलाकर शरावसंपुटमें रख गजपुटमें फूंक देवे इसी प्रकार सब मिलाकर सात बार करनेसे उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है ॥ १७ ॥ १८ ॥

पञ्चमः प्रकारः ।

अथ भस्मसमं तालं क्षिप्त्वाम्लेन विमर्दयेत् ।
ततो गजपुटे पक्त्वा पुनरम्लेन मर्दयेत् ॥ १९ ॥
तालेन दशमांशेन याममेकं ततः पुटेत् ।
एवं दशपुटैः पक्वं वङ्गं भवति मारितम् ॥ २० ॥

राँगाके मारणकी जो पहिले विधि लिखचुके हैं उसमें शोराके सम्बन्धसे उसकी जो भस्म बनाई गई है उसी रीतिसे भस्म बनावे और उसीकी बराबर शुद्ध किया हरिताल मिलाकर एक प्रहर कागजी नींबूके रसमें खरल करे तत्पश्चात् शराव-संपुटमें रखकर गजपुटमें फूँक दे । जब स्वांगशीतल हो तब शरावसंपुटमें अलग निकाल वंगका दशवाँ भाग हरिताल मिलाकर फिर भी नींबूके रसमें एक प्रहर घोटकर पूर्ववत् गजपुटमें फूँक दे, इसी रीतिसे गजपुटकी दश आँचें देनेसे वंगकी निरुत्थ अर्थात् किसी मित्रपंचकादि औषधोंके योगसे फिर न जीनेवाली भस्म सिद्ध होजाती है ॥ १९ ॥ २० ॥

षष्ठप्रकारे धातुविद्धवङ्गभस्मविधिः ।

श्वेताभ्रं श्वेतकाचं च विषसैन्धवटंकणम् ।
स्नुहिक्षीरे दिनं मर्द्य तेन वंगस्य पत्रकम् ॥ २१ ॥
लेप्यं पादांशकैः कल्कैश्चांधमूषागतं धमेत् ।
द्रावे जाते ततो वङ्गं पूर्वतैलं च ढालयेत् ॥ २२ ॥
वार्यादिलेपमेकत्र सप्तवाराणि कारयेत् ।
पुत्रजीवोत्थतैले च ढालयेत्सप्तवारकम् ॥
तद्वङ्गं जायते तारं शंखकुन्देन्दुसन्निभम् ॥ २३ ॥

अब धातुविद्ध वंगके भस्म बनानेका विधान कहते हैं। सफेद अभ्रक, सफेद काच, विष, सेंधानमक और सुहागा इन सबको एकत्र करके थोहरके दूधमें एक दिन खरल करे और जितना वंग हो उसका चौथाई भाग खरल किया हुआ कल्क लेकर

वंगके कंटकवेधी पत्रोंपर लेप करे तत्पश्चात् उन पत्रोंको अंधमूषामें रखकर फूँक देवे, जब राँगा जलके समान पतला होजाय तब पहले कही हुई औषधियोंके निकाले हुए तेलमें बुझावे पीछे नेत्रवाला आदि रूखाडियोंका लेप करके सात बार फूँके और पुत्रजीवा जिसको भाषामें हिन्दी जियापोता कहते हैं उसके तेलमें सात बार बुझावे। इस प्रकार सब क्रिया करनेसे वह राँगा शंख कुन्दपुष्प व चन्द्रमाके सदृश श्वेतरंगसे युक्त चाँदी होजाताहै ॥ २१--२३ ॥

सप्तमः प्रकारः।

वङ्गे घर्षणकाल एव भिषजः क्षिप्त्वा यवानीरजः
प्रक्षेप्यं क्रमशः शिलाजतु तथा भस्माप्यपामार्गजम्।
क्षिप्त्वा निंबदलान्यरुष्कापिशितैर्भाण्डे तु चिंचात्वचो
भूयात्संस्तरसंस्थितानि पुरतः कुर्वन्ति भस्मान्यपि ॥ २४ ॥

वंगकी भस्म बनानेका सातवाँ प्रकार कहते हैं। वैद्यको चाहिये कि, राँगेको कढाईमें जब पिघलावे उसी समय अजवायनका चूर्ण थोडा २ डाले और फिर क्रमसे शिलाजतु, लटजीराकी भस्म, नीमके पत्ते, भिलावेका चूर्ण छोडे, इन पूर्वोक्त औषधोंमेंसे एक एकसे भी वंगकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ २४ ॥

अष्टमः प्रकारः।

वङ्गं भस्मसमं कान्तं व्योमभस्म च तत्समम्।
मर्दयेत्कनकांभोभिर्निम्बपत्ररसैरपि ॥ २५ ॥
दाडिमस्य मयरस्य रसेन च पृथक्पृथक्।
भूपालावतभस्माथ विनिःक्षिप्य समांशकम् ॥ २६ ॥
गोमूत्रकशिलाधातुजलैः सम्यग्विमर्दयेत्।
ततो गुग्गुलतोयेन मर्दयित्वा दिनाष्टकम् ॥ २७ ॥
विशोष्य परिचूर्ण्याथ समभागेन योजयेत्।
भृष्टबब्बरनिर्यासैराकुलीबीजचूर्णकैः ॥ २८ ॥
ततः क्षिपेत्करंडान्तर्विधाय पटगालतम्।
गोतक्रे पिष्टरजनीसारेण सह पाययेत् ॥ २९ ॥
चतुर्भिर्वल्लकैस्तुल्यं रम्यं वंगं रसायनम्।
निश्चितं तेन नश्यन्ति मेहा विंशतिभेदकाः ॥ ३० ॥

शालयो मुद्गसूप च नवनीतं तिलोद्भवम् ।
पटोलं तिक्ततुण्डीरं तक्रं पथ्याय शस्यते ॥ ३१ ॥

अब वंगभस्म बनानेका आठवाँ प्रकार कहते हैं। जितनी वंगभस्म हो उतनी ही कान्तलोहकी भस्म लेवे और उतनीही अभ्रककी भस्म मिलाकर धेतूरके पत्तोंके रसके साथ खरल करे। इसी प्रकार नीमक पत्त, अनारके पत्ते और लटजीरा इन प्रत्येकके स्वरसमें पृथक् २ खरल करे ततपश्चात् उसमें राजावर्तमणिकी भस्म समान भाग मिलाकर गोमूत्र और शिलाजीतक पानीके साथ घोटे एवं आठ दिन गूगलके पानीमें मर्दन करके धूपमें सुखाकर बारीक पीसलेवे और उसमें समांश भुना हुआ बब्बूलका गोंद तथा निर्मलीके बीजोंका बारीक चूर्ण मिला वस्त्रमें छान शीशीमें भरकर रखदेवे और प्रतिदिन हरिद्रायुक्त गौकी छांछके साथ इस वंगको पिलावे। यह वंगभस्म परम रसायन है मात्रा इसकी डेढ मासे अथवा एक मासेकी है इसको विधिपूवर्क सेवन करनेसे निस्सन्देह बीस प्रकारके प्रमेह रोग नष्ट होते हैं। चावल, मूंगकी दाल, मक्खन, तिलतेलके पदार्थ, परवल, कंदूरी और छाँछ इत्यादि इसके सेवनमें पथ्य हैं॥ २९-३१ ॥

मतान्तरेण वङ्गभस्मविधिः ।

पलाशपुष्पचूर्णे वा ह्यश्वत्थस्यापि वल्कल ।
बब्बूलस्य त्वचायां वा वङ्गभस्म प्रजायते ॥ ३२ ॥

अब अन्यमतसे वंगभस्मकी विधि कहते हैं। ढाकके फूलोंके चूर्णको बडे २ जंगली उपलोंके ऊपर बिछायकर शुद्ध राँगेके चावल सदृश छोटे २ टुकडोंको रक्खे और उन टुकडोंके ऊपर फिर पलाशपुष्पोंके चूर्णको बिछाकर उपलोंसे अच्छे प्रकार ढांक फूंक देवे जब स्वांगशीतल होजावे तब वंगके छोटे २ टुकडोंको युक्तिसे एकत्र करलेवे। इसी प्रकार पीपलवृक्षके छिलके तथा बबूल वृक्षके छिलकेमेंभी वंगभस्म सिद्ध होजाता है। ऐसेही भाँग तथा इमलीके छिलकेमेंभी वंगभस्म बनाते हैं। परन्तु यह सब अन्यमतोक्त प्रकार साधारण हैं, श्रेष्ठ प्रकार वंगभस्मके वही है जो कि पहले कहचुके हैं ॥ (यूनानी हकीमभी प्रायः इसी विधिसे वंगभस्म बनाते हैं) ॥ ३२ ॥

वंगहन्तृतालादिवर्णनम् ।

तालकं कर्कटास्थीनि शङ्खशुक्ती वराटिका ।
सिन्धुकर्पूरसंयुक्तं मारयेद्वङ्गपर्वतम् ॥ ३३ ॥

हरताल, केंकडेकी हड्डी, शंख, सीप, कौडी, सेंधा नमक और कपूर यह सब औषधें पर्वत समानकोभी भस्म करती हैं ॥ ३३ ॥

वङ्गभस्मगुणाः ।

बल्यं दीपनपाचनं रुचिकरं प्रज्ञाकरं शीतलम्
सौन्दर्यैकविवर्द्धनं हृतजरं नीरोगताकारकम् ।
धातुस्थैर्यकरं क्षयक्षयकरं सर्वप्रमेहापहम्
वङ्गं भक्षयतो नरस्य न भवेत्स्वप्नेऽपि शुक्रक्षयः ॥ ३४ ॥

अच्छे प्रकारसे बनाई हुई वंगकी भस्म शरीरमें बलको लानेवाली, अग्निको प्रदीप्त करनेवाली, पाचन, रुचिकर, बुद्धिवर्द्धक, शीतल, सुन्दरताको बढानेवाली, वृद्धावस्थाको हरनेवाली, नीरोगता रखनेवाली, धातुस्थैर्यकारक तथा क्षयीको नाश करनेवाली और बीस प्रकारके प्रमेह रोगोंको दूर करनेवाली है। जो मनुष्य इस वंगका विधिवत् सेवन करताहै उसका वीर्य स्वप्नमें भी स्खलित नहीं होता ॥ ३४ ॥

वङ्गभस्मसेवनानुपानानि ।

कर्पूरयुक्तं मुखगन्धनाशं जातीफलैः पुष्टिकरं नराणाम् ॥ ३५॥
तुलसीपत्रसंयुक्तं प्रमेहं नाशयेद्ध्रुवम् ।
घृतेन पाण्डुरोगं च टंकणैर्गुल्मनाशनम् ॥ ३६ ॥
हरिद्रयाम्लपित्तघ्नं मधुना बलवृद्धिकृत् ।
खण्डया सह पित्तघ्नं नागवल्ल्या च बंधनम् ॥ ३७ ॥
पिप्पल्या चाग्निमान्द्यघ्नं निशया चोर्ध्वश्वासहृत् ।
चम्पकस्वरसेनैव दुर्गन्धं नाशयेद्ध्रुवम् ॥ ३८ ॥
निम्बुकस्वरसेनाढ्यं देहे दहनशान्तये ।
कस्तूरीवङ्गसंयुक्तं भक्षणाद्वीर्यरोधकृत् ॥ ३९ ॥
खदिरकाथयोगेन चर्मरोगाञ्जयेदिदम् ।
पूगीफलेन सार्द्धं हि जीर्णं नाशयते क्षणात् ॥ ४० ॥
नवनीतसमायुक्तमस्थिजीर्णं नवं भवेत् ।
दुग्धैः सह भवेत्तुष्टिर्भंगया स्तम्भनं भवेत् ॥ ४१ ॥

लशुनैर्वातजां पीडां नाशयेन्नात्र संशयः ।
समुद्रफलसंयोगान्निर्गुंड्या सह भक्षणात् ॥ ४२ ॥
कुष्ठं नाशयते क्षिप्रं सिंहनादो मृगानिव ।
आधारजटिकायोगात्षण्ढत्वं नाशयेद्ध्रुवम् ॥ ४३ ॥
देवपुष्पस्य संयोगे समुद्रफलयोगतः ।
नागपत्ररसैर्लेपाल्लिंगवृद्धिः प्रजायते ॥ ४४ ॥
गोरोचनलवङ्गेन तिलको मोहनं भवेत् ।
एरण्डजटिकायोगे घर्षयित्वा च वंगकम् ॥ ४५ ॥
लेपयेच्च ललाटे च तेन शीर्षगदं जयेत् ।
कौब्जेऽपामार्गमूलेन प्लीहे टंकणसंयुतम् ॥ ४६ ॥
रसोनतैलयुङ्नस्यमपस्मारनिषूदनम् ॥ ४७ ॥
पुत्राप्त्यै रासभीक्षीरैस्तक्राढ्यं वातगुल्मनुत् ।
यवानिकायुतं वाते वाजिगन्धायुत तु वा ॥ ४८ ॥
जलोदरे त्वजाक्षीरसंयुतं गुणकृद्भवेत् ।
जातीफलाश्वगन्धाभ्यां करिपीडानिवारणम् ॥ ४९ ॥

अब वंगभस्म सेवनके अनुपान कहते हैं । यह भस्म कपूरके साथ मुखकी दुष्ट गंधको हरती है, जायफलके साथ सेवन करनेसे शरीरमें पुष्टता करती है, तुलसी-दलके साथ बीस प्रकारक प्रमेहोंको, घृतके संग पाण्डुरोगको, सुहागक संग गुल्मरोगको और हलदीके साथ अम्लपित्तको, दूर करती है, शहदके साथ बलवर्द्धक, मिश्रीके साथ पित्तनाशक है, पानके साथ वीर्यको बाँधनेवाली है, पिप्पलीके साथ मन्दाग्नि, हलदीके साथ ऊर्ध्वश्वास और चंपाके स्वरससे युक्त निस्सन्देह दुर्गंधको नाश करती है, नींबूके साथ दाहको शान्त करती है, कस्तूरीके साथ सेवन करनस वीर्यका स्तम्भन करती है, खैरके काढेके साथ समस्त चर्मरोग, तथा सुपारीके संग अजीर्णको शीघ्र नाश करती है आर मक्खनके साथ सेवन करनेसे आस्थि जीर्ण नवीन होती हैं । दुग्धके संग सेवन करनेसे प्रसन्नता होती है, भाँगके साथ वीर्यका स्तम्भन होता है, लहसनके साथ बातसे उत्पन्न पीडाको हरती है, समुद्रफल और सम्हालूके साथ कुष्ठरोगको

इस प्रकार भगाती है कि, जैसे सिंहकी गर्जनाको सुनकर मृग इधर उधर भाग· जाते हैं, चिरचिटाके मूलके संग देनेसे नपुंसकताको, लौंग और समुद्रफल युक्त पानके रसके संग लिङ्गपर लेप करनेसे लिङ्गकी वृद्धि होती है, गोरोचन तथा लौंगके साथ तिलक करनेसे मोहन होता है, और अरंडकी जडके साथ इस वङ्गको विसकर मस्तकमें लेप करे तो शिरके रोगोंको दूर करती है, चिरचिटाकी जडके साथ कुबडेपनको दूर करती है, लहसनके रसके तेलके साथ मृगीरोगको, और सुहागेके साथ तापतिल्लीको नाश करती है, गधीके दूधके साथ देनेसे पुत्रकी उत्पत्ति होती है, मठाके साथ देनेसे वायुगोलेको दूर करती है, वात रोगमें अजवायन वा असगंधके साथ देना चाहिये, जलोदर रोगमें बकरीके दूधके साथ गुणकारी है, जायफल और असगंधके साथ देनेसे कमरकी पीडाको दूर करती है ॥ ३६–४९ ॥

अशुद्धवङ्गदोषाः ।

पाकेन हीनः खलु वङ्गकोऽसौ कुष्ठानि गुल्मानि बहूंश्च रोगान् ।
पाण्डुप्रमेहापचिवातशोणितं बलापहारं कुरुते नराणाम् ॥ ५० ॥

विना शुद्ध किये वंगका सेवन करनेसे कुष्ठरोग, गुल्मरोग तथा और भी अनेक प्रकारकी घोर व्याधियाँ, पाण्डुरोग, प्रमेह, अपची और वातरक्त आदि उत्पन्न होते हैं तथा बलकी हानि होती है ॥ ५० ॥

वङ्गसेवनोपद्रवशान्त्युपायः ।

मेषशृङ्गीं सितायुक्तां सेवते यो दिनत्रयम् ।
वङ्गदोषविमुक्तोऽसौ सुखं जीवति मानवः ॥ ५१ ॥

जो मनुष्य मिश्री मिलाकर मेंढाशिंगीको तीन दिन पर्यन्त सेवन करता है वह अशुद्ध या हीनशुद्ध वंगकेसब दोषोंसे मुक्त होकर सुखपूर्वक जीवित रहताहै॥५१॥

इति वङ्गविधानं ते कथितं शिष्यसत्तम ॥ ५२ ॥

हे शिष्यसत्तम ! इस प्रकार वंगके शोधन तथा मारण आदिका विधान तुमसे कहा ॥ ५२ ॥

इति श्रीटकसालनिवासिपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते
रसेन्द्रपुराणे वङ्गवर्णनं नाम चतुर्दशोध्यायः ॥ १४ ॥

पंचदशोऽध्यायः ।

अथातो जसदवर्णनं नाम पञ्चदशाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम जसदवर्णनं नामक पन्द्रहवें अध्यायका वर्णन करते हैं ॥

गुरुरुवाच ।

अथाधुना विधिस्तात जसदस्यापि श्रूयताम् ॥ १ ॥

गुरुने कहा कि, हे पुत्र ! अब जसदको शोधन तथा मारण आदिका विधान भी सुनो ॥ १ ॥

यशदभेदौ ।

खर्परं द्विविधं प्रोक्तं यशदं शवकं तथा ।
रसोऽपि यशदं प्रोक्तं खर्परं च गुणात्मकम् ॥ २ ॥

खपरिया दो तरहकी होती है पहली यशद और दूसरी शवक, यशद अर्थात् जस्ता भी खपरियाका ही एक भेद है । रसभी यशद कहा गया है, यह खपरि विशेष गुणवाली है ॥ २ ॥

यशदशुद्धिः ।

यशदं गालयेत्पूर्वं दुग्धमध्ये विनिक्षिपेत् ।
एकविंशतिवारांश्च खर्परं शुद्धिमाप्नुयात् ॥ ३ ॥

(जस्तका शोधन और मारण राँगाके सदृश ही होता है अतः इस विषयमें कहनेकी अधिक आवश्यकता नहीं है तो भी इसके मारणमें विशेष कहताहूं) जस्तको इक्कीस वार गला २ कर दूधमें बुझावे तो उसकी उत्तम शुद्धि होजाती है ॥ ३ ॥

यशदमारणविधिः ।

यशदं लोहजे पात्रे द्रावयित्वा पुनर्धमेत् ।
अत्यन्ततप्ते निम्बस्य दलानि त्रीणि निक्षिपेत् ॥ ४ ॥
घर्षणाल्लोहदण्डेन वह्निरुत्तिष्ठति ध्रुवम् ।
यथा यथा भवेद्वृष्टिर्भस्मीभावस्तथा तथा ॥ ५ ॥
भस्मीभूतं पृथक्कृत्य घर्षयेत्तत्पुनः पुनः ।
नेत्रयोगेषु सर्वेषु भस्मीभूतमिदं शुभम् ॥ ६ ॥
अशनं नैव कर्तव्यमन्यथा हानिकृद्भवेत् ।
गुञ्जामात्रप्रयोगेण नेत्ररोगात्प्रमुच्यते ॥ ७ ॥

दशपलं भस्म चानीय मारीचं चूर्णकर्षकम् ।
नवनीतं द्विकर्षं तु चैकीकृत्याखिलं खलु ॥ ८ ॥
निम्बुनीरेण मासैकं मर्दयेच्च विचक्षणः ।
गुञ्जार्द्धस्य तु मानेन गुटिकाः कारयेत्ततः ॥ ९ ॥
पर्युषितोदके चैकां घर्षयित्वा च नेत्रयोः ।
प्रभाते चाञ्जयेन्नित्यं नेत्रधूमादिकं हरेत् ॥ १० ॥

भट्टीमें लोहेके पात्रको चढाकर उसमें जस्ता डालकर खूब धोंके, जब जस्ता गलकर खूब तप्त होवे तब उसमें नमिवृक्षके तीन पत्ते डाले और लोहेकी मूसलीसे उनको मर्दन करे मर्दन करनेसे निश्चय उसमेंसे अग्निज्वाला निकलती है, जैसे जैसे जस्तका घर्षण किया जाताहै वैसे वैसे वह भस्मरूपताको प्राप्त होता जाता है । घोटते २ जितना २ भस्मरूपताको प्राप्त होता जावे उतना २ अलग करता जावे और शेषको तबतक फिर २ घोटता रहे जबतक कि, सब जस्ता भस्मरूप न होजावे । इस रीतिसे जस्ताकी उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है, नेत्रके सम्पूर्ण योगोंमें यह भस्मीभूत जस्ता श्रेष्ठ है । यह भस्म केवल आंखके रोगोंके लिये हितकारी है, खानेके कामकी नहीं, यदि इसको खावे तो लाभ नहीं प्रत्युत हानि करती है । नेत्ररोगी मनुष्य एक रत्ती खूब बारीक पीसकर नेत्रोंमें आँजे तो नेत्ररोगसे मुक्त हाजाता है । अथवा जस्तकी भस्म दश पल, काली मिर्चका चूर्ण एक तोला, मक्खन दो तोले इन सबको एकत्र करके एक मास पर्यन्त कागजी नींबूके रसके साथ खरल करके आध २ रत्तीकी गोलियाँ बनालेवे और उनमेंसे एक गोली बासी जलमें घिसकर नित्य प्रातःकाल नेत्रोंमें अंजन करे तो नेत्रोंके धुँधलेपन आदिको नाश करता है ॥ ४-१० ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

यशदस्य चतुर्थांशं पारदं गन्धकं रजः ।
मर्दयेत्खल्वके सम्यक्कन्यानिम्बुरसैः पृथक् ॥ ११ ॥
लेपयेत्तानि पत्राणि गजाह्वे पाचयेत्पुटे ।
एकेन तु पुटेनैव भस्मसाद्यशदं भवेत् ॥ १२ ॥

अब जस्ताके मारणका दूसरा प्रकार कहते हैं जितना जस्ता हो उसका चौथाई भाग पारा और गंधकका चूर्ण लेकर घीकुवारके रसमें घेटकर नींबूके रसमें घोटे, पश्चात् जस्तके कंटकबेधी पत्रोंपर लेप करे और उन पत्रोंको शराव-

संपुटमें रख गजपुटकी आँचमें पकावे तो एकही पुटमें सब जस्ता भस्म हो जाता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

यशदभस्मसेवनप्रमाणम् ।

गुंजाद्वयं तु यशदं सर्वरोगान् व्यपोहति ।
अधिकग्रहणं पुंसां रोगानन्यांश्च कारयेत् ॥ १३ ॥

इस पूर्वोक्त यशदभस्मके सेवन करनेकी मात्रा दो रत्ती है जो मनुष्य इसको मात्रासे सेवन करते हैं उनके सम्पूर्ण रोगोंको यह भस्म दूर करती है और यदि मात्रासे अधिक सेवन करे तो उनके शरीरमें अन्य रोगोंको उत्पन्न करती है॥१३॥

यशदभस्मसामान्यगुणाः ।

यशदं तुवरं प्रोक्तं शीतलं कफपित्तहृत् ।
चक्षुष्यं परमं मेहं पाण्डुं श्वासं च नाशयेत् ॥ १४ ॥

यशदकी भस्म स्वादमें कसैली और कडवी है, कफरोग, पित्तरोग, प्रमेह, पाण्डु श्वास और खाँसीको दूर करती है आँखोंके लिये अति हितकारी है यह इसके सामान्य गुण हैं ॥ १४ ॥

यशदभस्मसेवनानुपानानि ।

पुराणे गोघृते नेत्र्यं ताम्बूलेन प्रमेहजित् ।
अग्निमन्थेनाग्निकरं त्रिसुगन्धैस्त्रिदोषनुत् ॥ १५ ॥
सतंडुलहिमैर्हन्ति खर्जूरैर्मायुजं ज्वरम् ।
यवानिकालवङ्गाभ्यां युतं शीतज्वरं जयेत् ॥ १६ ॥
खर्जूरतण्डुलाहिमै रक्तातीसारनाशकृत् ।
शर्कराजाजिसंयुक्तमतिसारवमिं जयेत् ॥ १७ ॥

अब यशदभस्म सेवन करनेके अनुपान कहते हैं यह जस्तेकी भस्म गौके पुराने घीके साथ नेत्रोंके लिये हित करती है, पानके साथ सेवन करनेसे प्रमेह रोगको नाश करती है, अरणी (अगेथुवा) के साथ जठराग्निको बढाती है, त्रिसुगन्ध (इलायची) दालचीनी, तेलपातक साथ सन्निपातको नष्ट करती है, चावलके हिम और खजूरके साथ पित्तज्वरको, अजवायन और लौंगके साथ शीतज्वरको, खर्जूर और चावलोंके हिमके साथ रक्तातीसारको, जीरा और मिश्रीके साथ वमन तथा अतिसारको दूर करती है ॥ १५ ॥ १७ ॥

अपक्वयशददोषाः ।

अपक्वं यशदं रोगान्प्रमेहाजीर्णमारुतान् ।
वमिं भ्रमिं करोत्येतच्छोधयेन्नागवत्ततः ॥ १८ ॥

अपक्व अर्थात् नहीं पकाहुआ वा हीन पका हुआ जस्ता प्रमेह, अजीर्ण, शरदी, वमन और भ्रमको उत्पन्न करता है इस कारण इसको सीसेके समान शुद्ध करे ॥ १८ ॥

अपक्वयशदसेवनोपद्रवशान्त्युपायः ।

बालाभयां सितायुक्तां सेवते यो दिनत्रयम् ।
यशदस्य विकारोऽस्य नाशमायाति नान्यथा ॥ १९ ॥

छोटी हरड और मिश्री एकमें मिलाकर तीन दिन पर्यन्त सेवन करे तो अपक्व यशदके दोषोंकी शान्ति होती है अन्यथा नहीं ॥ १९ ॥

उक्ताः पञ्चदशाऽध्याये यशदस्य क्रियाः शुभाः ॥ २० ॥

हे वत्स ! इस पन्द्रहवें अध्यायमें यशदकी सम्पूर्ण उत्तम २ क्रियायें कही गई हैं ॥ २० ॥

इति श्रीटकसालनिवासिपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे यशदवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

षोडशोऽध्यायः ।

अथातो नागवर्णनं नाम षोडशाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब हम नागवर्णन नामक सोलहवें अध्यायका वर्णन करते हैं ॥

गुरुरुवाच ।

नागतुल्यबलस्याथ नागस्य शोधनादिकम् ।
वक्ष्ये यस्य प्रयागाच्च नागवज्जायते नरः ॥ १ ॥

गुरुने शिष्यसे कहा कि, हे वत्स ! अब मैं हाथीके समान बलवाले नाग अर्थात् सीसेकी शोधन तथा मारण आदि क्रियाओंको तुमसे कहताहूँ जिसके प्रयोगमात्रसे मनुष्य हाथीके सदृश बलवान् होताहै ॥ १ ॥

नागोत्पत्तिः ।

दृष्ट्वा भोगिसुतां रम्यां वासुकिस्तु मुमोच यत् ।
वीर्यं जातस्ततो नागः सर्वरोगापहो नृणाम् ॥ २ ॥

किसी समय भोगी नागकी अति रूपवती कन्याको देखकर वासुकिनागने जो वीर्यपतन किया वह नाग (सीसा) होगया, यह सीसा विधिपूर्वक सेवन करनेसे सब रोगोंको दूर करताहै ॥ २ ॥

नागभेदौ ।

नागं च द्विविधं प्रोक्तं कुमारं समलं तथा ।
कुमारं रसमार्गेषु योजनीयं गुणाधिकम् ॥ ३ ॥

सीसा दो तरहका होताहै, पहलेका नाम कुमार है और दूसरेका समल, इन दोनोंमेसे रसकी क्रियाओंमें गुणोंमें अधिक कुमारनामक सीसेका ही उपयोग करना चाहिये समलका नहीं ॥ ३ ॥

नागपरीक्षा ।

द्रुतौ याते महाभारं छेदे कृष्णं समुज्ज्वलम् ।
पूतिगन्धि बहिः कृष्णं शुद्धं शीशमतोऽन्यथा ॥ ४ ॥

सीसोंमें वह सीसा शुद्ध है, जो कि गलानेपर भारी हो और तोडनेमें भीतर काला व उज्ज्वल निकले, दुष्ट गंधस युक्त हो, बाहरसे देखनेमें काला दिखपडे इन लक्षणोंसे रहित सीसा अशुद्ध जानना चाहिये ॥ ४ ॥

नागशोधनम् ।

फलत्रिकजकषाये वा कुमारीरसे वा करिवरसलिले वा गालयेत्सप्तवारम् ।
खादिरदहनतप्तं लोहपात्रे स्थितं सत्तदनुसपदि नागे जायते शुद्धभावः ॥५॥

अब सीसेके शुद्ध करनेकी रीति,–भट्टीमें खैरकी लकडी जलाकर लोहेके पात्रमें सीसेको गलाके जब अच्छे प्रकार गलजावे तब त्रिफलाके क्वाथ, घीकुवारके रस, और हाथीके मूत्रमें सात सात बार बुझावे तो शीघ्रही सीसा शुद्ध होजाता है ॥ ५ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

सच्छिद्रहंडिकायान्तु रविदुग्धं च निक्षिपेत् ।
तेनैव द्रुतनागन्तु शोधयेच्च त्रिवारकम् ॥ ६ ॥

अथवा किसी स्वच्छ हंडीमें आकका दूध छोडकर उससे अग्निमें गलाये हुए सीसेको तीन बार बुझावे तो वह सीसा शुद्ध होजाता है ॥ ६ ॥

नागमारणविधिः ।

त्रिभिः कुंभिपुटैर्नागो वासारसविमर्दितः ।
सशिलो भस्मतामेति तद्रजः सर्वमेहनुत् ॥ ७ ॥

अब नागके मारणकी विधि कहते हैं। शुद्ध सीसा और मनशिलका चूर्ण इन दोनोंको अडूसेके रसमें अच्छे प्रकार घोटकर गजपुटमें पकावे, इसी प्रकार तीन बार गजपुटकी आँचमें पकानेसे सीसेकी श्रेष्ठ भस्म सिद्ध होजाती है यह भस्म सब प्रमेहोंको दूर करताहै ॥ ७ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

भागैकमहिफेनस्य नागभागचतुष्टयम् ।
घर्षणान्निम्बकाष्ठेन मन्दवह्निप्रदानतः ॥
गभातिर्भवेच्छ्वेता वीर्यदार्ढ्यकरी मता ॥ ८ ॥

सीसेके मारणकी दूसरा प्रकार कहते हैं—सीसा चार भाग, अफीम एक भाग लेकर खपडेमें डालकर धीमी आँचसे गलावे और नीमकी लकडीसे चलाता जाय तो सीसेकी सफेद रंगवाली उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है यह भस्म वीर्यको दृढ करनेवाली है ॥ ८ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

कुडवं नागपत्राणां कुनट्याः स्यात्पलार्द्धकम् ।
तण्डुलीयरसैर्यामं यामं वासारसैस्तथा ॥ ९ ॥
संमर्द्य चक्रिकां कृत्वा घर्मे संशोष्य तां पुनः ।
शरावसंपुटे कृत्वा पचेद्वन्योपलैर्भिषक् ॥ १० ॥
एवं सप्तपुटैर्नागो भस्मीभवति निश्चितम् ।
द्विगुञ्जोऽयं ध्रुवं हन्यात्प्रमेहानखिलान् गदान् ॥ ११ ॥

सीसेके मारणका तीसरा प्रकार, चार पल सीसेके कंटकवेधी पत्रोंको और आधा पल मनशिलको खरलमें डालकर चौलाईके रसमें एक प्रहर पर्यन्त अच्छे प्रकार घोटे तत्पश्चात् एक प्रहर तक अडूसेके रसमें घोटकर टिकिया बना धूपमें सुखालेवे जब सूखजावे तब शरावसंपुटमें रख गजपुटमें जंगली उपलोंकी आँचसे पकावे स्वांगशीतल होनेपर सीसेको शरावसंपुटसे अलग निकाल पूर्ववत् फिर मनशिल डालकर एक प्रहर चौलाई और एक प्रहर अडूसेके रसमें खरलकर शरावसंपुटमें रख गजपुटमें फूँक देवे इसी प्रकार प्रत्येक पुटमें करे, सब मिलाकर सात पुट देनेसे निस्सन्देह सीसा भस्मरूप हो जाताहै । बडी इलायची और सहतके साथ दो रत्ती प्रमाण इस भस्मका नित्य सेवन करे तो प्रमेह और मूत्रस्राव आदि सर्व रोग अवश्य नष्ट होजावें ॥ ९-११ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

अश्वत्थचिञ्चात्वक्चूर्णं चतुर्थांशं च निक्षिपेत् ।
मृत्पात्रे विद्रुते नागे लौहदर्व्या प्रचालयेत् ॥ १२ ॥
यामैकेन भवेद्भस्म तत्तुल्यां च मनःशिलाम् ।
काञ्जिकेन द्वयं पिष्ट्वा शोषयेदातपे पुनः ॥ १३ ॥
शरावसंपुटे कृत्वा पचेद्गजपुटेन च ।
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य शिलया काञ्जिके पुनः ॥ १४ ॥
संमर्द्य संपुटे कृत्वा पचेत्करिपुटेन तु ।
एवं षड्भिः पुटैर्नागो मृतिं यास्यति निश्चितम् ॥ १५ ॥

सीसेके मारणका चौथा प्रकार, मट्टीके किसी स्वच्छ पात्रमें सीसेको डालकर चूल्हेपर रख अग्नि प्रदीप्त करे जब सीसा गलजावे तो उसमें सीसेका चौथाई भाग पीपल और इमलीकी छालका चूर्ण डालकर लोहेकी करछीसे चलाता जावे एक प्रहरमें वह सीसा भस्मरूप होजायगा तत्पश्चात् इस भस्मकी बराबर मनशिल लेवे और दोनोंको कांजीमें घोटकर टिकिया बना, धूपमें सुखालेवे उस टिकियाको शरावसंपुटमें रख गजपुटमें पकावे और स्वांगशीतल होनेपर शरावसंपुटसे अलग निकाल फिर मनशिलके साथ कांजीमें खरल करे और पहलेकी तरह शरावसंपुटमें रख गजपुटमें पकावे इसी प्रकार सब मिलाकर छः पुट देवे तो निस्सन्देह सीसा मरजाता है ॥ १२-१५ ॥

पञ्चमः प्रकारः ।

भूभुजंगमगर्तिं च पिष्ट्वा पात्रं विलेपयेत् ।
तत्स्थे च विद्रुते नागे वासापामार्गसंभवम् ॥ १६ ॥
क्षारं विमिश्रयेत्तत्र चतुर्थांशं च बुद्धिमान् ।
प्रहरं पाचयेच्चुल्ल्यां वासादर्व्या च घट्टयेत् ॥ १७ ॥
तत उद्धृत्य तच्चूर्णं वासानीरे विमर्दयेत् ।
पुटेत्पुनः समुद्धृत्य तेनैव परिमर्दयेत् ॥ १८ ॥
एवं सप्तपुटं नागं सिन्दूरं जायते ध्रुवम् ।
तारस्थो रंजनो नागो वातपित्तकफापहः ॥
ग्रहणीकुष्ठमेहार्शःप्राणशोषविषापहः ॥ १९ ॥

सीसेके मारणका पांचवां प्रकार । केंचुएं और अगस्तके पत्रोंको बारीक पीसकर पात्रमें लेपकरे और उसमें सीसा छोड चूल्हेपर चढाय अग्नि प्रदीप्त करे, जब सीसा अच्छे प्रकार गलजावे तब उसमें सीसेकी चतुर्थांश अडूसा और चिरचिटेकी भस्म छोडताजाय पकाते समय अडूसेकी लकडीसे सीसेको चलातारहे, इस प्रकार एक प्रहर तक पकाकर उतारलेवे और फिर अडूसेके रसमें उस सीसेको घोटे यह एक पुट हुई तत्पश्चात् पूर्ववत् दूसरी पुट देकर भस्म करे और अडूसेके रसमें खरल करे इस प्रकार सब मिलाकर सात पुट देनेसे सिंदूरके तुल्य लाल भस्म सिद्ध होजाती है। चाँदीमें इसके संयोगसे उत्तम रंग उत्पन्न होताहै इस भस्मके सेवनसे वात, पित्त और कफसे उत्पन्न रोग, संग्रहणी, कुष्ठ, प्रमेह, बवासीर, प्राणशोष और विषको नष्ट करता है ॥ १६-१९ ॥

षष्ठप्रकारे नागस्य हरिद्भस्मविधिः ।

खर्परे निहितं नागं रविमूलेन घर्षयेत् ।
यामत्रिकैर्भवेद्भस्म हरिद्वर्णमदूषणम् ॥ २० ॥

सीसेकी हरिद्वर्णयुक्त भस्म बनानेकी विधि । एक खपडेको चूल्हेपर रखकर सीसा डाल अग्नि प्रदीप्त करे और आककी जडसे रगडता जाय तो तीनही प्रहरमें हरे रंगवाली दोषरहित भस्म सिद्ध होजाती है ॥ २० ॥

सप्तमप्रकारे पीतभस्मविधिः ।

शिलागन्धककर्पूरं कुंकुमं मर्दयेत्समम् ।
जम्बीररस्य द्रवैर्यामं तत्समं नागपत्रकम् ॥ २१ ॥
लिप्त्वा लिप्त्वा पुटे पाच्यं यावत्षष्टिपुटं भवेत् ।
तन्नागं विद्युदाभासं जायते नात्र संशयः ॥ २२ ॥

सीसेकी पीत भस्म बनानेकी विधि । मनशिल, गंधक, कपूर और केशर इनको तुल्यभाग लेकर जंबीरी नींबूके रसमें एक प्रहर पर्यन्त खरल करे और पूर्वोक्त चारों औषधोंके बराबर सीसेके कंटकबेधी पत्रोंपर लेप करके गजपुटमें फूँकदे इसी रीतिसे साठ पुटदेवे तो सीसेकी बिजलीके समान कांतिवाली भस्म सिद्ध होजाती है ॥ २१ ॥ २२ ॥

अष्टमप्रकारे रक्तवर्णभस्मविधिः ।

कुमारीपादघातेन तत्क्षणान्म्रियते फणी ।
पुटेन शतकेनापि सिन्दूरं केवलं भवेत् ॥
तारे ताम्रे तथा वंगे शतवेधी भवेद्ध्रुवम् ॥ २३ ॥

सीसेकी लाल रंगयुक्त भस्मकी । विधि सीसेको गलाकर घीकुवारके मूसलेसे घोटे तो उसी समय वह सीसा भस्मरूप होजावे, और घीकुवारके रसमें सीसेके कंटकबेधी पत्रोंको खरल करके शरावसंपुटमें रख गजपुटमें फूँकदे यह एक पुट हुई, इसी प्रकार सौ पुट देवे तो सिंदूरके सदृश सुर्ख रंगयुक्त भस्म सिद्ध होवे इसमें चाँदी, तांबा व वंग गलाकर डाले तो इसका शतांश भाग वेधकर सुवर्ण करे ॥ २३ ॥

नवमप्रकाररक्तभस्मविधेः द्वितीयः प्रकारः ।

भूनागागस्त्यपत्राणि पिष्ट्वा पात्रं विलेपयेत् ।
वासापामार्गजं क्षारं तत्र नागयुतं क्षिपेत् ॥ २४ ॥
चतुर्थांशं च विधितः वासादर्व्या विघट्टयेत् ।
यामैकेन भवेद्भस्म ततो वासारसान्वितम् ॥
मर्दयेत्संपुटेनैवं नागसिंदूरकं शुभम् ॥ २५ ॥

नवम प्रकारमें लाल भस्म बनानेका दूसरा प्रकार । केंचुएं और अगस्त वृक्षके पत्तोंको बारीक पीसकर पात्रमें लेपकरे, उस पात्रमें सीसा छोडकर चूल्हेपर चढादेवे और अग्नि प्रदीप्त करे जब सीसा गलजावे तब उसमें सीसेका चतुर्थांश अडूसा और चिरचिटेका क्षार थोडा २ छोडता जावे और अडूसेकी लकडीसे चलाता रहे तो एक प्रहरमें सीसेकी भस्म सिद्ध होजावे इसी भस्मको अडूसेके रसमें घोटकर गजपुटकी आँचमें पकावे तो वह भस्म सिंदूरके समान लालरंगयुक्त होजाती है ॥ २४ ॥ २५ ॥

दशमप्र०निरुत्थभस्मविधिः ।

ताम्बूलीरससंपिष्टशिलालेपात्पुनः पुनः ।
द्वात्रिंशद्भिः पुटैर्नागो निरुत्थो याति भस्मताम् ॥ २६ ॥

नवम प्रकारमें निरुत्थ भस्मकी विधि,–सीसेके कंटकबेधी पत्रोंपर पानके रसमें खरल किये हुए मनशिलका लेप करके शरावसंपुटमें रख गजपुटमें फूंकदे, यह एक पुट हुई इसी प्रकार सब मिलाकर बत्तीस पुट देवे तो सीसेकी निरुत्थ भस्म सिद्ध होवे ॥ २६ ॥

एकादशप्र०नागेश्वररसनिर्माणविधिः ।

पलद्वयं मृतं नागं हिङ्गुलं च पलद्वयम् ।
शिला कर्षमिता ग्राह्या सर्वतुल्यं हि गन्धकम् ॥ २७ ॥

निंबुनीरेण संमर्द्य ततो गजपुटे पचेत् ।
तदा नागेश्वरोऽयं स्यान्नागराजसुतोपमः ॥ २८ ॥

ग्यारहवें प्रकारमें नागेश्वररसके बनानेकी विधि, शुद्ध कियेहुए सीसेकी भस्म दो पल, हिङ्गुल दो पल, मनशिल एक तोला और इन सबोंकी बराबर गंधक लेकर सबको नींबूके रसमें घोटकर गजपुटकी आँचमें पकावे तो नागराजसुतके समान नागेश्वर रस सिद्ध होता है ॥ २७ ॥ २८ ॥

नागभस्मसेवनानुपानानि ।

मृतं नागं सितायुक्तं मायुं वायुं शिरोव्यथाम् ।
नेत्ररोगं शुक्रदोषं प्रलापं दाहकं जयेत् ॥ २९ ॥
प्रददाति रुचिं कामं वर्द्धयेत्पथ्यसेविनः ।
स्वबुद्ध्या कल्पयेद्धीमाननुपानं गदेषु च ॥ ३० ॥

नागभस्म सेवन करनेके अनुपान-यह शुद्ध सीसेकी भस्म मिश्रीके संग सेवन करे तो पित्तरोग, वातरोग, शिरकी व्यथा, नेत्ररोग, शुक्रदोष, प्रलाप और दाह इन सबको नष्ट करती है, और पथ्य भोजन करनेवाले मनुष्यकी अन्नमें रुचि और कामशक्तिको बढाती है बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि, अन्यरोगोंमें भी निज बुद्धिसे अनुपानोंकी कल्पना करके इस भस्मको देवे ॥ २९ ॥ ३० ॥

नागभस्मगुणाः ।

क्षयपवनविकारे गुल्मपाण्ड्वामयेषु ।
भ्रमक्रिमिकफशूले मेहकासामयेषु ॥
ग्रहणिगुदगदे वै नष्टवह्नौ प्रशस्तः ।
शुभविधिकृतनागः कामपुष्टिं ददाति ॥ ३१ ॥

नागभस्मके गुण-विधिपूर्वक बनाई हुई सीसेकी भस्म क्षयी, वायुके विकार, गुल्मरोग, पाण्डु, भ्रम, क्रमिरोग, कफरोग, शूल, प्रमेह, कासरोग, संग्रहणी, बवासीर आदि गुदाके रोग और अग्निमान्द्यको नष्ट करती तथा कामदेवको बढाती है॥ ३१॥

नागभस्मप्रशंसा ।

नागस्तु नागशततुल्यबलं ददाति व्याधिं विनाशयाति जीवनमातनोति ।
वह्निं प्रदीपयति कामबलं करोति मृत्युं च नाशयति संततसेवितःसः॥ ३२॥

नागभस्मप्रशंसा, निरन्तर सेवन करनेसे यह भस्म सौ हाथीके समान बलको देती है, व्याधियोंको नाश करती है, आयुको बढाती है, अग्निको प्रदीप्त करती है, कामशक्तिको उत्पन्न करती और मृत्युको हटाती है ॥ ३२ ॥

अपक्वनागसेवनोपद्रवाः ।

कुष्ठानि गुल्मारुचिपाण्डुरोगान्क्षयं कफं रक्तविकारकृच्छ्रम् ।
ज्वराश्मरीशूलभगन्दराद्यं नागं त्वपक्वं कुरुते नराणाम् ॥ ३३ ॥

अपक्व नागको सेवन करनेसे उपद्रव–यह अपक्व नाग कुष्ठरोग, गुल्मरोग, अन्नमें अरुचि, पाण्डुरोग, क्षयी, कफरोग, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, पथरी, शूल और भगंदर आदि अनेक रोग मनुष्योंको उत्पन्न करता है ॥ ३३ ॥

अपक्वनागसेवनोपद्रवशान्त्युपायः ।

हेम्ना हरीतकीं खादन्सितायुक्तां दिनत्रयम् ।
अपक्वनागदोषेण विमुक्तः सुखमेधते ॥ ३४ ॥

अपक्वनागके उपद्रवोंसे युक्त मनुष्य यदि हरड और मिश्रीके साथ सुवर्णकी भस्मको तीन दिन पर्यन्त सेवन करे तो अपक्व नागदोषसे मुक्त होकर सुखको प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥

एवं नागविधिस्तात ह्यध्याये षोडशे क्रमात् ।
शोधनं मारणं चापि विशेषाद्वर्णितं मया ॥ ३५ ॥

हे वत्स ! इस प्रकार इस सोलहवें अध्यायमें सीसेकी शोधन, मारणकी सम्पूर्ण विधि विशेषतासे मैंने तुमसे वर्णन किया ॥ ३५ ॥

इति श्रीटकसालनिवासिपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे नागभस्मवर्णनो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः ।

अथातो लोहोत्पत्तिशोधनादिवर्णनं नाम सप्तदशाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब हम लोहकी उत्पत्ति तथा शोधनादि वर्णन नामके सत्रहवें अध्यायका वर्णन करते हैं ॥

गुरुउवाच ।

अथ लोहविधानं ते प्रवक्ष्यामि विशेषतः ।
यस्य सेवनमात्रेण वज्रतुल्यतनुर्भवेत् ॥ १ ॥

गुरुने कहा कि, हे पुत्र ! अब मैं तुमसे लोहके शोधन तथा मारण आदिका विधान विशेषतासे कहताहूँ जिसके सेवनमात्रसे मनुष्य वज्रतुल्य शरीरसे युक्त होताहै ॥ १ ॥

तत्रादौ लोहोत्पत्तिः ।

पुरा सुधां क्षीरसमुद्रजां च अप्राप्य दैत्याः चुकुपुःप्रगाढम् ।
ततः सुरैराजिमकुर्वतैषां हताङ्गकेभ्यो विविधाश्च लोहाः ॥ २ ॥

(किसी समय देवता और दैत्योंने क्षीरसमुद्रका मथन किया उसमें जब अमृत उत्पन्न हुआ तब विष्णुने मोहिनी रूप होकर दैत्योंको ठगालिया और अमृत देवताओंको पिलादिया) ततपश्चात् उस क्षीरसमुद्रमेंसे उत्पन्न हुए अमृतको नहीं पाकर दैत्योंने बडा क्रोध किया और देवताओंसे युद्ध किया उस समय युद्धमें मारेहुए दैत्योंके शरीरोंसे अनेक प्रकारके लोहा उत्पन्न हुए ॥ २ ॥

लोहभेदाः ।

मुण्डं तीक्ष्णं तथा कान्तं भेदास्तेषां त्रयोदश ॥ ३ ॥

लोहा तीन तरहका होताहै उनमेंसे पहलेका नाम मुंड है, दूसरेका नाम तीक्ष्ण और तीसरेका नाम कान्त है, इनमेंसे प्रत्येकके सब भेद मिलाकर तेरह भेद होते हैं ॥ ३ ॥

तत्रादौ मुण्डलोहभेदाः ।

मृदु कुण्डं च काण्डारं त्रिविधं मुण्डमुच्यते ॥ ४ ॥

मुंड नामक लोहा तीन प्रकारका होता है जैसे मृदु, कुंड, कांडार ॥ ४ ॥

तीक्ष्णलोहभेदाः ।

खरसारं च होत्तालं तारवट्टं विडं तथा ।
काललोहं गजाख्यं च षड्विधं तीक्ष्णमुच्यते ॥ ५ ॥

तीक्ष्ण अर्थात् पौलाद नामक लोहा छः प्रकारका होता है। जैसे खरसार, होत्ताल, तारबट्ट, विड, काललोह, गज ॥ ५ ॥

कान्तलोहभेदाः ।

कान्तं लोहं चतुर्द्धोक्तं रोमकं भ्रामकं तथा ।
चुम्बकं द्रावकं चैव गुणास्तस्योत्तरोत्तराः ॥ ६ ॥
पञ्चमं च क्वचित्प्रोक्तं कर्षणं च रसार्णवे ।
यद्यदाकरसंभूतं तत्तद्देशजरोगनुत् ॥ ७ ॥

कान्त नामक लोहा चार प्रकारका होता है, जैसे रोमक, भ्रामक, चुम्बक, द्रावक इन सबोंमें उत्तरोत्तर अधिक गुण है। पूर्वोक्त चार भेदोंके अतिरिक्त पाँचवाँ भेद कर्षण नामक लोहा भी कहीं २ कहागया है, यह कर्षण लोहा जिस देशकी खानसे निकलता है उसी देशमें निवास करनेवाले मनुष्योंके रोगोंको दूर करता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

मुण्डभेदेषु--मृदुलोहलक्षणम् ।

मृदुलोहः स विज्ञेयो यश्चाघातेन न स्फुटेत् ।
तथा स्निग्धश्च नम्रः स्यादुत्तमः स तु कीर्तितः ॥ ८ ॥

मृदु लोह उसको कहते हैं कि, जो घनकी चोटोंसे न फूटता हो, तथा चिकना और नरम हो, यह रसके कामेंम श्रेष्ठ कहा है ॥ ८ ॥

कुण्डलोहलक्षणम् ।

त्रुटयति यस्तु घनाघातैः काठिन्यात्कुण्ड उच्यते ।
मध्यमः स च विज्ञेयो भिषग्भिस्सुपरीक्षकैः ॥ ९ ॥

परीक्षा करनेमें चतुर वैद्य उस लोहका कुण्ड कहते हैं कि, जो घनकी चोटसे कठिनतासे टूटे और गुणोंमें मध्यम हो ॥ ९ ॥

काण्डारलोहलक्षणम् ।

घनाघातैश्च यः शीघ्रं त्रुटेद्गर्भे तु कृष्णकः ।
अधमः स तु विज्ञेयो वत्स काण्डारसंज्ञकः ॥ १० ॥

हे वत्स ! जो लोहा घनकी चोटोंसे शीघ्र ही टूट जावे और भीतर काले रंगका निकले वह अधम है काण्डार नामक लोहा जानना चाहिये ॥ १० ॥

तीक्ष्णलोह भेदेषु--खरलक्षणम् ।

कठिनो त्रोटनात्तिर्यग्रेखा पारदसन्निभा ।

भारान्न च भवेन्नम्रः खरलोहः स कथ्यते ॥ ११ ॥

कडा हो और तोडनेसे जिसके भीतर टेढी पारेके समान रेखा जानपडें, बोझा रखनेसे जो नम्र न हो वह तीक्ष्णलोहेका भेद खर नामक लोहा कहा जाता है ॥११॥

सारलोहलक्षणम् ।

पृथिव्या जायते यस्तु तिर्यग्रेखासमन्वितः ।

कठिनः स्यात्तथा पातः लोहसारः स उच्यते ॥ १२ ॥

जो पृथवीसे पैदा होताहो, टेढी रेखाओंसे युक्त हो कडा हो, पीले रंगवाला हो उसे सार लोहा कहते हैं ॥ १२ ॥

खरसारलक्षणम् ।

ह्रीवेरपुष्पवद्वर्णे खरसारोऽभिधीयते ।

स्थलसूक्ष्मप्रभेदाभ्यां स चापि द्विविधः स्मृतः ॥ १३ ॥

ओड्रदेशोद्भवो ह्यौड्रः कालिंगस्तु कलिंगजः ।

स्नुहीपत्रनिभश्च्छिद्रैर्युक्तस्त्वौड्रश्च संस्मृतः ॥

शुकपञ्जरवर्णाभो नम्रः कालिङ्ग उच्यते ॥ १४ ॥

जिस लोहेका रंग सुगन्धवालाके पुष्पके तुल्य हो वह लोहा खरसार कहा जाता है, स्थूल और सूक्ष्म भेदोंसे वह दो प्रकारका होता है ओड्र अर्थात् उडिया देशमें जो पैदा होता है उस औड्र कहते हैं और कलिङ्ग देशमें जो पैदा होता है उसको कलिङ्गज कहते हैं । जो थूहरके पत्तेके सदृश हो और छेदोंस युक्त हो वह लोहा औड्र है, जो तोताक पिंजरक वर्ण सदृश और नम्र हो उसको कलिङ्गज कहते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

होत्ताललोहलक्षणम् ।

कृष्णवर्णस्तथा पीतस्तिर्यग्रेखासमन्वितः ।

स्यात्रोटनेऽतिकठिनः लोहो होत्तालसंज्ञकः ॥ १५ ॥

जो काला और पीला हो, टेढी रेखाओंसे युक्त हो, तोडनेमें अत्यन्त कठिन हो, उसे होत्ताल लोह कहते हैं ॥ १५ ॥

तारलोहलक्षणम् ।

यस्तु वज्रवदाभाति सूक्ष्मरेखायुतस्तथा ।
श्यामवर्णो गुरुश्चास्ति तारस्स त्वभिधीयते ॥ १६ ॥

जो वज्रके तुल्य प्रकाशित होता है और सूक्ष्म रेखाओंसे युक्त हो, काले रंगवाला तथा भारी हो उसको तार लोहा कहते हैं ॥ १६ ॥

काललोहलक्षणम् ।

कृष्णो नीलो गुरुः स्निग्धो त्रुटयेन्नैव च त्रोटनात् ।
स काललोहनाम्ना वै कीर्तितो भिषजां वरैः ॥ १७ ॥

जो लोहा काला, नीला, भारी और चिकना हो, तोडनेसे भी न टूटे । उसको श्रेष्ठ वैद्य काललोह कहते हैं ॥ १७ ॥

लोहमातृकागजवल्लीलक्षणम् ।

गजवल्लीति विख्याता सर्वलोहस्य मातृका ।
स्थूललघ्वङ्गभेदेन तत्स्याद्वज्रादिसंभवम् ॥ १८ ॥

सर्वलोहोंकी माता गजबेली जिसका प्रासिद्ध नाम है वह स्थूल और लघुभेदसे दो प्रकारकी होती है, इसकी उत्पत्ति वज्रसंज्ञक लोहासे है ॥ १८ ॥

अथ प्रसङ्गाद्वज्रलोहभेदाः ।

असितं काललोहाख्ये रक्तं लोहितवज्रके ।
मायूरवज्रकं चान्यदन्यत्तित्तिरवज्रकम् ॥ १९ ॥
रोहिणीवज्रकं चान्यदन्यद्वा शुकवज्रकम् ।
एवं दशविधं वज्रं गुणवच्चोत्तरोत्तरम् ॥ २० ॥

अब प्रसङ्गसे वज्रलोहके भेद कहते हैं । असित, काल, लोह, रक्त, लोहित, वज्रक, मयूरवज्र, तित्तिरवज्र, रोहिणीवज्रक, शुकवज्र यह दश प्रकारका वज्र नामक लोहा उत्तरोत्तर गुणोंमें अधिक है ॥ १९ ॥ २० ॥

कान्तलोहपरीक्षा ।

पात्रे यस्य प्रसरति जले तैलबिन्दुर्न तप्ते
हिङ्गुर्गन्धं विसृजति निजं तिक्ततां निम्बकल्कः ।
पाच्यं दुग्धं भवति शिखराकारकं नाति भूमौ
कान्तं लोहं तदिदमुदितं लक्षणोक्तं तथान्यत् ॥ २१ ॥

कान्तलोहकी परीक्षा,-अग्निमें तपाया हुआ तथा जलसे युक्त जिस लोहपात्रमें छोडे हुए तैल बिन्दु न फैलते हों, हींग अपने गंधको छोडदेती हो, नीमका कल्क अपनी तिक्तताको त्याग देता हो, दूध औटानेसे पर्वतकी तुल्य ऊँचा होजाय पर पृथिवीमें न गिरे उसको कान्त लोह कहते हैं॥ २१॥

कान्तलोहभेदोक्तरोमकादिलक्षणम्।

तद्रोमकान्तं स्फुटिताद्यतो रोमोद्गमो भवेत्।
भ्रामकं लोहजातिं तु तत्कान्तं भ्रामकं मतम्॥ २२॥
चम्बयेच्चुम्बकं कान्तं कर्षयेत्कर्षकं तथा।
साक्षाद्यद्द्रावयेल्लोहं तत्कान्तं द्रावकं भवेत्॥ २३॥

पूर्वोक्त कान्तलोहभेद रोमकादिकोंके लक्षण--तोडते समय जिसमें रुयेसे जानपडें उसको रोमकान्त कहते हैं। लोहकी जातियोंको जो भ्रमावे उसे भ्रामक कहते हैं। जो लोहा अन्य लोहोंको चुम्बन करे उसे चुम्बक कहते हैं। जो आकर्षण करे उसकी कर्षक संज्ञा है। जो लोहा इतर लोहोंको नरम करे उसकी द्रावक संज्ञा है॥ २२॥ २३॥

रोमकादिभेदाः।

एकास्यं द्विमुखाख्यं च वेदास्यं शंखचक्रिकम्।
सर्वतोमुखमित्येवमुत्तमाधमकान्तकम्॥
भेदानां लक्षणं यच्च तन्नोक्तं ग्रन्थगौरवात्॥ २४॥

पूर्वोक्त रोमकादिकोंके भेद पहले जो कान्तलोहके चार भेद कहे गये हैं, उन्हींके एकमुख, द्विमुख, चतुर्मुख, शंखचक्रिक और सर्वतोमुख यह छः भेद हैं इनके उत्तम मध्यमादि अनेक भेद होते हैं। यहां ग्रन्थगौरव होजानेके भयसे उक्त एकमुखादिकोंके लक्षण नहीं कहे गये हैं॥ २४॥

कान्तलोहस्य वर्णादिकथनम्।

पीतं रक्तं तथा कृष्णं त्रिवर्णं स्यात्पृथक्पृथक्।
क्रमेण देवतास्तत्र ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः॥ २५॥

कान्तनामक लोहका पीला, लाल और कृष्ण रंग है, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र यह क्रमसे उनके देवता हैं (इनमेंसे पीले रंगका स्पर्शवेधी है और काले रंगक रसायनमें ग्राह्य है, लाल रंगवाले कान्तलोहको पारेके बंधनमें ग्रहण करना योग्य है, द्रावक अति श्रेष्ठ है, कर्षक श्रेष्ठ है, चुम्बक मध्यम और भ्रामक अधम है॥२५॥

पाण्ड्याख्यलोहलक्षणम् ।

घर्षणाज्जायते गोलः यस्मिन्रेखास्ति हेमभा ।
स वै पाण्ड्यो द्विधा ख्यातः श्वेतकृष्णाविभेदतः ॥ २६ ॥

जो लोहा सुवर्ण सदृश रेखाओंसे युक्त हो, घिसनेसे गोल होजाय उसको पाण्ड्य कहते हैं, श्वेत और कृष्ण भेदसे वह दो प्रकारका होताहै ॥ २६ ॥

अथोक्तलोहादिविषये मिश्रवर्णनम् ।

मुण्डन्तु वर्तुलं भूमौ पर्वतेषु च दृश्यते ।
गजवल्ल्यादि तीक्ष्णं स्यात्कान्तं चुम्बकसंभवम् ॥ २७ ॥
मुण्डात्कटाहपत्रादि जायते तीक्ष्णलोहतः ।
खड्गादिशस्त्रभेदाः स्युः कान्तलोहं तु दुर्लभम् ॥ २८ ॥

मुंड नामका लोहा पृथ्वी वा पहाडोंमें वर्तुलरूपसे प्राप्त होता है, तीक्ष्णलोहा गजबेलि आदिसे उत्पन्न होताहै, और कान्त लोहा चुंबक पत्थरसे पैदा होता है, मुंड लोहसे कडाही, तवा आदि वस्तु बनाईजाती हैं, तीक्ष्ण संज्ञक लोहेसे तलवार आदि हथियार बनाये जाते हैं इनमेंसे कान्त लोहका मिलना बहुत कठिन है ॥ २७ ॥ २८ ॥

लोहानां पारस्परिकाधिकश्रेष्ठत्ववर्णनम् ।

किट्टाद्दशगुणं मुंडं मुण्डात्सारं चतुर्गुणम् ।
सारादौड्रद्विगुणितं कालिंगं च ततोऽष्टधा ॥ २९ ॥
तस्माद्भद्रं दशगुणं भद्राद्वज्रं सहस्रधा ।
वज्रात्षष्टिगुणं पांड्यं कान्तिजं शतधा ततः ॥ ३० ॥
सर्वलोहात्तम यस्मात्तस्मात्कोटिगुणं मतम् ।
यल्लोहे यद्गुणं प्रोक्तं तत्किट्टमपि तद्गुणम् ॥ ३१ ॥

किट्ट संज्ञक लोहसे मुंड लोहा गुणोंमें दशगुण अधिक है,मुंडसे चतुर्गुण सार, सारसे द्विगुण औड्र, औड्रसे अष्टगुण कलिंगज, कलिङ्गजसे दशगुण भद्र, भद्रसे सहस्रगुण वज्र, वज्रसे साठिगुणा पांड्य, पांड्यसे सौ कान्तिलोहमें अधिक गुण हैं। जिस कारण सब लोहोंमें कान्तसंज्ञक लोहा उत्तम है इस कारण इसको करोड गुणयुक्त कहना अनुचित नहीं है। जिस लोहमें जितने गुण कहे गये हैं उस लोहकी किट्टमेंभी उतनेही गुण समझना चाहिये ॥ २९-३१ ॥

कान्तादिगुणसंख्याकल्पना ।

कान्ते लक्षगुणं प्रोचुः रसकर्मविशारदाः ।
स्फटिकोत्थं कोटिगुणं विद्युत्संभूतदुर्लभम् ॥ ३२ ॥

रसकर्ममें चतुर वैद्योंने कान्तलोहमें लक्ष गुण कहा है, स्फटिकके लोहेमें कोटि गुण कहा है, और बिजलीसे उत्पन्न लोह तो पृथिवीमें दुर्लभ हे ॥ ३२ ॥

ग्राह्यलोहकथनम् ।

कान्ताभावे तीक्ष्णलोहं च ग्राह्यं तल्लोहं वै सन्मृदुत्वं विधत्ते ।
मुण्डं त्याज्यं सर्वथा नैव ग्राह्यं यस्मान्मुण्डे भूरिदोषा वदन्ति ॥ ३३ ॥

जहाँतक होसके कान्तलोहा लेवे, यदि वह न मिले तो उसके अभावमें तीक्ष्ण (फौलाद) लोहा लेवे क्योंकि वह गुणोंमें श्रेष्ठ और मृदु होता है । श्रेष्ठ वैद्य मुंड नामक लोहामें अनेक दोष कहते हैं इस हेतु उसका त्याग करनाही योग्य हैं क्योंकि वह ग्रहण करनेके योग्य नहीं है ॥ ३३ ॥

लोहशोधनावश्यकत्वम् ।

अशुद्धं तु मृतं लोहमायुर्हारि रुजाकरम् ।
कुष्ठाङ्गमर्दहृत्पीडां दद्यात्तस्मात्सुशोधयेत् ॥ ३४ ॥

विना शुद्ध किये हुएही माराहुआ लोहा सेवन करनेसे आयुकी हानि तथा रोगोंको पैदा करता है, कुष्ठरोग, अंगोंका टूटना और हृदयमें पीडाको उत्पन्न करता है, इस कारण वैद्यको उचित है कि, लोहेका विधिपूर्वक शोधन करे ॥ ३४ ॥

लोहस्थितसप्तदोषाख्यानम् ।

गुरुता दृढता क्लेदी कश्मली दाहकारकः ।
अश्मदोषः सुदुर्गन्धो सप्त दोषा अयःस्थिताः ॥ ३५ ॥

लोहमें भारीपन, दृढता, क्लेद, कश्मल, दाहकत्व, गिरिदोष, दुर्गन्ध यह सात दोष स्थित हैं ॥ ३५ ॥

लोहस्थदोषदर्शनपुरस्सरं तच्छोधनावश्यकता ।

गरलं क्लमवान्तिवीर्यहा इति दोषान्प्रवदन्ति शोधकाः ।
अथ शोधनभावकान्पुटान्विधिनैकेन वदन्ति सूरयः ॥ ३६ ॥

धातुशोधक वैद्य लोहमें विष, क्लम, वमन, वीर्यनाशकत्व आदि दोषोंको कहते हैं इस कारण वह लोहकी शोधक पुटोंको एक विधिसे वर्णन करते हैं ॥ ३६ ॥

सर्वलोहशोधनप्रकारः ।

शशरक्तेन संलिप्तं चिञ्चार्कपयसायसम् ।
दलं हुताशने ध्मातं सिक्तं त्रैफलवारिणा ॥ ३७ ॥

लोहेपर शश अर्थात् खरगोशके रुधिरका लेप करके अग्निमें तपाकर पहलेसे सिद्ध किये हुए त्रिफलाके काढेमें बुझावे इसी रीतिसे तीन पुट देवे तत्पश्चात् इमली और आकके दूधका अलग २ लेप करके पूर्ववत् त्रिफलाके काढेमें बुझावे इसी प्रकार तीन पुट देवे तो निस्सन्देह लोहाकी उत्तम शुद्धि होजाती है ॥३७॥

द्वितीयः प्रकारः ।

सर्वलोहानि तप्तानि कदलीमूलवारिणा ।
सप्तधाभिनिषिक्तानि शुद्धिमायान्त्यथोत्तमम् ॥ ३८ ॥

दूसरा प्रकार, सब प्रकारके लोहोंको अग्निमें तपा तपाकर केलाकी जडके रसमें सात बार बुझावे तो सहजमें ही उनकी उत्तम शुद्धि होजाती है ॥ ३८ ॥

तीक्ष्णमुण्डयोर्विशेषशुद्धिस्तदितरसामान्यशुद्धिश्च ।

शुद्धिमायाति तीक्ष्णं च मुण्डं निर्गुण्डिसेचनात् ।
इतराणि च लोहानि सर्वाण्युलूकविष्ठया ॥ ३९ ॥

तीक्ष्णलोहाको अग्निमें तपा २ कर सह्मालूके रसमें बुझावे तो वह शुद्ध हो जाता है और इसी प्रकार मुंडनामक लोहकी भी शुद्धि होजाती है । इन दोनोंसे अन्य सब लोहोंको पूर्ववत् अग्निमें तपा २ कर उल्लूकी विष्ठाके रसमें बुझावे तो वे शुद्ध हो जाते हैं ॥ ३९ ॥

लोहगिरिघ्न विशेषशुद्धिः ।

समुद्रलवणोपेतं तप्तं निर्वापितं खलु ।
त्रिफलाक्वथिते नूनं गिरिदोषमयस्त्यजेत् ॥ ४० ॥

लोहेको अग्निमें तपा २ कर सामुद्रनमकसे युक्त त्रिफलाके क्वाथमें बुझावे तो लोहेमें जो पर्वतदोष है वह दूर होवे ॥ ४० ॥

शुद्धलोहपरीक्षा ।

न विस्फुलिङ्गा न च बुद्बुदा यदा यदा न चैषां पटलं न शब्दः ।
मूषागतं रत्नसमं स्थिरं च तदा विशुद्धं प्रवदन्ति लोहम् ॥ ४१ ॥

अग्निमें तपानेसे जिसमें चिनगारियाँ न निकलें और पानीमें बुझानेसे बुलबुले न उठे, तथा जो पर्तरहित हो जिसमें आवाज न हो, मूषामें रखनेसे जो रत्नके सदृश स्थित रहे उसको शुद्ध लोहा समझना चाहिये ॥ ४१ ॥

लोहमारणावश्यकता ।

सम्यगौषधकल्पानां लोहकल्पः प्रशस्यते ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन लोहमादौ विमारयेत् ॥ ४२ ॥

जहाँतक हो सक सर्व प्रयत्नसे पहले लोहका मारण करे क्योंकि यह लोहकल्प सब औषधियोंके कल्पमें श्रेष्ठ मानाजाता है ॥ ४२ ॥

मारणेऽयसोमितिस्तत्क्रियासु मन्त्रपठनाज्ञा च ।

नातः पचेत्पंचपलादर्वागूर्ध्वं त्रयोदशात् ।
आदौ मन्त्रस्ततः कर्म कर्तव्यं मन्त्र उच्यते ॥ ४३ ॥
ॐ अमृतोद्भवाय स्वाहा ॥ ४४ ॥

पाँच पलसे न्यून और तेरह पलसे अधिक लोहा न फूँके, पर लोहेकी शोधन तथा मारणादि क्रिया करनेके पूर्वही "ॐ अमृतोद्भवाय स्वाहा" इस मंत्रका जप कर लिया करे तत्पश्चात् शोधनादि कार्य करे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

लोहे पारदाभ्रकसंस्कारावश्यकता ।

न रसेन विना लोहं न लोहं चाभ्रकं विना ।
एकत्वेन शरीरस्य बन्धो भवति देहिनाम् ॥ ४५ ॥
पारदेन विना लोहं यः करोति पुमानिह ।
उदरे तस्य कीटानि जायन्ते नात्र संशयः ॥ ४६ ॥

पारा और अभ्रकके संस्कार विना लोहकी भस्म नहीं होती, क्योंकि एकतासेही देहियोंके शरीरका बन्ध होता है जो मनुष्य पारेके विना लोहकी भस्म बनाता है और उसका सेवन करता है उसके पेटमें निस्सन्देह कीडे उत्पन्न होजाते हैं॥४५॥४६॥

तीक्ष्णलोहभस्मविधिः ।

शुद्धं लोहभवं चूर्णं पातालगरुडीरसैः ।
मर्दयित्वा पुटेद्वह्नौ दद्यादेवं पुटत्रयम् ॥ ४७ ॥
पुटत्रयं कुमार्याश्च कुठारच्छिन्नकारसैः ।
पुटषट्कं ततो दद्यादेवं तीक्ष्णमृतिर्भवेत् ॥ ४८ ॥

शुद्ध किये हुए लोहेके चूर्णको छिरहिटाके रसमें घोटकर शरावसंपुटमें रख कपरमिट्टी करे और जंगली उपलोंकी अग्निमें गजपुटमें फूँकदेवे इसी प्रकार सब तीन पुट देवे, तत्पश्चात् घीकुवारके रसमें खरलकर पूर्ववत् तीन पुट देवे, और हडसंकरीके रसमें खरलकर छः पुट देवे तो तीक्ष्ण अर्थात् फौलाद लोहेकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

द्वादशांशेन दरदं तीक्ष्णचूर्णे च मेलयेत् ।
कन्यानीरेण संमर्द्य यामयुग्मं तु तत्पुनः ॥ ४९ ॥
शरावसंपुटे कृत्वा पुटेद्गजपुटेन च ।
सप्तधैवं कृतं लोहं रजो वारितरं भवेत् ॥ ५० ॥

दूसरा प्रकार,-शुद्ध किये हुए पौलदका जितना चूर्ण हो उसका बारहवाँ भाग सिङ्गरफका मिलाकर घीकुवारके रसके साथ दो प्रहर पर्यन्त खरल करे तत्पश्चात् शरावसंपुटमें रख कपरमिट्टी करके गजपुटमें फूँकदेवे इसी प्रकार सब मिलाकर सात पुट देवे तो पानीपर तैरनेवाली लोहभस्म सिद्ध हो जावे ॥४९॥२०॥

तृतीयः प्रकारः ।

काकोदुम्बरिकानीरे लोहपत्राणि सेचयेत् ।
तप्ततप्तानि षड्वारं कुट्टयेत्तदुलूखले ॥ ५१ ॥
तत्पञ्चमांशं दरदं क्षिप्त्वा सर्वं विमर्दयेत् ।
कुमारीनीरतस्तीक्ष्णं पुटे गजपुटे तथा ॥ ५२ ॥
त्रिवारं त्रिफलाक्काथैस्तत्संख्याकैरतन्द्रितः ।
एवं चतुर्दशपुटैर्लोहं वारितरं भवेत् ॥ ५३ ॥

तीसरा प्रकार,-पौलादके कंटकबेधी पत्रोंको अग्निमें तपा २ कर कठूमरिके रसमें बुझावे तत्पश्चात् ओखलीमें डालकर उनको कूटे, यह एक पुट हुई इसी प्रकार सब मिलाकर जब छः पुट देचुके तब लोहपत्रोंका पाँचवा भाग उसमें सिङ्गरफ मिलाकर घीकुवारके रसमें दो प्रहर तक खरल करके शरावसंपुटमें रख कपरमिट्टी कर गजपुटमें फूँकदेवे ऐसे ही सब मिलाकर पाँच पुट देवे तत्पश्चात् त्रिफलाके काढेमें खरल करके तीन पुट देवे । इस प्रकार सब चौदह पुट देनेसे पानीपर तैरनेवाली लोहभस्म सिद्ध होजाती है ॥ ५१-५३ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

तिन्दूफलस्य मज्जायां खड्गं लिप्त्वातपे खरे ।
धारयेत्कांस्यपात्रेण दिनैकेन पुटत्यलम् ॥ ५४ ॥
लेपं पुनः पुनः कुर्याद्दिनान्ते तत्प्रपेषयेत् ।
त्रिफलाक्काथसंयुक्तं दिनैकेन मृतिर्भवेत् ॥ ५५ ॥

चौथा प्रकार–लोहेके पत्रोंको तिन्दू फलके गूदेका लेप करके कांसीके पात्रमें रख तेज धूपमें सुखालेवे इसी प्रकार दिनमें वारवार लेप कर करके धूपमें सुखालिया करे, सायंकाल त्रिफलाके काढेके साथ खरल करके गजपुटकी आँच देनेसे एक ही दिनमें भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

पञ्चमः प्रकारः ।

लोहे पत्रमतीव तप्तमसकृत्क्काथे क्षिपेत्रैफले
चूर्णीभूतमतो भवेत्त्रिफलजे क्काथे पचेद्गोजले ।
मत्स्याक्षीत्रिफलारसेन पुटयेद्यावन्निरुत्थं भवेत्
पश्चादाज्यमधुप्लुतं सुपुटितं शुद्धं भवेदायसम् ॥ ५६ ॥

पाँचवाँ प्रकार–लोहेके कंटकबेधी पत्रोंको अग्निमें वार २ खूब गरम कर करके त्रिफलाके काढेमें अनेकवार बुझावे और त्रिफलाहीके क्काथमें खरल करके गौके मूत्रमें पकावे तत्पश्चात् मछेछी और त्रिफलाके क्काथमें तब तक भावना दे जब तक कि वह भस्म निरुत्थ न होय फिर घृत और शहदमें लपेटकर पुट देनेसे लोहा शुद्ध होजाताहै ॥ ५६ ॥

षष्ठः प्रकारः ।

शुद्धं सूतं द्विधा गन्धं खल्वे कृत्वाथ कज्जलीम् ।
द्वयोः समं लोहचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥ ५७ ॥
यामद्वयात्समुद्धृत्य तद्गोलं ताम्रपात्रके ।
आच्छाद्यैरण्डपत्रैश्च यामार्द्धेत्युष्णतां ददेत् ॥ ५८ ॥
धान्यराशौ न्यसेत्पश्चात्त्रिदिनान्ते समुद्धरेत् ।
संपेष्य गालयेद्वस्त्रे सत्यं वारितरं भवेत् ॥ ५९ ॥
कान्ततीक्ष्णं तथा मुण्डं निरुत्थं जायते ध्रुवम् ॥ ६० ॥

अच्छे प्रकार शुद्ध किया हुआ पारा एक भाग, शुद्ध गंधक दो भाग और दोनोंके बराबर लोहेका चूर्ण लेकर घीकुवारके रसमें दो प्रहर पर्यन्त खरलकर गोला बनालेवे और उस गोलेको किसी स्वच्छ ताँबेके पात्रमें रखकर अरंडके पत्तोंसे आच्छादित करके आधे प्रहर धूपमें रख सुखालेवे तदनन्तर उस गोलेको अन्नकी राशिमें तीन दिवस तक गाडे रक्खे, और चौथे दिन अन्नकी राशिसे उस गोलेको अलग निकाल बारीक पीसकर किसी स्वच्छ कपडेमें छानलेवे तो निस्सन्देह यह भस्म जलके ऊपर तैरने लगे इसी प्रकारसे कान्त, तीक्ष्ण और मुंड इन तीनों लोहोंकी निरुत्थ भस्म सिद्ध होजाती है (यदि खाँसी आती हो तो इस भस्मको लोहरसायनके साथ देनेसे फायदा होताहै, और यह भस्म सुवर्णपर्पटी तथा योगराज योगमें भी मिलाई जाती है) ॥ ५७-६० ॥

सप्तमः प्रकारः ।

लोहचूर्णपलं खल्वे सोरकस्य पलं तथा ।
अश्वगान्धपलं चापि सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ ६१ ॥
कुमार्यद्भिर्दिनं पश्चाद्गोलकं ऋभुपत्रकैः ।
संवेष्ट्य च मृदा लिप्त्वा पुटेद्गजपुटेन च ॥ ६२ ॥
स्वांगशीतं समुद्धृत्य सिन्दूराभमयोरजः ।
मृतं वारितरं ग्राह्यं सर्वकार्यकरं परम् ॥ ६३ ॥

अच्छे प्रकार शुद्ध किये हुए लोहेका चूर्ण एक पल अर्थात् चार तोले, शोरा एक पल और असगंध एक पल इन सबोंको एकमें मिलाकर घीकुवारके रसके साथ एक दिन खरल करे जब ठीक २ खरल होजावे तो उसका गोला बना अरंडके पत्तोंमें लपेटकर ऊपरसे मिट्टीका लेप करदे और गजपुटकी आँचमें पकावे जब स्वयं शीतल होजावे तो गोलेको अलग निकाल लेवे । यह लोहभस्म सिंदूरके तुल्य लालरंग युक्त, जलमें तैरनेवाली और सम्पूर्ण कार्योंको करनेवाली तथा गुणोंमें श्रेष्ठ है अतः ग्रहण करनेके योग्य है ॥ ६१-६३ ॥

अष्टमः प्रकारः ।

आदौ लोहविचूर्णितं तदनु गोतोये विभाव्यं दिने
रात्रौ चैव पुटाश्च विंशतिमिताः कूर्माख्ययन्त्रे शुभे ।
एवं वै त्रिफलाजलस्य कथिता भावाश्च षष्टिः पुटाः
कन्याया रसभावनाश्च कथिताश्चाष्टौ च वैद्यैः पुटाः ॥ ६४ ॥

वज्रार्कौ हलिनीङ्गुदी द्विरजनी गुंजा तुरंगी घना
निर्गुण्डी गरुडी कुठेरकनकं वह्निश्च मत्स्या लता ।
हैमी हंसपदी तथामृतलता भृङ्गेन्द्रवृक्षैर्दिने
रात्रौ तद्रसकं पृथक्पृथगहो सप्तैव भावाः पुटाः ॥ ६५ ॥
राजीतक्रयुतं सुखल्वकतले पिष्ट्वा दिनैकं दृढं
भावाश्चैव पुटाश्च सप्त कथिताः सर्वैश्च वैद्याधिपैः ।
भावा वै कथिता नगा दिनदिने नित्यं पुनः सूरिभी-
रात्रौ सप्त पुटाश्च सन्निगदिता यन्त्रे च कूर्माभिधे ॥ ६६ ॥
पश्चाद्भावपुटाश्च पञ्च सततं पञ्चामृतानां पुन-
स्तच्चूर्णस्य दशांशकं च दरदसुत्क्वाथ्य क्षीरे स्त्रियाः ।
गोदुग्धे यदि वा त्रयोपि सततं पिष्ट्वा च भावा पुटेत्
पश्चादर्द्धसुपारदेन शुचिना गन्धेन कन्यारसैः ॥ ६७ ॥
तच्चूर्णं परिमर्दयेद्दृढतरं संपाचयेत्संपुटेत्
पश्चात्केवलकन्यकाशुचिरसैर्भस्म त्रिशः पाचयेत् ।
पश्चात्कज्जलिसन्निभं जलतरं शुद्धं च लोहं भवे-
देवं प्रोक्तबलाजलैः परिहृतं तल्लोहमुक्तं शुभम् ॥ ६८ ॥

आठवाँ प्रकार--शुद्ध किये हुए लोहेके बारीक चूर्णको दिनमें गोमूत्रमें खरल करे और रात्रिको कूर्मयन्त्रमें फूँक देवे, यह एक पुट हुई । ऐसे ही कच्छपयन्त्रमें बीस पुट देवे, और इसी प्रकार त्रिफलाके रसकी बार बार भावना देकर साठ वार गजपुटमें फूँके तत्पश्चात् घीकुवारके रसकी भावना दे दे कर आठ वार गजपुटमें पकावे और फिर थूहर, आक, कलिहारी, गोंदी, हल्दी, दारुहल्दी, घुँघची, असगंध, नागरमोथा, सम्हालू, छिरहिटा, वनतुलसी, धतूर, चित्रक, मछेछी, पीली जुही, लाल रंगकी लज्जालु, गिलोय, भाँगरा, देवदारु इन प्रत्येक औषधियोंके काढे वा रसमें अलग २ दिनमें खरल करे और रात्रिमें गजपुटकी आँचमें पकावे इस प्रकार सात दिवसमें सात पुट देवे, ऐसेही राई और छाँछके साथ एक दिन अच्छे प्रकार खरल करके रात्रिमें गजपुटकी आँचमें फूँक देवे यह एक बारकी क्रिया हुई । इसी प्रकार सात दिन पर्यन्त करे । दिन दिनमें सात भावना

दे और रात्रि रात्रिमें कच्छपयन्त्रमें सात पुट देवे । पश्चात् पंचामृत (गिलोय, गोखुरू, मुसली, गोरखमुण्डी, शतावर) के काढेकी पाँच भावना देकर पाँच बार गजपुटमें पकावे, इसके अनन्तर लोहेके चूर्णका दशवाँ भाग शिङ्गरफ मिलाकर स्त्री वा गौके दूधमें औटावे इस प्रकार तीन बार करे । अथवा पूर्वोक्त दोनों दूधोंमेंसे किसी एक दूधमें तीन वार खरल करके तीनही वार गजपुटकी आँचमें पकावे, तत्पश्चात् लोहचूर्णका आधा भाग शुद्ध पारा और आधा भाग शुद्ध गंधक मिलाकर घीकुवारके रसके साथ खूब खरल करके शरावसंपुटमें रख गजपुटकी आँचमें पकावे, जब स्वांगशीतल हो जावे तब शरावसंपुटसे अलग निकाल घीकुवारके रसकी तीन भावना देकर तीन वार गजपुटमें पकावे । इस पूर्वोक्त सर्व क्रियाके करनेसे कज्जलके सदृश रंग युक्त तथा जलमें तैरनेवाली शुद्ध भस्म सिद्ध होजाती है । यदि इस सिद्ध भस्ममें बलाके रसकी पुट देवे तो बहुतही उत्तम होजाती है ॥ ६४--६८ ॥

लोहभस्मपरीक्षा ।

सर्वमेव मृतं लोहं ध्मातव्यं मित्रपञ्चकैः ।
यदेवं स्यान्निरुत्थं तु सेव्यं वारितरं हि तत् ॥ ६९ ॥
मध्वाज्ये मृतलोहं च रूप्यं संपुटगे क्षिपेत् ।
रुद्ध्वा ध्मातं च संग्राह्यं रूप्यं वै पूर्वमानकम् ॥
तदा लोहमृतिं विद्यादन्यथा मारयेत्पुनः ॥ ७० ॥

सब लोहोंकी भस्ममें अलग २ मित्र पंचक मिलाकर अग्निमें रख धमनेसे यदि न जीवे और जलमें तैरती हो तो वह भस्म सेवन करनेके योग्य है । शहद, घी, लोहभस्म और चांदीको एकमें मिलाकर संपुटमें रख धमनेसे यदि चांदीका रंग तथा वजन ज्यौंका त्यौं रहे तो समझना चाहिये कि, लोहेका मारण ठीक २ होगया इससे अन्यथा हो तो फिर मारण करे ॥ ६९ ॥ ७० ॥

नवमः प्रकारः ।

तीक्ष्णस्य चूर्णं सरसं सगन्धं रसेन संमर्द्य भृशं कुमार्याः ।
पाकीकृतं कांस्यपुटांतरस्थं सूर्यातपे मृत्युमुपैति युक्तम् ॥ ७१ ॥

नववां प्रकार-शुद्ध पौलाद लोहका चूर्ण, शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक इन तीनोंको ग्वारपाठेके रसमें खरल करके काँसेके पात्रके संपुटमें रख सूर्यकी धूपमें रखदेवे तो लोह मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ७१ ॥

लोहमर्दनकालः ।

तावत्तु मर्दयेल्लोहं यावत्कज्जलसन्निभम् ।
करोति निहितं नेत्रे नैव पीडां मनागपि ॥ ७२ ॥

लोहेको तबतक खरल करे, जबतक वह काजलके तुल्य न हो और नेत्रोंमें लगानेसे कुछभी पीडा न करे ॥ ७२ ॥

पुटकालः ।

तावल्लोहं पुटेद्वैद्यो यावच्चूर्णीकृतो जले ।
निस्तरङ्गो लघुस्तोये समुत्तरति हंसवत् ॥ ७३ ॥

वैद्य तबतक लोहेमें पुट देता रहे जबतक कि, चूर्णीभूत, निस्तरंग और हलकापनसे युक्त वह लोहा पानीमें हंसके समान तैरे ॥ ७३ ॥

पुटावश्यकता ।

लोहानामपुनर्भावो यथोक्तगुणकारिता ।
सलिले तरणं वापि पुटनादेव जायते ॥ ७४ ॥
यथा यथा प्रदीयन्ते पुटास्तु खलु चायसे ।
तथा तथा विवर्द्धन्ते गुणाः शतसहस्रशः ॥ ७५ ॥

पुटोंकी आवश्यकता-लोहेका फिर न जीना और उसमें यथोक्त गुणकर्तृत्व तथा जलमें तैरना आदि पुट देनेसेही होते हैं अन्यथा जैसे जैसे लोहेमें अधिक पुट दिये जाते हैं वैसे वैसे उसमें गुणभी बढते जाते हैं ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

पुटगुणाः ।

पुटनात्स्याल्लघुत्वं च शीघ्रव्याप्तिश्च दीपनम् ।
जारितादपि सूतेन्द्राल्लोहानामधिका गुणाः ॥ ७६ ॥

पुट देनेके गुण-हलकापन, शरीरमें शीघ्र फैलना, तथा जठराग्निको प्रदीप्त करना आदि सब गुण लोहेमें पुट देनेसेही होते हैं पारेकी भस्मसेभी लोहभस्ममें अधिक गुण होते हैं ॥ ७६ ॥

स्वर्णादिमृतौ पुटविनिर्णयः ।

स्वर्णरौप्यवधे ज्ञेयं पुटं कुक्कुटकाभिधम् ।
ताम्रे काष्ठादिजो वह्निर्लोहे गजपुटानि च ॥ ७७ ॥

सुवर्ण और चाँदीके मारणमें कुक्कुटपुट और लोहेके मारणमें गजपुटका उपयोग करना चाहिये तांबेके मारणमें काष्ठादिककी अग्नि देनी चाहिये ॥७७॥

न्यूनाधिकपुटदाननिषेधः ।

रसादिद्रवपाकानां प्रमाणज्ञानजंपुटम् ।
नेष्टो न्यूनाधिकः पाकः सुपाकहितमौषधम् ॥ ७८ ॥

पारा आदि सब धातुमात्रके पाकमें जितने पुट लिखे हैं उतने ही पुट देना चाहिये उससे न्यून वा अधिक पुटोंका देना अनुचित है, क्योंकि यथार्थ पकी हुई औषधि हितकारी होती है ॥ ७८ ॥

लोहभस्मगुणाः ।

लोहं मृतं कज्जलसन्निभं तु भुंक्ते सदायो रसराजयुक्तम् ।
न तस्य देहे च भवन्ति रोगा मृतोपि कामःपुनरेति धाम ॥ ७९ ॥
आयुःप्रदाता बलवीर्यकर्ता रोगस्य हर्ता मदनस्य भर्ता ।
अयःसमानं नहि किञ्चिदन्यद्रसायनं श्रेष्ठतमं वदन्ति ॥ ८० ॥

लोहभस्मके गुण, जो मनुष्य काजलके तुल्य रंगवाली इस लोहभस्मको पारद सहित विधिपूर्वक सेवन करता है उस मनुष्यके शरीरमें किसी प्रकारके रोग नहीं उत्पन्न होते, और शान्तहुई कामाग्नि फिर भी प्रदीप्त होती है श्रेष्ठ वैद्यजन कहते हैं कि, इस लोहभस्मके सदृश उत्तम अन्य कोई रसायन नहीं है क्योंकि यह आयुको देनेवाली बलवीर्यको करनेवाली और कामदेवको पुष्ट करनेवाली है ॥ ७९ ॥ ८० ॥

लोहभस्मानुपानानि ।

शूले हिङ्गुघृतान्वितं मधुकणायुक्तं पुराणज्वरे
वाते साज्यरसोनकं श्वसनके क्षौद्रान्वितं त्र्यूषणम् ।
शीते व्याललतादलं समरिचं मेहे वरा सोपला
दोषाणां त्रितयेऽनुपानमुदितं सक्षौद्रमार्द्रोदकम् ८१ ॥

लोहभस्म सेवन करनेके अनुपान,--शूलमें हींग और घृतके साथ इस लोहभस्मका सेवन करना चाहिये, जीर्णज्वरमें शहद और पिप्पलीके साथ, वातमें घी और लहसनके साथ, श्वास रोगमें शहद सहित सोंठ, मिर्च, पीपलके साथ, शीतमें मिरच और पानके साथ, प्रमेहमें त्रिफला और मिश्रीके साथ, सन्निपातमें शहद मिलेहुए अदरखके रसके साथ इस भस्मको विधि पूर्वक सेवन करे तो रोगोंसे मुक्त होजाता है ॥ ८१ ॥

घृतेन वातके देयं मधुना पित्तजे ज्वरे ॥ ८२ ॥
श्लेष्मपित्ते चार्द्रकेण निर्गुण्डया शीतवातके ॥ ८३ ॥
शुण्ठी वाते सिता पित्ते कफे कृष्णा त्रिजातके ।
सन्धिरोगेषु सर्वेषु प्रोक्तं लोहानुपानकम् ॥ ८४ ॥
वल्लं वल्लार्द्धमानं च यथायोगेन योजयेत् ।
त्रिफलालोहचूर्णं च वलीपलितनाशनम् ॥ ८५ ॥
कज्जलीमधुकृष्णाभ्यां श्लेष्मरोगनिवारणम् ।
खण्डया सचतुर्जातं रक्तपित्तनिवारणम् ॥ ८६ ॥
पुनर्नवात्वगाक्षीरैर्बलवृद्धिकरं परम् ।
पुनर्नवारसेनैव पाण्डुरोगनिषूदनम् ॥ ८७ ॥
हरिद्राथा लोहचूर्णं पिप्पल्या मधुना सह ।
विंशतिं च प्रमेहाणां नाशयेन्नात्र संशयः ॥ ८८ ॥
शिलाजतुसमायुक्तं मूत्रकृच्छ्रनिवारणम् ।
वासकः पिप्पली द्राक्षा लोहं च मधुना सह ॥ ८९ ॥
गुटिकां भक्षयेत्प्रातः पञ्चकासनिवारणम् ।
ताम्बूलेन समायुक्तं भक्षयेल्लोहमुत्तमम् ॥ ९० ॥
अग्निदीप्तिकरं वृष्यं देहकान्तिविवर्द्धनम् ।
त्रिफलामधुसंयुक्तं सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ९१ ॥
पथ्या सिता लोहभस्म यथोक्तं गुणदं भवेत् ।
किमत्र बहुनोक्तेन देहलोहकरं परम् ॥ ९२ ॥
ये गुणा मृतरूप्यस्य ते गुणाः कान्तभस्मनः ।
कान्ताभावे प्रदातव्यं रूप्यं तद्गुणतुल्यकम् ॥ ९३ ॥

वातज्वरमें घीके संग, पित्तज्वरमें शहदके साथ, कफपित्तज्वरमें अदरकके रसके साथ, कफवातमें सम्हालूके रसके साथ, वातमें सोंठके, पित्तमें मिश्रीके, और कफमें पीपलके साथ सेवन करे, संधिरोगोंमें दालचीनी, इलायची और तेजपातके साथ सेवन करना चाहिये । इस लोहभस्मकी मात्रा तीन या डेढ रत्ती है,

जिस रोगमें जो अनुपान कहा है उसीके साथ इसका सेवन करे । वलीपलित रोगके नाशके लिये त्रिफला युक्त लोहभस्मका सेवन करे । कफरोगमें पारे और गंधककी कज्जली सहित पीपल तथा शहदके साथ, रक्तपित्तमें मिश्री और चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर) के साथ, बलवृद्धिकरनेमें पुनर्नवा और वंशलोचनके साथ, पाण्डुरोगमें पुनर्नवाके रसके साथ सेवन करे और हल्दी, पीपल तथा शहदके साथ सेवन करे तो बीस प्रकारके प्रमेहोंको नाश करती है । इसमें सन्देह नहीं है । शिलाजीतके साथ सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्रको हरती है, अडूसा, पिप्पली, दाख और शहत संयुक्त लोहभस्मकी गोली बनाकर नित्य सेवन करे तो पाँच प्रकारकी खाँसी दूर होती है, पानके रसके साथ इस लोहभस्मका सेवन करना जठराग्निको दीप्ति कारक है, वृष्य है, शरीरकी कान्तिको बढानेवाला है, त्रिफला और शहतके साथ सब रोगोंमें इसको देवे । अथवा छोटी हरड और मिश्रीके साथ देवे तो भी सब रोगोंको हरती है । इस लोहभस्मकी बहुत प्रशंसा करनेसे कुछ लाभ नहीं अतः इसके विषयमें केवल इतना ही कहा जाताहै कि, यह शरीरको लोहेके सदृश पुष्ट या मजबूत करती है, जो गुण रूप्यभस्मके हैं वही गुण कान्तभस्मके भी हैं, यदि कान्तभस्म न मिले तो रूप्य-भस्म देना चाहिये ॥ ८२--९३ ॥

लोहभस्मसेवनेऽपथ्यानि ।

कूष्माण्डं तिलतैलं च माषान्नं राजिकां तथा ।
मद्यमम्लरसं चैव त्यजेल्लोहस्य सेवकः ॥ ९४ ॥
मत्स्यजीवकवार्ताकं माषं च कारवेल्लकम् ।
व्यायामं तीक्ष्णमद्यं च तैलाम्लं दूरतस्त्यजेत् ॥ ९५ ॥

लोहभस्मके सेवनमें अपथ्य--लोहभस्मका सेवन करनेवाला मनुष्य कुम्हडा, तिलोंका तैल, उडद,राई, मदिरा और खट्टे पदार्थोंका त्याग करे । और मछली, जीवकका शाक, बैंगन, उडद, करेला, कसरत, लाल मिरचा आदि तीखे पदार्थ, मद्य, तेल, खटाई आदिकाभी त्याग करे ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

लोहस्यामृतीकरणम् ।

तोयाष्टभागशेषेण त्रिफलापलपञ्चकम् ।
घृतं क्वाथस्य तुल्यं स्याद्घृततुल्यं मृतायसम् ॥ ९६ ॥
पाचयेत्ताम्रपात्रे च लोहदर्व्या विचालयेत् ।

योगवाहं मयाख्यातं मृतं लोहं महारसम् ॥

इत्थं कान्तस्य तीक्ष्णस्य मुण्डस्यापि ह्ययं विधिः ॥ ९७ ॥

पांच पल त्रिफलेमें आठ हिस्सा जल मिलाकर काढा पकावे, पकते २ जब आठवाँ भाग जल शेष रहजाय तब गौका घी और घीकेही बराबर लोहेकी भस्मको लेकर तांबेके पात्रमें पकावे और लोहेकी कलछीसे चलाता जाय, जब जल और घृत दोनों जलजावें केवल लोहभस्महीं शेष रहजाय तब चूल्हेपरसे उतारलेवे । यह मृत लोह महारस योगवाह मैंने कहा इसी प्रकारसे कान्त, तीक्ष्ण और मुंड नामक लोहकी विधि समझनी चाहिये ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

लोहभस्मसेवनमन्त्रः ।

ॐ अमृतेन्द्रं भक्षयामि नमः स्वाहा ।

लोहपाकभेदास्तल्लक्षणानि च ।

लोहपाकस्त्रिधा प्रोक्तो मृदुर्मध्यः खरस्तथा ।

पंकशुष्करसौ पूर्वौ वालुकासदृशः खरः ॥ ९८ ॥

लोहपाक तीन प्रकारका होताहै उनमेंसे जो कीचके तुल्य हो वह मृदु कहाता है, जिसका रस सूखगया हो वह मध्यम कहाता है और जो वालुके सदृश हो वह खर कहाता है ॥ ९८ ॥

लोहद्रावणम् ।

देवदाल्या रसैर्भाव्यं गन्धकं दिनसप्तकम् ।

तस्य प्रवापमात्रेण लोहास्तिष्ठन्ति सूतवत् ॥ ९९ ॥

गंधकको सात दिन पर्यन्त देवदालीके फलके रसमें भावना देकर पीसलेवे और इस तपाये हुए लोहामें छोडे तो लोहा पारेके तुल्य पतला होकर ठहर जायगा ॥ ९९ ॥

तीक्ष्णवत्कान्तेऽपि क्रियाकरणात्ता (?) ।

तीक्ष्णमारणयोगेन कान्तमारणमिष्यते ।

शुद्धश्च तादृशी ज्ञेया सेवनं तु तथैव हि ॥ १०० ॥

पहले जिस रीतिसे फौलादका मारण कहागया है उसी रीतिसे कान्तसंज्ञक लोहकाभी मारण करना चाहिये, और शोधन तथा सेवन करनेकी विधिभी उसी प्रकार समझनी चाहिये ॥ १०० ॥

अल्पौषधपुटादिसिद्धभस्मन आयुःक्षयकरत्ववर्णनम् ।

अल्पौषधस्तोकपुटैर्हीनगन्धकपारदैः ।
अपक्वलोहजं चूर्णमायुःक्षयकरं परम् ॥ १०१ ॥

लोहके शोधन, मारण और पुट आदिमें जितने औषध लिखे हैं उनसे न्यून औषधोंके द्वारा यदि उक्त शोधनादि क्रियायें की गई हों तथा पुटभी कम दिये गये हों और पारा, गंधकभी जितने चाहिये उतनेसे न्यून डाले गये हों ऐसा कच्चे लोहसे उत्पन्न कच्ची भस्म आयुष्यका नाश करती है ॥ १०१ ॥

अपक्वलोहभस्मसेवनोपद्रवाः ।

षण्ढत्वकुष्ठामयमृत्युदं भवेद्धृद्रोगशूलौ कुरुतेऽश्मरीं च ।
नानारुजानां च तथा प्रकोप करोति हृल्लासमशुद्धलोहम् ॥ १०२ ॥

यह अपक्वलोहभस्म नपुंसकता, कुष्ठरोग और मृत्युको देनेवाली है, तथा हृद्रोग, शूल, पथरी, हल्लास, और अनेक प्रकारके रोगोंकोभी उत्पन्न करती है ॥ १०२ ॥

अपक्वलोहसेवनोपद्रवशान्त्युपायः ।

मुनिरसपिष्टविडङ्गं मुनिरसलीढं चिरस्थितं घर्मे ।
द्रावयति लोहदोषान्वह्निर्नवनीतपिण्डमिव ॥ १०३ ॥

वायविडंगको अगस्तवृक्षके रसमें बारीक पीसे और उसको फिर उसी अगस्तके रसके साथ खाकर धूपमें अधिक समयतक बैठा रहे तो अग्नि जैसे माखनके पिण्डको पिघलाकर बहादेती है इसी प्रकार यह औषधभी लोहके समस्त विकारोंको पतला कर निकाल देती है ॥ १०३ ॥

अपक्वभस्मसेवनजकृम्यादिशां० ।

आरग्वधस्य मज्जाया रेचनं कीटशान्तये ।
भवेदप्यतिसारश्च पीत्वा दुग्धं तु तं जयेत् ॥ १०४ ॥
यदि लोहविकारेण उदरे शूलसंभवः ।
तदाभ्रकं विडङ्गं तु विडङ्गरससंयुतम् ।
पिबेद्वा खण्डमधुना एलाचूर्णं दिनत्रयम् ॥ १०५ ॥

यदि कच्ची भस्मके सेवनसे पेटमें कीडे पडगये हों तो अमलतासकी मज्जाको खावे उससे दस्तोंके द्वारा सब कीडे निकल जायंगे। अतिसार हो तो दूध पीकर दूर करे। और पेटमें शूल हो तो अभ्रककी भस्म तथा वायविडंगका चूर्ण

वायविडंगके रसके साथ पान करे अथवा छोटी इलायचीके चूर्णको खाँड और शहतके साथ तीन दिन पर्यन्त सेवन करे तो उदरशूल दूर होवे ॥१०४॥१०५॥

एवं लोहविधानं ते ह्यध्यायेऽस्मिन्प्रकीर्तितम्।
सम्यग् ज्ञात्वा च कृत्वा तत्कार्यमामयनाशनम् ॥ १०६ ॥

हे वत्स ! इस प्रकार इस सत्रहवें अध्यायमें लोहके शोधन तथा मारणादिका विधान मैंने तुमसे कहा उसको अच्छे प्रकार समझ तथा सिद्ध करके रोगोंका नाश करना चाहिये ॥ १०६ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे
लोहवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः।

अथातो मण्डूरवर्णनं नामाष्टादशाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब मंडूर वर्णन नामके अठारहवें अध्यायका वर्णन करते हैं ॥

गुरुरुवाच।

शृणु तात प्रवक्ष्यामि किट्टस्य शोधनादिकम्।
लोहाभावे प्रयोक्तव्यं नानारोगनिवृत्तये ॥ १ ॥

हे पुत्र ! अब मैं किट्ट वा मंडूरके शोधन तथा मारणादिकी विधिको कहताहूँ, तुम सुनो। यदि लोह या लोहभस्म न मिले तो अनेक रोगोंकी निवृत्तिके लिये इस मंडूरका उपयोग करना चाहिये ॥ १ ॥

किट्टोत्पत्तिः।

ध्मायमानमयो वह्नौ परित्यजति यन्मलम्।
तत्किट्टसंज्ञां लभते तदनेकविधं मतम् ॥ २ ॥

अग्निमें माराहुआ लोहा जिस मलको त्यागता है उसको किट्ट वा मंडूर कहते हैं वह अनेक प्रकारका होताहै ॥ २ ॥

मुण्डादिलोहकिट्टानां पृथगपृथग्लक्षणम्।

ईषच्छविगुरुस्निग्धं मुण्डकिट्टं जगुर्बुधाः।
भिन्नाञ्जनाभं यत्किट्टं विशेषाद्गुरु निर्व्रणम् ॥ ३ ॥
निष्कोटरं च विज्ञेयं तीक्ष्णकिट्टं मनीषिभिः।

पिङ्गं रूक्षं गुरुतरं तदर्धमवकोटरम् ॥
छिन्ने च रजतच्छायं स्यात्किट्टं स्थितकान्तजम् ॥ ४ ॥

जो किट्ट या कीटी स्वल्प रंगवाली हो और भारी तथा चिकनी हो वैद्योंने उसको मुंडलोहकी कीटी कहा है। जो बारीक अञ्जनके सदृश कृष्ण रंगसे युक्त, अतिगुरु, और व्रण, तथा छिद्रोंसे रहित हो उसको तीक्ष्ण (पौलाद) लोहकी कीटी कहते हैं। जो कीटी पीले रंगवाली तथा रूखी और भारी हो, वृक्षके समान जिसमें खोंतर नहो तोडनेपर जिसका रंग चाँदीके सदृश हो उसको कान्तलोहकी कीटी जानना चाहिये ॥ ३ ॥ ४ ॥

ग्राह्यकिट्टनिर्णयः ।

अकोटरं गुरु स्निग्धं दृढं शतसमाधिकम् ।
चिरोत्थितजनस्थाने संस्थितं किट्टमाहरेत् ॥ ५ ॥

जो कीटी छिद्रोंसे रहित, भारी, चिकनी, दृढ तथा सौ वर्षसे भी अधिक समयकी हो और जिस स्थानमें बहुत कालसे जनसमुदाय न निवास करता हो ऐसे स्थानमें स्थित हो उस किट्टको लेवे ॥ ५ ॥

किट्टस्योत्तममध्यमादिनिर्णयः ।

शतोत्थमुत्तमं किट्टं मध्यं चाशीतिवार्षिकम् ।
अधमं षष्टिवर्षीयं ततो हीनं विषोपमम् ॥ ६ ॥

सौ वर्षकी कीटी उत्तम होती है, अस्सी वर्षकी कीटी मध्यम होती है, और साठ वर्षकी कीटी अधम होती है, यदि इससे भी न्यून समयकी हो तो जहरके समान जानना चाहिये ॥ ६ ॥

मण्डूरनिर्माणविधिः ।

अक्षाङ्गारैर्धमेत्किट्टं लोहजं तद्गवां जलैः ।
सेचयेत्तप्ततप्तं तत्सप्तवारं पुनः पुनः ॥ ७ ॥
चूर्णयित्वा ततः क्वाथैर्द्विगुणैस्त्रिफलाभवैः ।
आलोडय भर्जयेद्वह्नौ मण्डूरं जायते वरम् ॥ ८ ॥

मंडूर बनानेकी विधि, बहेड वृक्षके कोयलोंकी अग्निमें पुरानी कीटी अच्छे प्रकार धमावे जब उसका रंग खूब लाल होजावे तब उसे गौके मूत्रमें बुझालेवे इसी प्रकार सात बार अग्निमें तपा तपा कर गोमूत्रमें बुझावे तत्पश्चात् उस किट्टका चूर्ण करे और इस चूर्णका दुगुणा त्रिफलेका क्वाथ एक स्वच्छ मिट्टीकी हंडीमें

भरकर उसमें चूर्णको मिलादेवे, हंडीका मुख शरावेसे बन्दकर कपरमिट्टी करके जङ्गली कंडोंकी आँच देकर गजपुटमें फूँकदेवे, जब स्वांगशीतल होजावे तब हंडीसे अलग निकाललेवे तो श्रेष्ठ मंडूर बनजाता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

हंसमण्डूरविधिः ।

मण्डूरं मर्दयेच्छ्लक्ष्णं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ।
त्र्यूषणं त्रिफला मुस्ता विडङ्गं चव्याचित्रकम् ॥ ९ ॥
दार्वी ग्रन्थीदेवदारु तुल्य तुल्यं विचूर्णयेत् ।
एतन्मण्डूरतुल्यं च पाकान्ते मिश्रयेत्ततः ॥ १० ॥
भक्षयेत्कर्षमात्रन्तु जीर्णान्ते तक्रभोजनम् ।
पाण्डुशोफं हलीमं च ऊरुस्तम्भं च कामलाम् ।
अर्शांसि हन्ति नो चित्रं हंसमण्डूरकाह्वयम् ॥ ११ ॥

हंसमण्डूरके बनानेकी विधि, त्रिफलाके काढेमें मंडूरको खरलकर अठगुने गोमूत्रमें पकावे, जब वह काढा सिद्ध होजाय तब उसमें त्र्यूषण (सोंठ, मिर्च, पीपल,) त्रिफला (हरड, बहेडा, आमला,) मोथा, बायविडंग, चव्य, चित्रक, दारुहलदी, पीपलामूल और देवदारु इन औषधोंको समान भाग लेकर बारीक पीसकर मिलादेवे, और प्रतिदिन एक कर्ष (अस्सी रत्ती) प्रमाण मात्रासे सेवन करे, इसके पचजानेपर छाँछका पान करे तो पांडु, शोफ, सूजन, हलीमक, उरुस्तम्भ, कामला और बवासीरको नष्ट करताहै, इसमें आश्चर्य नहीं है ॥९-११॥

वत्स चाष्टादशाध्याये मण्डूरोऽपि प्रकीर्तितः ।
लोहवच्चानुपानादि ज्ञेयञ्चस्यापि वत्सक ॥ १२ ॥

हे वत्स ! इस अठारहवें अध्यायमें मंडूर बनानेकी विधि भी कही गई । अनुपान आदि पूर्वोक्त लोहभस्मके समान ही इसके भी जानना चाहिये ॥१२॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे
मण्डूरवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः ।

अथातो मिश्रकधातुवर्णनं नामैकोनविंशाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम मिश्रक (कांस्य, पित्तल आदि) धातुओंका जिसमें वर्णन है ऐसे उन्नीसवें अध्यायका वर्णन करेंगे ॥

मिश्रकधातुवर्णनहेतुः ।

मिश्रकाणां च धातूनां ह्यौषधादौ विशेषतः ।
दृश्यते न प्रयोगस्तु प्रसंगाच्च तथापि ते ॥
किञ्चिच्च वर्णयिष्यामि वत्स तत्त्वं च श्रूयताम् ॥ १ ॥

हे वत्स ! यद्यपि कांस्य पीतल आदि मिश्रक धातुओंका प्रयोग औषधादिमें विशेषरूपसे नहीं देखाजाता तोभी प्रसंगवश उनके विषयमें भी कुछ तत्त्व बर्णन करताहूँ, तुम सुनो ॥ १ ॥

कांस्यनिर्माणविधिः ।

अष्टभागेन ताम्रेण द्विभागं कुटिलं युतम् ।
एकत्र द्रावितं तत्स्यात्कांस्यं तद्भोजने शुभम् ॥ २ ॥

आठ भाग तांबेमें दो भाग राँगा डालकर किसी पात्रमें रख आंचमें पिघलावे तो कांसा बन जाता है । इस कांसेके पात्रमें भोजन करना गुणकारी होता है ॥ २ ॥

कांस्यनामादिवर्णनम् ।

ताम्रत्रैपुजमाख्यातं कांस्यं घोषं च कंसकम् ।
उपधातुर्भवेत्कांस्यं द्वयोस्तरणिरंगयोः ॥ ३ ॥

कांसा ताँबा और राँगेकी उपधातु है क्योंकि तांबा और रांगा मिलाकर ही कांसा बनता है ताम्र त्रपुज, घोष तथा कंसक भी इसीका नाम है ॥ ३ ॥

कांस्यभेदास्तल्लक्षणानि च ।

कास्यं च द्विविधं प्रोक्तं पुष्पतैलकभेदतः ।
पुष्पं श्वेततमं तत्र तैलकं तु कफप्रदम् ।
एतयोः प्रथमं श्रेष्ठं सुसेव्यं रोगशान्तये ॥ ४ ॥

कांसा दो प्रकारका होता है पहला पुष्प है जिसको हिन्दी भाषामें फूल कहते है और दूसरा तैलक है । इन दोनोंमेंसे पुष्प जो कि सफेद होता है वही उत्तम है अतः रोगोंकी निवृत्तिके लिये वही सेबन करने योग्य है,और दूसरा तैलक नामक कांसा कफको पैदा करता है इस हेतु श्रेष्ठ नहीं ॥ ४ ॥

श्रेष्ठकांस्यपरीक्षा ।

श्वेतं दीप्तं मृदुज्योतिः शब्दाढ्यं स्निग्धनिर्मलम् ।
घनाङ्गसहसूत्राङ्गं कांस्यमुत्तममीरितम् ॥ ५ ॥

जो कांसा सफेद, चमकदार, नरम, उज्वल, शब्दयुक्त, स्निग्ध, मलरहित, घनकी चोटोंका सहनेवाला और लकीरोंसे युक्त हो वह श्रेष्ठ कहागया है ॥ ५ ॥

पित्तलोत्पत्त्यादिकथनम् ।

रीतिर्हि चोपधातुः स्यात्ताम्रस्य यशदस्य च ।
पित्तलस्य गुणा ज्ञेयाः स्वयोनिसदृशा बुधैः ॥ ६ ॥

पीतल ताँबा और जस्तेकी उपधातु है, (क्योंकि ताँबा और जस्तासे मिला-कर ही पीतल बनाई जाती है) इसके गुण ताँबा और जस्ताके सदृश ही समझना चाहिये ॥ ६ ॥

पित्तलभेदाः ।

रीतिका द्विविधा प्रोक्ता तत्राद्या राजरीतिका ।
काकतुण्डी द्वितीया सा तयोराद्या गुणाधिका ॥ ७ ॥

पीतल दो तरहकी होती है, राजरीतिका और काकतुंडी । इन दोनोंमेंसे राजरीतिका नामक पीतल गुणोंमें अधिक है ॥ ७ ॥

पित्तलपरीक्षा ।

संतप्ता कांजिके क्षिप्ता ताम्रा स्याद्राजरीतिका ।
काकतुण्डी तु कृष्णा स्यान्नासौ सेव्या हि रीतिका ॥ ८ ॥

अग्निकी आँचमें पीतलके तपाकर कांजीमें बुझानेसे यदि तांबेके तुल्य रंग निकले तो उसे राजरीति समझना चाहिये । और यदि काला रंग निकले तो उसको काकतुण्डी जानना चाहिये यह सेवन करने योग्य नहीं है ॥ ८ ॥

श्रेष्ठपित्तललक्षणम् ।

गुर्वी मृद्वी च पीताभा साराङ्गा ताडनक्षमा ।
सुस्निग्धा मसृणाङ्गी च रीतिरेतादृशी शुभा ॥ ९ ॥

जो पीतल, भारी, नरम, पीले रंगवाली, सारांगी घनकी चोट सहनेवाली, चिकनी और मसृणांगी हो वह श्रेष्ठ होती है ॥ ९ ॥

अधमपित्तललक्षणम् ।

पाण्डुपीता खरा रूक्षा वर्वरी ताडनेऽक्षमा ।
पूतिगन्धा तथा लघ्वी रीतिर्नेष्टा रसादिषु ॥ १० ॥

जो पीतल कुछेक पीली, खरदरी, रूखी, वर्वरी, घनकी चोटोंको न सहसकनेवाली, दुर्गन्धित और हलकी हो वह रसादिकोंमें इष्ट नहीं है ॥ १० ॥

पित्तलशोधनप्रकारः ।

त्रिक्षारैः पञ्चलवणैः सप्तधाम्लेन भावयेत् ।
रीतिकाशुद्धपत्राणि तेन कल्केन लेपयेत् ॥
रुद्ध्वा गजपुटे पक्त्वा शुद्धिमायाति नान्यथा ॥ ११ ॥

सज्जीखार, जवाखार, सुहागा, पाँचों नमक इनको अम्लद्रव्यकी सात २ भावना देकर पीतलके शुद्ध पत्रोंपर लेपकरे और शरावसंपुटमें रख गजपुटमें पकावे तौ पीतल शुद्ध होजाती है ॥ ११ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

रीतिकाशुद्धपत्राणि सिन्दुवाररसेऽथवा ।
निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि पथ्याचूर्णयुते भिषक् ॥ १२ ॥

दूसरा प्रकार,-अथवा पीतलके शुद्ध तथा तपाये हुए पत्रोंको छोटी हरडके चूर्णसे युक्त सम्हालूके रसमें बुझावे तो वह शुद्ध होजाते हैं ॥ १२ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

अम्लवर्गोक्तक्काथे च पाचयेद्विधिवद्भिषक् ।
पत्तलीकृतपत्राणि शुद्धिमायान्ति निश्चितम् ॥ १३ ॥

तीसरा प्रकार,-पीतलके बारीक पत्रोंको अम्लवर्गोक्त औषधियोंके काढेमें वैद्य पकावे तो निस्सन्देह वे शुद्ध होजाते हैं ॥ १३ ॥

कांस्यरीत्योः शोधनविधिः ।

कांस्यरीत्योश्च पत्राणि वह्नौ संतापयेन्मुहुः ।
निषिञ्चेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे च कांजिके ॥
गोमूत्रे च कुलत्थानां क्काथे वै सप्तधा पुनः ॥ १४ ॥

कांसी और पीतलके वारीक पत्रोंको अग्निमें तपाके और उन तप्त पत्रोंको सात सात वार तैल, छाँछ, कांजी, गोमूत्र और कुलत्थीके काढेमें बुझावे तो शुद्ध होजाते हैं ॥ १४ ॥

कांस्यशोधनप्रकारः ।

गोमूत्रेण पचेद्यामं कांस्यपत्राणि बुद्धिमान् ।
दृढाग्निना विशुध्यन्ति पक्कान्यम्लद्रवेऽपि वा ॥ १५ ॥

बुद्धिमान् वैद्य एक प्रहर तक गोमूत्रमें अथवा अम्लवर्गके काढेमें कांसेके पत्रोंको तेज आँचसे पकावे तो शुद्ध होजाते हैं ॥ १५ ॥

रीतिकांस्यमारणविधिः ।

रीतिकांस्यसमांशं तु ग्राह्यं गन्धकतालकम् ।
अर्कदुग्धे च संमर्द्य तत्पत्रेषु च लेपयेत् ।
शरावसंपुटे कृत्वा पचेद्गजपुटे द्विधा ॥ १६ ॥

कांसे और पीतलकी बराबर गंधक और हरिताल लेकर आकके दूधमें खरल करके कांसे वा पीतलके बारीक पत्रोंपर लेपकरे तत्पश्चात् उन पत्रोंको शरावसंपुटमें रखकर गजपुटमें पकावे । इसी प्रकार सब क्रिया करके एकबार और गजपुटमें पकावे तो वे पत्र शुद्ध होजाते हैं ॥ १६ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

अर्कक्षीरं वटक्षीरं निर्गुण्डीक्षीरकं तथा ।
ताम्ररीतिध्वनिवधे समगन्धकयोगतः ॥ १७ ॥

द्वितीय प्रकार-ताँबा, पीतल, कांसा इनमेंसे जिसकी भस्म बनाना अभीष्ट हो उसीकी बराबर गंधक लेकर आक, बडके दूध तथा सम्हालूके रसमें खरल करे पश्चात् ताँबा आदिके बारीक पत्रोंपर लेपकरके विधिपूर्वक गजपुटमें फूँकदेवे॥१७॥

तृतीयः प्रकारः ।

कांस्यकं राजरीतिं च ताम्रवच्छोधयेद्भिषक् ।
ताम्रवन्मारणं चापि तयोर्ज्ञेयं भिषग्वरैः ॥ १८ ॥

तीसरा प्रकार,-ताँबाके शोधन तथा मारणकी जो विधि पहले कहचुके हैं उसी विधिसे कांसा और पीतलका भी शोधन तथा समझना चाहिये ॥ १८ ॥

कांस्यपित्तलविद्धभस्मविधिः ।

आरं तारं समं कृत्वा मृतवंगं नियोजयेत् ।
एषा राजवती विद्या पिता पुत्रं न भाषते ॥ १९ ॥

यदि कांसा और पीतलकी वेधी भस्म बनाना हो तो पीतल और चाँदीको समान भाग लेकर पिघलावे तत्पश्चात् उसीमें वंगभस्म मिलादेवे तो चाँदी होजाती है । यह चाँदी बनानेकी विद्या पिता पुत्रसे नहीं कहता ॥ १९ ॥

पित्तलभस्मगुणाः ।

सकलमेहमरुद्गुदजांकुरं ग्रहणिकाकफपाण्डुभवं तथा ।
श्वसनकामलशूलभवां रुजं हरति भस्म तदाकरसंभवम् ॥ २० ॥

विधि पूर्वक बनाई हुई पीतलकी भस्म समस्त प्रमेह, वातरोग, बवासीर, संग्रहणी कफरोग, पाण्डुरोग, श्वास, खाँसी, कामला और शूलरोगको दूर करती है ॥२० ॥

कांस्यभस्मगुणाः ।

कांस्यं कषायं तिक्तोष्णं लेखनं विशदं खरम् ।
गुरु नेत्रहितं रूक्षं कफपित्तहरं परम् ॥ २१ ॥

कांसेकी भस्म स्वादमें कसेली और कडवी है, गरम है, लेखन तथा निर्मल है, खर और भारी है, नेत्रोंके लिये हित करती है, रूखी है, कफ और पित्तको नाश करनेवाली है ॥ २१ ॥

पित्तलदोषाः ।

विविधरोगचयं कुरुते भ्रमं गुदरुजं ह्यतिमेहरुजां गणम् ।
विविधतापकमातनुते तनावमृतमारकमाशु हि मृत्युदम् ॥ २२ ॥

पीतलकी भस्म यदि ठीक २ न पकी हो अर्थात् कची रहगई हो तो वह बहुत तरहके रोग, भ्रम, बवासीर, प्रमेह और देहमें अनेक प्रकारके ताप उत्पन्न करती है । यदि पीतलका मारण ही न किया गया हो तो वह तत्काल ही प्राणोंको हरती है ॥ २२ ॥

भर्ताख्यधातूत्पत्तिः ।

कास्यं रीतिस्तथा ताम्रं नागं वंगं च पञ्चमम् ।
एकत्र द्रावितैरेतैः पञ्चलोहः प्रजायते ॥ २३ ॥

कांसा, पीतल, ताँबा, सीसा, राँगा इन पांच प्रकारके धातुओंको किसी पात्रमें रख पिघलानेसे जो एक प्रकारका मिश्रित धातु बनाता है उसीको पंच-लोह, भर्त और उपरस भी कहते हैं ॥ २३ ॥

पञ्चलोहशोधनम् ।

आदौ तैलादिके शोध्यं पश्चात्तप्तं च मूत्रके ।
निषिक्तं शुद्धिमायाति पञ्चलोहं न संशयः ॥ २४ ॥

पंचलोहके बारीक पत्रोंको अग्निमें अच्छे प्रकार तपाय पहले तैलादिकमें शुद्ध करै और फिर मूत्रवर्गमें शुद्ध करै तो वे निस्सन्देह शुद्ध होजाते हैं ॥ २४ ॥

पञ्चलोहमारणम् ।

अर्कक्षीरेण संपिष्टं गन्धितालविलेपितम् ।
पञ्चकुम्भीपुटे भर्तं म्रियते योगवाहकम् ॥ २५ ॥

गंधक और हरिताल दोनोंको समान भाग लेकर आकके दूधमें अच्छे प्रकार घोटे पश्चात् पंचलोहके बारीक पत्रोंपर लेपकर शरावसंपुटमें रख गजपुटकी आँचमें फूँक देवे तो योगवाहक भर्तकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ २५ ॥

वर्ताख्यलोहोत्पत्तिः ।

यत्कांस्यरीतिलोहादिजातं तद्वर्तलोहकम् ॥ २६ ॥

कांसा, पीतल, लोहा इनको एकमें मिलाकर गलानेसे जो एक प्रकारकी धातु बनती है उसको वर्त कहते हैं (वर्तका शोधन और मारण पूर्वोक्त भर्तके समान ही जानना चाहिये) ॥ २६ ॥

मित्रपंचकयोगस्तत्प्रयोजनं च ।

घृतमधुगुग्गुलगुञ्जाटंकणमेतत्तु पञ्चकं मित्रम् ।
जीवयति सप्तधातूनङ्गाराग्नौ तु धमनेन ॥ २७ ॥

घी, शहद, गूगल, घूँघची, सुहागा इनकी मित्रपञ्चक संज्ञा है। धातुभस्म कच्ची है वा पक्की है, इसका निर्णय इसी मित्रपञ्चकसे होजाता है। विधि यह है कि–मित्रपंचकोक्त औषधियोंको धातुभस्ममें मिलाकर घरियामें रख कोयलोंकी अग्निमें धरे और धोंकनीसे धोंके यदि वह भस्म कच्ची होगी तो जी उठेगी ॥२७॥

धातुभस्मनो निरुत्थीकरणम् ।

गन्धकं चोत्थितं भस्म तुल्यं खल्वे विमर्दयेत् ।
दिनैकं कन्यकाद्रावे रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ।
इत्येवं सर्वलोहानां कर्तव्यं तु निरुत्थितम् ॥ २८ ॥

जो धातु भस्म कच्ची होनेके कारण पूर्वोक्त मित्रपंचकयोगसे फिर जी उठे, उस धातुभस्ममें उसीकी बराबर गंधक मिलाकर एक दिन ग्वारपाठेके रसमें खरल करके शरावसंपुटमें रख कपरमिट्टी कर गजपुटमें फूँक देवे तो निरुत्थ भस्म होती है। इसी प्रकार सोने, चाँदी आदि सब लोहोंकी निरुत्थ भस्म करनी चाहिये ॥ २८ ॥

अपक्कधातुजारणम् ।

हयनखगजदन्तं माहिषं शृङ्गमूलं
अजशशकनखं वै मेषशृङ्गं वदन्ति ।
मधुघृतगुडजातं टंकणं भेदतैलं
खलु पटुसमकांगं सर्वलोहस्य मृत्यै ॥ २९ ॥

घोडेके नख, हाथीके दाँत, भैंसके सींगकी जड, बकरी और शशाके नख, मेंढेके सींग, शहत, घृत, गुड, सुहागा, तेल और नमक इन सबको समान भाग लेकर कच्ची भस्ममें मिलावे पश्चात् खरलमें डालकर घोटे और शरावसंपुटमें रख गजपुटमें पकावे तो सम्पूर्ण लोहोंकी कच्ची भस्म मृत्युको प्राप्त होती है ॥ २९ ॥

सप्तधातुभस्मपरीक्षा ।

स्वर्णं कपोतकंठाभमारमेवं सदा भवेत् ।
शुल्वं मयूरकंठाभं तारवंगौ समुज्ज्वलौ ॥ ३० ॥
कृष्णसर्पनिभं नागं तीक्ष्णं कज्जलसन्निभम् ।
तदा शुद्धं विजानीयाद्वान्तिभ्रान्तिविवर्जितम् ॥ ३१ ॥

सुवर्ण और पीतलकी भस्म कबूतरके कंठके तुल्य रंगसे होती है, ताँबेकी भस्म मोरकंठके तुल्य नीले रंगसे युक्त होती है, चाँदी और राँगेकी भस्म सफेद रंगकी होती है, सीसेकी भस्म काले सर्पके तुल्य रंगवाली होती है, लोहेकी भस्म काजलके तुल्य काले रंगसे युक्त होती है यदि सब भस्म पूर्वोक्त अपने २ रंगसे युक्त हों तो शुद्ध जानना चाहिये अन्यथा नहीं यह शुद्ध भस्म वांति और भ्रांतिदोषसे रहित होती हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥

भस्मसेवनमात्राकथनप्रतिज्ञा ।

सेवनस्य प्रमाणं तु कथयिष्यामि साम्प्रतम् ।
स्वर्णादिसर्वधातूना यथावच्छृणु वत्स भोः॥ ३२ ॥

हे वत्स ! अब मैं सुवर्ण आदि सब धातुओंके भस्म सेवन करनेकी मात्रा यथायोग्य कहताहूँ तुम सुनो ॥ ३२ ॥

भस्मसेवनमात्रा ।

वल्लार्द्धं कनकं हि सुप्रकथितं रूप्यं च शुल्वं तथा
तीक्ष्णं वंगभुजंगमारनिचयो वल्लार्द्धवल्लोन्मितः॥

तत्तुल्या शुभ्रपिप्पली निगदिता क्षौद्रं च कर्षोन्मितं
सेव्यं संपरिहृत्य ग्रीष्मशरदौ ताम्रं सुसेव्यं नरैः ॥ ३३ ॥

सोने, चाँदी और ताँबेकी भस्म डेढ रत्ती सेवन करना चाहिये । तथा लोहा, राँगा, सीसा और पीतल इनकी भस्म तीन वा डेढ रत्ती सेवन करे, पूर्वोक्त भस्मोंमेंसे जिस भस्मका सेवन करे उसीके बराबर पीपल मिलावे और एक तोला शहदके साथ नित्य सेवन करे । परन्तु ताँबेकी भस्मका सेवन ग्रीष्म तथा शरद ऋतुको छोडकर अन्यऋतुओंमें करना चाहिये ॥ ३३ ॥

धातुभिरेव धातुमारणम् ।

तालेन वंगं दरदेन तीक्ष्णं नागेन हेमं शिलया च नागम् ।
शुल्वं तथा गन्धवरेण नित्यं तारं च माक्षीकवरेण हन्यात् ॥ ३४ ॥

धातुओंसेही धातुओंका मारण कहते हैं । वंगको हरितालसे, लोहेको शिंगरफसे, सुवर्णको सीसेसे, सीसेको मनाशिलसे, ताँबेको गंधकसे, चांदीको रूपामक्खीसे मारना चाहिये, धातुसे मारेहुए धातु श्रेष्ठ होते हैं ॥ ३४ ॥

सप्तधातुद्रावणोपायः ।

पीतमण्डूकगर्भे तु चूर्णितं टंकणं क्षिपेत् ।
रुद्ध्वा भाण्डे क्षिपेद्भूमौ त्रिसप्ताहात्समुद्धरेत् ॥ ३५ ॥
तत्समस्तं विचूर्ण्याथ द्रुते लोहे प्रवापयेत् ।
तिष्ठन्ति रसरूपाणि सर्वलोहानि नान्यथा ॥ ३६ ॥

अब सप्तधातुओंके द्रावण उपाय कहते हैं । पीले मेंढकके पेटमें यत्नसे सुहागेका चूर्ण भरकर किसी मिट्टीके पात्रमें उसको रक्खे और पात्रका मुख बंदकर कपरमिट्टी करके जमीनमें गाड देवे, इक्कीस दिनके अनन्तर निकालकर चूर्ण करलेवे, और गलायेहुए किसी लोहेमें इसको छोडे तो वह लोहरसके तुल्य पतले होकर स्थित रहते हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

तीक्ष्णचूर्णन्तु सप्ताहं पक्वधात्रीफलद्रवैः ।
लोलितं भावयेद्घर्मे क्षीरकन्दद्रवैः पुनः ॥ ३७ ॥
सप्ताहं भावितं सम्यक् स्रावसंपुटके ततः ।
धमितं द्रवतां याति चिरं तिष्ठति सूतवत् ॥ ३८ ॥

दूसरा प्रकार,--पके हुए आमलोंके रसमें सात दिन तक लोहचूर्णको भिगोकर धूपमें रक्खे तत्पश्चात् सात दिन क्षीरकंदके रसमें भिगोकर धूपमें रक्खे और इसको मूसेमें रखकर अग्निमें धमावे तो लोह द्रवताको प्राप्त होताहै और वह पारेके तुल्य बहुत दिन तक उसी रूपसे स्थित रहता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

अशुद्धस्वर्णादिधातुदोषाः ।

स्वर्णं सम्यगशोधितं श्रमकरं स्वेदावहं दुःसहं
रौप्यं जाठरजाड्यमांद्यजननं ताम्रं वमिभ्रान्तिदम् ।
नागं च त्रपु चाङ्गदोषदमथो गुल्मादिदोषप्रदं
तीक्ष्णं शूलकरं तु कान्तमुदितं कार्श्यामयस्फोटदम् ॥ ३९ ॥

अच्छे प्रकार शुद्ध नहीं किया हुआ सोना श्रम, स्वेद और दुःखका करनेवाला होताहै, अशुद्ध चांदी उदरको जकडती और जठराग्निको मन्द करती है, अशुद्ध ताँबा वमन तथा भ्रांतिको पैदा करता है अशुद्ध सीसा और राँगा अङ्गोंमें दोषोंको उत्पन्न करता है तथा गुल्म आदि दोषोंकोभी पैदा करता है, अशुद्ध पौलाद लोहा शूलको उत्पन्न करता है, अशुद्ध कांत लोहा कृशताका रोग और विस्फोटकको उत्पन्न करता है ॥ ३९ ॥

अशुद्धमुण्डादिलोहदोषाः ।

शुद्धौ न तौ स्याद्यदि मुण्डतीक्ष्णौ क्षुधापहौ गौरवगुल्मदायकौ ।
कान्तायसंक्लेदकतापकारकं रीत्यौ च संमोहनक्लेशदायिके ॥ ४० ॥

यदि मुंड और तीक्ष्ण लोहा शुद्ध न किये गये हों तो क्षुधाको नष्ट करते हैं, जडता और गुल्मरोगको उत्पन्न करते हैं, अशुद्ध कांतलोह क्लेद और तापको पैदा करता है, यदि पीतल और कांसे अशुद्ध हों तो मोह तथा दुःखको पैदा करते हैं ॥ ४० ॥

यथावदुपचारयुक्तसद्वैद्यप्रशंसा ।

इति कथितपथे यो मारयेदष्टलोहं प्रकृतिपुरुषभेदं देशकालौ विदित्वा ।
उपचरति रुजार्तं धर्ममूर्तिर्यशोर्थी स भवति नृपगेहे देववत्पूजनीयः ॥ ४१ ॥

जो धर्ममूर्ति और यशकी अभिलाषा करनेवाले श्रेष्ठ वैद्य प्रकृति और पुरुषोंके भेद तथा देश कालकी व्यवस्थाको अच्छे प्रकार जानकर पहले जिस प्रकार लोहोंके मारनेकी रीतियाँ कही गई हैं उसी रीतिसे आठ प्रकारके लोहोंकी मारण करता और रोगोंसे दुःखित मनुष्यकी चिकित्सा करता है वह राजसभामें देवताओंके समान पूजनीय होताहै ॥ ४१ ॥

सोऽयं ते ह्यष्टलोहानां प्रकारः क्रमशोऽनघ ।
वर्णितश्चाष्टभिस्तात ह्यध्यायैः शास्त्रसंमतैः ॥ ४२ ॥
अथ चैकोनविंशे तु वर्णिता मिश्रका ह्यपि ।

हे अनघ तात! मैंने शास्त्रसंमत आठ अध्यायोंमें आठ प्रकारके लोहोंके शोधन तथा मारणादिका प्रकार तुमसे क्रमपूर्वक वर्णन किया तत्पश्चात् इस उन्नीसवें अध्यायमें मिश्रक धातु भी वर्णन किये गये ॥ ४२ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे मिश्रकधातुवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः ।

अथातः स्वर्णमाक्षिकाद्युपधातुवर्णनं नाम विंशाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम सोनामक्खी आदि उपधातुओंके वर्णनसे युक्त बीसवें अध्यायको कहेंगे ॥

शिष्य उवाच ।

धातूनां वर्णनं नाथ यथावद्धि श्रुतं मया ।
अधुना कृपया ब्रूहि ह्यथ के चोपधातवः ।
कस्मिन्कर्मणि ते योज्याः कथं तेषां च संस्कृतिः ॥ १ ॥

शिष्यने कहा कि, हे गुरो ! स्वर्णादि धातुओंका वर्णन तो यथायोग्य मैंने सुना अब आप कृपा करके उपधातु कौनस हैं तथा किस काममें उनको उपयोग किया जाता है और उनके संस्कार आदि किस प्रकार किये जाते हैं यह सब वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

सप्तोपधातुवर्णनम् ।

माक्षिकं तुत्थकाभ्रौ च नीलांजनशिलालका ।
रसकश्चेति विज्ञेया एते सप्तोपधातवः ।
विमला अष्टमं चात्र केचिद्रसविदो विदुः ॥ २ ॥

सोनामक्खी, नीलाथोथा, अभ्रक, सुरमा, मनशिल, हरताल, खपरिया यह सात उपधातु कहाते हैं कोई रसशास्त्रके ज्ञाता वैद्य आठवीं उपधातु रूपामाखी बतलाते हैं ॥ २ ॥

अन्यच्च ।

सुवर्णमाक्षिकं तद्वत्तारमाक्षिकमेव च ।
तुत्थं कांस्यं च रीतिश्च सिन्दूरं च शिलाजतु ।
एते सप्त समाख्याता विद्वद्भिरुपधातवः ॥ ३ ॥

श्रेष्ठ वैद्योंने सुवर्णमाक्षिक, तारमाक्षिक, नीलाथोथा, कांस्य, पित्तल, सिंदूर, शिलाजीत ये सात उपधातु कही हैं ॥ ३ ॥

स्वर्णमाक्षिकाद्युत्पत्तिः ।

स्वर्णजं स्वर्णमाक्षीकं तारजं तारमाक्षिकम् ।
तुत्थं ताम्रभवं ज्ञेयं कंकुष्ठं वंगसंभवम् ॥ ४ ॥
रसको यशदाज्जातो नागात्सिन्दूरसंभवः ।
लोहाज्जातं लोहकिट्टमेते सप्तोपधातवः ॥ ५ ॥

सोनामक्खी सुवर्णसे उत्पन्न होती है, रूपामक्खी चाँदीसे, नीलाथोथा ताँबेसे, कुंकुष्ठ वंगसे, खपरिया जस्तेसे, सिन्दूर सीसेसे और लोहकिट्ट लोहेसे पैदा होती है ॥ ४ ॥ ५ ॥

मुख्यधात्वभावे तदुपधातुग्रहणाज्ञा ।

अभावे मुख्यधातूनां प्रयोज्यास्तूपधातवः ।
कुर्वन्ति तद्गुणा लोके बहुयत्नेन शोधिताः ॥ ६ ॥

मुख्य सुवर्ण आदि धातुओंके अभावमें उनके उपधातुओंका उपयोग करना चाहिये क्योंकि बडे यत्नसे शुद्ध किये हुए सोनामक्खी आदि उपधातु भी मुख्य सुवर्णादि धातुओंके समान ही गुण करते हैं ॥ ६ ॥

अन्यच्च ।

स्वर्णाभावे मृतं ताप्यं ततोऽपि स्वर्णगैरिकम् ।
रूप्यादीनामलाभे तु प्रक्षिपेद्विमलादिकम् ॥ ७ ॥

सोनेके न मिलने पर मृत सोनामक्खी लेनी चाहिये और यदि सोनामक्खी भी न मिले तो सोनागेरू लेना योग्य है तथा चाँदी आदिके न प्राप्त होनेपर रूपामक्खी आदिका प्रक्षेप करे ॥ ७ ॥

उपधातुशोधनम् ।

त्रिकट्वर्के वरार्के च क्रमेण रविभावनाः ।
कर्तव्याश्चोपधातूनां पूर्वं दोषापनुत्तये ॥ ८ ॥

सोनामक्खी आदि सब उपधातुओंके दोषोंक दूर करनेके लिये त्रिकुटु अर्थात् सोंठ, मिर्च, पीपल और त्रिफलाके रसकी बारह बारह भावना देवे तो वे शुद्ध होजाते हैं ॥ ८ ॥

उपधातुमारणम् ।

पादांशं सैन्धवं दत्त्वा तूपधातून्विमर्दयेत् ।
दशधा चाम्लवर्गेण कटाहे लोहसंभवे ॥ ९ ॥
घर्षयेल्लोहदण्डेन प्रत्येकं च मुहूर्तकम् ।
यथा सिन्दूरवर्णत्वं धातूनां जायते ध्रुवम् ॥ १० ॥

सोनामक्खी आदि उपधातुओंका चौथाई भाग उसमें सेंधानमक मिलाकर खरल करे तत्पश्चात् लोहेकी कडाहीमें डालकर अम्लवर्गोक्त औषधियोंकी दश भावना देवे और लोहेके मूसलेसे घोटता जाय, प्रत्येक औषधको दो २ घडी घोटे । यदि इस उक्त क्रियासे उपधातुओंकी भस्म बनावे तो सिन्दूरके तुल्य रंगवाली होती है ॥ ९ ॥ १० ॥

स्वर्णमाक्षिकोत्पत्तिः ।

कृष्णस्तु भारतं कृत्वा योगनिद्रामुपागतः ।
तस्य पादतलं विद्धं व्याधेन मृगशङ्कया ॥ ११ ॥
ये तत्र पतिता भूमौ क्षताद्रुधिरबिन्दवः ।
तेभ्यो निम्बफलाकारा जाता माक्षिकगोलकाः ॥ १२ ॥

जिस समय श्रीकृष्ण भगवान् भारत युद्ध कराकर योगकी नींदमें प्राप्त हुए उस समय किसी व्याधने मृगकी शंकासे श्रीकृष्ण भगवान्‌का पादतल बाणसे बेधा और उस चरणके घावसे जो पृथ्वीमें रक्तकी बूँदे गिरीं उन बूदोंसे निम्बफलके समान आकृतिवाली गोल सोनामक्खी धातु उत्पन्न हुई ॥ ११-१२ ॥

अन्यच्च ।

सुवर्णशैलप्रभवो विष्णुना कांचनो रसः ।
तापीकिरातचीनेषु यवनेषु च निर्मितः ॥ १३ ॥
ताप्यः सूर्यांशुसंतप्तो माधवे मासि दृश्यते ।
मधुरः कांचनाभासः साम्लो रजतसन्निभः ॥ १४ ॥

किञ्चित्कषाय उभयः शीतपाको कटुर्लघुः ।
तत्सेवनाज्जराव्याधिविषैर्न परिभूयते ॥ १५ ॥

विष्णु भगवान्ने सोनेके पहाडसे पैदा हुए कांचनरसको तापी, किरातदेश, चीनदेश और यवनोंके देशमें निर्माण किया, वैशाख मासमें सूर्यकी किरणोंसे तप्त होकर वह तापी देशमें होनेवाला ताप्यमाक्षिक दिखलाई देता है, यह ताप्य-माक्षिक स्वादमें मधुर है, सोनेकीसी कान्तिसे युक्त है। रूपामक्खी स्वादमें खट्टी है और चांदीके सदृश कान्तिवाली है पूर्वोक्त सोनामाखी और रूपामाखी दोनों कुछ कषेली, शीतल, कटु और हलकी हैं, यदि विधिपूर्वक इनका सेवन करे तो वृद्धावस्था, व्याधि तथा विषदोषसे मनुष्य पीडित नहीं होता ॥ १३-१५॥

स्वर्णमाक्षिकनामानि तन्निरुक्तिश्च ।

स्वर्णमाक्षिकमाख्यातं तापीजं मधुमाक्षिकम् ।
ताप्यं माक्षिकधातुश्च माक्षिकं चापि तन्मतम् ॥ १६ ॥
किञ्चित्सुवर्णसाहित्यात्स्वर्णमाक्षिकमीरितम् ।
उपधातुः सुवर्णस्य किञ्चित्स्वर्णगुणैः समम् ॥ १७ ॥

स्वर्णमाक्षिक, तापीज, मधुमाक्षिक, ताप्य, माक्षिकधातु और माक्षिक यह सब सोनामाखीहीके नाम हैं यह कुछेक सोनेके तुल्य होनेसे सोनामाखी कही जाती है और सुवर्णकी उपधातु है, इसी कारण कुछ सुवर्णके समान गुणोंसे युक्त है ॥ १६ ॥ १७ ॥

माक्षिके न तन्मुख्यधातुगुणा एव किन्त्वन्येपीत्यादि वर्णयति ।

न केवलं स्वर्णगुणा वर्तन्ते स्वर्णमाक्षिके ।
द्रव्यान्तरस्य संसर्गात्सन्त्यन्येऽपि गुणा यतः ॥ १८ ॥
किन्तु तस्यानुकल्पत्वात्केचिदूना गुणाः स्मृताः ।
तथापि कांचनाभावे दीयते स्वर्णमाक्षिकम् ॥ १९ ॥
तपतीतीरजातत्वादित्येवं तद्द्वितीयकम् ।
कान्यकुब्जोद्भवं ताप्यं विज्ञेयं स्वर्णवर्णकम् ।
तपतीतीरगं तत्तु पञ्चवर्णमुदाहृतम् ॥ २० ॥

सोनामाखीमें केवल सोनेकेही सदृश गुण नहीं हैं किन्तु अन्य द्रव्योंके संबं-धसे उसमें सुवर्णसे इतर गुणभी विद्यमान हैं यद्यपि सोनेके अनुकल्प होनेसे

सोनामाखीमें कुछ गुण कम हैं, तथापि सुवर्णके न मिलनेपर स्वर्णमाक्षिकही दी जाती है। यह स्वर्णमाक्षिक तपती नदीके किनारे उत्पन्न होताहै और दूसरा कन्याकुमारीके निकट पैदा होताहै इसका रंग सोनेके रंगके समान होता है और तापी नदीके तीरका माक्षिक पंचवर्ण होता है ॥ १८-२० ॥

माक्षिकभेदौ तदुत्पत्त्यादिवर्णनं च।

माक्षिकं द्विविधं हेममाक्षिकं तारमाक्षिकम्।
तत्राद्यं माक्षिकं कान्यकुब्जोत्थं स्वर्णसन्निभम्।
तपतीतीरसंभूतं पञ्चवर्णं सुवर्णवत् ॥ २१ ॥

माक्षिकके दो भेद हैं, पहला स्वर्णमाक्षिक और दूसरा तारमाक्षिक इन दोनोंमेंसे स्वर्णमाक्षिक कान्यकुब्जमें उत्पन्न होता है और वह सोनेके तुल्य होता है तथा तपतीनदीके किनारे उत्पन्न होनेवाला स्वर्णमाक्षिक पांच वर्णका सुवर्णके समान होताहै ॥ २१ ॥

स्वर्णमाक्षिकलक्षणम्।

स्वर्णाभं स्वर्णमाक्षीकं निष्कोणं गुरुतायुतम्।
कृष्णतां विकिरेत्तत्तु करे घृष्टं न संशयः ॥ २२ ॥

सोनामाखी सुवर्णके तुल्य कान्तिवाली होती है, उसमें कोने नहीं होते, भारी होती है और हाथमें घिसी हुई निस्संदेह स्याही देती है ॥ २२ ॥

मारणार्हहेममाक्षिकलक्षणम्।

स्वर्णवर्णं गुरु स्निग्धमीषन्नीलच्छविच्छटम्।
कषे कनकवद्घृष्टं तद्धितं हेममाक्षिकम् ॥
पाषाणबहुलं प्रोक्तं ताराख्यं च गुणाल्पकम् ॥ २३ ॥

जो सुवर्णके समान रंगसे युक्त हो, भारी हो, चिकना हो, नीलछविवाला हो और कसौटीपर घिसनेसे सुवर्णके तुल्य झलक देवे उसको हेममाक्षिक कहते हैं जिस रूपामाखीमें बहुतसे पत्थरके टुकडे हों उसको श्रेष्ठ वैद्योंने अल्पगुणवाला कहा है ॥ २३ ॥

अन्यच्च।

माक्षिकं द्विविधं तत्र पीतशुक्लविभागतः।
चतुर्द्धाकरसंस्थानाद्विज्ञेयं क्षेत्रभेदतः ॥ २४ ॥

कदम्बगोलकाकारं शुक्तिकापुटसन्निभम् ।
तथाङ्गुलीयकाकारं भस्मकर्तरिका समम् ॥ २५ ॥
तारमाक्षीकविमले सुपीतं च सुलोहितम् ।
सुवर्णमाक्षिकं तेषु प्रवरं सप्तवर्णकम् ॥ २६ ॥
तद्वद्रजतवर्णं च हीनं शुक्तिपुटादिकम् ।
गुणतश्च सुवर्णेन प्रवरं परिकीर्तितम् ॥ २७ ॥

माक्षिक दो प्रकारका होता है एक पीले रंगका और दूसरा सफेद रंगका, और वही आकर अर्थात् खान और क्षेत्रके भेदसे चार प्रकारका होता है, इनमेंसे पहला कदम्बपुष्पके तुल्य गोल होता है, दूसरा मोतीकी सीपीके सदृश होताहै, तीसरा अँगूठीके आकार और चौथा भस्म तथा कतरनीके तुल्य होता है, इन पूर्वोक्त भेदोंके सुवर्णमाक्षिक, विमल, सुपीत, सुलोहित ये चार नाम हैं, उनमेंसे सुवर्ण-माक्षिक सात वर्णका श्रेष्ठ होता है, और चाँदीके समान वर्णवाला भी माक्षिक उत्तम है, जो सीपीके समान है उसको अधम जानना चाहिये, गुणमें तथा सोनेसे उत्पन्न होनेसे सोनामाखी उत्तम होती है ॥ २४–२७ ॥

माक्षिकशोधनम् ।

काञ्जिके निम्बुगोमूत्रे जयन्त्याः स्वरसे भिषक् ।
सुवर्णमाक्षिकं चैव तारमाक्षिकमेव च ॥ २८ ॥
बद्ध्वा गाढाम्बरे सम्यग्दोलायन्त्रे त्र्यहं पचेत् ।
शुध्यते नात्र सन्देहः सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ २९ ॥

सोनामाखी वा रूपामाखी इन दोनोंमेंसे जिसको शुद्ध करना हो उसको किसी स्वच्छ गाढे कपडेमें बाँधकर पोटली बनालेव, तत्पश्चात् कांजी, निंबू, गोमूत्र और अरणीके रसमें दोलायन्त्रके द्वारा विधिपूर्वक तीन दिन तक स्वेदन करे तो निस्सन्देह शुद्ध होजाती है । इस शुद्ध की हुई माक्षिकका सब योगोंमें योग करे ॥ २८ ॥ २९ ॥

माक्षिकमारणविधिः ।

तैलेनैरण्डजेनादौ याममात्रं विमर्दयेत् ।
सच्छिद्रे संपुटे धृत्वा पचेत्त्रिंशद्वनोपलैः ॥ ३० ॥

देवदाली हंसपदी वटार्कं च स्नुहीपयः ।
पुनर्मर्द्यं पुनः पाच्यं भूधरे च त्रिधात्रिधा ॥
म्रियते नात्र सन्देहः सत्यं गुरुवचा यथा ॥ ३१ ॥

पूर्वोक्त रीतिसे शुद्ध की हुई सोनामाखीको बारीक पीसलेवे और उसमें थोडासा अंडीका तेल मिलाकर एक प्रहर तक घोटे तत्पश्चात् उसकी टिकिया बनाकर शरावसंपुटमें रक्खे, और शरावसंपुटके ऊपरके ढक्कनमें एक छोटासा छिद्र करदेवे । पीछे तीस जङ्गली उपलोंकी आँच देकर पकावे जब स्वांगशीतल होजावे तब अलग निकाल लेवे और देवदाली (वंदाल), हंसपदी, वडकी जटा इसके रस तथा आक और थूहरके दूधकी अलग २ सातसात भावना देवे परन्तु प्रत्येक औषधकी भावना देनेके अनन्तर टिकिया बना शरावसंपुट अथवा भूधरयन्त्रमें दो सेर आरने उपलोंकी आँचमें पकालिया करे तदनन्तर अन्य भावना दियाकरे इस प्रकार सम्पूर्ण क्रिया करनेसे निस्सन्देह माक्षिकका मारण होजाता है, जैसे गुरुवचन सत्य होता है वैसे यह भी सत्य है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

एरण्डतैललुङ्गाम्बुसिद्धं शुद्ध्यति माक्षिकम् ।
सिद्धं वा कदलीकन्दतोयेन घटिकाद्वयम् ॥
तप्तं क्षिप्तं वराक्वाथे शुद्धिमायाति माक्षिकम् ॥ ३२ ॥

शुद्ध करनेका दूसरा प्रकार । सोनामाखीको अंडीके तेल और बिजौरानिम्बूके रसमें दो घडी तक पकावे तो शुद्ध हो जाती है, अथवा केलाकी जडके रसमें दो घडी पर्यन्त पकावे तो भी शुद्ध होजाती है, तथा सोनामाखीको आँचमें तपाकर त्रिफलाके काढेमें बुझानेसभी शुद्धि होती है ॥ ३२ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

माक्षिकस्य त्रयो भागा भागैकः सैन्धवस्य च ।
मातुलुङ्गद्रवैर्वाथ जम्बीरोत्थद्रवैः पचेत् ॥ ३३ ॥
चालयेल्लोहजे पात्रे यावत्पात्रं सलोहितम् ।
भवेत्ततस्तु संशुद्धिं स्वर्णमाक्षिकमृच्छति ॥ ३४ ॥

---

१ मूलमें तीन तीन भावना देनेकी विधि है उसके विरुद्ध जो सात २ भावना लिखीगई वह वृद्धवैद्योंकी सम्मति है मेरी नहीं ॥

सोनामक्खी तीन भाग और सेंधानमक एक भाग लेकर बारीक पीसलेवे, पीछे बिजौरा अथवा जंभीरी नींबूके रसके साथ लोहेकी कडाहीमें पकावे और कलछीसे चलाताजाय, पकाते २ जब सोनामक्खी और कडाही दोनों लाल रंगसे युक्त होजावें तब स्वर्णमाक्षिकको शुद्धि हुई समझना ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

अगस्त्यपत्रनिर्यासैः शिग्रुमूलं सुपेषितम् ।
तन्मध्ये पुटितं शुद्धं निम्बुजाम्लेन पाचितम् ॥ ३५ ॥

सहिंजनेकी जडको अगस्त वृक्षके पत्तोंके रसमें पीसकर शरावसंपुटमें रक्खे और उसी पीसी औषधके बीचमें सोनामक्खीको रखकर गजपुटकी आँचमें पकावे, स्वांगशीतल होनेपर निकाललेवे और फिर नीम्बूके रसमें पकावे तो शुद्ध होजाती है ॥ ३५ ॥

अशुद्धस्वर्णमाक्षिकदोषाः ।

अशुद्धं माक्षिकं कुयादान्ध्यं कुष्ठं क्षयं कृमीन् ।
शाधनयिं प्रयत्नेन तस्मात्कनकमाक्षिकम् ॥ ३६ ॥

सोनामाखीको प्रयत्नसे शुद्ध करना चाहिये क्योंकि अशुद्ध माक्षिके अंधापना, कुष्ठरोग, क्षयी और कृमिरोगको उत्पन्न करती है ॥ ३६ ॥

अन्यच्च ।

मन्दानलत्वं बलहानिमुग्रां विष्टम्भतां नेत्रगदान्सकुष्ठान् ।
करोति मालां व्रणपूर्वकं च शुद्ध्यादिहीनं खलु माक्षिकं च ॥ ३७ ॥

शोधनादिकोंसे रहित माक्षिक, अग्निमान्द्य, बलकी हानि, अफरा, नेत्ररोग, कुष्ठरोग, कंठमाला और व्रणको पैदा करता है ॥ ३७ ॥

स्वर्णमाक्षिकमारणविधिः ।

पिष्ट्वा कुलत्थस्य कषायकेण तक्रेण वाजस्य हि मत्रकेण ।
संचालयेद्वैद्यपतिः क्रमात्तन्मृतिं व्रजेद्वत्स सुहेममाक्षिकम् ॥ ३८ ॥

हे वत्स ! सोनामक्खीको बारीक पीसकर कुलथीके काढे, छाँछ और बकरीके मूत्रके साथ क्रमसे कडाहीमें पकावे और कलछीसे घोटता जाय तो उसकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ३८ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

मातुलुङ्गाम्बुगन्धाभ्यां पिष्टं मूषोदरे स्थितम् ।
पञ्चक्रोडपुटैर्दग्धं म्रियते माक्षिकं खलु ॥ ३९ ॥

एरण्डस्नेहगव्याज्यैर्मातुलुङ्गरसेन च ।
खर्परस्थं दृढं पक्कं जायते धातुसन्निभम् ॥ ४० ॥

दूसरा प्रकार,--विजौरा निंबूके रस, और गंधकके साथ सोनामाखीको पीसकर मूषामें रख पाँच वार वाराहपुटोंसे पकावे तो भस्म सिद्ध होजाती है। इस रीतिसे मृत माक्षिकको अंडीके तेल, गौके घृत और विजौरानींबूके रसके साथ किसी स्वच्छ बडे खपडेमें अच्छे प्रकार पकावे तो वह धातुके तुल्य होजाती है, इस विधिसे मारण किये हुए माक्षिकको रस और रसायनविधिमें देना चाहिये ३९-४०

तृतीयः प्रकारः ।

माक्षिकस्य चतुर्थांशं गन्धं दत्त्वा विमर्दयेत् ।
उरुबूकस्य तैलेन ततः कार्या सुचक्रिका ॥ ४१ ॥
शरावसंपुटे कृत्वा पुटेद्गजपुटेन च ।
धान्यस्य तुषमध्याधो दत्त्वा शीतं समुद्धरेत् ।
सिन्दूराभं भवेद्भस्म माक्षिकस्य न संशयः ॥ ४२ ॥

तीसरा–जितनी सोनामाखी हो उसका चौथा हिस्सा गंधक मिलाकर घोटे तत्पश्चात् अंडीका तल छोडकर टिकिया बनालेवे और उसको शरावसंपुटमें रख गजपुटकी आँचमें पकावे परन्तु अन्नकी भूषी ऊपर तथा नीचे बिछायदेवे, जब स्वांगशीतल होजावे तब अलग निकाललेवे तो सिन्दूरके समान लाल स्वर्णमाक्षिककी भस्म सिद्ध होजाती है इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

तैले तक्रे गवां मूत्रे आरनाले कुलत्थके ।
शोधयेत्त्रिफलाक्षारे माक्षिक वह्नितापितम् ॥ ४३ ॥
ततःपरं पुटे देयं कुमारीरसमर्दितम् ।
कृत्वा सुचक्रिकां शुष्कां कुक्कुटाख्ये पुटे पचेत् ।
सप्तविंशतिसंख्यास्ति ततः स्यादमृतोपमम् ॥ ४४ ॥

---

(१) अरत्निमात्रगर्ते यद्दीयते पूर्ववत्पुटम् ।
करीषाग्नौ तु तत्प्रोक्तं पुटं वाराहसंज्ञितम् ॥ १ ॥

अरत्नि (बद्धमुष्टि हाथ) प्रमाणसे गड्ढा खोदकर गजपुटादिके समान जिसमें आरने उपले भरकर अग्नि देवे उसको वाराहपुट कहते हैं ॥ १ ॥

चौथा प्रकार-, सोनामक्खीको अग्निमें तपा तपाकर तेल, छाँछ गोमूत्र, कांजी, कुलथीके क्काथमें और त्रिफलाके काढेमें बुझावे तो शुद्ध होजाती है, इस प्रकार शुद्ध की हुई सोनामक्खीको ग्वारपाठेके रसके साथ घोटकर टिकिया बना धूपमें सुखालेवे और कुक्कुटपुटमें सत्ताईस आँच देकर पकावे तो सोनामाखीकी अमृततुल्य भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

पञ्चमः प्रकारः ।

किमत्र चित्रं कदलीरसेन सुपाचितं सूरणकन्दसंपुटे ।
वातारितैलेन पुटेन ताप्यं पुटेन दग्धं वरपुष्टिमेति ॥ ४५ ॥

शुद्ध सोनामाखीका चूर्णकर सूरण (जमीकन्द) के संपुटमें रक्खे और किसी स्वच्छ खपडेमें अंडीका तेल डालकर उसको पकावे, पकाते समय लोहेकी कलछीसे चलाता जाय, इस प्रकार दो प्रहर पर्यन्त पकावे जब खूब लाल होजाय तब उतार लेवे और स्वांगशीतल होनेपर स्वर्णमाक्षिकको अलग निकाललेवे और प्रतिदिन मात्रासे, शहत और पीपलके साथ सेवन करे तो पांडु, तथा कामलादिरोग नष्ट होते हैं ॥ ४५ ॥

मृतमाक्षिकगुणाः ।

स्यान्माक्षिकं तिक्तसुदीपनं कटु दुर्नामकुष्ठामयभूतनाशनम् ।
पाण्डुप्रमेहक्षयनाशनं लघु सत्त्वं मृतं तस्य सुवर्णवद्गुणैः ॥ ४६ ॥

मरी हुई सोनामक्खी स्वादमें तीखी है, अग्निको दीपन करती है, कडवी है, और बवासीर, कुष्ठरोग, भूतव्याधि, पाण्डु, प्रमेह तथा क्षयी रोगको दूर करती है। यह हलकी है, इसका मृतसत्त्व सुवर्णके तुल्य गुण करताहै ॥ ४६ ॥

अन्यच्च ।

सुवर्णमाक्षिकं स्वादु तिक्तं वृष्यं रसायनम् ।
चक्षुष्यं वान्तिहृत्कण्ठ्यं पाण्डुमेहविषोदरम् ॥
अर्शशोफविषं कण्डूं त्रिदोषमपि नाशयेत् ॥ ४७ ॥

मरी हुई सोनामक्खी स्वादिष्ठ, कडवी, वृष्य और रसायन है, नेत्रोंके रोग, वमन, कंठरोग, पाण्डु, प्रमेह, उदररोग, बवासीर, सूजन, विषदोष, खुजली और त्रिदोषज रोगोंको दूर करती है ॥ ४७ ॥

---

(१) वितस्तिमात्रगर्ते यत्पुटयेत्तत्तु कौक्कुटम् ।
एक बालिस्त प्रमाण गहरे गढ्ढेमें जो पुट दी जाती है उसको कुक्कटपुट कहते हैं॥

स्वर्णमाक्षिकसत्त्वपातनविधिः ।

त्रिंशांशनागसंयुक्तं क्षारैरम्लैश्च वर्तितम् ।
ध्मातं प्रकटमूषायां सत्त्वं मुञ्चति माक्षिकम् ॥ ४८ ॥

जितना माक्षिक हो उसका तीसवाँ हिस्सा उसमें सीसा मिलावे और क्षारवर्ग तथा अम्लवर्गके सहित मूषामें रख पकावे और बंकनाल धोंकनीसे खूब धोंके तो माक्षिक सत्त्वको छोडता है ॥ ४८ ॥

माक्षिकसत्त्वमिश्रनागनाशनविधिः ।

सप्तवारं परिद्राव्यं क्षिप्तं निर्गुण्डिकारसे ।
माक्षीकसत्त्वसंमिश्रं नागं नश्यति निश्चितम् ॥ ४९ ॥

सीसा मिले हुए सोनामाखीके सत्त्वको सात बार आँचमें तपातपाकर सम्हालूके रसमें बुझावे तो सत्त्वमें मिला हुआ सीसा अवश्य नष्ट होजाता है ॥ ४९ ॥

माक्षिकसत्त्वपातनस्य द्वितीयः प्रकारः ।

क्षौद्रगन्धर्वतैलाभ्यां गोमूत्रेण घृतेन च ।
कदलीकन्दनीरेण भावितं माक्षिकं खलु ॥
मूषायां मुञ्चति ध्मातं सत्त्वं शुल्बनिभं मृदु ॥ ५० ॥

सोनामाखीमें शहद, अंडीका तेल, गोमूत्र, घृत और कदलीकंदके रसकी वारंवार भावना देवे तत्पश्चात् मूषामें रखकर बंकनाल धोंकनीसे धोंके तो ताँबेके समान लाल रंगका नरम सत्त्व निकलता है ॥ ५० ॥

माक्षिकसत्त्वस्य शुद्धाशुद्धपरीक्षा ।

गुञ्जाबीजसमच्छायं द्रुतिद्रावे च शीशवत् ।
ताप्यसत्त्वं विशुद्धं तद्देहलोहकरं परम् ॥ ५१ ॥

जिसका रंग घूँघचीके समान लाल होवे और द्रुति तथा द्रावमें सीसेके तुल्य नरम होवे ऐसे माक्षिकसत्त्वको शुद्ध समझना, यह सत्त्व शरीरको लोहेके समान दृढ करता है ॥ ५१ ॥

सत्त्वसंस्कारस्तत्सेवनविधिश्च ।

माक्षीकसत्त्वेन रसस्य पिष्टिं कृत्वा विलीने च बलिं निधाय ।
संमिश्र्य संमर्द्य च खल्वमध्ये निक्षिप्य सत्त्वद्रुतिमभ्रकस्य ॥ ५२ ॥

विधाय गोलं लवणाख्ययन्त्रे पचेद्दिनार्द्धं मृदुवह्निना च ।
स्वतः सुशीते परिचूर्ण्य सम्यग्वल्लोन्मितं व्योषविडङ्गयुक्तम् ॥ ५३ ॥
संसेवितं क्षौद्रयुतं निहन्ति जरां सरोगं त्वपमृत्युमेव ।
दुस्साध्यरोगानपि सप्तवासरैर्न तेन तुल्योस्ति सुधारसोपि ॥ ५४ ॥

माक्षिक सत्त्वके साथ पारा मिलाकर पिठी बनालेवे और जब पारा अच्छे प्रकार मिलजावे तब उसमें गन्धक डालकर खरलमें घोटे और पीछे इसमें अभ्रक सत्त्वकी द्रुति डालकर फिर घोटे, और उसका गोला बनालेवे तदन्तर एक हांडीमें नमक भरकर चूल्हेपर चढाय मन्द आँचमें दो प्रहर पर्यन्त पकावे जब स्वयं शीतल होजावे तब गोलेको अलग निकाल बारीक पीसलेवे और प्रतिदिन तीन रत्तीकी मात्रासे सोंठ, मिर्च, पीपल वायविडंग और शहदके साथ सेवन करे तो बुढापा, अपमृत्यु और कष्टसाध्य रोगोंको भी सात दिनमें नाश करता है, गुणोंमें इसके समान अमृत भी नहीं है ॥ ५२–५४ ॥

माक्षिकसत्त्वद्रावणविधिः ।

एरण्डोत्थेन तैलेन गुञ्जाक्षौद्रं च टंकणम् ।
मर्दितं तस्य वापेन सत्त्वं माक्षिकजं द्रवेत् ॥ ५५ ॥

अंडीका तेल, घूंघची, गुड, शहद, सुहागा इन सबको खरल कर माक्षिक सत्त्वमें डालनेसे वह द्रवरूप होजाता है ॥ ५५ ॥

माक्षिकानुपानानि ।

अनुपानं वरा व्योषं वेल्लं साज्यं हि माक्षिकम् ॥ ५६ ॥

त्रिफला, व्योष अर्थात् सोंठ, मिर्च, पीपल, काली मिर्च मक्खन और शहद यह सब माक्षिकके अनुपान हैं ॥ ५६ ॥

अपक्वमाक्षिकदोषाः ।

अपक्वमाक्षिकेणाशु देहे संक्रमते रुजा ।
तद्दोषविनिवृत्त्यर्थमनुपानं ब्रवीम्यहम् ॥ ५७ ॥

कच्चे माक्षिकके सेवन करनेसे शरीरमें अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं इस कारण उसके दोषोंकी निवृत्तिके लिये मैं अनुपान कहता हूँ ॥ ५७ ॥

माक्षिकदोषशान्त्युपायः ।

कुलत्थस्य कषायेण माक्षीकविकृतिं जयेत् ।
दाडिमस्य त्वचा वापि प्रोक्ता विकृतिनाशिनी ॥ ५८ ॥

यदि कच्चे माक्षिकके सेवनसे शरीरमें किसी प्रकारका विकार होगया हो तो कुलथी वा अनारके वक्कलके काढेसे उस माक्षिकविकारको दूर करे ॥ ५८ ॥

अध्याये विंशतितमे प्रोक्ता माक्षिकसत्क्रिया: ।
वत्स सम्यग्विदित्वा ता रोगी रोगात्प्रमुच्यते ॥ ५९ ॥

हे वत्स ! मैंने इस वीसवें अध्यायमें सोनासाखीके शोधन तथा मारणादिकी श्रेष्ठ क्रियाओंको कहा उनको अच्छे प्रकार जानकर रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है ॥ ५९ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे स्वर्णमाक्षिकवर्णनं नाम विंशतितमोऽध्याय: ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्याय: ॥

गुरुरुवाच ।

अधुना श्रूयतां तात रौप्यमाक्षिकवर्णनम् ।
यत्र तारो न लभ्येत तत्रास्य योजनं मतम् ॥ १ ॥

गुरुने कहा कि, हे पुत्र ! अब तुम रूपामक्खीके शोधन तथा मारण आदिका वर्णन सुनो, जहाँ चाँदी न मिले वहां इसकी योजना करना कहा है ॥ १ ॥

तत्रादौ तारमाक्षिकोत्पत्तिः ।

तारमाक्षिकमन्यत्तु भवेत्तद्रजतोपमम् ।
किञ्चिद्रजतसाहित्यात्तारमाक्षिकमीरितम् ॥ २ ॥
अनुकल्पतया तस्य ततो हीनगुणं स्मृतम् ।
न केवल रौप्यगुणा वर्तन्ते तारमाक्षिके ।
द्रव्यान्तरस्य संसर्गात्सन्त्यन्येपि गुणा मता: ॥ ३ ॥

पिछले बीसवें अध्यायमें वर्णन कियेहुए स्वर्णमाक्षिकसे तारमाक्षिक अन्य है, यह चाँदीके तुल्य होताहै, इसमें कुछ चाँदीका भी मेल है इससे इसको तारमाक्षिक कहा है, यह चाँदी नहीं है किन्तु चाँदीके समान है इसी हेतु इसमें चाँदीसे कुछ न्यून गुण हैं इस तारमाक्षिकमें केवल चाँदीके ही गुण नहीं है किन्तु अन्य द्रव्योंके सम्बन्धसे और भी गुण विद्यमान हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

तारमाक्षिकशोधनम् ।

कर्कोटीमेषशृंग्युत्थैर्द्रवैर्जम्बीरजैर्दिनम् ।
भावयेदातपे तीव्रे विमला शुद्धयति ध्रुवम् ॥ ४ ॥

रूपामक्खीको ककोडा, मेंढासिंगी और जंभीरी नींबू इन प्रत्येकके रसमें एक एक दिन धूपमें खरल रखकर घोटे तो निस्सन्देह वह शुद्ध होजाती है ॥ ४ ॥

तारमाक्षिकमारणविधिः ।

कुलत्थस्य कषायेण घृष्ट्वा तैलेन वा पुटेत् ।
तैलेन वाजमूत्रेण म्रियते तारमाक्षिकम् ॥ ५ ॥

शुद्ध की हुई रूपामक्खीको कुलथीके काढे या तिलके तेलमें एक दिन घोटे अथवा बकराके मूत्रमें एक दिन घोटकर शरावसंपुटमें रख गजपुटमें पकावे तो उसकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ५ ॥

स्वर्णमाक्षिकवज्ज्ञेयं तारमाक्षिकमारणम् ।
विमलाया गुणाः किञ्चिन्न्यूनाः कनकमाक्षिकात् ॥ ६ ॥

रूपामक्खीके मारणकी विधि भी सोनामक्खीके समान ही समझना चाहिये, और इस रूपामक्खीके गुण सोनामक्खीसे कुछ न्यून हैं (श्लोकमें मारण यह शब्द उपलक्षणमात्र है अतः शोधन तथा अन्य सत्त्वपातनादि कर्म भी पूर्वोक्त स्वर्णमाक्षिकके तुल्य ही जानना चाहिये ॥ ६ ॥

माक्षिकगुणाः ।

माक्षिको रजतहाटकप्रभः शोधितोऽतिगुणदः सुसेवितः ।
मेहकुष्ठकृमिशोफपाण्डुतापस्मृतीर्हरति चाश्मरीं जयेत् ॥ ७ ॥

माक्षिक चाँदी और सोनेके समान कान्तिवाला विधिपूर्वक शोधा हुआ यह अत्यन्त गुणदायक होताहै, अच्छे प्रकार सेवन कियाहुआ प्रमेह, कुष्ठ, कृमिरोग, सूजन, पांडु, अपस्मार तथा पथरी आदि रोगोंको दूर करता है ॥ ७ ॥

तापीजभेदादिवर्णनम् ।

तापीजं द्विविधं वदन्ति विमलामाक्षीकभेदादिह
त्रेधा स्यात्तु सुवर्णकांस्यरजतच्छायानुकारादिदम् ।
त्रिस्रोप्यस्रयुताश्चतुस्त्रिफलिका वृत्ताः स्वनामश्रियो
मध्ये तु त्रिफलाम्बु शुद्धयति दिनं वासाजशृङ्गीरसे ॥ ८ ॥

स्विन्ना जम्भरसेऽपि तालबलिनावस्वंशकेनाम्भसा
जंभस्यैव परिप्लुता दशपुटैर्जीवेन्न योगानुगा ॥ ९ ॥

विमला और माक्षिकके भेदसे ताप्यमाक्षिक दो प्रकारका होताहै और वह सोना, कांसा तथा चाँदीके समान कान्तिवाला होनेसे तीन प्रकारका होताहै जैसे सुवर्णविमला, कांस्यविमला, रौप्यविमला, इनमेंसे जो जिस धातुके समान है उसके पूर्व उसी धातुका योग किया गया है । सुवर्ण विमलादि तीनों माक्षिक कोनोंसे युक्त तीन या चार फहलवाले, गोल और अपनी २ शोभासे युक्त होते हैं इन सबोंमें कांस्यविमला उत्तम है । इनका चूर्ण बना वस्त्रमें बाँधकर त्रिफलाके काढे तथा अडूसे और मेढासिंगीके रस, और जंभीरी नींबूके रसमें दोलायन्त्रमें पकावे जब पकजाँय तब पोटलीसे विमलाचूर्णको अलग निकाललेवे और विमलाका आठवाँ भाग शुद्ध हरिताल और शुद्ध गंधक डालकर सबको जंभीरीनींबूके रसमें खरल करके गजपुटमें पकावे इसी प्रकार दश पुट देवे तो विमलाकी भस्म सिद्ध होजाती है । यह भस्म किसी योगके संयोगसे फिर नहीं जीती है ॥ ८ ॥ ९ ॥

मयात्र रौप्यमाक्षिकविधिः सम्यग्विवर्णितः ।
अध्याये ह्येकविंशे तु ज्ञात्वा तं तु सुखी भव ॥ १० ॥

हे वत्स । मैंने इस इक्कीसवें अध्यायमें रौप्यमाक्षिकके शोधन तथा मारण आदिका विधान मैंने तुमसे वर्णन किया उसको जानकर तुम सुखयुक्त हो॥१०॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे
रौप्यमाक्षिकवर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः ॥

गुरुरुवाच ।

अथ वत्स प्रवक्ष्यामि विमलायाश्च सत्क्रियाः ।
यासां प्रयोगमात्रेण मनुष्यो भद्रमश्नुते ॥ १ ॥

हे वत्स ! अब मैं तुमसे विमलाकी श्रेष्ठ क्रियाओंको कहूँगा जिनके प्रयोग मात्रसे मनुष्य सुखको प्राप्त होताहै ॥ १ ॥

विमलाभेदादिवर्णनम् ।

विमलस्त्रिविधः प्रोक्तो हेमाद्यस्तारपूर्वकः ।
तृतीयः कांस्यविमलस्तत्तत्कान्त्या स लक्ष्यते ॥ २ ॥
वर्तुलः कोणसंयुक्तः स्निग्धश्च फलकान्वितः ।
मरुत्पित्तहरो वृष्यो विमलोतिरसायनः ॥ ३ ॥
पूर्वो हेमक्रियासूक्तो द्वितीयो रूप्यकृन्मतः ।
तृतीयो भेषजे तेषु पूर्वः पूर्वो गुणोत्तरः ॥ ४ ॥

विमला तीन प्रकारका होता है उनमेंसे पहला सुवर्ण विमला, दूसरा रौप्यविमला और तीसरा कांस्यविमला है । ये सुवर्ण आदिकी कान्तिसे पहिचाने जाते हैं, ये सब गोल कोणयुक्त, चिकने और फहलदार होते हैं । बादी तथा पित्तको नष्ट करते हैं, वृष्य हैं, रसायन हैं । सोनेके कार्यमें सुवर्णविमला, चाँदीके कार्यमें रौप्यविमला और औषधके कार्यमें कांस्यविमलाका उपयोग करना चाहिये, इनमेंसे पूर्वपूर्वका विमला गुणोंमें श्रेष्ठ है ॥ २-४ ॥

अन्यच्च ।

माक्षीको द्विविधादिमः कनकरुग्दुर्वर्णवर्णोऽपरः
कांस्यश्रीकमुशन्ति केचन परं सर्वेऽपि पूर्वत्विषः ।
निष्कोणा गुरवः किरन्ति निभृतं घृष्टाः करे श्यामताम्॥ ५ ॥

माक्षिक दो प्रकारका होताहै उनमेंसे पहला सुवर्णमाक्षिक है, दूसरा दुर्वर्ण अर्थात् रौप्यमाक्षिक है और कोई २ वैद्यवर तीसरा कांस्यमाक्षिक भी कहते हैं, ये तीनों सुवर्ण, रौप्य, और कांस्यकी कान्तिके समान कान्तिसे युक्त, कोणरहित, भारी और हथेलीपर घिसनेसे श्यामरंगके देनेवाले होते हैं ॥ ५ ॥

विमलाशोधनविधिः ।

स्विन्नास्ते रुबुतैललुङ्गसलिलैर्यामेन शुद्ध्यन्ति च ।
पक्का वा घटिकाद्वयेन कदलीकर्कोटिकाकन्दयोः ॥ ६ ॥

पूर्वोक्त तीन प्रकारके माक्षिकोंको एक प्रहर पर्यन्त अंडीके तेलमें पकावे और पीछे बिजौरा नींबूके रसमें घोटे तो वे शुद्ध होजाते हैं अथवा केलाकी जडके और ककोडाके रसमें दो घडी पर्यन्त पकावे तो भी शुद्ध होजाते हैं ॥६॥

विमलामारणविधिः ।

रुद्धा कूर्मपुटैस्त्रिभिः पटुतरं लुङ्गाम्बुगन्धप्लुताः ।
स्युर्भस्मानि जघन्यमध्यसुभगास्ते व्युत्क्रमेणोदिताः ।
वृष्याः पाण्डुपटीयसो बलकरा योगोपयोगाः पुनः ॥ ७ ॥

पहले कहीहुई रीतिसे शुद्ध कियेहुए विमलाके चूर्णमें बिजौरा नींबूका रस और गंधक मिलाकर घोटे तदनन्तर शरावसंपुटमें रख कूर्मयन्त्रमें तीन आँच देवे तो स्वर्णमाक्षिकादिकी भस्म सिद्ध होजाती है इनमेंसे कांस्यमाक्षिक अधम रौप्यमाक्षिक मध्यम और सुवर्णमाक्षिक उत्तम है इनकी भस्म वृष्य है, पांडुरोगको हरती है बलको उत्पन्न करती है, योगके साथ अनेक गुण करती है ॥७॥

पुनर्विमलाशोधनविधिः ।

आटरूषजले स्विन्नो विमलो विमलो भवेत् ।
जम्बीररसवरसे स्विन्नो मेषशृङ्गीरसेऽथवा ॥
आयाति शुद्धिं विमलो धातवश्च तथापरे ॥ ८ ॥

विमलाको अडूसेके रसमें औटावे तो शुद्ध होजाता है । अथवा जंभीरी नींबूके या मेंढासिंगीके रसमें पकावे तो भी शुद्ध होता है अन्य धातु भी शुद्ध होते हैं॥८॥

मारणस्य द्वितीयः प्रकारः ।

गन्धाश्मलकुचाम्लैश्च म्रियते दशभिः पुटैः ॥ ९ ॥

गन्धक बडहल और अम्ल द्रव्योंके रसकी दश पुट देनेसे तीनों प्रकारकी विमला भस्म होजाती है ॥ ९ ॥

विमलासत्त्वपातनविधिः ।

सटंकलकुचद्रावैर्मेषशृङ्ग्याश्च भस्मना ।
पिष्टो मूषोदरे लिप्तः संशोष्य च निरुध्य च ॥ १० ॥

षट्प्रस्थं कौकिलैर्ध्मातो विमलः श्वेतसन्निभः ।
सत्त्वं मुञ्चति तद्युक्तो रसः स्यात्स रसायनः ॥ ११ ॥

सुहागा, बडहलका रस, मेढासिंगी, विमलाकी भस्म इन चारोंको एकमें घोट-कर मूषेके अंदर लेप करके धूममें सुखालेवे और ऊपरसे ढक्कन बन्द कर छः सेर कोयलोंकी आँचमें रख बंकनाल धोंकनीसे धोंके तो विमला सफेद सत्त्वको छोडती है, इस सत्त्वसे युक्त रस रसायन होता है ॥ १०–११ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

विमलं शिग्रुतोयेन कांक्षीकासीसटङ्कणम् ।
वज्रकन्दसमायुक्तं भावितं कदलीरसैः ॥ १२ ॥
मोक्षकक्षारसंयुक्तं ध्मापितं मकमूषगम् ।
सत्त्वं चन्द्रार्कसंकाशं प्रपतेन्नात्र संशयः ॥ १३ ॥

विमलाको सहिंजनेके रस, फिटकरी, कसीस, सुहागा और वज्रकन्द (शकर कन्द) के रसमें घोटे तत्पश्चात् केलाके रसकी भावना दे और पीछे मोखावृक्षका खार मिलाकर मूषामें रक्खे और कोयलोंकी आँचमें रख बंकनाल धोंकनीसे धोंके तो चन्द्र और सूर्यके तुल्य कान्तिसे युक्त सत्त्व निकलता है ॥ १२-१३ ॥

सत्त्वसंस्कारः ।

तत्सत्त्वं सूतसंयुक्तं पिष्टं कृत्वा सुमर्दितम् ।
विलीने गन्धके क्षिप्त्वा जारयेत्रिगुणालकम् ॥ १४ ॥
शिलां पञ्चगुणां चापि वालुकायन्त्रके खलु ।
तारभस्मदशांशेन तावद्वैक्रांतकं मृतम् ॥ १५ ॥
सर्वमेकत्र संचूर्ण्य पटेन परिगाल्य च ।
निक्षिप्य कूपिकामध्ये परिपूर्य प्रयत्नतः ॥ १६ ॥

पूर्वोक्त विधिसे निकाले हुए विमलाके सत्त्वके पारा मिलावे और घोटकर पिट्ठी बनालेवे, जब सत्त्व अच्छे प्रकारसे मिलजावे तब शुद्ध गंधक, तिगुना हरि-ताल और पंचगुना मनशिल डालकर वालुकायन्त्रमें जारण करे इस प्रकार जब विमलाके सत्त्वमें संस्कार होजाय तब उसमें उसीका दशवाँ भाग रूपरस और इतनी ही वैक्रान्तमणिकी भस्म मिलाकर घोटे और किसी स्वच्छवस्त्रमें छानकर सावधानीसे काँच आदिकी कूपीमें भरकर रखदेवे ॥ १४--१६ ॥

भस्मगुणाः।

लीढो व्योमवरान्वितो विमलको युक्तो घृतैः सेवितो
हन्याद्दुर्भगकृज्जरां श्वयथुकं पाण्डुप्रमेहारुचीः।
मूलार्तिं ग्रहणीं च शूलमतुलं यक्ष्मामयं कामलां
सर्वान्पित्तमरुद्भवान्किमपरैर्योगैरशेषामयान्॥ १७॥

अभ्रक, त्रिफला, तथा गौके मक्खनके साथ सेवन की हुई यह विमलाभस्म स्वरूप बिगाडनेवाले बुढापा, सूजन, पांडुरोग, प्रमेह, अरुचि, बवासीर, संग्रहणी, भयंकर शूल, क्षयीरोग, कामला, तथा पित्त और वातसे उत्पन्न सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करती है तो फिर अशेष रोगोंके नाशके लिये अन्य योगोंसे क्या प्रयोजन है? ॥ १७॥

अनुपानानि।

विषव्योषवराज्येन विमलः सेवितो यदि।
भगंदरादिका रोगा नृणां गच्छन्ति दुस्तराः॥ १८॥

सिंगिया विष, सोंठ, मिरच, पीपल, त्रिफला और घृत इनके साथ विमलाभस्मके सेवन करनेसे मनुष्योंके कष्ट साध्य भगंदरादि रोग नष्ट होते हैं॥ १८॥

विमलादोषशान्त्युपायः।

विकारो यदि जायेत विमलाया निषेवणात्।
शर्करासहिता भक्ष्या मेषशृङ्गी दिनत्रयम्॥ १९॥

कच्ची विमलाभस्मके सेवन करनेसे शरीरमें यदि किसी प्रकारका विकार उत्पन्न हो जावे तो मेंढासिंगीके चूर्णको मिश्रीके साथ तीन दिन पर्यन्त सेवन करना चाहिये॥ १९॥

द्वाविंशतितमेऽध्याये विमलाशोधनादिकम्।
तत्सेवनविधिश्चापि यथावद्वर्णितो मया॥ २०॥

हे वत्स! मैंने इस बाइसवें अध्यायमें विमलाके शोधन तथा मारण आदिका प्रकार और उसके सेवन करनेकी विधि यथायोग्य वर्णन किया॥ २०॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे
विमलावर्णनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः॥ २२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः ॥

अथातस्तुत्थवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम तुत्थवर्णन नामक तेइसवें अध्यायका वर्णन करते हैं ॥

गुरुरुवाच ।

अथ तुत्थविधानं तु श्रूयतां शिष्यसत्तम ।
यस्य विज्ञानमात्रेण रोगान्वै जयते भिषक् ॥ १ ॥

गुरुने कहा कि, हे शिष्यसत्तम ! अब तुम नीलाथोथेके शोधन तथा मारण आदिका विधान सुनो जिसके विज्ञानमात्रसे वैद्य रोगोंको जीत लेता है ॥ १ ॥

तुत्थोत्पत्तिः ।

पीत्वा हालाहलं वान्तं पीतामृतगरुत्मता ।
विषेणामृतयुक्तेन गिरौ मरकताह्वये ॥ २ ॥
तद्वांतं हि घनीभूतं संजातं सस्यकं खलु ।
एकधा सस्यकस्तुत्थः शिखिकण्ठसमाकृतिः ॥ ३ ॥
तुत्थस्यैव भवेद्भेदः खर्परं तद्गुणं भवेत् ।
शिखिकण्ठसदृक्छायं भाराढ्यमतिशस्यते ॥ ४ ॥
द्रव्यं विषयुतं यत्तद्द्रव्याधिकगुणं भवेत् ।
हालाहलं सुधायुक्तं सुधाधिकगुणं तथा ।
सस्यकं तुत्थकं चैव नामभेदात्प्रकीर्तितम् ॥ ५ ॥

नीलाथोथेकी उत्पत्ति,--गरुडने पहले हालाहल विषको पान किया परन्तु उनका चित्त जब मचलाया तब उन्होंने अमृतका पान किया तदनन्तर मर्कत नामक पर्वतपर अमृतसंयुक्त विषकी वमन किया, वही वमन घनीभूत होकर लोकमें सस्यक नामसे विख्यात हुआ इसीका दूसरा नाम तुत्थभी है जिसको हिन्दीभाषामें तूतिया या नीलाथोथा कहते हैं, रंग इसका मोर पक्षीकी गर्दनके तुल्य होताहै । इसी तुत्थका दूसरा भेद खर्पर (खपरिया) भी है उसके गुण नीलाथोथेके समानही होते हैं । इनमेंसे जो मोरकी गर्दनके तुल्य रंगसे युक्त और भारी हो वह तुत्थक अति श्रेष्ठ होताहै । विष जिस द्रव्यसे युक्त होता है उस द्रव्यसे अधिक गुण करता है, इसी हेतु अमृत संयुक्त हालाहल विष अमृ-

तसे अधिक गुणकारी है । सस्यक और तुत्थकमें केवल नाममात्रका भेद है वस्तुतः यह दोनों एकही द्रव्य हैं ॥ २-५ ॥

सस्यकशुद्धिः ।

सस्यकं शुद्धिमाप्नोति रक्तवर्गेण भावितम् ।
स्नेहवर्गेण संसिक्तं सप्तवारमदूषितम् ॥ ६ ॥

पहले रक्तवर्गोक्त औषधोंकी भावना देकर पीछे स्नेहवर्गमें सात बार औटावे तो नीलाथोथा शुद्ध होजाता है रक्तवर्ग और स्नेहवर्ग दोनों मध्यभागमें कहेंगे ॥ ६ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

दोलायन्त्रेण सुस्विन्नं सस्यकं प्रहरत्रयम् ।
गोमहिष्यजमूत्रेण शुद्ध्यतेऽयं च निश्चितम् ॥ ७ ॥

दूसरा प्रकार,–गौ, भैंसा और बकरा इन तीनोंके मूत्रमें तीन प्रहर तक दोलायन्त्रमें नीलाथोथेका स्वेदन करे तो वह निश्चय शुद्ध होजाता है ॥ ७ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

ओतोर्विष्ठासमं तुत्थं सक्षौद्रं टंकणान्वितम् ।
त्रिविधं पुटितं शुद्धं वान्तिभ्रान्तिविवर्जितम् ॥ ८ ॥

तीसरा प्रकार,–जितना नीलाथोथा हो उसीके बराबर बिल्लीकी बिष्ठा लेकर उसमें शहद और सुहागा मिलाकर खरल करे तदनन्तर शरावसंपुटमें रख कपर-मिट्टी करके फूँक देवे यह एक पुट हुई इसी रीतिसे दो पुट और देवे तो नीला-थोथा शुद्ध होजाता है और वह वान्ति तथा भ्रान्ति दोषसे रहित होताहै ॥ ८ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

अम्लवर्गेण लुलितं स्नेहसिक्तं हि तुत्थकम् ।
दोलायां वाजिगोमूत्रे दिनं पक्वं विशुध्यति ॥ ९ ॥

चौथा प्रकार,–तुत्थकको अम्लवर्गोक्त औषधोंके रसमें घोटकर स्नेहवर्गमें स्वेदन करे तत्पश्चात् दोलायन्त्रके द्वारा घोडा और गौके मूत्रमें औटावे तो शुद्ध होजाता है ॥ ९ ॥

पञ्चमः प्रकारः ।

विष्ठया मर्दयेत्तुत्थं मार्जारककपोतयोः ।
दशांशं टंकणं दत्त्वा पचेन्मृदुपुटे ततः ॥

पुटं दध्नः क्षौद्रपुटं देयं तुत्थविशुद्धये ॥ १० ॥

पांचवाँ प्रकार,–बिल्ली और कबूतरकी विष्ठामें तुत्थकको घोटे और उसका दशवाँ भाग सुहागा मिलाकर शरावसंपुटमें रख कपरमिट्टी करके जङ्गली उपलोंकी हलकी आँचमें पकावे, स्वांगशीतल होनेपर निकाल लेवे और दहीकी पुट देकर अग्नि देवे तत्पश्चात् सहतकी पुट देवे तो वह शुद्ध होजाता है ॥ १० ॥

तुत्थकमारणविधिः ।

लकुचद्रावगन्धाश्मटंकणेन समन्वितम् ।
अंधमूषागतं द्वित्रिकुक्कुटैर्मृत्युमाप्नुयात् ॥ ११ ॥

बडहरके रसमें गंधक, सुहागा और नीलाथोथेको घोटकर अंधमूषामें रख कुक्कुटपुटमें पकावे इसी प्रकार दो या तीन पुट देवे तो नीलाथोथेकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ११ ॥

तुत्थकसत्त्वपातनविधिः ।

सस्यकस्य तु चूर्णं तु पादसौभाग्यसंयुतम् ।
करञ्जतैलमध्ये तु दिनमेकं निधापयेत् ॥ १२ ॥
अंधमूषासुमध्यस्थं ध्मापयेत्कोकिलाग्निगम् ।
इन्द्रगोपाकृति त्वेवं सत्त्वं पतति शोभनम् ॥ १३ ॥

जितना नीलाथोथेका चूर्ण हो उसमें उसका चौथाई भाग सुहागा मिलाकर एकदिन कंजके तेलमें भिगोवे तत्पश्चात् अंधमूषामें रख कोयलोंकी अग्निमें पकावे और बंकनाल धोंकनीसे धोंके तो बीरबहूटीके रंगके समान सुन्दर लाल सत्त्व निकलता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

निम्बुद्रवाल्पटंकाभ्यां मूषामध्ये निरुध्य च ।
ताम्ररूपं परिध्मातं सत्त्वं मुञ्चति सस्यकम् ॥ १४ ॥

दूसरा प्रकार,–नीलाथोथेमें थोडासा सुहागा मिलाकर नींबूके रसमें मिलावे और उसे मूषामें रख बंकनाल धोंकनीसे धोंके तो ताँबेके समान लाल रंगका सत्त्व निकलता है ॥ १४ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

गुग्गुलुष्टंकणं लाक्षास्वर्जिःसर्जिरसः पटुः ।
ऊर्णागुञ्जाक्षुद्रमीना अस्थीनि शशकस्य च ॥ १५ ॥

गुञ्जामध्वाज्यसंयुक्तं पिण्याकं च ह्यजापयः ।
तुत्थस्य च दशांशेन प्राक्षिप्तं वटकीकृतम् ॥
ध्मातं च अंधमूषायां सत्त्वं पतति शोभनम् ॥ १६ ॥

गूगल, सुहागा, लाख, राल, सज्जी, नमक, ऊन, घूंघची, छोटी मछली, शशेकी हड्डी, घूंघची, शहत, घृत, खल अर्थात् स्नेहरहित तिलचूर्ण और बकरीका दूध इन सबको नीलाथोथेका दशवाँ भाग लेकर उसीमें मिलाकर वटक बनालेवे और मूषामें रख बंकनाल धोंकनीसे धोंके तो उत्तम सत्त्व निकलता है ॥१५॥१६॥

अग्निपुटं विनैव सत्त्वपातनविधिः ।

अथवा तुत्थकं चूर्णं निंबुतीरे विनिक्षिपेत् ।
धारयेल्लोहपात्रे च यावत्सप्तदिनानि वै ॥ १७ ॥
लोहपात्रात्समुद्धृत्य सत्त्वं ग्राह्यं सुशोभनम् ।
सिद्धयोगोयमाख्यातो हुताशनपुटं विना ॥ १८ ॥

अथवा लोहेके पात्रमें नींबूका रस भरे और उसमें नीलाथोथेके चूर्णको डालकर सात दिन पर्यन्त रक्खा रहने देवे, आठवें दिन पात्रकी पेंदीमें बैठे हुए नीलाथोथेके उत्तम सत्त्वको अलग निकाल लेवे । यह सिद्ध योग है, अग्निकी पुट दिये विना ही इस विधिसे सत्त्व निकल आता है ॥ १७ ॥ १८ ॥

शूलादिनाशिनीमुद्रिकानिर्माणादिविधिः ।

तुत्थसत्त्वं नागताम्रं हेमं चैव समांशकम् ।
मुद्रिकेयं विधातव्या शूलघ्ना तत्क्षणाद्भवेत् ॥ १९ ॥
चराचरविषं भूतं डाकिनीं च गदं जयेत् ।
कनिष्ठायां धार्यमाणा विषघ्नी सर्वदा भवेत् ॥ २० ॥
" रामवत्सोमसेनानीर्मुद्रितेयं तदक्षरैः ।
हिमालयोत्तरे तीरे अश्वकर्णो महाद्रुमः ॥ २१ ॥
तत्र शूलं समुत्पन्नं तत्रैव निधनं गतम् । "
मन्त्रेणानेन मुद्राम्बु निपीतं सप्तमन्त्रितम् ॥ २२ ॥
सद्यः शूलहरं प्रोक्तं सत्यं भालुकिभाषितम् ।
अनया मुद्रया तप्तं तैलमग्नौ सुनिश्चितम् ॥ २३ ॥

लेपितं हन्ति वेनेन शूलं यत्र क्वचिद्भवेत् ।
सद्यः सूतिकरं नार्याः सद्यो नेत्ररुजापहम् ॥ २४ ॥

नीलाथोथेका सत्त्व, नागताम्र और इन दोनोंकी बराबर सोना लेकर सबोंको एकमें मिलाकर अँगूठी बनाना चाहिये । क्योंकि यह तत्काल ही शूलको नाश करती है, स्थावर और जङ्गम विष, भूतोंकी बाधा, डाकिनी आदिके उपद्रव, तथा अन्य रोगोंको भी दूर करती है, इसको दाहिने हाथकी कनिष्ठिका नामक अङ्गुलीमें नित्य धारण किये रहे तो जहरको नाश करती है, अथवा " रामवत्सो मसेनानीर्मुद्रितेयं तदक्षरैः । हिमालयोत्तरे तीरे अश्वकर्णो महाद्रुमः ॥ तत्र शूलं समुत्पन्नं तत्रैव निधनं गतम्" इस मन्त्रको सात वार पढकर जलको अभिमन्त्रित करे और इसी जलमें अँगूठीको धोकर पिलावे तो तत्काल ही शूल नष्ट होताहै यह सब भालुकि आचार्यका कथन है। अथवा इस अँगूठीको तिलोंके तेलमें डाल अग्निमें चढाकर पकालेवे और जिस स्थानमें शूल हो वहाँ इस तेलकी अच्छे प्रकार मालिश करे तो शूल नष्ट होजाताहै, यदि इस अँगूठीके धुले हुए जलको कष्टित स्त्री पीवे तो बहुत शीघ्र प्रसूतिको करती है, और नेत्रोंके रोगोंको भी हरती है ॥ १९--२४ ॥

तुत्थकसत्त्वपातनयुक्तिः ।

शुद्धं सस्यं शिलाक्रान्तं पूर्वभेषजसंयुतम् ।
नानाविधानयोगेन सत्त्वं मुञ्चति निश्चितम् ॥ २५ ॥

शुद्ध नीलाथोथेमें मैनशिल और पहले कहेहुए सत्त्वके उत्पन्न करनेवाले औषधोंको मिलावे, इस प्रकार अनेक तरहके विधान तथा योगोंसे निस्सन्देह तुत्थ सत्त्वको छोडताहै ॥ २५ ॥

तुत्थसत्त्वमारणविधिः ।

पाषाणभेदिमत्स्याक्षीद्रवैर्द्विगुणगन्धकम् ।
सत्त्वस्य लेपयेत्पिष्टं रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ॥ २६ ॥
समांशेन पुनर्गन्धं दत्वा द्रावैश्च लोलयेत् ।
एवं सप्तपुटैः पक्वं सत्त्वभस्म भवेद्ध्रुवम् ॥ २७ ॥

जितना तुत्थका सत्त्व हो उससे दूना गंधक लेकर पाषाणभेदी और मछेछीके रसमें सबको घोटे तत्पश्चात् उस पिट्ठीको मूषामें रख आच्छादित कर गजपुटमें पकावे (यह एक पुट हुई), इसी प्रकार फिर भी तुत्थसत्त्वके समान गंधक

मिलाकर पाषाणभेदी और मछेछीके रसमें घोटकर पूर्ववत् गजपुटमें पकावे इसी रीतिसे सब मिलाकर सात पुट देवे तो निस्सन्देह सत्त्वकी भस्म सिद्ध हो जाती है ॥ २६ ॥ २७ ॥

द्वितीयः प्रकारः।

सत्त्वस्य द्विगुणं सूतं गन्धं देयं चतुर्गुणम्।
जम्बीराम्लेन तत्सर्वं मर्दयेत्प्रहरत्रयम् ॥ २८ ॥
आदौ मूषान्तरे क्षिप्त्वा धत्तूरस्य तु पत्रकम्।
आच्छाद्य धूर्तपत्रैश्च रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ॥ २९ ॥
स्वाङ्गशीतं तु संचूर्ण्य मृतं भवति निश्चितम्।
एवं सप्तविधं कृत्वा निरुत्थं च मृतं भवेत् ॥ ३० ॥

दूसरा प्रकार,-नीलाथोथेका जितना सत्त्व हो उसका दूना पारा और चौगुना गंधक मिलाकर जंबीरी नींबूके रसमें तीन प्रहर पर्यन्त घोटे तत्पश्चात् मूषामें रख धतूरेके पत्रोंसे ढाँककर गजपुटमें पकावे, जब स्वाङ्गशीतल होजावे तब पीसलेवे तो निस्सन्देह तुत्थसत्त्व मृत होजाताहै, इसी प्रकार सब मिलाकर सात पुट देवे तो निरुत्थ भस्म सिद्ध होजाती है॥ २८-३० ॥

तुत्थसत्त्वभस्मगुणाः।

निश्शेषदोषविषहृद्गुदशूलमूलकुष्ठाम्लपैत्तिकविबंधहरं परं च।
रासायनं वमनरेचकरं गरघ्नं चित्रापहं गदितमत्र मयूरतुत्थम् ॥ ३१ ॥

नीलाथोथेका सत्त्व सम्पूर्ण दोष, विष, गुदाका शूल, बवासीर, कुष्ठ, अम्लपित्त, और अफराको नष्ट करताहै, श्रेष्ठ रसायन है, वमन और रेचनको करनेवाला तथा चित्रकुष्ठको नाश करनेवाला है ॥ ३१ ॥

अपक्वतुत्थदोषशान्त्युपायः।

जम्बीररसमादाय पिबेच्च दिवसत्रयम्।
तस्य तुत्थकशान्तिः स्यात्तद्वल्लाजेन वारिणा ॥ ३२ ॥

तीन दिन पर्यन्त जंबीरी नींबूका रस अथवा धानकी खीलोंका पानी पीवे तो कच्चे नीलेथोथेके सेवनसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण विकार नष्ट होवें ॥ ३२ ॥

एवं तुत्थविधानं ते त्रयोविंशे हि वर्णितम्।
यस्य सर्वाः क्रियास्तात ज्ञातव्या भिषजां वरैः॥ ३३ ॥

हे तात ! इस तेइसवें अध्यायमें नीलाथोथेके शोधन तथा मारणादिकी सम्पूर्ण विधि मैंने वर्णन किया, जिस तुत्थकी समस्त क्रियायें श्रेष्ठ वैद्योंको अवश्य जाननी चाहिये ॥ ३३ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे
तुत्थवर्णनं नाम त्रयोविंशोध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः ।

अथातश्चपलकंकुष्ठवर्णनं नाम चतुर्विंशाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब चपल और कंकुष्ठके वर्णनसे युक्त चौवीसवें अध्यायका वर्णन करते हैं ॥

गुरुरुवाच ।

श्रूयतां चपलस्यैव कंकुष्ठस्य च वर्णनम् ।
ययोर्विज्ञानमात्रेण सिद्धवैद्यो भवेद्ध्रुवम् ॥ १ ॥

हे वत्स ! तुम अब चपल और कंकुष्ठके वर्णनको सुनो जिनके जान लेनेमात्रसे निस्सन्देह सिद्धवैद्य होताहै ॥ १ ॥

चपलोत्पत्त्यादिवर्णनम् ।

यत्र जातौ नागवंगौ चपलस्तत्र जायते ।
गौरः श्वेतोऽरुणः कृष्णश्चपलस्तु चतुर्विधः ॥ २ ॥
हेमाभश्चैव ताराभो विशेषाद्रसबन्धकौ ।
शेषा तु मध्यौ लाक्षावच्छीघ्रद्रावौ तु निष्फलौ ॥
वंगवद्द्रवते वह्नौ चपलस्तेन कीर्तितः ॥ ३ ॥

सीसा और राँगा यह दोनों जिस खानसे निकलते हैं उसी खानसे चपल जो कि सीसेका भेद है वह भी निकलताहै । और वह चपल गौर, सफेद, लाल, काला इन भेदोंसे चार प्रकारका होता है । इन चपलोंमेंसे जो सुवर्ण और चाँदीके तुल्य कान्तिसे युक्त हों वे विशेषसे पारेको बाँधते हैं, और शेष लाल तथा काले रंगवाले चपल मध्यम होते हैं, और अग्निमें छोडनेसे शीघ्र ही लाखके समान पिघल जाते हैं, इनको निष्फल समझना । अग्निमें छोडनेसे राँगेकी भाँति यह भी पिघलता है इसीहेतु इसका नाम चपल रक्खागया है ॥ २ ॥ ३ ॥

ग्राह्यचपलवर्णनम् ।

क्षीयते नापि वह्निस्थः सत्त्वरूपो महाबलः ।
ईदृशश्चपलो वा स्याद्वादिनां वादसिद्धये ॥ ४ ॥

जो अग्निमें रखनेसे भी नष्ट नहीं होता और सत्त्वरूप तथा महाबलसे युक्त हो ऐसा चपल धातुवादियोंकी वादसिद्धिके लिये ग्रहण करना चाहिये ॥ ४ ॥

चपलस्वरूपादिवर्णनम् ।

चपलः स्फटिकच्छायः षडस्रः स्निग्धको गुरुः ।
महारसेषु कैश्चिद्धि चपलः परिकीर्तितः ॥
अयं तूपरसः कैश्चित्पठितोऽन्य रसेषु च ॥ ५ ॥

यह चपल स्फटिकमणिक समान कान्तिसे युक्त छः कोनेवाला, चिकना और गुरु होताहै किन्हीं २ वैद्योंने इसकी महारसोंमें गणना की है और किन्ही किन्हीने उपरसोंमें पढा है ॥ ५ ॥

नागसंभवचपलनिर्माणविधिः ।

त्रिंशत्पलमितं नागं भानुदुग्धेन मर्दितम् ।
विलिप्य पुटयेत्तावद्यावत्कर्षावशेषितम् ॥ ६ ॥
न तत्पुटसहस्रेण क्षयमाप्नोति सर्वथा ।
चपलोयं समुद्दिष्टो वार्तिकैर्नागसम्भवः ॥ ७ ॥
तत्स्पृष्टहस्तसस्पृष्टः केवलो बध्यते रसः ॥ ८ ॥

तीस पल पर्यंत एक सा बीस तोले सीसेको आकके दूधमें घोटकर संपुटमें रख फूँकदे, जब तक एक तोला शेष रहे तब तक इसी प्रकार बारबार फूँकता रहे इस प्रकारसे शेष रहा वह एक तोला सीसा सहस्र पुट देनेपर भी किसी प्रकार नष्ट नहीं होता, वैद्योंने इसको नागसम्भव चपल कहा है यदि इसे हथेलीमें रखकर पारेके साथ मर्दन करे तो पारा बँध होजाता है ॥ ६-८ ॥

चपलशोधनविधिः ।

विषोपविषधान्याम्लैर्मर्दितश्चपलस्तथा ।
जंबीरकर्कोटकशृंगवेरैर्विभावनाभिश्चपलस्य शुद्धिः ॥ ९ ॥

चपलको पहले विष उपविष और कांजीमें खरल करे तत्पश्चात् जंबीरी नींबू, ककोडा और अदरखके रसकी भावना देवे तो शुद्ध होजाता है ॥ ९ ॥

चंपलमारणविधिः ।

मारयेत्पुटपाकेन चपलं गिरिमस्तके ।
ताम्रवन्मारणं चापि चपलस्य प्रशस्यते ॥ १० ॥

चपलको त्रायमाणा वा मौलसिरीके रसमें घोटकर पुटपाकविधिसे पकावे तो उसकी भस्म सिद्ध होजाती है अथवा ताँबेकी भस्म बनानेकी जो विधि कही है उसी विधिसे चपलकी भी भस्म बनाना श्रेष्ठ है ॥ १० ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

शैलं सुचूर्णयित्वा तु धान्याम्लोपविषैर्विषैः ।
पिण्डं बद्ध्वा तु विधिवत्पाचयेच्चपलं तथा ॥ ११ ॥

पहिले शिलाजीतका चूर्ण करलेवे और पीछे उसमें चपल मिलाकर कांजी, विष और उपविषमें खरल करके गोला बनालेवे और उस गोलेको संपुटमें रख विधिपूर्वक गजपुटमें पकावे तो चपलकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ११ ॥

चपलसत्त्वपातनविधिः ।

सत्त्वमम्बरवद्ग्राह्यं सूतबन्धकरं परम् ॥ १२ ॥

जिस विधि अभ्रकका सत्त्व निकालाजाताहै उसी विधिसे चपलका भी सत्त्व निकालना चाहिये। यह चपलसत्त्व पारेको बाँधता है ॥ १२ ॥

चपलगुणः ।

चपलो लेखनः स्निग्धो देहलोहकरो मतः ।
रसराजसहायः स्यात्तिक्तोष्णो मधुरो मतः ॥
त्रिदोषघ्नोऽतिवृष्यश्च रसबन्धविधायकः ॥ १३ ॥

चपल लेखन और चिकना है, शरीरको लोहेके तुल्य दृढ करनेवाला है, पारेका सहायक है, तिक्त, गरम और मधुर है त्रिदोषको नष्ट करता है, अतिवृष्य है, पारेको बाँधता है ॥ १३ ॥

गुल्मादिषु चपलोपयोगित्ववर्णनम् ।

गुल्मामशूलशोषेषु प्रमेहेषु ज्वरेषु च ।
प्रदरेषु प्रयोक्तव्यः चपलस्त्वमृतोपमः ॥ १४ ॥

गुल्मरोग, आमवात, शूलरोग, शोषरोग, प्रमेह, ज्वर और प्रदर व्याधिमें इस अमृततुल्य चपलभस्मका उपयोग करना चाहिये ॥ १४ ॥

कंकुष्ठस्य चोत्पत्त्यादिशोधनादिविधिः शुभः ।
वक्ष्येऽधुना ह्यहं वत्स तच्छृणुष्व समाहितः ॥ १५ ॥

हे वत्स ! अब मैं कुंकुष्ठ (मुरदाशंख) के लक्षण तथा शोधन और मारणकी विधि कहता हूँ, तुम सावधान चित्तहोकर सुनो ॥ ॥ १५ ॥

कङ्कुष्ठस्योत्पत्तिः भेदौ च ।

हिमवत्पादशिखरे कंकुष्ठमुपजायते ।
तत्रैकं नलिकाख्यं च तदन्यद्रेणुकं मतम् ॥ १६ ॥

कङ्कुष्ठ अर्थात् मुरदाशंख हिमालय पर्वतके शिखरोंमें उत्पन्न होता है उसके दो भेद हैं नलिका और रेणुक ॥ १६ ॥

नलिकाकंकुष्ठलक्षणम् ।

पीतप्रभं गुरु स्निग्धं कंकुष्ठं शिलया समम् ।
मृद्वतीव शलाकाभं सच्छिद्रं नलिकाभिधम् ॥ १७ ॥

जो पीली कान्तिसे युक्त, भारी, चिकना, शिलाके समान बहुत नरम, तथा शलाकाके समान कान्तियुक्त और छिद्रोंसे युक्त हो उसको नलिका कंकुष्ठ कहते हैं ॥ १७ ॥

रेणुकाकंकुष्ठलक्षणम् ।

रेणुकाख्यं तु कंकुष्ठं श्यामं पीतरजोन्वितम् ।
त्यक्तसत्त्वलघुप्रायः पूर्वस्माद्धीनसत्त्वकम् ॥ १८ ॥

जो श्याम, वर्ण, पीली धूलसे युक्त, सत्त्वरहित और हलका हो उसको रेणुका कंकुष्ठ कहते हैं, यह नलिका कंकुष्ठसे गुणोंमें हीन है ॥ १८ ॥

कंकुष्ठनामानि ।

कंकुष्ठं काककुष्ठं च वरांगं कोलवालुकम् ।
उपधातुस्तु वंगस्य इति भालुकिभाषितम् ॥ १९ ॥

कंकुष्ठ, काककुष्ठ, वरांग, कोलवालुक ये सब मुरदाशंखके नाम हैं और यह रांगेकी उपधातु है, यह भालुकि आचार्यका कथन है ॥ १९ ॥

वाग्भटसम्मतिस्त्वत्रेत्थम् ।

सद्योजातस्य करिणः शकृत्कंकुष्ठमुच्यते ।
यद्वा सद्यः प्रसूतस्य वाजिबालस्य विट् स्मृतम् ॥ २० ॥

नालं वा वाजिबालस्येत्येवं नानाविधं मतम् ।
आप्तवाक्यात्प्रमाणं तु सर्वेषां वचनं जगुः ॥ २१ ॥

कंकुष्ठके विषयमें वाग्भटकी सम्मति इस प्रकार है कि, तत्काल पैदा हुए हाथी अथवा घोडेके बच्चेकी लीदको कंकुष्ठ कहा है। कोई २ कहते हैं। इस प्रकार इस विषयमें अनेक प्रकारके मत हैं। आप्तोंके वाक्य होनेसे वह सब वचन प्रमाणके योग्य हैं ॥ २० ॥ २१ ॥

कंकुष्ठशोधनम् ।

कंकुष्ठं शुद्धतां याति त्रेधा शुंठ्यंबुभावितम् ॥ २२ ॥

सोंठके जलकी तीन भावना देनेसे मुरदाशंख शुद्ध होजाता है ॥ २२ ॥

कंकुष्ठस्य रसादौ श्रेष्ठत्वं सत्त्वोत्कर्षनिषेधश्च ।

रसे रसायने श्रेष्ठं निस्सत्त्वं बहुवैकृतम् ।
सत्त्वोत्कर्षोऽस्य न प्रोक्तो यस्मात्सत्त्वमयं हि तत् ॥ २३ ॥

पूर्वोक्त प्रकारसे शुद्ध किया हुआ कंकुष्ठ रस और रसायनमें श्रेष्ठ है और जो सत्त्वसे रहित रेणुकानामक कंकुष्ठ है वह अत्यन्त विकार युक्त है। कंकुष्ठ स्वयं सत्त्वरूप है इस कारण इसके सत्त्व निकालनेकी विधि नहीं कही ॥ २३ ॥

कंकुष्ठगुणाः ।

कंकुष्ठं तिक्तकटुकं वीर्योष्णं चातिरेचनम् ।
नाशयेदामवातं च रेचयेत्क्षणमात्रतः ॥ २४ ॥
व्रणोदावर्तशूलार्तिगुल्मप्लीहगुदार्तिनुत् ।
कंकुष्ठं नाशयेच्छीघ्रं कठोदरजलोदरम् ॥ २५ ॥

मुरदाशंख स्वादमें तीखा और कडवा है, उष्णवीर्य है, अत्यन्त दस्तावर है, आमवातको नष्ट करता है, क्षणमात्रमेंही दस्त लानेवाला है, व्रण, उदावर्त, शूल, गोला, तापतिल्ली, बवासीर, कठोदर और जलोदरको शीघ्रही नाश करता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

विरेचनेकंकुष्ठमात्रा ।

भजेदेनं विरेकार्थं ग्राहिभिर्यवमात्रया ॥ २६ ॥

यदि विरेचन (जुल्लाब) लेना हो तो इस मुरदाशंखको यवमात्रा अर्थात् छः सरसों प्रमाण मात्रासे सेवन करे ॥ २६ ॥

विषनाशकंकुष्ठयोगः ।

बब्बूरीमूलिकाक्काथजीरसौभाग्यटंकणैः ।
कंकुष्ठं विषनाशाय भूयोभूयः पिबेन्नरः ॥ २७ ॥

विषनाश करनेके लिये मुरदाशंखको बबूल, मूलीके काढा, जीरा, सिन्दूर और सुहागेके साथ बारंबार पीवे ॥ २७ ॥

वर्णितस्तु चतुर्विंशे द्वयोरपि विधिः शुभः ।
विज्ञाय तं कृतार्थः स्याः पुनः प्रष्टुमथार्हसि ॥ २८ ॥

हे वत्स ! इस चौबीसवें अध्यायमें चपल और कंकुष्ठ इन दोनोंके शोधनादिकी उत्तम विधि कही उसको जानकर तुम कृतार्थ हो और अब फिरभी जो कुछ पूछना हो वह पूछो ॥ २८ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे
चपलकंकुष्ठवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः ।

अथातो रसकवर्णनं नाम पञ्चविंशतितमाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम खपरिये वर्णनसे युक्त पचीसवें अध्यायका कथन करते हैं ॥

शिष्य उवाच ।

किमस्ति रसको भगवन्कथं कस्माच्च लभ्यते ।
बहूनि च मतान्यत्र तस्मात्तत्त्वं न ज्ञायते ॥ १ ॥
यशदस्य च भेदो वै प्रोक्तं तुत्थस्य केनचित् ।
खनिजोयं क्वचित्प्रोक्तः कश्चिदन्या हि वै क्वचित् ॥ २ ॥
शास्त्रेषु कश्चिदन्योस्ति लोके त्वन्यो हि लभ्यते ।
संशयोस्ति महानत्र यदस्ति तद्धि वर्णय ॥ ३ ॥

शिष्यने कहा कि, रसक (खपरिया) क्या वस्तु है, और किस प्रकार कहाँसे मिलती है, हे गुरो ! इस विषयमें अनेक भिन्न २ मत हैं इस कारण इनमेंसे यथार्थ क्या है यह नहीं जानाजाता । किसीने इसको जस्तेका भेद माना है किसीने तूतियेका भेद बताया और किसीने खनिज कहा है इत्यादि कहाँतक कहें, कहीं कुछ और कहीं कुछ मिलता है । शास्त्रोंमें कुछ और ही है और

लोकमें सूरत बंबइकी कांसी पीतल ढालनेकी कढालियोंकी मट्टी मिलती है, कहीं २ कांसेके मैलको ही खपरिया कहते हैं । इत्यादि अनेक मत सुनेजाते हैं इस हेतु मुझे इस विषयमें बडा सन्देह है अतः कृपाकरके " खपरिया क्या वस्तु है" यह सब आप वर्णन कीजिये ॥ १--३ ॥

गुरुरुवाच ।

नष्टास्मिन्समये विद्या प्रपञ्चच्छादितो जगत् ।
न गुरुर्नच शिष्योस्ति न ज्ञाता नच ग्राहकः ॥ ४ ॥
अतो यद्यस्य तुण्डाग्रे यज्जातं तद्धि कीर्तितम् ।
विद्यानुद्धारिराजानः धूर्तैरावेष्टितास्तथा ॥ ५ ॥
समयेऽस्मिन्दाम्भिकैश्च सुज्ञा मूकसमाः कृताः ।
निर्णयव्यग्रविद्वांसो लभन्ते शरणं न हि ॥ ६ ॥
छलैर्हि वर्वरा लोके दीनानार्तान्प्रपीडय वै ।
धनाढ्याश्चाधुना वत्स गण्यिन्ते सुचिकित्सकाः ॥
यस्य प्रसादाद्वैचित्र्यं तं कलिं प्रणमाम्यहम् ॥ ७ ॥

हे पुत्र ! इस समय विद्या तो नष्ट ही होतीजाती है, और संसारमात्र प्रपञ्चसे आच्छादित होगया । अब न तो कोई योग्य गुरु ही रहा और न योग्य शिष्य ही है । न कोई विद्याका जाननेवाला है और न विद्वानोंका ग्राहक ही है । इसी कारण जिसके मुखमें जो आया उसने विना विचारे वही कथन किया । क्योंकि राजालोग तो प्रायः विद्याके उद्धारमें रुचि नहीं रखते तिस पर भी इन विचारोंको धूर्तोंने अपनी धूर्ततासे वञ्चित कररक्खा है, अहो ! इस विषम समयमें विद्वान् मनुष्य धूर्तोंकी चपलतासे मूकसमान किये गये निर्णय करनेमें व्यग्रचित्त विद्वान् जन कहीं शरणको नहीं प्राप्त होते । बकवादी झूठ बोलनेवाले दुःखी और पीडितोंको ठगतेहुए संसारमें घूमते फिरते हैं । इस समय धनाढ्य मनुष्य ही अच्छे वैद्य गिनेजाते हैं । यह सब विचित्रता जिस कलिके होनेसे होरही है उस कलिको मैं प्रणाम करताहूँ ॥ ४--७ ॥

खर्परवस्तुविवेचनम् ।

खर्परस्यापि विषये ह्यधुना तात श्रूयताम् ।
कांस्यजारणकोष्ठ्यादि कपालोपि तथैव च ॥ ८ ॥

खर्परेति च नाम्ना वै गृहेष्वाच्छाद्यते जनैः ।
संगवस्री कचिन्मूर्खैः खर्परे हि प्रकीर्तितः ॥ ९ ॥
परं रसादिकार्येषु खनिजः खर्परः स्मृतः ।
शास्त्रे तु तुत्थभेदो वा भेदो वा यशदस्य च ॥ १० ॥

हे वत्स ! अब तुम खपरियेके विषयमें सुनो । यद्यपि कांसी, पीतल तथा ढालनेकी कठाला आदिको भी खपरिया कहते हैं, और मट्टीके कपाल तथा ठीकडीको भी खर्पर कह सकते हैं, इसी प्रकार घरोंमें जो खपडे छाये जाते हैं उनको भी खर्पर कहते हैं कही संगवस्रीही खपरिया होता है मूर्खलोग ऐसा कहते हैं परन्तु रसादिकार्योंमें खानसे पैदा हुए खपरियेको लेना चाहिये । इस खपरियेके विषयमें शास्त्रोंमें दो प्रकारके लेख मिलते हैं कोई इसको जसदका भेद मानते हैं कोई नीलेथोथेका भेद मानते हैं ॥ ८–१० ॥

शुल्बखर्परसंयोगे जायते पित्तलं शुभम् ।
सत्त्वं च खर्परस्यैतन्नागरूपं पतत्यधः ॥ ११ ॥
इत्यादिबहुवाक्यैश्च यशदोयं प्रकीर्तितः ।
परं त्वग्निगतोऽत्यर्थं दह्यते क्षणमात्रतः ॥ ॥ १२ ॥
रसश्च रसकश्चोभौ येनाग्निसहनौ कृतौ ।
इत्यादिबहुवाक्यैश्च तुत्थभेदो हि दृश्यते ॥ १३ ॥
मन्मते खनिजश्चात्र तुत्थभेदो हि वै शुभः ।
पीताभो मृत्तिकाकारः श्रेष्ठः स्यात्स तु पत्तलः ॥ १४ ॥
तदभावे गुडाभो यत्तदभावेऽचाश्मसान्निभः ।
यत्राभावो त्रयाणां हि यशदस्तत्र योजयेत् ॥ १५ ॥

अब रहा यह विवाद कि इन दोनोंमें कौनसा खर्पर लेना चाहिये अथवा खर्पर निर्णीत रूपसे कौनसा है । कहीं तो लिखा है " कि तांबे और खपरियेके संयोगसे सुंदर पीतल बनजाता है " और खपरियेका सत्त्व नाग (सिक्के, सीसे) के समान नीचे गिरजाता है । ऐसे ऐसे अनेक वाक्योंसे तो यशदही खपरिया है ऐसा सिद्ध होता है । परंतु " अग्निमें रखनेसे शीघ्रही जलजाता है या उडजाता है " पारद और खपरिया जिसने अग्नि सहन बना लिये वह योग्य वैद्य है । इत्यादि बहुतसे वाक्योंसे खपरिया तुत्थका भेदही प्रतीत होता है । सो जहांतक

मैं समझता हूँ खानिज (खानसे पैदा हुवा खपरिया जिसको तुत्थका भेद माना है वही) श्रेष्ठ है क्योंकि शास्त्रोंमें लिखा है कि जो खपरिया पीले वर्णका पपडी दार मट्टीके समान होता है वह श्रेष्ठ होता है । यदि यह न मिले तो गुडके समान जो खपरिया निकलता वह ले इसके अभावमें पत्थरके समान वर्णवाला लेवे । यदि यह तीनों न मिलें तो यशदको शोधित कर भस्म बनाकर डालना चाहिये ॥ ११–१५ ॥

रसकभेदादिवर्णनम् ।

रसको द्विविधः प्रोक्तो दर्दुरः कारवेल्लकः ।
सदलो दर्दुरः प्रोक्तो निर्दलः कारवेल्लकः ॥
सत्त्वपाते शुभः पूर्वो द्वितीयश्चौषधादिषु ॥ १६ ॥

खपरिया दो प्रकारका होता है पहला दर्दुर और दूसरा कारवेल्लक इन दोनोंमेंसे जो दलदार होताहै वह दर्दुर कहाता है और जो विना दलका होता है वह कारवेल्लक कहाता है । सत्त्व निकालनेके लिय दर्दुर श्रेष्ठ है और औषध आदिके कार्यमें निर्दल उत्तम माना गया है ॥ १६ ॥

अन्यच्च ।

पीतः कृष्णस्तथा रक्तः क्वचित्संदृश्यते भुवि ।
नागार्जुनेन संदिष्टौ रसश्च रसकावुभौ ॥ १७ ॥

पृथ्वीमें कहीं २ पीला, काला और लाल रंगका खपरिया देख पडता है, नागार्जुन आचार्यने खपरियाके दो भेद कहे हैं पहला रसक और दूसरा कलंबुक ॥ १७ ॥

रसकविषये रसदर्पणकारमतम् ।

मृत्पाषाणगुडैस्तुल्यास्त्रिविधो रसको मतः ।
पीतस्तु मृत्तिकाकारः श्रेष्ठः स्यात्स तु पत्तलः ।
गुडाभो मध्यमः स्थूलः पाषाणाभः कनिष्ठकः ॥ १८ ॥

खपरिया मिट्टी, पत्थर और गुडके समान होनेसे तीन प्रकारकी होती है इनमेंसे मिट्टीके आकार पीली और पत्रयुक्त खपरिया उत्तम है, जो गुडके समान है वह मध्यम है और जो पत्थरके तुल्य स्थूल है वह अधम है ॥ १८ ॥

रसपद्धतिकारस्तु ।

रसकं तुत्थभेदः स्यात्खर्परं चापि तत्स्मृतम् ।
ये गुणास्तुत्थके प्रोक्तास्ते गुणा रसके स्मृताः ॥ १९ ॥

रसक नीलाथोथेका ही एक भेद है इसे खर्पर भी कहते हैं । जो गुण नीलाथोथेमें हैं वही गुण रसक अर्थात् खपरियामें भी हैं ॥ १९ ॥

रसकगुणाः ।

रसकः सर्वमेहघ्नः कफपित्तविनाशनः ।
नेत्ररोगक्षयघ्नश्च लोहपारदरंजनः ॥ २० ॥

खपरिया सम्पूर्ण प्रमेह, कफरोग, पित्तरोग, नेत्ररोग और क्षयीरोगको नष्ट करता है तथा लोह और पारदका रंजन करनेवाला है ॥ २० ॥

रसकशोधनम् ।

कटुकालाबुनयासैरालोड्य रसकं पचेत् ।
शुद्धं दोषविनिर्मुक्तं पीतवर्णं तु जायते ॥ २१ ॥

खपरियाको कडवी तूँबीके रसमें मिलाकर पकानेसे दोष रहित शुद्ध पीले रंगकी होजाती है ॥ २१ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

पुंसां च मूत्रे रसकस्य चण गोमत्रक सप्त पचेद्दिनानि ।
एवं हि दोलावरयन्त्रशुद्धः संयोजनीयः सकले तु कार्ये ॥ २२ ॥

दूसरा प्रकार–मनुष्य अथवा गौके मूत्रमें सात दिन पर्यन्त खपरियाको दोलायन्त्रके द्वारा पकावे तो शुद्ध होजाती है । इस शुद्ध खपरियाको समस्त कार्योंमें युक्त करे ॥ २२ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

खर्परः परिसंतप्तः सप्तवारं निमज्जितः ।
बीजपूररसस्यान्तर्निर्मलत्वं समश्नुते ॥ २३ ॥

तीसरा प्रकार--खपरियाको अग्निमें तपा तपाकर बिजौरा नींबूके रसमें सात वार बुझावे तो शुद्ध होजाती है ॥ २३ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

नृमत्रे वाश्वमूत्रे वा तक्रे वा कांजिकेऽथवा ।
वृन्ताकमूषिकामध्ये निरुध्य गुटिकाकृतिम् ॥ २४ ॥
ध्मातांध्मातां समाकृष्य प्रक्षिप्य च शिलातले ।
प्रताप्य मज्जितः सम्यक्खर्परः परिशुद्ध्यति ॥ २५ ॥

चौथा प्रकार,--मनुष्य वा घोडेके मूत्रमें अथवा छाँछ तथा कांजीमें खपरियाको पीसकर गोला बनालेवे और बैंगनके आकारके सदृश मूषा बना उसमें इस गोलेको रख कपरमिट्टी करके बंद करदेवे, फिर अग्निमें पकावे तत्पश्चात् मूषासे अलग निकाल कर पत्थरपर डालदेवे और अग्निमें तपातपाकर फिर पूर्ववत् मूत्र, छाँछ और कांजीमें डुबावे इसी रीतिसे कई वार इस क्रियाको करे तो खपरिया शुद्ध होजाती है ॥ २४ ॥ २५ ॥

रसरसकस्थैर्यकृतः प्रशंसा ।

रसश्च रसकश्चोभौ येनाग्निसहनौ कृतौ ।
देहलोहमयी सिद्धिर्दासी तस्य न संशयः ॥ २६ ॥

जिस वैद्यने पारा और खपरिया इन दोनोंको अग्निस्थायी करालिया उसका शरीर लोहेके तुल्य दृढ होजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥

ताम्रादिषु स्वर्णतुल्यवर्णानयनार्थं रसकसंस्कारः ।

नरमूत्रे स्थिता मासं रसको रंजयेद्ध्रुवम् ।
शुद्धताम्रं रसं तारं शुद्धस्वर्णप्रभं यथा ॥ २७ ॥

एक मास पर्यन्त मनुष्यके मूत्रमें खपरियेको डुबाय रक्खे तो शुद्ध ताँबा, पारा और चाँदीको शुद्ध सानक तुल्य रंगसे युक्त करता है ॥ २७ ॥

टोडरानन्दसम्मतिः ।

अस्थिरोऽग्निगतोऽत्यर्थं दह्यते क्षणमात्रतः ।
तस्य स्थैर्यकरं द्रव्यं नान्यदस्तीति भूतले ॥ २८ ॥

खपरियाके विषयमें टोडरानन्दकी यह सम्मति है कि, अग्निमें स्थिर न रहना तथा क्षणमात्रमें ही फुँकजाना यह सब खपरियाके गुण हैं। पृथ्वीमें इसको अग्निस्थायी करनेवाली अन्य औषध नहीं है ॥ २८ ॥

तदुक्तरसकस्थैर्यकरणविधिः ।

शुद्धं किंचुलजं सत्त्वं तद्रसैर्वापि मर्दितम् ।
स्थैर्यं भजेत्सरसको नान्यैः कोटिशतैरपि ॥ २९ ॥

शुद्ध केंचुएके सत्त्वको केंचुएके रसमें घोटे और खपरिया सहित इसको अग्निमें रक्खे तो खपरिया अग्निस्थायी होवे इसके अतिरिक्त यदि अन्य कोटिशः उपाय किये जावें तो भी खपरिया अग्निस्थायी नहीं होती ॥ २९ ॥

रसकसत्त्वपातनविधिः ।

हरिद्राविफलाराल सिन्धुधूमैः सटंकणैः ।
भल्लातयुक्तैः पादांशैः साम्लैः संमर्द्य खर्परम् ॥ ३० ॥
लिप्तं वृन्ताकमूषायां शोषयित्वा निरुध्य च ।
मूषामुखोपरि न्यस्य खर्परं प्रधमेत्ततः ॥ ३१ ॥
खर्परे भवति ज्वाला सा नीलाभा सिता यदि ।
तदा संदंशतो मूषां नीत्वा कृत्वा ह्यधोमुखीम् ॥ ३२ ॥
शनैरास्फालयेद्भूमौ यथा नालं न भज्यति ।
वंगाभं पतितं सत्त्वं समादाय नियोजयेत् ॥
एवं द्वित्रिचतुर्वारैः सर्वसत्त्वं विनिस्सरेत् ॥ ३३ ॥

जितनी खपरिया हो उसका चौथाई भाग हल्दी, हरड, बहेडा, आँवला, राल, सेंधानोन, मनशिल, सुहागा और भिलावाँ इन सबोंको लेकर नींबूके रसमें अच्छे प्रकार घोटकर पिट्ठी बनालेवे और उस पिट्ठीको वृन्ताकमूषामें रख धूपमें सुखालेवे, तत्पश्चात् मूषाके मुखको बंद करके आँचमें रख बंकनालसे धोंके और जब खपरियामें सफेद नीली तथा पीले रंगकी ज्वाला निकलें तब सावधानीसे मूषाको सँडासीसे पकडकर पृथिवीपर इस प्रकार धीरेसे उलटे कि, जिसमें सत्त्वकी नली न टूटे तदनन्तर राँगेके तुल्य निकलेहुए उस सत्त्वको लेकर कार्यमें उपयोग करे। इसी रीतिसे दो तीन या चार वारमें सब सत्त्व निकाल लेवे॥३०-३३॥

द्वितीयः प्रकारः ।

यद्वा जलयुतां स्थालीं निखनेत्कोष्ठिकोदरे ।
सच्छिद्रं तन्मुखे मल्लं तन्मुखेऽधोमुखीं क्षिपेत् ॥ ३४ ॥
मूषोपरि शिखिश्वात्र प्राक्षिप्य प्रधमेद्दृढम् ।
पतितं स्थालिकानीरे सत्त्वमादाय योजयेत् ॥ ३५ ॥

दूसरा प्रकार,-किसी शुद्ध स्थालीमें जल भरकर कोष्ठिकाके बीचमें गढा करके अच्छे प्रकार गाडदेवे और स्थालीके मुखको छिद्रयुक्त शरवासे ढाँक सन्धियोंको बन्द करदेवे तत्पश्चात् पूर्वोक्त हरिद्रा, त्रिफला आदि औषधोंसे संयुक्त खपरियाके गोलेको मूषामें रक्खे और मूषाका मुख नीचेकी ओर करके मुख बन्द की हुई उसी

स्थालीके मुखमें रखदेवे, पीछे मूषाके ऊपर अग्नि रख खूब धमें तो सत्त्व टपक-टपककर स्थालीके पानीमें गिरेगा इस सत्त्वको लेकर काममें लावे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

लाक्षागुडासुरीपथ्या हरिद्रासर्जटंकणैः ।
सम्यक्संचूर्ण्य तत्पक्कं गोदुग्धेन घृतेन च ।
सत्त्वं वंगाकृति ग्राह्य रसकस्य मनोहरम् ॥ ३६ ॥

तीसरा प्रकार,–लाख, गुड, राई, हरड, हल्दी, राल, सुहागा इन सबको पीसकर खपरिया मिलावे तत्पश्चात् गौके दूध और घृतके साथ पकाकर अग्निमें फूँके तो राँगेके सदृश खपरियेका मनोहर सत्त्व निकलताहै ॥ ३६ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

साभयाजतुभूनागनिशाधूमजटंकणम् ।
मूकमूषागतं ध्मात शुद्धं सत्त्वं विमुञ्चति ॥ ३७ ॥

हरड, लाख, केंचुए, हल्दी, धूमसा, सुहागा इन सब औषधोंको खपरियाके साथ मिलाकर अंधमूषामें रख अग्निमें पकावे तो खपरिया शुद्ध सत्त्वको छोडती है ॥ ३७ ॥

रसकभस्मविधिः ।

तत्सत्त्वं तालकोपेतं निक्षिप्य खलु खर्परे ।
मर्दयेल्लोहदण्डेन भस्मीभवति निश्चितम् ॥ ३८ ॥

पूर्वोक्त रीतिसे बनायेहुए खपरियाके सत्त्वमें हरिताल डालकर किसी दृढ खपरेमें लोहेके मूसलसे घोटे तो निस्सन्देह वह भस्म होजाता है ॥ ३८ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

खर्परं पारदेनैव चूर्णयित्वा दिनं पचेत् ।
वालुकायन्त्रमध्यस्थं शोभनं भस्म जायते ॥ ३९ ॥

पारेके साथ खपरियाको घोटकर बालुकायन्त्रमें एक दिन पकावे तो उत्तम भस्म सिद्ध होती है ॥ ३९ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

खर्परं पत्रकं कृत्वा लवणान्तर्गतं पचेत् ।
जायते शोभनं भस्म सर्वरोगापहं स्मृतम् ॥ ४० ॥

खपरियाके पत्र बनाकर नमकके बीचमें रखकर पकावे तो सब रोगोंको दूर करनेवाली उत्तम सिद्ध होजाती है ॥ ४० ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

वंदाले हंसपद्यं च वटार्कवज्रिदुग्धके ।
विमर्दयेत्खर्परं च सुवैद्यस्तु पृथक्पृथक् ॥ ४१ ॥
प्रत्येकमर्दनान्ते तु रचयित्वा सुचक्रिकाम् ।
शरावसंपुटे कृत्वा त्रित्रिवारं विपाचयेत् ॥ ४२ ॥

वंदाल, हंसपदीक रस तथा वड आक और थूहरके दूधमें अलग २ खपरियाको घोटे परन्तु प्रत्येक रस तथा दुग्धको घोटनेके अनन्तर टिकिया बना धूपमें सुखा शरावसंपुटमें रख तीन तीन बार पकालिया करे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

रसकस्याग्निस्थायित्वविधिः ।

कन्यकादलमादाय तद्दलं कारयेद् द्विधा ।
एकस्मिंस्तद्दले धृत्वा खर्परं माषवत्कृतम् ॥ ४३ ॥
द्वितीयमपरं दत्त्वोपरिष्टात्कन्यकादलम् ।
द्वितियमपरं चास्ते यद्द्विधाकृतमस्तु तत् ॥ ४४ ॥
निरुध्य च दलं तत्तु खरमूत्रस्य मध्यगम् ।
क्रियते स्वेदनं तावद्यावन्मूत्रक्षयो भवेत् ॥ ४५ ॥
एवं दिनत्रयं शोधः क्रियते तद्दलस्य च ।
त्रिवारं क्रियतेप्येवं तद्दले खपरस्य च ॥ ४६ ॥
अक्लेशं जायते नूनमाग्निस्थायी च खर्परः ।
यदि वह्नौ विनिक्षिप्तः खर्परो धूमवान्भवेत् ॥ ४७ ॥
तदा पुनर्दले देयः खर्परो दृढतां व्रजत् ।
क्षारिकालवणे पश्चात्खर्परः पाच्यते पुनः ॥ ४८ ॥
दिनद्वयं भवेदेवं पातः खर्परकस्य च ।
पुनरग्नौ परीक्षेत खर्परं दृढमुत्तमम् ॥ ४९ ॥
यदि धमोद्गमो भूयात्खर्परः पाच्यते तदा ।

पुनरादीयते तत्र भूनागतनुजद्रवः ॥
भावयेत्पुटयेत्सप्तभावनाभिश्च खर्परम् ॥ ५० ॥

घीकुवारको लेकर उसकी दो फाँकें करे एकमें खपरियाके छोटे टुकडे करके रक्खे और दूसरेसे आच्छादित कर बाँध देवे पश्चात् गदहाके मूत्रमें स्वेदनयन्त्रके द्वारा जबतक मूत्र न सूखजावे तबतक स्वेदन करे इस प्रकार तीन दिन पर्यन्त स्वेदन करे और फिर खपरियाको घीकुवारके दलोंसे अलग निकाल घीकुवारके नये दलोंमें पूर्ववत् रखकर स्वेदन करना चाहिये । इसी प्रकार तीन बार अर्थात् नव दिन तक स्वेदन करे तो सुखपूर्वक खपरिया अग्निस्थायी होजाता है । इस सिद्ध किये हुए खपरियेको अग्निमें छोडे यदि धुआँ निकले तो फिर भी पूर्ववत् घीकुवारके दलोंमें रख गदहाके मूत्रमें स्वेदन करे तो वह दृढ होजाताहै और यदि धुआँ न निकले तो उसको शुद्ध हुआ समझे अर्थात् उसको फिर स्वेदन करनेकी आवश्यकता नहीं है तत्पश्चात् दो दिन खारी नमकमें पकावे तो खपरिया मृत्युको प्राप्त होती है । इसको अग्निमें छोडकर परीक्षा करे यदि धुआँ निकले तो फिर खारी नमकमें पकावे तत्पश्चात् केंचुएकी अर्ककी सात भावना देवे और पकावे तो निस्सन्देह खपरिया अग्निस्थायी हो जाता है ॥ ४३--५० ॥

रसकगुणाः ।

त्रिदोषजित्पित्तकफातिसारक्षयज्वरघ्नो रसकोऽतिरूक्षः ।
नेत्रामयानां प्रकरोति नाशं स्याद्रंजकाकामलनाशनश्च ॥ ५१ ॥

खपरिया त्रिदोष, पित्त, कफ, अतिसार, क्षयी और ज्वरको नाश करती है । यह अतिरूखी है, नेत्रोंके सम्पूर्ण रोगोंको दूर करती है, शरीरमें रंगको उत्पन्न करती है और कामलारोगको नाश करती है ॥ ५१ ॥

रसकसेवनविधिस्तद्गुणाश्च ।

तद्भस्ममृतकान्तेन समेन सह योजयेत् ।
अष्टगुंजामितं चूर्णं त्रिफलाक्काथसंयुतम् ॥ ५२ ॥
कांतपात्रस्थितं रात्रौ तिलजप्रतिवापकम् ।
निषेवितं निहन्त्याशु मधुमेहमपि ध्रुवम् ॥ ५३ ॥
पित्तक्षयं च पांडुं च श्वयथुं गुल्ममेव च ।
रक्तगुल्मं च नारीणां प्रदरं सोमरोगकम् ॥ ५४ ॥

योनिरोगानशेषांश्च विषमांश्च ज्वरानपि ।
रक्तशूलं च श्वासं च हिक्किनां च विशेषतः ॥ ५५ ॥

जितनी खपरियाकी भस्म हो उसमें उतनीही कान्त लोहकी भस्म मिलावे और आठ रत्ती इस मिश्रित चूर्णको त्रिफलाके काढे तथा तिलके तेलमें मिलाकर एक रात्रिभर कान्त लोहके पात्रमें रख छोडे तत्पश्चात् विधिपूर्वक इसका सेवन करनेसे मधुमेह, पित्तरोग, क्षयी, पांडु, शोफ, बायगोला, रक्त गुल्म, प्रदररोग, सोमरोग, समस्त योनिरोग, विषमज्वर, रजःशूल और श्वास रोगको शीघ्र नष्ट करती है । हिक्का रोगवालोंके लिये यह भस्म विशेषसे लाभ करती है॥५२-५५॥

अशुद्धखर्परदोषाः ।

अशुद्धः खर्परः कुर्याद्वान्तिं भ्रान्तिं विशेषतः ।
तस्माच्छोध्यः प्रयत्नेन यावद्वान्तिविवर्जितः ॥ ५६ ॥

विना शुद्ध की हुई खपरिया विशेषसे वमन और भ्रान्तिको उत्पन्न करती है इस कारण यह तबतक यत्नपूर्वक शोधने योग्य है जबतक कि, वान्तिदोषसे रहित न होवे ॥ ५६ ॥

खर्परदोषशान्त्युपायः ।

रसकनिषेवणतो यदि रोगाः प्रादुर्भवन्ति मनुजानाम् ।
ते नाशमाप्नुवन्ति सप्ताहात्पीतगोमत्रात् ॥ ५७ ॥

अशुद्ध खपरियाके सेवन करनेसे मनुष्योंके यदि रोग उत्पन्न होजायँ तो सात दिन पर्यन्त गौके मूत्रका पान करें वे सब रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ५७ ॥

एवं खर्परसंशुद्धिस्तथा तस्य विवेचनम् ।
अध्याये पञ्चविंशे तु विधिवत्तात वर्णितम् ॥ ५८ ॥

हे तात ! इस प्रकार खपरियेकी शुद्धि और खपरिया क्या वस्तु है इसका समाधान इस पचीसवें अध्यायमें वर्णन करदिया है ॥ ५८ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे
रसकवर्णनं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः ।

अथातो शिलाजतुवर्णन नाम षड्विंशाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब हम शिलाजतु वर्णन नामक छब्बीसवें अध्यायका कथन करते हैं ॥

गुरुरुवाच ।

अथ ते संप्रवक्ष्यामि वर्णनं वै शिलाजतोः ।
यस्य प्रयोगमात्राच्च दुष्टमेहोऽपि नश्यति ॥ १ ॥
नातः परतरं तात लोके कश्चिद्रसायनम् ।
हरते सर्वरोगांश्च दीर्घायुः प्रददाति च ॥ २ ॥

गुरुने कहा कि, अब हम शिलाजीतका वर्णन करते हैं, जिसके प्रयोगमात्रसे दुष्ट प्रमेह रोग भी नष्ट होजाता है । हे तात ! इससे बढकर लोकमें अन्य कोई रसायन नहीं है, यह सम्पूर्ण रोगोंको नाश करताहै और दीर्घायुको देनेवाला है ॥ १ ॥ २ ॥

शिलाजतूत्पत्तिः ।

महार्णवाम्भोऽमृतमंथनोत्थः स्वेदो गिरेर्योवगलत्ततः प्राक् ।
समन्दरस्यामृतमन्थनाच्च सोमेन सपकमियाय दिव्यम् ॥ ३ ॥
ब्रह्माणमिन्द्रं प्रतिपूज्य सम्यग्घिताय पुंसां प्रददौ नगेभ्यः ।
सोमोऽमृतं कल्पगुणं तु भूमौ शिलाजतु स्यादिति निर्विचिन्त्य ॥ ४ ॥
हितं प्रजानां सुखदं निदाघे नगात्स्रवेद्भास्करतापनाच्च ।
प्रभावतश्चोत्कटभारभावात्संसृज्यते येन च धातुना तत् ॥
तदात्मकं तं प्रवदन्ति तज्ज्ञास्तस्मात्परीक्षेत अनन्तवीर्यम् ॥ ५ ॥
सुवर्णरूप्यत्रपुसीसताम्रलोहात्खनेनैव मताः शिलाजः ।
समुद्भवं चास्य वदन्ति वैद्याः सर्वोत्तमं विंध्यनगोद्भवं च ॥ ६ ॥

देवता और दैत्योंने जब अमृत निकालनेके लिये मन्दरपर्वतकी मथानी बनाकर समुद्रको मथा तब उस मन्दराचलमें पसीना उत्पन्न हुआ और वह समुद्रमें गिरा फिर वही स्वेद जब समुद्रमथनेसे चन्द्रमाके समान दिव्य रूप प्रकट हुआ तब देवताओंने मनुष्योंके हितके लिये ब्रह्मा और इन्द्रका पूजन करके यह सोम पर्वतोंके लिये यह विचारकर देदिया कि, पृथिवीमें अमृतके समान

गुणकारक यह सोम शिलाजतु नामसे प्रसिद्ध हो, यह प्रजाका हित करनेवाला तथा सुखका देनेवाला है ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यकी प्रबल गरमीसे संतप्त होकर पर्वतोंसे बहताहै, यह पर्वतस्थ सोना, चाँदी, ताँबा आदि धातुओंसे स्रवता है इसी कारण इसमें भारी गुण है। सुवर्णादि धातुओंमेंसे जिससे इसकी उत्पत्ति हो तज्ज्ञ वैद्य तदात्मक इसके नाम भी कहते हैं अतः वैद्यको चाहिये कि, इस शिलाजीतकी परीक्षा करे क्यों कि, यह अनन्तवीर्यसे युक्त होता है वैद्यजन इसकी उत्पत्ति सोना, चाँदी, राँगा, सीसा, ताँबा और लोहेसे कहते हैं। विंध्याचल पर्वतसे उत्पन्न हुआ शिलाजीत अन्य पर्वतोंमें उत्पन्न हुए शिलाजीतोंसे श्रेष्ठ होता है ॥ ३--६ ॥

शिलाजतुभेदौ ।

शिलाजतु द्विधा प्रोक्तं गोमूत्राद्यं रसायनम् ।
कर्पूरपूर्वकं चान्यत्तत्राद्यं द्विविधं पुनः ॥
ससत्त्वं चाथ निःसत्त्वं तयोः पूर्व गुणाधिकम् ॥ ७ ॥

शिलाजतुके दो भेद हैं, पहला गोमूत्र शिलाजीत और दूसरा कर्पूर शिलाजीत इन दोनोंमेंसे आदिका गोमूत्र शिलाजीत रसायन है और वह दो प्रकारका होता है पहला सत्त्वसहित, दूसरा सत्त्वरहित इनमेंसे सत्त्वसहित श्रेष्ठ होता है ॥ ७ ॥

अन्येतु–

शिलाजतु द्विधा ज्ञेयं तत्राद्यं गिरिसंभवम् ।
द्वितीयं स्यादूषरायां मृत्तिकाजलयोगतः ॥ ८ ॥

शिलाजतु दो प्रकारका होता है, पहला पहाडोंसे उत्पन्न होता है और दूसरा ऊषर भूमिमें मिट्टी और जलके संयोगसे बनता है ॥ ८ ॥

अन्यच्च ।

ग्रीष्मे तीव्रार्कतप्तेभ्यो गर्तेभ्यः किल भूभृताम् ।
स्वर्णरूप्यार्कगर्भेभ्यो शिलाधातुर्विनिस्सरेत् ॥ ९ ॥

ग्रीष्म ऋतुमें तीव्र सूर्यकी किरणोंसे संतप्त सोना, चाँदी और तांबेकी खानवाले पहाडोंसे शिलाजीत निकलता है ॥ ९ ॥

अन्यच्च ।

निदाघे घर्मसंतप्ता धातुसारं धराधराः ।
निर्यासवत्प्रमुञ्चन्ति शिलाजतुसमीरितम् ॥ १० ॥

ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यकी गरमीसे तप्त हुए पर्वत धातुओंके साररूप तथा गोंदके समान जिस पतले पदार्थको छोडते हैं उसको शिलाजीत कहते हैं ॥ १० ॥

शिलाजतुनश्चतुर्विधत्ववर्णनम् ।

सौवर्णं राजतं ताम्रमायसं च चतुर्विधम् ।
शिलाजतु हि विज्ञेयं तत्तल्लक्षणलक्षितम् ॥ ११ ॥

शिलाजीत चार प्रकारका होता है, सौवर्ण, राजत, ताम्र और आयस । यह क्रमसे सोना, चाँदी, ताँबा और लोहेकी खानवाले पर्वतोंसे उत्पन्न होते हैं । इन सबोंमें जिसमें जिस धातुके लक्षण मिलें उसे उसी धातुका सार अर्थात् शिलाजीत समझना चाहिये ॥ ११ ॥

कांचनाशिलाजतुलक्षणम् ।

स्वर्णगर्भगिरेर्जातं जपापुष्पनिभं गुरु ।
मधुरं कटुतिक्तं च शीतलं च रसायनम् ॥ १२ ॥

सुवर्णकी खानसे उत्पन्न शिलाजीत गुडहरके फूलके सदृश लाल और भारी होता है स्वादमें मधुर कडवा और तीखा है शीतल है, रसायन है ॥ १२ ॥

अन्यच्च ।

मधुरं च सतिक्तं च जपापुष्पनिभं च यत् ।
स्निग्धं घनं गैरिकाभं सुशीतं कांचनास्रुतम् ॥ १३ ॥

सोनेके खानसे उत्पन्न शिलाजीत स्वादमें मधुर तथा कडवा है, रंग इसका गुडहरके फूलके समान लाल है, स्निग्ध है, घन है, गेरूकीसी कान्तिसे युक्त और शीत गुणवाला है ॥ १३ ॥

रौप्याशिलाजतुलक्षणम् ।

रूप्यगर्भगिरेर्जातं मधुरं पाण्डुरं गुरु ।
शिलाजं कफवातघ्नं तिक्तोष्णं क्षयरोगजित् ॥ १४ ॥

चांदीकी खानवाले पहाडसे पैदा हुआ शिलाजीत मधुर है, पीले रंगसे युक्त तथा भारी है, कफ और वातको नष्ट करता है, तीखा और गरम है, क्षयीरोगको दूर करता है ॥ १४ ॥

अन्यच्च ।

रौप्याकरादिन्दुमृणालवर्णं सक्षारकट्वम्लरसं विदाहि ।
मेहामजीर्णज्वरपाण्डुशोषप्लीहाढ्यवातं शमयेद्धि सद्यः ॥ १५ ॥

चांदीकी खानवाले पर्वतसे उत्पन्न हुआ शिलाजीत चन्द्रमा और कमलनालके सदृश स्वच्छ तथा सफेद रंगवाला होता है, खारी, तीखा और खट्टा है, विदाही है, प्रमेह अजीर्ण ज्वर, पाण्डुरोग, शोषरोग पिलही और बादीको शीघ्रही नाश करता है ॥ १५ ॥

तामशिलाजतुलक्षणम् ।

ताम्रगर्भगिरेर्जातं नीलवर्णं घनं गुरु ।

मयूरकंठसदृशं तीक्ष्णमुष्णं च जायते ॥ १६ ॥

तांबेकी खानवाले पर्वतसे पैदा हुआ शिलाजीत नीलेरंगवाला तथा घन और भारी होता है, मयूरकंठके सदृश कान्तिसे युक्त, तीखा और गरम होताहै ॥१६॥

अन्यच्च ।

मयूरकंठोपमचाषपक्षवर्णं सतिक्तं कटु चापि ताम्रम् ।

तिक्तं ह्यनुष्णं च सुलेखनं च मेहाम्लपित्तज्वरशोषहारि ॥१७॥

जिसका रंग मोरके कंठ वा पपैयाके पंखोंके तुल्य हो, तीखा तथा कडवा हो, अनुष्ण और लेखन हो प्रमेह अम्लपित्त, ज्वर और शोषरोगका नाशक हो वह ताम्रशिलाजतु कहाता है ॥ १७ ॥

लौहशिलाजतुलक्षणम् ।

लौहं जटायुपक्षाभं तिक्तकं लवणं भवेत् ।

विपाके कटुकं शीतं सर्वश्रेष्ठमुदाहृतम् ॥ १८॥

लोहकी खानवाले पर्वतसे उत्पन्न हुआ शिलाजीत गीध पक्षीके पंखके सदृश रंगवाला होता है, तीखा है, नमकीन है, विपाकमें कटु है, शीत है और सबोंमें श्रेष्ठ है ॥ १८ ॥

अन्यच्च।

गोमूत्रगंधि कृष्णं गुग्गुल्वाभं विशर्करं मृत्स्नम्।

सिद्धमनल्पकषायं कृष्णायसजं शिलाजतु वरम् ॥ १९ ॥

जो गौके मूत्रके समान गंधवाला तथा कालेरंगसे युक्त हो, गूगलके तुल्य कान्तिवाला हो, कंकड रहित मिट्टीके समान शुद्ध और थोडा कषैला हो वह लोहाशिलाजतु कहाता है यह श्रेष्ठ होता है ॥ १९ ॥

वंगशिलाजतुलक्षणम् ।

किञ्चित्सतिक्तं कटुसान्द्रमृत्स्नं त्रपुप्रसूतं त्रपुवर्णगन्धम् ।

शोथप्रमेहज्वरशोषहारि शीताम्लपित्तं विनिहन्ति सद्यः ॥ २० ॥

जो कुछ कटु और तीखा हो, सान्द्र जिसकी मिट्टी हो, रांगेके समान वर्णसे युक्त और गंधवाला हो उस शिलाजीतको वंगकी खानवाले पर्वतोंसे उत्पन्न हुआ जानना चाहिये। यह शोफरोग, प्रमेह, ज्वर, शोषरोग, शीत और अम्लपित्तको शीघ्रही नष्ट करता है ॥ २० ॥

नागशिलाजतुलक्षणम्।

नागात्सतिक्तं मृदु चोष्णवीर्यं वर्णादतः स्यात्कुसुमेन तुल्यम्।
रसेन स्यात्कटुकप्रधानं वर्णौजतेजः प्रबलं ददाति ॥ २१ ॥

सीसेकी खानवाले पर्वतोंसे उत्पन्न शिलाजीत तीखा, नरम, उष्णवीर्य, कुसुम पुष्पके समान रंगसे युक्त होता है, इसमें कडवा रस मुख्य है, यह वर्ण, ओज और तेजको देता है ॥ २१ ॥

वातपित्तादिभेदेन शिलाजस्योपयोगवर्णनम्।

वातपित्ते तु सौवर्णं श्लेष्मपित्ते तु राजतम्।
ताम्रजं कफरोगेषु लोहजं तत्त्रिदोषनुत् ॥ २२ ॥

वातपित्त जनित रोगोंमें सौवर्णशिलाजीत, कफपित्त जनित रोगोंमें राजत शिलाजीत, कफज रोगोंमें ताम्रज शिलाजीत, और त्रिदोषमें लोहज शिलाजीत सेवन करना चाहिये ॥ २२ ॥

शिलाजतुशोधनविधिः।

तच्छोधनमृते व्यर्थमनेकमललेपनात्।
शिलाजतु समानीय लोहजं लक्षणान्वितम् ॥
बहिर्मलमपाकर्तुं क्षालयेत्केवलाम्बुना ॥ २३ ॥
लौहे स्थितं निम्बगुडूचिसर्पिषा पुटैर्यथावत्परिभावयेत्तत्।
संतानिकाकीटपतंगदंशदुष्टौषधीदोषनिवारणाय ॥ २४ ॥

अनेक मलोंके मेल होनेसे विना शोधन किया हुआ शिलाजीत व्यर्थ है इस कारण लोहेकी खानवाले पर्वतसे उत्पन्न सर्वलक्षणोंसे युक्त शिलाजीतको लाकर बाहरके मल दूर करनेके लिये केवल जलसे धोडाले जब यह शिलाजीत गरमीमें पहाडोंसे निकलता है उस समय मकडी, कीट, पतंग, मच्छर और दुष्ट औषध आदिका मेल होजानेसे वह दोषयुक्त होजाता है अतः उन दोषोंकी निवृत्तिके लिये शिलाजीतको लोहेके पात्रमें रखकर नीम, गिलोय और घीकी भावना देवे तो शुद्ध होजाता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

द्वितीयः प्रकारः।

उष्णे च काले रवितापयुक्ते व्यभ्रे निवाते समभूमिभागे।
चत्वारि पात्राण्यपि चायसानि न्यस्तानि तत्रापि कृतावधानः॥ २५॥
शिलाजतु श्रेष्ठमवाप्य पात्रे प्रक्षिप्य तस्माद्द्विगुणं च तोयम्।
उष्णं तदर्द्धं क्वथितं च दत्त्वा विशोषयेत्तन्मृदितं यथावत्॥ २६॥
सुवस्त्रपूतं प्रविधाय तत्तु संस्थापनीयं पुनरेव तत्र।
ततस्तु यत्कृष्णमतीव चोर्ध्वं संतानिकावद्रविरश्मितप्तम्॥ २७॥
पात्रात्तदन्यत्र ततो निदध्यात्तस्यान्तरे चोष्णजलं निधाय।
ततश्च तस्मादपरत्र पात्रे तस्माच्च पात्रादपरत्र भूयः॥ २८॥
पुनस्ततोऽन्यत्र निधाय कृत्स्नं यत्संहृतं तत्पुनराहरेच्च।
यदा विशुद्धं जलमच्छमूर्द्धं प्रसन्नभावान्मलमेत्यधस्तात्॥ २९॥
तदा तु त्याज्यं सलिलं मलं हि शिलाजतु स्याज्जलशुद्धमेव।
चतुर्थपात्राद्गलितं हि सर्वं परीक्षणीयं खलु वैद्यवर्यैः॥ ३०॥

ग्रीष्म ऋतुमें जिस दिन तेज धूप हो और आकाश मेघोंसे आच्छादित न हो, वायु न चलता हो उस दिन सम पृथिवीमें लोहेके चार पात्र रक्खे तो भी सावधान रहे। चारों पात्रोंमेंसे किसी एक पात्रमें उत्तम शिलाजीतके टुकडे २ करके छोड देवे और उसीमें शिलाजीतका दुगुना जल डाले और उससे आधा गरम पानी डाल हाथसे धीरे धीरे मलकर कपडेमें छानलेवे, इस छनेहुए जलको उसी लोहेके पात्रमें भरकर धूपमें रखदेवे तत्पश्चात् सूर्यकी तेज धूपसे संतप्त होकर उस पात्रस्थित शिलाजतु मिश्रित जलके ऊपर जब अत्यन्त काले रंगकी मलाई पडजावे तब उसको उतारकर दूसरे लोहेके पात्रमें रखता जाय, जब तक मलाई उसमें पडती रहे तब तक इसी प्रकार उस मलाईको उतार उतार कर दूसरे पात्रमें रखतारहे जब मलाई जमना बंद होजावे तब दूसरे पात्रमें अब तक नितार २ कर जो मलाई जमा की है उसमें गरम पानी छोडकर तेज धूपमें रखदेवे और इसमें भी जब तक मलाई जमती जाय तब तक तीसरे लोहपात्रमें रखताजाय तदनन्तर इसमें पात्रस्थित मलाईमें गरम जल छोडकर तेज धूपमें रखदेवे और पहलेकी तरह मलाई उतार २ कर लोहेके चौथे पात्रमें रखताजाय जब मलाई जमना बंद होजाय तब चौथे पात्रमें रक्खी हुई मलाईमें भी गरम जल छोडकर तेज धूपमें रखदेवे और पूर्ववत् मलाई उतार २ पहले लोहपात्रमें

रक्खे। इसी प्रकार चार पाँच बार करे जब पात्रमें जल स्वच्छ रहे तब जाने कि शिलाजीत शुद्ध होगया, उस पानीको बाहर फेंकदेवे और पात्रसे शिलाजीतको निकालकर आगे कही हुई रीतिसे श्रेष्ठ वैद्य उसकी परीक्षा करे ॥ २९-३० ॥

तृतीयः प्रकारः ।

शिलाजतु समानीय ग्रीष्मे तप्तं शिलाच्युतम् ।
गोदुग्धैस्त्रिफलाक्काथैर्भृंगद्रावैश्च मर्दयेत् ॥ ३१ ॥
आतपे दिनमेकैकं तच्छुष्कं शुद्धतां व्रजेत् ।
अयं तु सुगमोपायो दुष्करा इतरे भुवि ॥ ३२ ॥

ग्रीष्म ऋतुमें जब बहुत गरमी पडती है उस समय पहाडोंसे जो शिलाजीत स्रवता है उसको लाकर गौके दूधमें घोटकर धूपमें एक दिन सुखालेवे तदनन्तर त्रिफलाके काढे और भाँगरेके रसमें अलग २ घोटकर एक एक दिन धूपमें सुखावे तो वह शुद्ध होजाता है इसके शुद्ध करनेका सुगम उपाय तो यही है और कठिन उपाय तो पृथ्वीमें बहुत हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

मुख्यां शिलाजतुशिलां सूक्ष्मखण्डप्रकल्पिताम् ।
निःक्षिप्यात्युष्णपानीये यामैकं स्थापयेत्सुधीः ॥ ३३ ॥
मर्दयित्वा ततो नीरं गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम् ।
स्थापयित्वा च मृत्पात्रे धारयेदातपे बुधः ॥ ३४ ॥
उपरिस्थितं घनं चास्य तात्क्षिपेदन्यपात्रके ।
धारयेदातपे धीमानुपरिस्थं घनं नयेत् ॥ ३५ ॥
एवं पुनः पुनर्नीत्वा द्विमासाभ्यां शिलाजतु ।
भूयात्कार्यक्षमं वह्नौ क्षिप्तं लिङ्गोपमं भवेत् ॥ ३६ ॥
निर्धूमं च ततः शुद्धं सर्वकर्मसु योजयेत् ।
अधःस्थितं च यच्छेषं तस्मिन्नीरं विनिक्षिपेत् ।
विमर्द्य धारयेद्धर्मे पूर्ववच्चैव तन्नयेत् ॥ ३७ ॥

मुख्य शिलाजीतके छोटे २ टुकडे करके लोहपात्रमें स्थित अत्यन्त गरम जलमें डालदेवे और एक प्रहर तक रक्खा रहने देवे तत्पश्चात् उसको हाथसे अच्छे

प्रकार मलकर कपडेमें छानलेवे इस छने हुए जलको किसी शुद्ध मिट्टीके कोरे पात्रमें भरकर तेज धूपमें रखदेवे और इसमें जब मलाई जमजावे तब दूसरे मिट्टीके पात्रमें उस मलाईको उतार कर रक्खे जबतक मलाई जमना बंद न हो तबतक उतार २ रखतारहे जब मलाई इकट्ठी होजावे तब उसमें गरम पानी डालकर हाथसे खूब मलकर कपडेमें छानलेवे और तेज धूपमें रखदेवे और इसमें जो मलाई जमें उसको तीसरे पात्रमें रखताजाय इसी प्रकार दो मास पर्यन्त बार २ करे तो कार्यके योग्य शिलाजीत सिद्ध होजाताहै। इसको अग्निमें छोडे यदि लिङ्गके सदृश ऊँचा होजावे, और धूमरहित हो तो शुद्ध जानना चाहिये। इसे सब कर्मोंमें योजना करे। तत्पश्चात् पात्रमें नीचे जो शिलाजीत शेष रहगया हो उसमें गरम पानी डालकर मले और तेज धूपमें रख पूर्ववत् मलाई उतारलेवे ॥ ३३-३७ ॥

शुद्धशिलाजतुसंस्कारः सेवनविधिश्च।

त्रिफलावारिगोदुग्धमूत्रैर्भाव्यं शिलाजतु।
स्वल्पं स्वल्पं विधानेन स्थापयेत्काचभाजने ॥ ३८ ॥
अगुर्वादिशुभैर्धूपैर्धूपयेत्तत्प्रयत्नतः।
मात्रया सितया पश्चात्स्निग्धं शुद्धं यथाविधि ॥ ३९ ॥
एकत्रिसप्तसप्ताहं कर्षमर्द्धपलं पलम्।
हीनमध्योत्तमो योगो शिलाजस्य क्रमाद्यतः ॥ ४० ॥
क्षीरेणालोडितं कुर्याच्छीघ्रं रसफलप्रदम्।
हन्याद्रागानशेषांश्च जीर्णेहनि मिताशनः ॥ ४१ ॥

पूर्वोक्त प्रकारसे शुद्ध किये शिलाजीतमें त्रिफलाके काढे और गौके दूध तथा मूत्रकी अलग २ भावना देवे तत्पश्चात् थोडा २ किसी शुद्ध काचके पात्रमें भरदेवे और प्रयत्नसे अगर आदिकी धूपसे धूपदेवे तदनन्तर स्निग्ध तथा वमन और विरेचनसे शुद्ध किये मनुष्यको मात्रासे दूध और मिश्रीके साथ इस शिलाजीतको एक दिन वा इक्कीस दिन वा सात दिन पर्यन्त सेवन करनेके लिये देवे। इसकी मात्रा एक कर्ष हीन, अर्द्धपल मध्यम और एक पल उत्तम मानी गयी है। इसका विधिपूर्वक सेवन करे तो सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करे और शीघ्र इसका फल देवे। औषध पचजाने पर परिमित भोजन करे ॥ ३८-४१ ॥

शुद्धशिलाजतुपरीक्षा।

वह्नौ क्षिप्तं तु निर्धूमं पक्कं लिङ्गोपमं भवेत्।
तृणाग्रेणांभसि क्षिप्तमधोगलति तंतुवत् ॥ ४२ ॥

गोमूत्रगंधं मलिनं शुद्धं ज्ञेयं शिलाजतु ।
एतस्य विपरीतं यत्तदशुद्धं शिलाजतु ॥ ४३ ॥

यदि अग्निमें छोडाहुआ शिलाजीत पककर धूमसे रहित तथा लिङ्गके समान ऊपरको उठे, और उस तृणके अग्रभाग पर रख पानीमें छोडे यदि वह तन्तुओंके सदृश फैलकर नीचे बैठजावे और गौके मूत्रके तुल्य गंधसे युक्त, तथा मलिन हो तो उसे शुद्ध जानना और यदि पूर्वोक्त लक्षणोंसे विपरीत लक्षण हों तो अशुद्ध जानना ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

विशेषपरीक्षा ।

दुग्धो यस्य योगाद्धि विकृतिं चाम्लकैर्भजेत् ।
सर्वयोगेषु योक्तव्यमुत्तमं तच्छिलाजतु ॥
कृत्रिमेपि यतो दृष्टं लिङ्गाकाराश्च तन्तवः ॥ ४४ ॥

एक पाव दूधमें तीन मासे शिलाजीत मिलाकर एक तोला सिर्का डालदेवे यदि दूध न फटे तो उत्तम शुद्ध शिलाजीत समझना । इसीको प्रत्येक योगमें लेना चाहिये क्योंकि अग्निपर छोडनेसे लिङ्गाकार और पानीमें डालनेसे तंतुके तुल्य होना तो हमने कृत्रिम शिलाजीतमें भी देखा है ॥ ४४ ॥

शिलाजतुगुणाः ।

रसोपरससूतेन्द्ररत्नलोहेषु ये गुणाः ।
वसन्ति ते शिलाधातौ जरामृत्युजिगीषया ॥ ४५ ॥
शिलाजं कटुतिक्तोष्णं कटुपाकं रसायनम् ।
छर्दिरोगं तथा हन्ति कम्पमेहाश्मशर्कराः ॥ ४६ ॥
मूत्रकृच्छ्रं क्षयं श्वासं वातमर्शांसि पाण्डुताम् ।
अपस्मारमथोन्मादं शोफकुष्ठोदरकृमीन् ॥ ४७ ॥

वृद्धावस्था और मृत्युको जीतनेवाले जो २ गुण रस, उपरस, पारद, रत्न और सुवर्णादि आठ प्रकारके लोहोंमें विद्यमान हैं वही सब गुण शिलाजीतमें भी रहते हैं । यह शिलाजीत तीखा, कडवा और गरम है पाक समयमें कटु है, रसायन है । विधिपूर्वक सेवन करनेसे छर्दिरोग, कंप, प्रमेह, पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, क्षयी, श्वास, बादी, बवासीर, पांडुरोग, मृगी, उन्माद, सूजन, कुष्ठ-रोग, उदररोग और कृमिरोगको नष्ट करताहै ॥ ४५-४८ ॥

शिलाजतुभस्मप्रशंसा ।

असाध्यरोगो न हि कोपि दृश्यते शिलाजभस्म प्रसभं न यं दहेत् ।
तत्कालयोगैर्विविधैः प्रयुक्तं स्वास्थ्यं तनौ यद्विपुलं ददाति ॥ ४८ ॥

कोई ऐसा असाध्य रोग देखनेमें नहीं आता कि जिसको शिलाजीतकी भस्म न जला देवे । तत्काल रोगोंको दूर करनेवाले अनेक योगोंके साथ इसको देनेसे शरीरमें अत्यन्त स्वस्थता लाता है ॥ ४८ ॥

शिलाजसेवनानुपानानि ।

एलापिप्पलिसंयुक्तं माषमात्रं तु भक्षयेत् ।
मूत्रकृच्छ्रं मूत्ररोधं हन्ति मेहं तथा क्षयम् ॥ ४९ ॥
सर्वानुपानैः सर्वत्र रोगेषु विनियोजयेत् ।
जयत्यभ्यासतो नूनं ताँस्तान्रोगान्न संशयः ॥ ५० ॥

एक मासे शिलाजीतको छोटी इलायची और पिप्पलीके साथ सेवन करे तो मूत्रकृच्छ्र, मूत्ररोध, प्रमेह और क्षयीरोगको दूर करता है । सब रोगोंमें उचित अनुपानोंके साथ इसको देवे तो नित्यके सेवन करनेसे उन २ रोगोंको निस्सन्देह नष्ट करताहै ॥ ४९ ॥ ५० ॥

शिलाजभस्मविधिः ।

शिलायां गंधतालाभ्यां मातुलुंगरसेन च ।
पुटितं हि शिलाधातुर्म्रियतेऽष्टोपलेन च ॥ ५१ ॥

शिलाजीतमें शुद्ध गंधक और शुद्ध हरिताल मिलाकर बिजौरे नींबूके रसमें घोटे और फिर आठ आरने उपलोंकी आँच देकर पकावे तो वह मरजाता है ॥ ५१ ॥

तद्भस्मसेवनविधिः ।

भस्मीभूतशिलोद्भवं समतुलं कान्तिं च वैक्रान्तिकं
युक्तं च त्रिफलाकटुत्रयघृतैर्वल्लेन तुल्यं भवेत् ॥
पाण्डौ यक्ष्मगदे तथाग्निसदने मेहे च मूलामये
गुल्मप्लीहमदोदरे बहुविधे शूले च योन्यामये ॥ ५२ ॥

जितनी शिलाजीतकी भस्म हो उतनी ही उसमें कान्तलोह और वैक्रान्तमणिकी भस्मको मिलावे तत्पश्चात् त्रिफला और तीनों कटु अर्थात् सोंठ, मिर्च और पीपलके साथ तीन रत्तीकी मात्रासे सेवन करे तो पाण्डुरोग, राजयक्ष्मा,

मन्दाग्नि, प्रमेह, गुदाके रोग, गुल्मरोग, तापतिल्ली, उदररोग, शूल और योनि-रोगोंको नष्ट करता है ॥ ५२ ॥

शिलाजतुसत्त्वपातनविधिः।

पिंष्याद्द्रावणवर्गेण साम्लेन गिरिसंभवम् ।
रुद्ध्वा मूषोदरे ध्मातं कोकिलैः सत्त्वमृच्छति ॥
सत्त्वं मुञ्चेच्छिलाधातुश्चोत्तमं लोहसन्निभम् ॥ ५३ ॥

द्रावणवर्ग तथा अम्लवर्गोक्त औषधियोंमें शिलाजीतको घोटकर मूषामें बंदकर भट्टीमें रख कोयलोंकी अग्नि देवे तो लोहेके समान उत्तम सत्त्व निकलता है॥५३॥

द्वितीयसोरकाख्याशिलाजतुवर्णनम् ।

द्वितीयं सोरकाख्यं स्याच्छ्वेतवर्णं शिलाजतु ।
अग्निवर्णप्रदं तद्धि हितं मूत्रामयेषु च ॥ ५४ ॥

पूर्वोक्त शिलाजीतसे भिन्न दूसरा सोरक नामका एक और शिलाजीत होता है। यह रंगमें सफेद तथा शरीरमें अग्निके समान कान्तिका देनेवाला है और मूत्ररोगमें हितकारी है ॥ ५४ ॥

सोरकाख्यशिलाजतुस्वरूपाख्यानम् ।

पाण्डुरं सिकताकारं कर्पूराभं शिलाजतु ।
मूत्रकृच्छ्राश्मरीमेहकामलापाण्डुनाशनम् ॥ ५५ ॥
एलातोयेन संमिश्रं सिद्धं सिद्धिमुपैति तत् ।
न तस्य मारण सत्त्वपातनं विहितं बुधैः ॥ ५६ ॥

यह सारक नामक शिलाजीत कुछ २ पाल रंगसे युक्त और कर्पूर तथा बालूके समान होताहै, विधिपूर्वक सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्र, पथरी, प्रमेह, कामला और पाण्डुरोगको नाश करता है। इलायचीके जलके साथ मिलादेनेसे इसकी शुद्धि होजाती है । वैद्योंने इसके सत्त्वपातन तथा मारणकी विधिका वर्णन नहीं किया ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

शिलाजतुसेवने पथ्यापथ्यम् ।

व्यायामातपमारुतचेतःसंतापिगुरुविदाहादि ।
उपयोगादपि परितो द्विगुणं परिवर्जयेत्कालम् ॥ ५७ ॥

पिबेन्माहेन्द्रसलिलं कौपं प्रास्रावणाम्बु वा ।
कुलत्थान्काकमाचींश्च कापोतांश्च सदा त्यजेत् ॥ ५८ ॥

जो मनुष्य शिलाजीतका सेवन करे वह व्यायाम अर्थात् कसरत, धूप, वायु तथा चित्तको सन्ताप देनेवाले कार्योंको त्याग करे, जो पदार्थ भारी तथा दाह पैदा करनेवाले हों उनका भी त्याग रक्खे और जितने दिन तक इसका सेवन करे उससे दुगुने दिन पर्यन्त त्याज्य पदार्थों तथा कार्योंका त्याग रक्खे बर्षा, कूप और झरना इन तीनोंमेंसे चाहे जिसका जल पीवे क्योंकि यह तीनों ही जल इसमें पथ्य हैं कुलथी, मकोय और कबूतरके मांसका सदा त्याग रक्खे ॥ ५८ ॥

अशुद्धशिलाजतुसेवनोपद्रवाः ।

अशुद्धं दाहमूर्च्छादीन्भ्रमपित्तास्रशोणितम् ।
शिलाजतु प्रकुरुते मांद्यमग्नेश्च विड्ग्रहम् ॥ ५९ ॥

विना शोधा हुवा शिलाजीत जलन, मूर्च्छा, भ्रम, रक्तपित्त, रुधिरविकार, मन्दाग्नि और मलका रुकना आदि उपद्रवोंको उत्पन्न करता है ॥ ५९ ॥

दोषशान्त्युपायः ।

मरिचं घृतसंयुक्तं सेवयेद्दिनसप्तकम् ।
शिलाजतुभवं दोषं शान्तिमाप्नोति निश्चितम् ॥ ६० ॥

यदि सात दिन पर्यन्त घृत सहित काली मिर्चका सेवन करे तो अशुद्ध शिलाजीतके सेवन करनेसे उत्पन्न समस्त विकार निस्सन्देह नष्ट होते हैं ॥ ६० ॥

षड्विंशतितमेऽध्याये वर्णनं वै शिलाजतोः ।
कृतं मया यथा तात धारणीयं तथा त्वया ॥ ६१ ॥

हे पुत्र ! इस छब्बीसवें अध्यायमें मैंने जिस प्रकार शिलाजीतका वर्णन किया तुम्हें उसी प्रकार उसे धारण करना चाहिये ॥ ६१ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणेशिलाजतु-
वर्णनं नाम षड्विंशतितमोध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः ।

अथातो साधारणरसवर्णनं नाम सप्तविंशतितमाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम साधारण रसवर्णन नामक सत्ताईसवें अध्यायका वर्णन करते हैं ॥

गुरुरुवाच ।

साधारणरसानाञ्च वर्णनञ्चापि श्रूयताम् ॥ १ ॥

गुरुने कहा कि, हे तात ! इस अध्यायमें साधारण कंपिल्ल आदि रसोंका वर्णन किया जाता है वह तुम सुनो ॥ १ ॥

साधारणरसनामानि ।

काम्पिल्लश्चपलो गौरीपाषाणो नरसारकः ।
कपर्दी वह्निजारश्च गिरिसिंदूरहिंगुलौ ॥ २ ॥
केदारशृंगमित्यष्टौ साधारणरसाः स्मृताः ।
केचित्तु कथिताः पूर्वं शेषाँस्त्वत्र प्रकाशये ॥ ३ ॥

कमीला, चपल, गौरीपाषाण, नवसादर, कौडी, वह्निजार, गिरिसिंदूर और केदारशृंग यह आठ प्रकारके साधारण रस कहे जाते हैं इनमेंसे हिंगुल, सिंदूर चपल यह तो पहले कहचुके अब जो शेष हैं उनका यहाँ वर्णन किया जाता है ॥ २ ॥ ३ ॥

साधारणरसानां सामान्यशोधनविधिः ।

साधारणरसाः सर्वे मातुलुङ्गार्द्रकाम्बुना ।
त्रिवारं भाविताः शुष्का भवेयुर्दोषवर्जिताः ॥ ४ ॥

पूर्वोक्त काम्पिल्ल आदि सब साधारण रसोंमें बिजौरानींबू और अदरखके रसकी तीन तीन भावना देकर धूपमें सुखालेवे तो वे शुद्ध होजाते हैं ॥ ४ ॥

काम्पिल्लद्रव्यानिर्णयः ।

काम्पिल्लकस्य वृक्षास्तु पर्वते वै भवन्ति हि ।
तेषां फलानामुपार लालिमैव हि काम्पिलः ॥ ५ ॥

कमीलेके[१] वृक्ष प्रायः पर्वतोंपर अधिक होते हैं इस वृक्षके फलोंपर ईंटकासा लाल रंगका चूर्ण लगा रहता है। इन फलोंको तोडकर धूपमें सुखानेसे

---

१ कमीलेके वृक्ष शिमलेके जिले और मेरे निवासस्थान टकसालमें बहुत होते हैं। पहाडी लोग इसकी पत्तियां गायें और भैंसोंको खिलाते हैं और वे इसके वृक्षोंको कामिल कहते हैं ॥

वह लालिमा अपने आप झडजाती है इसी चूर्णको कबीला या कमीला कहते हैं ॥ ५ ॥

काम्पिल्लगुणाः ।

काम्पिल्लको विरेची स्यात्कटूष्णो व्रणनाशनः ।
कफकासातिहारी च जन्तुकृमिहरो लघुः ॥ ६ ॥

यह कमीला दस्तावर, चरपरा, गरम, व्रणनाशक, कफ और खाँसीको नष्ट करनेवाला तथा जुवें और कृमिरोगको दूर करनेवाला है, हलका है (मलाशयके कृमि (छारुवे-चलूंणे) जब किसीको दिक करें तो कमीलेको दहीमें मिलाकर पिलादेवे तो सब कृमि तीन या चार दस्तोंके द्वारा निकल जाते हैं) ॥६॥

अन्यच्च ।

पित्तज्वराध्मानविबंधनिघ्नः श्लेष्मोदरार्तिक्रिमिगुल्मवैरी ।
व्रणामशूलज्वरशोफहारी कम्पिल्लकोऽनेकगदापहश्च ॥ ७ ॥

यह कमीला पित्तज्वर, अफरा, बद्धकोष्ठता, कफविकार, उदररोग, कृमिरोग, गुल्मरोग, व्रणरोग, आमवात, शूलरोग, ज्वर, शोफ, तथा और भी अनेक प्रकारके रोगोंका नाश करताहै ॥ ७ ॥

गौरीपाषाणभेदाद्याख्यानम् ।

गौरीपाषाणकः प्रोक्तो द्विविधः श्वेतपीतकः ।
श्वेतः शंखसमः पीतो दाडिमाभः प्रकीर्तितः ।
श्वेतः कृत्रिमकः प्रोक्तः पीतः पर्वतसम्भवः ॥ ८ ॥

गौरीपाषाण अर्थात् शंखियाके दो भेद हैं इनमेंसे पहला तो शंखके समान सफेद और दूसरा अनारके समान पीले रंगका कहागया है, सफेद शंखिया बनाईहुई है और पीली शंखिया पर्वतसे उत्पन्न होती है ॥ ८ ॥

पीतगौरीपाषाणनामगुणवर्णनम् ।

गौरीपाषाणकःपीतो विकटो हतचूर्णकः ।
रसबंधकरः स्निग्धो दोषघ्नो वीर्यकारकः ॥ ९ ॥

पीले रंगवाले गौरीपाषाणके विकट और हतचूर्णक भी नाम हैं, यह पारेको बाँधता है, चिकना है, त्रिदोषको नष्ट करताहै और वीर्यको बढाता है ॥ ९ ॥

पारदादियोगेन गौरीपाषाणकस्य रौप्यनिर्माणविधिः ।

चतुःकर्षं रसं ग्राह्यं गौरीपाषाणकं समम् ।
निंबुनीरेण सप्ताहं मर्दयेत्कुशलो भिषक् ॥ १० ॥
घनभावे समुत्पन्ने तस्मादुद्धृत्य रक्षयेत् ।
पेटिकां तारजां रम्यां विनिर्माय मनीषया ॥ ११ ॥
पलमात्रस्य मेधावी तन्मध्ये पिष्टिकां क्षिपेत् ।
तस्योपरि पुटं देयं यथोद्घाटो भवेन्न च ॥ १२ ॥
त्रिंशद्वन्योपलैरग्निं प्रदद्याद्रहसि स्थितः ।
उक्तताम्रं पलार्द्धं तु वह्निना द्रवतां नयेत् ॥ १३ ॥
द्रवीभूते च ताम्रे च गुञ्जापञ्चमितं खलु ।
निक्षिपेच्छंखसंयुक्तं पारदं तस्य मध्यकम् ॥ १४ ॥
तत्ताम्रं जायते शुभ्रं शंखकुन्देन्दुसन्निभम् ।
तत्समं रौप्यकं दत्त्वा प्रधमेद्दृढवह्निना ॥
जायते सकलं रौप्यं साधकानां सुखावहम् ॥ १५ ॥

कुशल वैद्य पारा और शंखिया इन दोनोंको चार चार तोला लेकर नींबूके रसमें सात दिन पर्यन्त घोटे, घोटते २ जब गाढा हो जावे तब खरलसे अलग रखलेवे और चार तोले चाँदीकी एक ऐसी डिबिया बनवावे कि जिसमें पारा और शंखिया दोनोंकी पीट्ठी आजावे, उसी डिबियामें पीट्ठी भरकर बंद करे और उसमें ऐसी कपरमिट्टी करे कि जिसमें फिर न खुले तत्पश्चात् धूपमें सुखाकर एकान्त स्थानमें तीस जङ्गली उपलोंकी अग्नि देवे तो पीट्ठी चाँदी होजाय और फिर दो तोले शुद्ध किये हुए ताँबेको आँचमें तपाय पतला करलेवे और उसमें पूर्वोक्त डिबियाकी पाँच रत्ती चाँदी मिलादेवे तो वह ताँबा, शंख, कुन्द, और चन्द्रमाके तुल्य श्वेत होजाय तदनन्तर उस ताँबेकी बराबर चाँदी मिलाय आँचमें रख खूब धमे तो सब चाँदी होजाय, यह साधकोंके लिये सुखको प्राप्त करनेवाली है ॥ १०-१५ ॥

गौरीपाषाणसत्त्वपातनविधिः ।

दिनैकं गौरीपाषाणं कांजिके मर्दयेद्बुधः ।
विषोपविषक्वाथेषु संमर्द्य विधिना ततः ॥ १६ ॥

डमरुयन्त्रेणोत्पात्य विधिना तं हरेत्ततः।
तंडुलस्य चतुर्थांशं सितया सह दापयेत् ॥
दुग्धौदनं घृतं दद्यान्नानारोगनिवृत्तये ॥ १७ ॥

शंखियाको एक दिन कांजीमें घोटकर फिर विषों और उपविषयोंके क्राथोंमें भावना देकर गोला बनालेव, तत्पश्चात् डमरूयन्त्रके द्वारा उडालेवे और जब स्वांगशीतल होजाव तब ऊपरके पात्रमें लगेहुए सत्त्वको निकाललेवे इसमेंसे सर्षप समान मात्रा लेकर मिश्रीक साथ द व और दूध, भात, घी यह पथ्य देवे तो अनेक रोगोंकी निवृत्ति हो॥ १६ ॥ १७ ॥

मारणविधिः।

कर्षैकमाखुपाषाणं युग्मकर्षे च टंकणे।
पाचयेत्सम्पुटं कृत्वा सम्यक्प्रस्थोपलाग्निना ॥ १८ ॥
स्वांगशीते विगृह्याथ मात्रा सार्षपिका मता।
सव्य संतानिकायुक्तं नवनीतेन वा मृतम् ॥
सितया वापि संसेव्यं गौरीपाषाणकं वरम् ॥ १९ ॥

एक तोला शंखियाको दो तोले सुहागेमें संपुट कर एक सेर आरने उपलोंकी आँचमें निर्वात स्थानमें पकावे, स्वांगशीतल होनेपर निकाललेवे और किसी उत्तम काँच आदिके पात्रमें रखदेवे। मात्रा इसकी सर्षपके तुल्य है और प्रतिदिन दूधकी मलाई, मक्खन वा मिश्रीके साथ मात्रासे इस उत्तम मृत शंखियेका सेवन करे ॥ १८ ॥ १९ ॥

द्वितीयः प्रकारः।

इष्टिकायां कृते गर्ते स्थापयेल्लौहमात्रकम्।
संस्थाप्य चेष्टिकां चुल्ल्यां गौरीपाषाणकं क्षिपेत् ॥ २० ॥
ततोऽर्कयामपर्यन्तं तिलक्षारजवारिणा।
प्रस्थत्रयेण वै सम्यक्पाचयेन्मृदुवह्निना ॥ २१ ॥
तिलक्षारोदकं त्वत्र स्वल्पं स्वल्पं मुहुर्मुहुः।
क्षिपेत्पाचनकालान्तं नैकवारं विचक्षणः ॥ २२ ॥
ततः शरावेणाच्छाद्य मृदा च विधिवत्पुटेत्।
स्वांगशीतं समुद्धृत्य तंडुलार्धं प्रदापयेत् ॥ २३ ॥

दूसरा प्रकार एक बडी ईंटमें गढा करे और उस गढेमें लोहेकी कटोरी जमा-देवे, उस कटोरीमें शंखियाको डाले तदन्तर बारह प्रहर पर्यन्त तीन प्रस्थ तिलोंके खारके पानीसे अच्छे प्रकार मंद २ आँचसे पकावे परन्तु वैद्यको चाहिये कि,बह बारह प्रहर तक थोडा २ तिल क्षारोदक डालकर पकावे अर्थात् एक ही वार सब जल न छोड देवे (तिलक्षारोदककी यह विधि है कि, पहले दिन शामको एक सेर तिलखारमें तीन सेर पानी घोलकर रखदे और दूसरे दिन प्रातः-काल पानीको नितारलेवे) बारह प्रहरके अन्तर एक सकोरेसे ढांक कर मिट्टीसे बंदकर (और आँच देनाभी बंदकरदे) स्वांगशीतल होनेपर शंखियेकी फूली हुई खील निकाललेवे और आधे चावल प्रमाण मात्रासे पूर्ववत् मलाई, मक्खन वा मिश्रीके साथ सेवन करनेके लिये देवे ॥ २० ॥ २३ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

गौरीपाषाणकं कर्षं कर्षं षट् चैव हिंगुलम् ।
संमेल्य विजयापिण्डगर्भे संस्थापयेच्च तम् ॥ २४ ॥
पात्रेऽधःशोरकं न्यस्य ततो दद्यात्त पिण्डकम् ।
ततस्तु शोरकेणैव शिष्टं पात्रं प्रपूरयेत् ।
चतुर्यामाग्निना सम्यक्पाचयेद्भस्म जायते ॥ २५ ॥

तीसरा प्रकार,-एक तोला शंखिया और छः तोले सिंगरफको एकमें मिलाकर भाँगके गोलेके बीचमें रक्खे तत्पश्चात् एक हांडीमें नीचे शोरा भरके उसके ऊपर गोलेको रखकर शेष पात्रकोभी शोरासे पूर्ण भरदेवे और उस हांडीको चूल्हेपर चढाकर चार प्रहरकी आँच देकर पकावे तो शंखियेकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥२४॥२५॥

चतुर्थः प्रकारः ।

कर्षका मूसली श्वेता तत्समा कृष्णजीरिका ।
द्विकर्षं शोरकं चापि सर्व संचूर्ण्य यत्नतः ॥ २६ ॥
तन्मध्ये गौरिपाषाणं कर्षैकं स्थापयेद्बुधः ।
शरावसंपुटे चैव पञ्चप्रस्थोपलाग्निना ॥
पचेद्विधिज्ञो वैद्यस्तु तस्य भस्म प्रजायते ॥ २७ ॥

चौथा प्रकार,-एक कर्ष सफेद मूसली, एक कर्ष कालाजीरी और दो कर्ष शोरा लेकर सबोंको प्रयत्नसे चूर्ण करलेवे इस चूर्णके बीचमें एक तोला शंखियेको रख शरावसंपुटके द्वारा पाँच सेर आरने उपलोंकी अग्निसे विधिको जाननेवाला वैद्य पकावे तो शंखियेकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ २६ ॥ २७ ॥

पञ्चमः प्रकारः ।

त्रिदिनं ह्याखुपाषाणं निंबूनीरेण मर्दयेत् ।
सूरणे तं निधायाथ पचेत्प्रस्थोपलाग्निना ॥ २८ ॥
कृत्वा वारत्रयञ्चैवं ज्योतिष्मत्या रसे ततः ।
संमर्द्य सूरणपुटे पाचयेत्पूर्ववद्भिषक् ॥
एवं वारत्रयं कुर्यात्तस्य भस्म भवेद्ध्रुवम् ॥ २९ ॥

पांचवां प्रकार,--शंखियाको नींबूके रसमें तीन दिनतक खरल करे और उसकी टिकिया बना सूरणमें संपुट करके रक्खे तदनन्तर पांच सेर आरने उपलोंकी अग्नि देकर पकावे इसी प्रकार तीन बार करे । और पीछे मालकांगनीके रसमें घोटकर टिकिया बना धूपमें सुखालेवे और जिमिकन्दके संपुटमें रखकर पूर्ववत् पकावे, इसी प्रकार तीन बार करे तो निश्चय शंखियाकी भस्म सिद्ध हो जाती है ॥ २८ ॥ २९ ॥

नवसारोत्पत्त्यादिवर्णनम् ।

करीरपीलुजैः काष्ठैः पच्यते चेष्टकोद्भवः ।
क्षारोऽसौ नवसारः स्याच्चुल्लिकालवणं स्मृतम् ॥ ३० ॥
मनुष्यसूकराणां स विष्ठातः कीटवद्भवेत् ।
क्षारेषु गणना तस्य स्वर्णशोधनकः परः ॥ ३१ ॥
इष्टिकादहने जातं पाण्डुरं लवणं लघु ।
शंखद्रावे रसे पूज्यो मुख्यकर्मणि पारदे ॥
विडद्रव्योपयोगी च क्षारवत्तद्गुणा स्मृताः ॥ ३२ ॥

करीर और पीलु वृक्षकी लकडियोंसे ईंटका खार पकानेसे नौसादर खार बनता है, इसीका दूसरा नाम चुल्लिकालवण भी है यह मनुष्य और सूकरकी विष्ठासे कीटके तुल्य ईंटोंके पजावेमें होताहै, नवसादर इसकोभी क्षारोंमें गिनती की गई है, यह सोनेके शुद्ध करनेमें श्रेष्ठ है ईंटोंके पकानेमें जो पीले रंगका नमक होता है वह लघु है, शंखद्राव रसमें इसका काम पडता है । पारेके मुख्य कर्ममेंभी इसका उपयोग होताहै और विडद्रव्य अर्थात् पारेकी बंधनकारक वस्तुओंकाभी उपयोगी है इसके गुण क्षारोंके सदृश ही जानना चाहिये॥३०-३२॥

नवसारगुणवर्णनम् ।

नवसारः समाख्यातश्चुल्लिकालवणाभिधः ।
रसेन्द्रजारणो लोहजारणो जठराग्निकृत् ॥ ३३ ॥
प्लीहगुल्मास्यशोषघ्नं भुक्तं मांसादिजारणम् ।
विडाग्र्यं च त्रिदोषघ्नं चुल्लिकालवणं मतम् ॥ ३४ ॥

जिसको नवसादर कहते हैं उसीको चुल्लिकालवणभी कहते हैं । यह चुल्लिकालवण पारा तथा सोना, चांदी, तांबा आदि आठ लोहोंके जारणमें ग्रहण करने योग्य है, जाठराग्निको प्रदीप्त करता है, पिलही, गुल्मरोग और मुखशोषको दूर करता है, भोजन कियेहुए मांस आदिको जारण करता है, पारदके सब विडोंमें मुख्य है, त्रिदोष नाशक है, ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अग्निजारोत्पत्तिः ।

सासुद्रेणाग्निना तप्तो जरायुर्बहिरुत्सृतः ।
संशुष्को भानुतापेन सोऽग्निजार इति स्मृतः ॥ ३५ ॥
जराभं दहनस्यापि पिच्छिलं सागरप्लवम् ।
जरायुतश्चतुर्वर्णं श्रेष्ठं तत्सर्वलोहितम् ॥ ३६ ॥

समुद्रकी वडवाग्निसे संतप्त होकर जरायुके समान जो पदार्थ समुद्रसे बाहरको आता है और वह सूर्यकी धूपसे सूखजाता है, उसीका नाम अग्निजार (अंबर) है । अथवा जरायुके सदृश और अग्निके तेजसे पिच्छिल तथा समुद्रमें तैरनेवाला चार प्रकारके रंगोंसे युक्त यह अग्निजार समुद्रमें उत्पन्न होता है, इनमेंसे ताँबेके समान रंगवाला श्रेष्ठ होता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अन्यच्च ।

अब्धितीरेऽग्निनक्रस्य जरायुः शुष्कतां गतः ।
अग्निजारस्तु संप्रोक्तः स क्षारो जारणे हितः ॥ ३७ ॥

जो सूखाहुआ अग्निनक्रका जरायु समुद्रके किनारे आजाता है उसको अग्निजार कहते हैं, यह क्षार है और जारण कर्ममें हितकारी है ॥ ३७ ॥

अग्निजारगुणाः ।

स्यादग्निजारः कटुरुष्णवीर्यः समीरहृद्रोगकफापहश्च ।
पित्तप्रदः सोधिकसन्निपातशूलाग्निशीतामयनाशकश्च ॥ ३८ ॥

यह अग्निजार कटु और उष्णवीर्य है, वातरोग, हृदयरोग और कफरोगका नाश करता है, पित्तको उत्पन्न करता है, प्रबल सन्निपात, शूल, अग्निमांद्य और शीतसे उत्पन्न होनेवाले विकारोंको दूर करता है ॥ ३८ ॥

अन्यच्च ।

अग्निजारस्त्रिदोषघ्नो धनुर्वातादिवातनुत् ।
वर्द्धनो रसवीर्यस्य दीपनो जारणस्तथा ॥
तदब्धिक्षारसंशुद्धं तस्माच्छुद्धिर्न शक्यते ॥ ३९ ॥

अग्निजार[१] त्रिदोषको नष्ट करता है, धनुर्वात (एक प्रकारका रोग विशेष जिसमें धनुष्यके समान शरीर होजाता है) आदि वातरोगोंको दूर करता है, रस और वीर्यकी वृद्धि करता है, दीपन तथा जारण करनेवाला है, यह अग्निजार समुद्रके खारसे स्वयं शुद्ध है इसी कारण इसकी शुद्धिका विधान नहीं कहा॥३९॥

समुद्रफेनगुणाः ।

समुद्रफेनश्चक्षुष्यो लेखनः शीतलः सरः ।
कर्णस्रावरुजागुल्महरः पाचनदीपनः ॥
अशुद्धः सकरोत्यङ्गभङ्गं तस्माद्विशोधयेत् ॥ ४० ॥

समुद्रका फेन आँखोंके लिये हितकारी है यह लेखन, शीतल और सर है, कानोंके बहने तथा गुल्मरोगको हरता है, पाचन और दीपन है । विना शोधन किये यह अंगोंका भंग करता है इस हेतु इसका शोधन अवश्य करना चाहिये ॥ ४० ॥

समुद्रफेनशोधनविधिः ।

समुद्रफेनः संपिष्टो निंबुतोयेन शुद्ध्यति ॥ ४१ ॥

नींबूके रसमें समुद्रफेनको पीसे तो वह शुद्ध होजाताहै ॥ ४१ ॥

बोलनामानि तद्भेदाश्च ।

बोलगन्धरसप्राणमिन्द्रगोपरसः समाः ।
बोलं तु त्रिविधं प्रोक्तं रक्तं श्यामं मनुष्यजम् ॥ ४२ ॥

बोल, गन्धरसप्राण, इन्द्रगोपरस यह सब एक ही द्रव्यके नाम हैं । यह बोल तीन प्रकारका होताहै, लाल, श्याम और मनुष्यज ॥ ४२ ॥

---

१ इस अग्निजारका उपयोग यूनानीके हकीम अधिक कहते हैं ॥

रक्तबोलगुणाः ।

बोलं रक्तहरं शीतं मेध्यं दीपनपाचनम् ।
मधुरं कटुकं तिक्तं ग्रहस्वेदात्रिदोषनुत् ॥ ४३ ॥
ज्वरापस्मारकुष्ठघ्नं गर्भाशयाविशोधनम् ।
चक्षुष्यं च सरं प्रोक्तं रक्तबोलं भिषग्वरैः ॥ ४४ ॥

लाल रंगका बोल बहतेहुए रुधिरको बंद करताहै । यह शीतल, पवित्र, दीपन और पाचन है, स्वादमें मधुर, कडवा और तीखा है, ग्रह व्याधि, स्वेद, त्रिदोष, ज्वर, मृगीरोग और कुष्ठको दूर करताहै, गर्भाशयको शुद्ध करताहै, आँखोंके लिये हितकारी है, दस्तावर है, बीजाबोल इसीका नाम है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

श्यामबोलगुणाः ।

श्यामबोलं तीक्ष्णगंधं दद्रुकुष्ठविषापहम् ।
भग्नास्थिसंधिजननं त्रिदोषशमनं हिमम् ॥
धातुकान्तिवयःस्थैर्यबलौजोवृद्धिकारकम् ॥ ४५ ॥

श्याम रंगका बोल तीक्ष्णगंधसे युक्त होताहै, दाद कुष्ठ और विषके दोषोंको नाश करनेवाला तथा टूटी हुई हड्डियोंका जोडनेवाला है, त्रिदोषको दूर करताहै, शीतल है, धातु, कान्ति और अवस्थाको स्थिर करताहै, बल और ओजकी वृद्धि करनेवाला है ॥ ४५ ॥

शृङ्गराजयोगः ।

बहुशृङ्गस्य शृङ्गं वै गोमूत्रेण च भावितम् ।
कुमारिकापुटे पक्त्वा स्वांगशीते हरेद्भिषक् ॥ ४६ ॥

बारासिंगाके सींगके टुकडोंको गौके मूत्रमें आठ दिन तक भिगोया रक्खे और घीकुवारिके गूदाके बीचमें रख गजपुटमें पकाकर स्वांगशीतल होने पर निकाललेवे ॥ ४६ ॥

अनुपानभेदेन तद्गुणाः ।

मधुना कासश्वासघ्नः शृंगवेरेण शूलनुत् ।
सन्निपातहरश्वासौ तथा मेहादिनाशकः ॥ ४७ ॥

पूर्वोक्त शृंगभस्मको तीन रत्ती प्रमाण सहदके साथ सेवन करे तो कास श्वासको दूर करती है, अदरकके रसके साथ सेवन करनेसे सर्व प्रकारके शूल, और

सन्निपातको दूर करती है, शिलाजीतके साथ प्रमेह आदि रोगोंको नष्ट करती है ॥ ४७ ॥

शिष्य उवाच ।

भगवन्गुग्गुलोर्योगं यथावीर्यं यथागुणम् ॥
वक्तुमर्हसि योगेषु येषु चायं प्रशस्यते ॥ ४८ ॥

शिष्यने कहा कि, हे भगवन् ! गूगलके योग तथा उसका जैसा वीर्य और गुण है और जिन योगोंमें यह श्रेष्ठ होताहै वह सब आप कहनेके योग्य हो ॥४८॥

गुरुरुवाच ।

मरुद्भूमौ प्रजायन्ते प्रायशः सुरपादपाः ।
भानोर्मयूखैः संतप्ता ग्रीष्मे मुञ्चन्ति गुग्गुलम् ॥ ४९ ॥
हिमार्तिदे च हेमन्ते विधिवत्तत्समाहरेत् ।
जातरूपनिभं शुभ्रं पद्मरागनिभं क्वचित् ॥ ५० ॥
क्वचिन्महिषसंकाशं यक्षदैवतवल्लभम् ।
विधानं तस्य विधिवन्निबोध गदतो मम ॥ ५१ ॥

गुरुने कहा कि, यह गूगलके वृक्ष मारवाड देशमें पैदा होते हैं और वह गरमीकी ऋतुमें सूर्यकी किरणोंसे तप्त होकर गूगलको छोडते हैं । वैद्यको चाहिये कि, इस गूगलको ठंढ ऋतुमें विधिसहित ग्रहण करे । यह कहीं सोनेके समान उद्दीप्त कहीं माणिकके तुल्य कान्तिवाला और कहीं भैंसेकी आँखोंके सदृश कान्तिसे युक्त होताहै, यक्ष और देवताओंका अतिप्रिय होताहै । हे शिष्य ! अब मैं उसके विधानको विधिपूर्वक कहताहूँ तुम सुनो ॥ ४९-५१ ॥

गुग्गुलुशोधनं सेवनविधिश्च ।

वर्णगंधरसोपेतं गुग्गुलुं मात्रया युतम् ।
भेषजैः सह निःक्वाथ्य यथाव्याधिहरैः पृथक् ॥ ५२ ॥
मात्रावशिष्टं तं ज्ञात्वा गालयेच्छुक्लवाससा ।
मृन्मये हेमपात्रे च स्फाटिके राजतेऽपि वा ॥ ५३ ॥
पुण्ये तिथिषु नक्षत्रे क्षीणाहारसमन्वितः ।
हुताग्निः पर्युपासीत देवान्विप्रांश्च भक्तितः ।
प्रविश्य च शुभाकीर्णं मंदिरं निवसेत्स्फुटम् ॥ ५४ ॥

वर्ण, गंध और रससे युक्त मात्रासे गूगलको लेवे और जिस रोगमें देना हो उसी रोगको दूर करनेवाली औषधियोंके साथ क्वाथविधिसे इसका काढा बनावे और वह काढा पकते २ जब चौथाई भाग शेष रहजाय तो उसे सफेद कपडेमें छानकर मिट्टी सुवर्ण, स्फटिक वा चाँदीके पात्रमें रखदेवे तदनन्तर क्षीण आहार मनुष्य शुभ नक्षत्र युक्त तिथिमें अग्निमें होम तथा देवता और ब्राह्मणोंका भक्तिसे सत्कार करके विधिपूर्वक इसका सेवन करे और फिर उत्तम द्रव्योंसे युक्त गृहमें प्रवेशकर निवास करे ॥ ५२-५४ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

माहिषं गुग्गुलुं शुभ्रं गृहीत्वा पलपंचकम् ।
प्रस्थमात्रे तु गोमूत्रे क्षिप्त्वा संविपचेद्भिषक् ॥ ५५ ॥
दोलायन्त्रस्य विधिना पादशेषं समाहरेत् ।
अनेन विधिना सम्यग्गुग्गुलुः शुद्धतां व्रजेत् ॥
सर्वकर्मसु संयोज्यो योगे च फलदायकः ॥ ५६ ॥

दूसरा प्रकार—बीस तोले उत्तम भैंसा गूगलको पोटलीमें बांधकर एक प्रस्थ (६४ तोले) गौके मूत्रमें दोलायंत्रकी बिधिसे पकावे और जब गोमूत्र चौथाई भाग शेष रहजाय तब चूल्हेपरसे उतारलेवे और गुग्गुलको पोटलीसे अलग निकालकर धूपमें सुखालेवे, सूखनेपर इसका रंग सफेद होजाता है तत्पश्चात् गूगलके तिनके कंकड आदि बीनकर साफ करलेवे इस पूर्वोक्त विधिसे गुग्गुल, शुद्ध होजाता है इसकी सब कर्मोंमें योजना करनी चाहिये जिस योगमें यह मिलाया-जाता है उसमें आगे लिखे हुए फलोंको देता है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

शुद्धगुग्गुलगुणाः ।

त्रिदोषशमनो वृष्यः स्निग्धो बृंहणदीपनः ।
गुग्गुलुः कटुकः पाके बलवर्णप्रवर्द्धनः ॥ ५७ ॥
आयुष्यः श्रीकरः पुण्यः स्मृतिमेधाविवर्द्धनः ।
पापप्रशमनः श्रेष्ठः शुक्रार्तवकरो मतः ॥ ५८ ॥

विधिपूर्वक शुद्ध कियाहुआ गूगल त्रिदोषको शमन करता है वीर्यबर्द्धक है, स्निग्ध है, बृंहण और दीपन है, पाकमें कटु है, बल और वर्णकी वृद्धि करता है, आयु और शोभाको देनेवाला है, पुण्य, स्मृति तथा मेधाकी वृद्धि और

पापोंका शान्त करनेवाला है, श्रेष्ठ है, शुक्र और आर्तवको उत्पन्न करता है॥ ५७ ॥ ५८ ॥

साधारणरसानां च शोधनादिक्रियाः शुभाः।
सप्तविंशतितमेऽस्मिन्यथावद्वर्णिता मया ॥ ५९ ॥

मैंने इस सत्ताईसवें अध्यायमें साधारण संज्ञक रसोंकी शुद्ध करनेकी उत्तम २ क्रियायें वर्णन की ॥ ५९ ॥

इतिश्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे साधारणरसवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः।

अथातो रत्नोपरत्नवर्णनं नामाष्टाविंशतितमाध्यायं व्याख्यास्यामः॥

अब हम रत्नोपरत्न वर्णन नामक अट्ठाईसवें अध्यायका वर्णन करते हैं॥

शिष्य उवाच।

के वै रत्नोपरत्नानि कथं तेषां च संस्कृतिः।
धारणं मारणं चापि यथाद्वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥

शिष्यने कहा कि,--हे भगवन्! रत्न और उपरत्न कौनसे हैं और उनके संस्कारकी क्या रीति है तथा धारण और मारण किस प्रकार किया जाता है आप यह सब यथोचित कहनेके योग्य हैं॥ १ ॥

गुरुरुवाच।

शृणु रत्नोपरत्नानां वर्णनं विधिपूर्वकम्।
भक्षणाद्धारणाच्चापि नानारोगात्प्रमुच्यते ॥ २ ॥

गुरुने कहा कि, अब तुम उन रत्न और उपरत्नोंका वर्णन भी विधिपूर्वक श्रवण करो, जिनके भक्षण तथा धारण करने मात्रसे मनुष्य अनेक रोगोंसे छूट जाता है॥ २ ॥

रत्नशब्दनिरुक्तिः।

धनार्थिनो जनाः सर्वे रमन्तेऽस्मिन्नतीव यत्।
अतो रत्नमिति प्रोक्तं शब्दशास्त्रविशारदैः ॥ ३ ॥

धनकी इच्छा करनेवाले सब मनुष्य इसमें अतिशयसे रमण करते हैं अतः व्याकरण शास्त्र जाननेवाले इसको रत्न कहते हैं ॥ ३ ॥

तल्लिङ्गादिवर्णनम् ।

रत्नं क्लीबे मणिः पुंसि स्त्रियामपि निगद्यते ।
तत्तत्पाषाणभेदोऽस्ति वज्रादिश्च यथोच्यते ॥ ४ ॥

रत्न शब्द नपुंसकलिङ्ग है और मणिशब्द स्त्रीलिङ्ग तथा पुँलिङ्ग दोनोंमें होता है हीरा पन्ना आदि रत्न पाषाणके भेद हैं वह आगे कहते हैं ॥ ४ ॥

नवरत्ननामानि ।

वज्रं विद्रुममौक्तिकं मरकतं वैडूर्यगोमेदकं
माणिक्यं हरिनीलपुष्पदृषदौ रत्नानि नाम्ना नव ।
यान्यन्यान्यपि कानिचिद्विदुरिह त्रैलोक्यसीम्नि स्फुटं
नाम्ना तान्युपरत्नसंज्ञकतमान्याहुः परीक्षाकृतः ॥ ५ ॥

हीरा, मूंगा, मोती, पन्ना, वैदूर्यमणि, गोमेद, माणिक्य, नीलम, पुखराज यह नव प्रकारके रत्न होते हैं, इनके अतिरिक्त पृथ्वीपर जो जो रत्नके सदृश और पत्थर मिलते हैं, रत्नपरीक्षक जौहरी लोग उनको उपरत्न कहते हैं ॥ ५ ॥

मतान्तरम् ।

उपरत्नानि चत्वारि महारत्नानि पञ्चधा ।
प्रवालं गरुडोद्गारं वैडूर्यं पुष्परागकम् ॥
उपरत्नं समाख्यातं रत्नशास्त्रार्थकोविदैः ॥ ६ ॥

पूर्वोक्त नवरत्नोंमेंसे चार उपरत्न हैं और पांच महारत्न हैं, मूँगा, पन्ना, वैदूर्य, आर पुखराज इन चारोंको रत्नशास्त्रके जाननेवालोंने उपरत्न कहा है और शेष हीरा पन्ना, गोमेद (पीलेरंगकी मणि) नीलम और मोती ये पाँच महारत्न कहे हैं ॥ ६ ॥

मणिष्वपि सूतबंधकत्वादिगुणवर्णनम् ।

मणयोऽपि च विज्ञेयाः सूतबंधस्य कारकाः ।
देहस्य धारका नृणां जराव्याधिविनाशकाः ॥ ७ ॥

मणि अर्थात् रत्न भी पाराके बंधन कारक हैं और शरीरके धारण करनेवाले होनेसे मनुष्योंकी वृद्धावस्था तथा व्याधिके नाशक हैं ॥ ७ ॥

मणिगणवर्णनम्।

वैक्रान्तः सूर्यकान्तश्च हीरकं मौक्तिकं तथा ।
चन्द्रकान्तस्तथा चव राजावर्तस्तथैव च ॥ ८ ॥
गरुडोद्गारकश्चैव ज्ञातव्या मणयो अमी ।
पुष्परागं महानीलं पद्मरागं प्रवालकम् ॥
वैदूर्यं च तथा नीलमेते च मणयो मताः ॥ ९ ॥

वैक्रान्त, सूर्यकान्त, हीरा, मोती, चन्द्रकान्त, राजावार्त, पन्ना, पुखराज, महानीलम, माणिक्य, मूँगा, वैदूर्य, नीलमणि यह मणिगण है ॥ ८ ॥ ९ ॥

मणिरसवर्णनम्।

राजावत च पुष्पं च मौक्तिकं विद्रुम तथा ।
वैक्रान्तेन समायुक्ता एते मणिरसाः स्मृताः ॥ १० ॥

राजावर्त, पुखराज, मोती, मूँगा और वैक्रान्त ये सब माणिरस कहाते हैं॥१०॥

सर्वरत्नलक्षणानि।

श्यामः स्यादिन्द्रनीलस्त्वतिमसृणतनुश्चातिगारुत्मतः स्या-
न्नीलच्छायोतिदीप्तोप्यथ मिहिरमणिः सूर्यतप्तोऽग्निमुक्स्यात् ।
चन्द्रांशुस्पर्शतोम्भः स्त्रवति शशिमणिः पुष्परागस्तु पुष्प-
प्रख्यः श्रीवज्रमुच्चैर्घनसहमभितः संविशेल्लोहपिण्डे ॥ ११ ॥
वैदूर्यं यद्विडालेक्षणरुचि गदितं स्याच्च गोमेदरत्नं
गोमूत्राभं विधूमज्वलदनलनिभं पद्मरागं वदन्ति ।
मुक्ताशंखप्रवालं सरिदधिपतिजं विश्वविख्यातमेत-
द्राजावर्तं तु पातारुणमृदुसुरभि क्षोणिजातोत्थमाहुः ॥ १२ ॥

इन्द्रनीलमाणि श्याम रंगसे युक्त अतिचिकनी होती है, गारुत्मत (पन्ना) नीलकान्ति युक्त और अतिदीप्त होताहै, सूर्यमाणि सूर्यके तेजसे अग्नि प्रकट करती है, चन्द्रकान्तमाणि चन्द्रकिरणोंके स्पर्शसे जलको छोडती है, पुष्पराग (पुखराज) फूलोंके परागके समान पीला होता हैं, वज्र (हीरा) वह रत्न है जो कि घनकी चोटोंको सहता तथा निहाईपर रख घनकी चोट लगानेसे निहाई और

घनमें प्रविष्ट होजाता है, वैदूर्यमणि बिलावके नेत्रोंके तुल्य कान्तिसे युक्त होती है, गोमेद गोमूत्रके समान रंगवाला होताहै, पद्मराग (माणिक्य) धूमरहित प्रदीप्त अग्निके समान कान्तिवाला होता है, मोती, शङ्ख और मूँगा ये समुद्रमें उत्पन्न होते हैं यह बात जगत्प्रसिद्ध है, राजावर्त (रेवटी) पीला और लाल रंगवाला है, कोमल, और सुगन्धसे युक्त होता है । इसकी उत्पत्ति पृथिवीसे कहते हैं ॥ ११॥ १२ ॥

सर्वरत्नपरीक्षाप्रकारः ।

ग्राहको भक्तिपूर्वेण समाहूय विचक्षणम् ।
आसनैर्गंधमाल्याद्यैस्तं वैद्यं तु प्रपूजयेत् ॥ १३ ॥
वीक्ष्य सम्यग्गुणान्दोषान्रत्नानां च विशारदः ।
दापयेत्कुरुसंज्ञां च लक्षमेकैकसन्निधौ ॥
लक्षयेद्वैद्यशास्त्रज्ञो शाणोत्कर्षणलेखनैः ॥ १४ ॥
लोहानि यानि सर्वाणि सर्वरत्नानि यानि च ।
तानि वज्रेण लेख्यानि स च तेन विलिख्यते ॥ १५ ॥
अभेद्यमन्यजातीनां लोहवज्राग्निसन्निधौ ।
न चान्यभेदकं तस्य वज्रं वज्रेण भिद्यते ॥ १६ ॥

रत्नोंका ग्राहक भक्तिपूर्वक रत्नोंकी परीक्षा करनेमें चतुर वैद्यको बुलाकर आसन, सुगन्धित द्रव्य और माला आदिसे सत्कार करे तत्पश्चात् उस वैद्यको रत्न देवे और उससे कहे कि, इस रत्नकी परीक्षा करके आप नामका भी निश्चय करो, तब वह वैद्य रत्नोंके गुण और दोषोंको अच्छे प्रकार देख भाल तथा कसौटी पर घिसकर वा शानपर घिसकर प्रत्येक रत्नमें लक्ष करे अथवा जितने रत्न हैं उन सबकी परीक्षा हीरासे घिसकर करे और हीराकी परीक्षा हीराहीसे करे क्योंकि सब जातिके लोहोंसे और अग्निसे भी हीरा तोडनेसें नहीं आता, हीराका तोडने-वाला और द्रव्य नहीं यह अपने आपहीसे टूटता है ॥ १३-१६ ॥

अज्ञानाद्रत्नमूल्यकथने कुगतिवर्णनम् ।

अज्ञानात्कुरुते मौल्ये सन्मुक्तामणिहीरकान् ।
इह स्याद्दुःखितोऽमुत्र रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ १७ ॥

जो मनुष्य विना जाने हुए ही मोती, मूँगा, मणि, हीरा आदिके मूल्यको कहता है वह इस लोकमें दुःख और परलोकमें रौरव नरकको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

अन्यच्च।

अज्ञानात्कथयेद्यस्तु रत्नमौल्यं कदाचन।
कुर्याच्च निग्रहं सम्यङ्मण्डली तस्य विक्रयी ॥ १८ ॥
अधमस्योत्तमं मौल्यमुत्तमस्याधमं तथा।
स्नेहान्मोहाद्भयात्कुर्युः सद्यः कुष्ठं भवेन्मुखे ॥ १९ ॥

जो मनुष्य विना जाने हुए ही कदाचित् रत्नोंका मूल्य कहे तो राजाको चाहिये कि उसको यथोचित दण्ड देवे और यदि स्नेह, मोह, तथा भय आदि कारणोंसे अधम रत्नका मूल्य उत्तम कह देवे और उत्तमका अधम तो शीघ्रही उसके मुखमें कुष्ठ होवे ॥ १८ ॥ १९ ॥

रत्नशोधनावश्यकता।

रत्नोपरत्नान्येतानि शोधनीयानि यत्नतः।
अशुद्धानि तु कुर्वन्ति व्रणान्रोगांश्च तन्वते ॥ २० ॥

जितने रत्न और उपरत्न कहे हैं उन सबको प्रयत्नसे शुद्ध करना चाहिये क्योंकि विना शोधन कियेहुए ये रत्न और उपरत्न व्रण तथा रोगोंको उत्पन्न करते हैं ॥ २० ॥

माणिक्यादीनां पृथग्पृथग् शोधनविधिः।

शुद्ध्यत्यम्लेन माणिक्यं जयन्त्या मौक्तिकं तथा।
विद्रुमं क्षीरवर्गेण ताक्ष्यं गोदुग्धतः शुचि ॥ २१ ॥
पुष्परागं सैन्धवेन कुलित्थक्काथसंयुते।
तन्दुलीयजले वज्रं नीलं नलिरिसेन च ॥ २२ ॥
रोचनाद्भिश्च गोमेदं वैदूर्यं त्रिफलाजलैः।
एतान्येतेषु संस्विन्नान्याशु शुध्यन्ति दोलया ॥ २३ ॥

माणिक्यको अम्लवर्गोक्त औषधोंको दोलायन्त्र द्वारा स्वेदन करे तो शुद्ध होजाताहै, इसी प्रकार मोतीको जयन्ती अर्थात् अरनीके रसमें, मूँगाको दुग्धवर्गमें, पन्नाको गौके दूधमें, पुखराजको सेंधा नमकमें, हीराको कुलथीके काढेसे युक्त चौलाईके रसमें, नीलमको नीलीके रसमें, गोमेदको गोरोचनके जलमें और वैदूर्यको त्रिफलाके काढेमें दोलायन्त्रके द्वारा स्वेदन करे तो शीघ्र ही शुद्ध होजाते हैं ॥ २१–२३ ॥

वज्रादीनां मारणान्नरकप्राप्तिवर्णनम् ।

न हन्याद्धीरकादीनि नवरत्नानि बुद्धिमान् ।
महामौल्यानि तेषां तु वधाद्रौरवमृच्छति ॥ २४ ॥
यद्वा तदवनीजाततज्जातीयानि लक्षणैः ।
स्वल्पमौल्यानि तेषां तु वधे नास्ति हि पातकम् ॥ २५ ॥

बुद्धिमान् वैद्यको चाहिये कि बहुमूल्यवाले हीरा आदि पूर्वोक्त नवरत्नोंका मारण न करे क्योंकि इनके मारण करनेसे मनुष्य रौरवनरकको जाताहै । अथवा पृथ्वीके जिस प्रदेशमें हीरा आदि बहुमूल्य रत्न पैदा होते हैं उसी प्रदेशमें उत्पन्न हुए अपने २ लक्षणोंसे युक्त उसी जातिके जो स्वल्पमूल्यवाले रत्न हैं उनके मारणमें पातक नहीं होता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

वज्रादीनां मारणविधिः ।

रसहंसं शिलातालं गरुडं गन्धटङ्कणम् ।
भूनागं विमलं वङ्गं मेषशृङ्गं सचुम्बकम् ॥ २६ ॥
शुक्रं शोणितसंयुक्तं स्वेदनौषधिभावितम् ।
मूषालेपप्रयोगेण रत्नानां मारणं ध्रुवम् ॥
एवं वज्रभवं भस्म वज्रस्थाने नियोजयेत् ॥ २७ ॥

पारा, शिंगरफ, मनशिल, हरिताल, पन्नाका चूर्ण, गंधक, सुहागा, केंचुए, विमल (उपरसविशेष) वंग, मेंढेका सींग, चुम्बक पत्थरका चूर्ण, पुरुषका वीर्य, स्त्रीका रज इन सबको एकमें पीसकर स्वेदन औषधियोंकी भावना देवे तदनन्तर मूषामें इसका लेप करके धूपमें सुखालेवे और जब सूखजावे तो उसमें हीरा आदि रत्नोंको डालकर अग्निमें रख धोंके तो निस्सन्देह उन रत्नोंकी भस्म सिद्ध होवे । इस प्रकार बनाईहुई हीराकी भस्मको जिस प्रयोगमें हीराकी भस्म लिखी हो उसमें मिलावे ॥ २६ ॥ २७ ॥

वज्रेतररत्नमारणविधिः ।

लकुचद्रावसंपिष्टैः शिलातालकगन्धकैः ।
वज्रं विनान्यरत्नानि म्रियन्तेऽष्टपुटैः खलु ॥ २८ ॥

मनशिल, गंधक और हरितालको समान भाग लेकर बडहलके रसमें पीस पुट देवे, इसी प्रकार आठ पुट देनेसे हीराको छोडकर अन्य सब रत्न भस्म होजाते हैं ॥ २८ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

हिङ्गुसैन्धवसंयुक्ते क्षेपात्क्वाथे कुलत्थके ।
रत्नानां सप्तसप्तानां भवेद्भस्म त्रिसप्तधा ॥ २९ ॥

सात रत्न और सात उपरत्नोंको सेंधा नमक और हींग संयुक्त कुलथीके काढेमें इकीस पुट देवे तो वे भस्म होजाते हैं ॥ २९ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

माक्षिकं गन्धकं तालं दरदं च मनःशिला ।
पारदं टङ्कणं दत्त्वा याममेकं प्रपेषयेत् ॥ ३० ॥
रत्नानि चाथ संपिष्य दृढं गजपुटे पचेत् ।
मारणं सर्वरत्नानां पुटेनैकेन जायते ॥ ३१ ॥

सोनामक्खी, गंधक, हरिताल, हिंगूल, मनशिल, पारा और सुहागा इन सबको एक प्रहरतक पीसे और इनकी बराबर रत्नोंको पीसकर एकमें मिलादेवे तत्पश्चात् दृढ गजपुटमें पकावे, इस प्रकार करनेसे एक ही पुटसे सब रत्नोंकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

रत्नोपरत्नभस्मगुणाः ।

रत्नानि चोपरत्नानि चक्षुष्याणि सराणि च ।
शीतलानि कषायाणि मधुराणि शुभानि च ॥ ३२ ॥

विधिपूर्वक भस्म किहहुए रत्न और उपरत्न नेत्रोंके लिये हितकारी हैं, दस्तावर हैं, शीतल हैं, स्वादमें कषाय, मधुर और उत्तम हैं ॥ ३२ ॥

रत्नोपरत्नधारणगुणाः ।

धृतानि मङ्गलान्याशु तुष्टिपुष्टिकराणि च ।
ग्रहालक्ष्मीविषक्ष्वेडपापसंतापकादिकम् ॥ ३३ ॥
यक्ष्मापाण्डुप्रमेहार्शः कासं श्वासं भगन्दरम् ।
ज्वरं विसर्पकुष्ठार्तिशूलकृच्छ्रव्रणामयान् ॥
घ्नन्त्यायुष्यं यशः कीर्तिं पुण्यं च वर्द्धयन्ति हि ॥ ३४ ॥

रत्न और उपरत्नोंको धारण करे तो शीघ्रही मंगल तथा तुष्टि और पुष्टि होती है और ग्रहव्याधि, अलक्ष्मी, विषबाधा, पाप, संताप, क्षयीरोग, पाण्डुरोग, प्रमेह,

बवासीर, कास, श्वास, भगन्दर, ज्वर, विसर्प, कुष्ठ, पीडा, शूल, मूत्रकृच्छ्र, व्रण इन सबको नाश करते हैं। मनुष्यकी आयु तथा यश, कीर्ति और पुण्यको बढाते हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

वज्रोत्पत्तिः ।

दधाच्यस्थ्नः समुत्पन्नाः पतिताश्च कणाः क्षितौ ।
विकीर्णास्ते तु वज्राख्या भजन्ते तच्चतुर्विधम् ॥ ३५ ॥

किसी समयके लिये इन्द्रने विश्वकर्माको दधीचिऋषिकी हड्डियोंसे वज्र बनानेकी आज्ञा दी तब विश्वकर्माने वृत्रासुरके बध करने दधीचि ऋषिकी हड्डियोंसे वज्र बनायाथा। वज्र बनाते समय भूमिमें जो हड्डियोंके कण गिरेथे, कुछ कालके अनन्तर वे सब विखरेहुए हड्डियोंके कण जब रूपान्तरमें प्राप्त हुए तो लोकमें हीरा नामसे प्रसिद्ध हुए, वह हीरा चार प्रकारका होता है ॥ ३५ ॥

मतान्तरम् ।

पूर्वं मंदरमन्थनाज्जलनिधौ प्रत्युद्गता या सुधा
तां प्रायः पिबतां सुरासुरगणानामाननाद्बिन्दवः ।
ये भूमौ पतिता विकर्तनकरव्रातैः पुनः शोषिता-
स्ते वज्राण्यभवन्भवेन कथितं साक्षान्मृडानी प्रति ॥ ३६ ॥

हीराकी उत्पत्तिके विषयमें महादेवजीने पार्वतीजीसे यह कहाहै कि, पहले देवता और दानवोंने मंदराचलकी मथानी बनाकर जब समुद्रका मथन किया था तब उस समय जो अमृत उत्पन्न हुआ उसको जब देवता और दानव पान करने लगे तो उस समय उनके मुखसे पृथ्वीपर जो अमृत बिन्दु गिरे वही सूर्यकी किरणोंसे सूखकर हीरा होगया ॥ ३६ ॥

चतुर्विधवज्रजातिवर्णनं तद्विशेषाख्यानञ्च ।

श्वेतपीता रक्तकृष्णा द्विजाद्या वज्रजातयः ।
पुंस्त्रीनपुंसकं चेति लक्षणेन तु लक्षयेत् ॥ ३७ ॥
सुवृत्ताः फलसंपूर्णास्तेजोवन्तो बृहत्तराः ।
पुरुषास्ते समाख्याता रेखाबिन्दुविवर्जिताः ॥ ३८ ॥
रेखाबिन्दुसमायुक्ताःषट्कोणास्ताःस्त्रियःस्मृताः ।
त्रिकोणाः पत्रवद्दीर्घा विज्ञेयास्ते नपुंसकाः ॥ ३९ ॥

सर्वेषां पुरुषाः श्रेष्ठा वेधका रसबन्धकाः ।
स्त्रीवज्रं देहसिद्ध्यर्थं क्रामणं स्यान्नपुंसकम् ॥ ४० ॥
विप्रो रसायने प्रोक्तः क्षत्रियो रोगनाशने ।
देहादौ वैश्यजातीयो वयस्तम्भे तुरीयकः ॥ ४१ ॥
स्त्री तु स्त्रियै प्रदातव्या क्लीबे क्लीबं तथैव च ।
सर्वेषां सर्वदा योज्याः पुरुषा बलवत्तराः ॥ ४२ ॥

हीरा चार प्रकारका होता है सफेद, पीला, लाल और काला इनमेंसे सफेद् रंगका हीरा ब्राह्मण वर्ण, पीले रंगका क्षत्रिय, लाल रंगका वैश्य और काले रंगका शूद्र वर्ण माना गया है। पुरुष स्त्री और नपुंसकका ज्ञान आगेके श्लोकोंमें कहेहुए लक्षणोंसे करना चाहिये। जो हीरा गोल हो फलसे पूर्ण हो तेजसे युक्त और बडा हो, रेखा और बिन्दुओंसे रहित हो उसे पुरुषसंज्ञक जानना चाहिये। जो हीरा रेखा और बिन्दुओंसे युक्त छः कोणवाला हो उसे स्त्रीसंज्ञक जानना चाहिये। आर जा तीन'कोणवाला तथा पत्तेके समान लंबा हो उसे नपुंसकसंज्ञक जानना चाहिये। पूर्वोक्त तीन प्रकारके हीरोंमेंसे पुरुषसंज्ञक हीरा उत्तम होता है, यही वेधक और रसबंधक है। स्त्रीसंज्ञकहीरा शरीरकी सिद्धिके लिये है, और क्रामणमें नपुंसकसंज्ञक हीरा काम आता है। रसायन कर्ममें ब्राह्मण वर्ण हीरा, रोगोंके नाश करनेमें क्षत्रियवर्ण श्रेष्ठ है। वैश्य वर्ण हीरा शरीरको दृढ करनेवाला है। शूद्रवर्ण हीरा अवस्थाको बढाता है, स्त्रीके लिये स्त्रीसंज्ञक हीरा देना चाहिये क्योंकि यह रूपको बढाता है, नपुंसक मनुष्यके लिये नपुंसकसंज्ञक देना चाहिये। और तीसरा जो पुरुषसंज्ञक अतिबली हीरा है वह सबके लिये देना चाहिये, और यह सब औषधियोंमें डालनेको। उपयोगी है ॥ ३७-४२ ॥

वज्रं जातिविशेषेण चतुर्वर्णसमन्वितम् ।
प्रयत्नेन च तद्वर्णं प्रविचार्य पृथक्पृथक् ॥ ४३ ॥

ब्राह्मणादि चार जातियोंकी विशेषतासे हीरोंके रंगोंका पृथक् २ विचार करके ग्रहण करना चाहिये ॥ ४३ ॥

जातिविशेषेण वज्रलक्षणम् ।

सुस्निग्धः स्फटिकप्रभः शशिकलाशंखच्छविर्ब्राह्मणो
ह्यारक्तद्युतिमत्प्रियङ्गुकुसुमच्छायस्तथा क्षत्रियः ।

वैश्यश्वासितपीतवर्णरुधिरौद्यो वा स दीप्तिर्भवे
च्छूद्रः कृष्णमुखस्तथा विरचितो वर्णैश्चतुर्भिः शुभैः ॥ ४४ ॥

जो हीरा चिकना और स्फटिकमणिके सदृश कान्तिवाला तथा चन्द्रमा और शंखके तुल्य उज्ज्वल कान्तिसे युक्त हो उसको ब्राह्मण वर्ण समझना चाहिये। जो लाल रंगवाला तथा कुसुमपुष्पके समान कान्तिसे युक्त हो उसे क्षत्रियवर्ण जानना। जो कुछ काला और कुछ पीला तथा रक्तके सदृश दीप्तिवाला हो उसे वैश्यवर्ण जानना। और जो शुद्ध काले मुखका हो उसको शूद्रवण जानना चाहिये। पूर्वोक्त चारों शुभ वर्णों करके हीराका वर्णन किया गया है ॥ ४४ ॥

अन्यच्च ।

श्वेतं द्विजाभिधं रक्तं क्षत्रियाख्यं तदीरितम् ।
पीतं वैश्याख्यमुदितं कृष्णं स्याच्छूद्रसंज्ञकम् ॥ ४५ ॥

सफेद रंगका हीरा ब्राह्मणवर्ण है। लाल रंगका क्षत्रिय वर्ण, पीले रंगका वैश्य-वर्ण और काले रंगका शूद्रवर्ण है ॥ ४५ ॥

विप्रवज्रादिधारणफलम् ।

धारणाद्यत्फलं पुंसां कथयामि पृथक्पृथक् ।
सप्तजन्मान्तरे विप्रो विप्रवज्रस्य धारणात् ॥ ४६ ॥
लभेद्वीर्यं महत्त्वं च दुर्जयो जयमाप्नुयात् ।
सर्वैः सप्ताङ्गसम्पूर्णः क्षत्रवज्रस्य धारणात् ॥ ४७ ॥
प्रगल्भः कुशलो दक्षो बलवान्धनसंग्रही ।
प्राप्नोति फलितं चैव वैश्यवज्रस्य धारणात् ॥ ४८ ॥
बाहूपार्जितवित्तेन धनवाँश्च समृद्धिमान् ।
साधुः परोपकारी च शूद्रवज्रस्य धारणात् ॥ ४९ ॥

पहले जो विप्रवज्र, क्षत्रियवज्र आदि भेदोंसे हीराके चार भेद कहे हैं अब उन सबके धारण करनेका फल पृथक् २ वर्णन किया जाताहै। जो मनुष्य ब्राह्मण-वर्ण हीरा धारण करे वह सात जन्म पर्यन्त ब्राह्मणोंके कुलमें जन्म पाता है। क्षत्रियवर्णका वज्र धारण करे तो बल महत्त्व और दुर्जय जयको प्राप्त होता है, तथा सप्ताङ्गसम्पूर्ण धृष्टस्वभाव, चतुर, दक्ष, बली और धनका संग्रह करनेवाला होताहै। वैश्यवर्णका हीरा धारण करे तो अपने बाहुबलसे पैदा किये हुए धनसे

धनवान् और समृद्धिमान् होता है । और यदि शूद्रवर्णका हीरा धारण करे तो साधु तथा दूसरोंका उपकार करनेवाला होवे ॥ ४६--४९ ॥

वज्रस्य त्रिविधत्ववर्णनम् ।

वज्रं च त्रिविधं प्रोक्तं नरो नारी नपुंसकम् ।
पूर्वं पूर्वमिह श्रेष्ठं रसवीर्यविपाकतः ॥ ५० ॥

हीराके तीन भेद हैं, पुरुष, स्त्री और नपुंसक रस, वीर्य और विपाकके भेदसे इन तीनोंमें क्रमसे पूर्व पूर्वका हीरा उत्तम होताहै ॥ ५० ॥

पुरुषवज्रलक्षणम् ।

अष्टास्रं चाष्टफलकं षट्कोणमतिभासुरम् ।
अम्बुदेन्दुधनुर्वारितरं पुंवज्रमुच्यते ॥ ५१ ॥

जो हीरा आठ या छः कोणसे युक्त हो; आठ फलवाला हो अत्यन्त चमकदार हो, इन्द्रधनुषके सदृश कान्तिमान तथा जलमें तैरनेवाला हो उसे पुरुष संज्ञक जानना चाहिये ॥ ५१ ॥

स्त्रीवज्रलक्षणम् ।

तदेव चिपिटाकारं स्त्रीवज्रं वर्तुलायतम् ।

जो हीरा कुछ चिपटा, गोलाकार आयत हो उसे स्त्रीसंज्ञक जानना चाहिये ।

नपुंसकवज्रलक्षणम् ।

वर्तुलं कुण्ठकोणाग्रं किञ्चिद्गुरु नपुंसकम् ॥ ५२ ॥

जो हीरा गोल हो, और कोने भोंतरे हो गुरु हो उसे नपुंसकसंज्ञक जानना चाहिये ॥ ५२ ॥

त्रिविधवज्रफलम् ।

स्त्रियः कुर्वन्ति कायस्य कान्तिं स्त्रीणां सुखप्रदाः ।
नपुंसकस्त्ववीर्याः स्युरकामाः सत्त्ववर्जिताः ॥ ५३ ॥
स्त्रियः स्त्रीषु प्रदातव्याः क्लीबं क्लीबे प्रयोजयेत् ।
सर्वेभ्यः पुरुषा योज्या बलदा वीर्यवर्द्धनाः ॥ ५४ ॥

पहले जो तीन प्रकारके हीरा कहे गये हैं उनमेंसे स्त्रीजातिका हीरा स्त्रियोंके शरीरकी कान्तिको बढाताहै और सुखप्रद है, नपुंसक जातिका हीरा वीर्यरहित और काम तथा सत्त्वसे हीन होता है । स्त्रीके लिये स्त्रीजातिका हीरा देना,

नपुंसकके लिये नपुंसकजातिका हीरा देवे । तीसरा पुरुष जातिका हीरा सबके लिये देना चाहिये, यह बल और वीर्यकी वृद्धि करताहै ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

वज्रस्य व्यत्ययदानान्निष्फलत्ववर्णम् ।

स्त्रीपुंनपुसकं वज्रं योग्यं स्त्रीपुंनपुंसके ।
व्यत्ययान्नैव फलदं पुंवज्रेण विना क्वचित् ॥ ५५ ॥

पूर्वोक्त स्त्री, पुरुष, नपुंसकसंज्ञक हीरा यथाक्रमसे स्त्री. पुरुष और नपुंसकोंको देना उचित है अर्थात् स्त्रीको स्त्रीसंज्ञक, पुरुषको पुरुषसंज्ञक इत्यादि विपरीत देनेसे गुण नहीं करता परन्तु पुरुषसंज्ञक हीरा स्त्री, पुरुष और नपुंसक इन तीनोंक लिये गुणकारी है ॥ ५५ ॥

प्रशस्तवज्रलक्षणम् ।

यत्पाषाणतले निकाशनिकरे नो घृष्यते निष्ठुरे
यच्चान्योपललोहमुद्गरसुखैर्लेखान्न यात्याहनम् ।
यच्चान्यन्निजलीलयैव दलयेद्वज्रेण वा भिद्यते
तज्जात्यं कुलिशं वदन्ति कुशलाः श्लाघ्यं महार्घं च तत् ॥ ५६ ॥

जो हीरा पत्थर वा कसौटी पर घिसनेसे नहीं घिसे और लोहमुद्गर आदिसे न फूटे परन्तु आप अन्योंको लीलापूर्वक ही फोड देवे वा आप हीरासे ही फूटे उस हीरेको जौहरी लोग श्रेष्ठ और बहुमूल्य हीरा कहते हैं ॥ ५६ ॥

अन्यच्च ।

स्वच्छं विद्युत्प्रभं स्निग्धं सौन्दर्यं लघु लेखनम् ।
षडारं तीक्ष्णधारं च धारकाणां श्रियं दिशेत् ॥ ५७ ॥

जो हीरा निर्मल, बिजलीके समान कान्तिवाला, चिकना, सुन्दर, हलका, लेखन, षडार और तीक्ष्णधार हो वह धारण करनेवालोंको लक्ष्मीकी प्राप्ति करताहै ॥ ५७ ॥

अन्यच्च ।

लघु चाष्टाङ्गषट्कोणं तीक्ष्णं धारासुनिर्मलम् ।
गुणपञ्चकसंयुक्तं तद्वज्रं देवभूषणम् ॥ ५८ ॥

जो हीरा हलका, आठ अङ्गोंसे युक्त, षट्कोण और तीक्ष्ण धारवाला हो तथा स्वच्छ और पाँच गुणोंसे युक्त हो वह देवताओंका भूषण है ॥ ५८ ॥

दुष्टवज्रलक्षणम् ।

षट्कोणं लघुतीक्ष्णाग्रं बृहत्पद्मदलोपि वा ।
वज्रे काकबलोपेते ध्रुवं मृत्युं विनिर्दिशेत् ॥ ५९ ॥

जो हीरा छः कोणोंसे युक्त तथा हलका हो, तीक्ष्ण अग्रभागवाला हो, कमलदलके तुल्य लंबा हो उस हीरेका नाम काकबलोपेत है, यह निस्सन्देह मृत्युकारक है ॥ ५९ ॥

अन्यच्च ।

भस्माभं काकपादं च रेखाक्रान्तं तु वर्तुलम् ॥ ६० ॥
आधारमलिनं बिन्दुं सत्रासे स्फुटितं तथा ।
नीलाभं चिपिटं रूक्षं तद्वज्रं दोषलं त्यजेत् ॥ ६१ ॥

जो हीरा राखके समान कान्तिवाला, त्रिकोण, गोलाकार, आधारमलिन, बिन्दुयुक्त, खरहरा, फूटा, नीली कान्तिसे युक्त, चिपटा और रूक्ष हो उस दोषयुक्त हीरेका त्याग करे ॥ ६० ॥ ६१ ॥

फलहीनवज्रलक्षणम् ।

स बाह्याभ्यन्तरे भिन्ने भग्ने कोणे तु वर्तुले ।
न समर्थो भवेत्तत्तु शुभाशुभफलोदये ॥ ६२ ॥

जो हीरा बाहर और भीतर टूटा हो, भग्नकोणोंवाला हो, गोल हो वह शुभ और अशुभ फलके देनेमें समर्थ नहीं है ॥ ६२ ॥

वज्राणां गुणदोषाः ।

गाढस्त्रासश्च बिन्दुश्च रेखा च जलगर्भता ।
सर्वरत्नेष्वमी पञ्च दोषाः साधारणाः मताः ॥
क्षेत्रतोऽम्भवा दोषा रत्नेषु न लगन्ति ते ॥ ६३ ॥

समस्त रत्नोंमें गाढ, त्रास, बिन्दु, रेखा और जलगर्भता ये पाँच दोष साधारण होते हैं । रत्नोंका क्षेत्र तथा जलके दोष नहीं लगते हैं ॥ ६३ ॥

अन्यच्च ।

दोषाः पञ्चगुणाः पञ्च छायाश्चैव चतुर्विधाः ।
मलो बिन्दुर्यवो रेखा भवेत्काकपदं तथा ॥
दोषाः पञ्च समुद्दिष्टाः शुभाशुभफलप्रदाः ॥ ६४ ॥

हीरामें पाँच दोष, पाँच गुण और चार प्रकारकी छाया होती है। मल, बिन्दु, यव, रेखा और काकपद ये शुभ और अशुभ फल देनेवाले पाँच दोष हैं ॥ ६४ ॥

रेखाभेदाः ।

वज्रे चतुर्विधा रेखा बुधैरेवोपलक्ष्यते ।
सव्या चायुःप्रदा ज्ञेया नापसव्या शुभप्रदाः ॥
उर्ध्वाचासिप्रहाराय च्छेदश्छेदाय बन्धुभिः ॥ ६५ ॥

हीरेमें चार प्रकारकी रेखा होती हैं । वे रेखा हीराकी परीक्षामें विज्ञ मनुष्योंसेही जानी जाती हैं, सव्य अर्थात् वामावर्त रेखा हो तो आयुको देती है और अपसव्य अर्थात् दक्षिणावर्त हो तो अशुभ फल देती है। ऊर्ध्वरेखा हो तो तलवारका प्रहार कराती है, रेखाका छेद हो तो बन्धुसहित नाश करावे ॥ ६५ ॥

छायाभेदाः ।

श्वेता रक्ता तथा पीता कृष्णा छाया चतुर्विधा ।
सितच्छायाभवं सर्वं शशिच्छाया सुलक्षणम् ॥ ६६ ॥

हीराकी छाया चार प्रकारकी होती है, सफेद, लाल, पीली और काली । इनमेंसे श्वेत छायावाला हीरा चन्द्रछाया नामसे कहाजाता है, यह श्रेष्ठ होता है॥६६॥

आवर्तो वर्तकश्चैव भालबिन्दुर्यवाकृतिः ।
गुणदोषान्विते वज्रे बिन्दुर्ज्ञेयश्चतुर्विधः ॥ ६७ ॥
आवर्ते विपुलं वर्ते वृत्तकेऽपि यवाकृतिः ।
आयुःश्रियः क्षयो रक्ते देशेषु च पदाकृतिः ॥ ६८ ॥
रक्तपीतसितच्छायावर्णाढ्यश्च पदाश्रयः ।
तेषु दोषगुणाः सर्वे लक्ष्यन्ते च पृथक्पृथक् ॥ ६९ ॥
गजवाजिक्षयो रक्ते पीते वंशक्षयस्तथा ।
आयुर्धान्यं धनं लक्ष्मीः सिते यवपदाश्रये ॥
सव्यं चैवापसव्यं च छेदी छेदार्धगोऽपि वा ॥ ७० ॥

गुण और दोषोंसे युक्त हीरामें आवर्तक, वर्तक, भालबिन्दु और यवाकृति यह चार प्रकारके बिन्दु होते हैं। आवर्तक बिन्दु बडा होता है, वर्तक नामक बिन्दु गोल और छोटा होता है, चौथा बिन्दु यवाकृति है जो कि जौके आकारके समान होता है । यदि बिन्दु लाल रंगका हो तो आयु और लक्ष्मीका नाश

होताहै । इसकी पदाकृतिको भी देखना योग्य है । हीराकी पदाश्रय छाया लाल पीली और सफेद रंगोंसे युक्त होती है उनमें जो गुण और दोष हैं वे सब परीक्षामें कुशल मनुष्योंसे पृथक् २ जाने जाते हैं । यदि पदाश्रय छाया लाल रंगकी हो तो हाथी और घोडोंका क्षय हो, पीले रंगकी हो तो वंशका क्षय हो, यदि यवपदाश्रय छाया सफेद हो तो आयु, धन, धान्य और लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है । इन रेखाओंमें सव्य, अपसव्य तथा छेद और छेदार्द्धका भी विचार करना चाहिये ॥ ६७--७० ॥

धाराबिन्दुविरहितं सर्वलक्षणसंयुतम् ।
तद्वज्रं तोलयेत्सम्यक्पश्चान्मूल्यं विनिर्दिशेत् ॥ ७१ ॥

धारा और बिन्दुओंसे रहित सब शुभलक्षणोंसे युक्त हीरेको पहले तोले तत्पश्चात् उसका मोल कहना चाहिये ॥ ७१ ॥

पूर्वं पिण्डसमं कुर्याद्वज्रतौल्यप्रमाणतः ।
स पिण्डस्त्रिविधो ज्ञेयो लघुसामान्यगौरवैः ॥ ७२ ॥
अष्टाभिः सितसिद्धार्थैस्तण्डुलश्च प्रकीर्तितः ।
तण्डुलस्य प्रमाणेन वज्रमौल्यं स्मृतं बुधैः ॥ ७३ ॥
गुरुत्वे चार्द्धमौल्यं स्यात्सामान्ये मध्यमं स्मृतम् ।
लाघवे चोत्तमं मौल्यमुत्तमाधममध्यमम् ॥ ७४ ॥
गुरुत्वे त्रिविधं मौल्यं त्रिविधं लाघवे तथा ।
सामान्ये षड्विधं ज्ञेयमेवं द्वादशधा स्मृतम् ॥ ७५ ॥

पहले हीरेके तोलके प्रमाणसे पिण्डके अनुसार मूल्य आदिकी कल्पना करे । पिण्ड तीन प्रकारका होता है लघु, सामान्य और गौरव । आठ सफेद सरसोंका एक चावल होता है । पण्डितोंने चावलके प्रमाणसेही हीरेका मूल्य कहा है । जिस हीरेका तोल तो चावलके बराबर हो परन्तु देखनेमें चावलसे छोटा दीखे उसका मोल उत्तम मोलवाले हीरेसे आधा होता है, यदि हीरेका पिण्ड सामान्य हो अर्थात् आकार तथा तोलमें चावलसे विशेष अन्तर न रखता हो तो उसका मोल मध्यम समझना चाहिये और यदि हीरेका पिण्ड लघु हो अर्थात् तोलमें चावलसे अधिक हो परन्तु आकार उसका चावलसे बडा हो तो उसका मूल्य उत्तम जानना चाहिये । उत्तम, मध्यम और अधमके भेदसे गुरुत्वमें तीन भेद

हैं इसी प्रकार लाघवमेंभी तीन भेद जानना चाहिये । सामान्यमें छः भेद जानना । सब मिलाकर तोल और मोलके बारह भेद हुए ॥ ७२--७५ ॥

वज्रमूल्यनिर्णयः ।

मनसा भावयेत्पिण्डं यवमात्रैकतण्डुलम् ।
तत्पिण्डसमवज्रं तु ज्ञात्वा मूल्यं विनिर्दिशेत् ॥ ७६ ॥
गात्रेण यवमात्रश्च गुरुत्वं तण्डुलेन च ।
मूल्यं पञ्चशतं तस्य वज्रस्य च विनिर्दिशेत् ॥ ७७ ॥
यवद्वयसमं पिण्डं लाघवं तण्डुलोपमम् ।
मूल्यं चतुर्गुणं तस्य त्रिभिश्चाष्टगुणं भवेत् ॥
चतुर्भिर्द्वादशप्रोक्तं पञ्चभिः षोडश स्मृतम् ॥ ७८ ॥

रत्नपरीक्षामें कुशल वैद्यको चाहिये कि, वह पहले अपने मनमें पिण्डका अनुमान करे अर्थात् उस हीरेका आकार कितने यवके बराबर है, और तोलमें कितने चावल भर है इस प्रकार वज्रक पिण्डको जानकर उसका मूल्य कहना चाहिये । जिस हीरेका मुटाव जौके सदृश हो और तोलमें एक चावलके बराबर हो तो उस हीरेका मूल्य पांच सौ रुपया कहना चाहिये । जिस हीरेका पिण्ड दो जौके बराबर हो और तोलमें वह एक चावलके बराबर हो तो उसका मूल्य पूर्वोक्त मूल्यका चौगुना अर्थात् दो सहस्र जानना । यदि मुटावमें तीन जौके बराबर हो और तोलमें एक चावलके समान हो तो पूर्वोक्त मूल्यका अठगुना अर्थात् चार हजार रुपया उसका मूल्य जानना । यदि हीरेका मुटाव चार यवके बराबर हो परन्तु तोलमें वह एक चावलके समान हो तो उसका मूल्य बारह गुना अर्थात् छः हजार रुपया जानना । और यदि मुटावमें पांच जौके बराबर हो परन्तु तोलमें एक चावलके बराबर हो तो उसका मूल्य षोडशगुना अर्थात् आठ हजार रुपया जानना चाहिये ॥७६--७८ ॥

षड्बिन्दुर्यस्य वज्रस्य स्थापनाद्यदि निर्गुणम् ।
सपादयवषट्कस्य पादहीनं च तण्डुलम् ॥ ७९ ॥
अष्टाविंशतिकं मूल्यं कथितं च भिषग्वरैः ।
सप्तमं पिण्डमौल्यं च द्विसहस्रं विनिर्दिशेत् ॥ ८० ॥
यावत्पिण्डनिभं रूपं दापयेद्द्विचतुर्गुणम् ।
पिण्डशास्त्रे भवेद्वज्रं पादांशं लघुतो यदि ॥ ८१ ॥

अष्टादशगुणं मौल्यं रत्नकोशे प्रभाषितम्।
द्वौ यवौ लघवज्रस्य षट्त्रिंशत्स्थापयेद्गुणान् ॥ ८२ ॥
त्रिपादोपरि ते वज्रं चत्वारिंशद्गुणं भवेत्।
पिण्डपादाधिकं वज्रं तौल्यं तद्गुणतो व्रजेत् ॥
क्षपिते द्विगुणं मौल्यं रत्नकोशे प्रभाषितम् ॥ ८३ ॥

"वज्रमणेर्मूल्यपरिज्ञानार्थं पाठान्तरम्"

सितसर्षपाष्टकं तण्डुलो भवेत्तण्डुलैस्तु विंशत्या।
तुलितस्य द्वे लक्षे द्व्यूनं द्विद्व्यूनिते चैतत् ॥ ८४ ॥
पादत्र्यंशार्द्धोनं त्रिभागपञ्चांशषोडशांशश्च।
भागश्च पञ्चविंशतिकः स्यात्साहस्रिकश्चैव ॥ ८५ ॥
यवसप्तकगात्रं तु यदि वारितरं भवेत्।
वज्रस्यास्य त्विदं मौल्यं द्विसहस्रगुणं भवेत् ॥ ८६ ॥
दोषे प्रकाशिते वज्रे समूल्यं यत्र यद्भवेत्।
हीनत्वं प्राप्यते तत्तु मौल्यं शतगुणाधिकम् ॥ ८७ ॥

यदि हीरेका आकार सात जौके बराबर हो और जलमें तैरे तो उसका मूल्य दो हजार गुणा जानना चाहिये और जिस हीरामें दोष जान पडें उसका मोल उत्तम हीरासे सौगुना कम होजाता है ॥ ७९-८७ ॥

अन्यच्च।

मूल्यं द्वादशकं प्रोक्तं वज्रस्यापि महात्मनः।
धारासूत्रं स्थितं कोणे वज्रमध्ये भवेद्यदि ॥ ८८ ॥
तत्स्थाने मङ्गलं प्रोक्तं रत्नज्ञानविशारदैः।
वह्नेर्भयं भवेन्मध्ये तीक्ष्णधारासु दंष्ट्रिणः ॥
रत्नविद्भिरिदं ज्ञेयं तथा कोणद्वयाश्रितम् ॥ ८९ ॥

अच्छे हीरेका मोल बारह प्रकारका कहा है। यदि हीरेके कोण या मध्यमें धारासूत्र स्थित हो तो उस स्थानमें मङ्गल होवे यह रत्नपरीक्षामें चतुर मनुष्योंने कहा है। और यदि हीरेके मध्यमें सर्पाकार तीक्ष्ण रेखा हो अथवा दो कोणोंसे युक्त हो तो उसको अग्निभय करनेवाला जानना चाहिये ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

वज्रशोधनावश्यकता ।

अशुद्धवज्रं कुरुते कुष्ठं पार्श्वव्यथां तथा ।
पाण्डुं तापं गुरुत्वं च तस्मात्संशोध्य मारयेत् ॥ ९० ॥

विना शोधन किया हुआ हीरा-कुष्ठ, पसवाडोंमें पीडा, पाण्डुरोग, ज्वर और शरीरमें भारीपन करता है, इस कारण विधिपूर्वक इसका शोधन करके पश्चात् मारण करे ॥ ९० ॥

अन्यच्च ।

पीडां विधत्ते विविधां नराणां कुष्ठं क्षयं पाण्डुगदं च दुष्टम् ।
हृत्पार्श्वपीडां कुरुतेतिदुस्सहामशुद्धवज्रं गुरुमात्महं त्यजेत् ॥ ९१ ॥

अशुद्ध हीरा मनुष्योंके शरीरमें अनेक प्रकारकी पीडा, कुष्ठरोग, क्षयीरोग, पाण्डुरोग और हृदय तथा पसवाडोंमें दुस्सह पीडाको उत्पन्न करताहै इसहेतु इस प्राणनाशक हीरेका त्याग करे ॥ ९१ ॥

वज्रशोधनविधिः ।

व्याघ्रीकन्दगतं वज्रं दोलायन्त्रेण पाचयेत् ।
सप्ताहं कोद्रवक्काथैः कुलिशं विमलं भवेत् ॥ ९२ ॥

व्याघ्रीकंदके बीचमें हीरेको रखकर कोदोंके काढेमें दोलायन्त्रके द्वारा सात दिन पर्यन्त पकावे तो शुद्ध हो जाता है ॥ ९१ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

गृहीत्वाह्नि शुभे वज्रं व्याघ्रीकन्दे विनिःक्षिपेत् ।
महिषीविष्ठया लिप्त्वा करीषाग्नौ विपाचयेत् ॥ ९३ ॥
त्रियाम च चतुयाम पञ्चयामेऽश्वमूत्रके ।
सेचयेत्पाचयेदेवं सप्तरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ९४ ॥

किसी शुभ दिनमें उत्तम हीराको लेकर व्याघ्रीकन्दके (कटेरीकी जड) क बीचमें रक्खे और उसके ऊपर भैंसके गोबरका लेप करके आरने उपलोंकी अग्निमें तीन या चार प्रहर पर्यन्त पकावे और पाँचवें प्रहरमें आँचसे अलग निकालकर घोडेके मूत्रमें बुझावे । इसी प्रकार सात बार करे तो हीरा शुद्ध होजाताहै ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

तृतीयः प्रकारः।

कुलत्थक्काथके स्विन्नं कोद्रवक्काथितेन वा।
एकयामावधि स्विन्नं वज्रं शुद्ध्यति निश्चितम्॥ ९५॥

हीराको कुलथी वा कोदोंके काढेमें एक प्रहर पर्यन्त दोलायन्त्रके द्वारा पकावे तो वह निश्चय शुद्ध होजाता है॥ ९५॥

चतुर्थः प्रकारः।

कुलत्थकोद्रवक्काथैर्दोलायन्त्रे विपाचयेत्।
व्याघ्रीकन्दगतं वज्रं मृदालिप्तं पुटे पचेत्॥ ९६॥
अहोरात्रात्समुद्धृत्य हयमूत्रेण सेचयेत्।
वज्रीक्षीरेण वा सिञ्चेत्कुलिशं विमलं भवेत्॥ ९७॥

पहले हीराको कुलथी वा कोदोंके काढेमें दोलायन्त्रके द्वारा पकावे और पीछे व्याघ्रीकन्द अर्थात् कटेरीकी जडमें रख कपरमिट्टी करके संपुटमें रख फूँकदेवे, जब एक दिन रात बीतजावे तब आँचसे अलग निकालकर घोडेके मूत्र वा थूहरके दूधमें बुझावे तो वह शुद्ध होजाताहै॥ ९६॥ ९७॥

वज्रमारणविधिः।

त्रिवर्षरूढकार्पासमूलमादाय पेषयेत्।
त्रिवर्षनागवल्ल्या वा बीजद्रावैः प्रपेषयेत्॥ ९८॥
तद्गोलके क्षिपेद्वज्रं रुद्ध्वा गजपुटे पचेत्।
एकं सप्तपुटैर्नूनं कौलिशं भस्म जायते॥ ९९॥

जो तीन वर्षका पुराना हो उस कपासके वृक्षकी जडको लाकर बारीक पीस गोला बनालेवे अथवा कपासके वृक्षकी जडको पिसाले नागरबेलके बीजोंके रसके साथ बाँटकर गोला बनालेवे और उस गोलेके भीतर हीरेको रख सात कपरमिट्टी करके गजपुटमें फूँकदेवे। इसी प्रकार सात पुट देनेसे निश्चय हीराकी भस्म सिद्ध हो जाती है॥ ९८॥ ९९॥

द्वितीयः प्रकारः।

त्रिःसप्तकृत्वः संतप्तः खरमूत्रेण सेचयेत्।
मत्कुणैस्तालकं पिष्ट्वा तद्गोलं कुलिशं क्षिपेत्॥ १००॥

प्रध्मातं वाजिमूत्रेण सिक्तं पूर्वक्रमेण वै ।
भस्मीभवति तद्वज्रं शंखशीतांशुपाण्डुरम् ॥ १०१ ॥

उत्तम हीराको आँचमें बार बार तपाकर गधेके मूत्रमें बुझावे, तत्पश्चात् खटमल और हरितालको एकमें पीसकर गोला बनावे और इस गोलेके भीतर हीराको रख अग्नि देवे जब अच्छे प्रकार अग्नि लगजावे तब आँचसे अलग निकालकर घोडेके मूत्रमें बुझावे । इस क्रियाको इक्कीस वार करे तो शङ्ख वा चन्द्रमाके समान सफेद रंगवाली भस्म सिद्ध होजाती है ॥ १०० ॥ १०१ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

हिङ्गुसैन्धवसंयुक्ते क्वाथे कौलत्थजे क्षिपेत् ।
तप्तं तप्तं पुनर्वज्रं भूयाच्चूर्णं त्रिसप्तधा ॥ १०२ ॥

हीराको अग्निमें तपा तपाकर हींग, कुलथी और सेंधा नमकके काढेमें इक्कीस बार बुझावे तो उसकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ १०२ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

मेषशृङ्गं भुजङ्गास्थि कूर्मपृष्ठाम्लवेतसम् ।
शशदन्तं समं पिष्ट्वा वज्रीक्षीरेण गोलकम् ॥
कृत्वा तन्मध्यगं वज्रं म्रियते ध्मातवह्निना ॥ १०३ ॥

मेंढेका सींग, साँपकी हड्डी, कछवेकी पीठ, अमलबेत, शशेक दांत इन सबोंको समान भाग लेकर बारीक पीसकर थूहरके दूधके साथ घोटकर गोला बनालेवे और उस गोलेके बीचमें हीरेको रख सात कपरमिट्टी करके गजपुटमें फूँकदेवे तो हीरेकी उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है ॥ १०३ ॥

पञ्चमः प्रकारः ।

विलिप्तं मत्कुणस्यांत्रैः सप्तवारं विशोधितम् ।
कासमर्दरसैः पूर्णे लोहपात्रे निवेशयेत् ॥ १०४ ॥
सप्तवारं परिध्मातं वज्रभस्म भवेत्सुख ।
वज्रचूर्णं भवेद्वर्ण्यं योजयेच्च रसादिषु ।
ब्रह्मज्योतिर्मुनीन्द्रेण क्रमोऽयं परिकीर्तितः ॥ १०५ ॥

शुद्ध हीराको अग्निमें तपाकर खटमलकी आँतोंका लेप करके धूपमें सुखा लेवे । इसी प्रकार सात बार लेपकरे और प्रत्येक लेपके अन्तमें सुखालिया करे,

और पीछे कसोंदीके रससे पूर्ण लोहेके पात्रमें उस हीरेको डालकर अग्नि देवे-जब कसौंदीका रस सूखजावे तब फिर पूर्ववत् अग्निमें हीरेको तपाकर खटमलोंका लेप करके कसोंदीके रससे पूर्ण लोहपात्रमें रखकर अग्नि देवे। इसी प्रकार सात बार करे तो निस्सन्देह हीराकी उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है, यह वज्रभस्म देहमें कान्तिको उत्पन्न करनेवाली है। वैद्यको चाहिये कि, वह अन्य रसादिकोंमें बुद्धिपूर्वक इसकी योजना करे हीराके भस्म बनानेका यह पाँचवाँ प्रकार ब्रह्मज्योति मुनीन्द्रका कहा हुआ है ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

षष्ठः प्रकारः ।

वज्रं मत्कुणरक्तेन चतुर्वारं विभावितम् ।
दुर्गन्धिमूषिकामांसैर्वर्तितैः परिमर्द्य च ॥ १०६ ॥
पुटेत्पुटैर्वराहाख्यैस्त्रिंशद्वारं ततः परम् ।
ध्मात्वा ध्मात्वा शतं वारान्कुलत्थे क्वाथके क्षिपेत् ॥ १०७ ॥
अन्यैरुक्तः शतं वारं कर्तव्योयं विधिक्रमः ।
कुलत्थक्वाथसंयुक्तलकुचद्रावपिष्टया ॥ १०८ ॥
शिलया लिप्तमूषायां वज्रं क्षिप्त्वा निरुध्य च ।
अष्टवारं पुटेत्सम्यग्विशुष्कैश्च वनोपलैः ॥ १०९ ॥
शतवारं ततो ध्मातं निक्षिप्तं शुद्धपारदे ॥
निश्चितं म्रियते वज्रं भस्म वारितरं भवेत् ११० ॥
सत्यवाक्सोमसेनानीरेतद्वज्रस्य मारणम् ।
दृष्टप्रत्ययसंयुक्तमुक्तवात्रसकौतुकी ॥ १११ ॥

शुद्ध हीराको लाकर पहले खटमलके रक्तकी चार भावना देवे और पीछे छछूँदरके मांसमें मर्दन करके वाराहपुटमें फूँकदेवे, इसी प्रकार तीस बार करे, तत्पश्चात् उस हीराको अग्निमें तपा तपाकर सौ बार कुलथीके काढेमें बुझावे। यहां अन्य आचार्योंने ऐसा कहा है कि, पहले सौ बार खटमलोंके रुधिरकी भावना देवे और पीछे कुलथीके क्वाथमें बुझावे, तदनन्तर कुलथीके क्वाथमें बडहरका रस मिलावे और उसमें मनसिलको पीसकर मूषामें लेप करे और फिर उस हीरेको मूषामें रख और मूँदकर आरने उपलोंकी अग्निमें फूँकदेवे इस प्रकार सूखे हुए जङ्गली उपलोंकी अग्निमें आठ पुट देनेके अनन्तर अग्निमें हीराको तपा तपाकर सौ बार

शुद्ध पारेमें बुझावे तो निस्सन्देह जलमें तैरनेवाली वज्रभस्म सिद्ध होजाती है। यह दृष्ट और अनुभूत भस्म बनानेका विधान रसकौतुकी सत्यवाक् सोमसेनानीने कहा है ॥ १०६–१११ ॥

सप्तमः प्रकारः ।

विलिप्तं मत्कुणस्यास्रे सप्तवारं विशोधितम् ।
कासमर्दरसैः पूर्णे ताम्रपात्रे निवेशयेत् ॥ ११२ ॥
शतवारं परिध्मातं वज्रभस्म भवेत्खलु ।
ब्रह्मज्योतिर्मुनीन्द्रेण भाषितं रत्नसागरे ॥ ११३ ॥

हीरामें खठमलके रुधिरकी सात भावना देवे और पीछे कसोंदीके रससे पूर्ण ताँबेके पात्रमें उस हीरेको डालकर अग्नि देवे। इसी प्रकार सौ बार करे तो निस्सन्देह वज्रभस्म सिद्ध होजाती है। यह वज्रमारणका विधान रत्नसागर नामक ग्रन्थमें ब्रह्मज्योतिमुनीन्द्रने कहा है ॥ ११२ ॥ ११३ ॥

अष्टमः प्रकारः ।

नीलज्योतिर्लताकन्दे व्युष्टं घर्मे विशोषितम् ।
वज्रं भस्मत्वमायाति क्रमवज्ज्ञानवह्निना ॥ ११४ ॥

नीलज्योतिलताकी कन्दमें एक दिन हीराको रखकर धूपमें सुखाय यथासंभव अग्निदेनेसे उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ११४ ॥

नवमः प्रकारः ।

मदनस्य फलोद्भूतरसेन क्षोणिनागरैः ।
कृतकल्केन संलिप्य पुटेद्विंशतिवारकम् ।
वज्रचूर्णं भवेद्वर्ण्यं योजयेच्च रसादिषु ॥ ११५ ॥

मैनफलके रसमें अलसी और सोंठको बाँट कर कल्क बनालेवे और हीराके ऊपर इसका लेप करके विधिपूर्वक अग्निमें रखकर फूँकदेवे। इसी प्रकार बीस पुट देवे तो हीराकी उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है। वैद्यको चाहिये कि, वह बुद्धिपूर्वक अन्य रसादिकोंमें इसकी योजना करे ॥ ११५ ॥

ब्रह्मरत्नमारणविधिः ।

गरुडं गन्धकं तालं बदरीरससंप्लुतम् ।
अश्वत्थस्वरसैर्भाव्यं पुटेत्पिण्डं सरक्तकम् ॥
म्रियते तेन योगेन ब्रह्मरत्नं हि तत्त्वतः ॥ ११६ ॥

हीरामें पहले खटमलोंके रुधिरकी भावना देवे और पीछे बेरके रसमें घोटेहुए छरेहटा, गंधक, हरिताल, और पीपलके पत्तोंके रसकी भावना देकर विधिपूर्वक फूँक देवे तो निस्सन्देह उस ब्राह्मणवर्ण हीरेकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ११६ ॥

क्षत्रियरत्नमारणविधिः ।

नीलं च शङ्खचूर्णं च शिलाभूनागसूरणम् ।
म्रियते क्षत्रजातीनां पुटैः स्वाभिर्न संशयः ॥ ११७ ॥

नील, शंखका चूरा, मनसिल, केंचुए और सूरण इनको एकमें पीसकर हीरामें पुट दे और मूषामें रख बँकनाल धोंकनीसे धोंके तो क्षत्रिय जातिके हीरेकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ११७ ॥

वैश्यरत्नमारणम् ।

स्नुह्यर्ककरवीरं च भूनागं दरदं वटाः ।
उत्तमा वारुणीक्षीरैर्वैश्यानां मारणं पुटैः ॥ ११८ ॥

थूहर, आक, कनेर, केंचुआ, शिंगरफ, बडका दूध, उत्तम दारू और दूधकी भावना देकर वैश्य जातिके हीरेको फूँके तो उसकी भस्म सिद्ध होजाती है॥११८॥

शूद्ररत्नमारणविधिः ।

गन्धाश्मकं घृतं तालं मेषशृङ्गं समांशकम् ।
विषं कान्तं स्नुहीक्षीरं नारीपुष्पं पयःप्लुतम् ।
एभिर्विलिप्तमूषायां धमनादन्यमारणम् ॥ ११९ ॥

गंधक, घृत, हरताल, मेढासिंगी, सहत, विष, कान्तलोह, थूहरका दूध, स्त्रीके मासिक धर्मका रुधिर और दूध इन सबको एकमें बाँधकर मूषामें लेप करदेवे और शूद्रजातिके हीराको उस मूषामें रखकर फूँके तो उसकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ ११९ ॥

वज्रसत्त्वपातनविधिः ।

तद्वज्रं चूर्णयित्वाथ किञ्चिट्टङ्कणसंयुतम् ।
खरभूनागसत्त्वेन विषेनावर्तते ध्रुवम् ।
तुल्यस्वर्णेन तद् ध्मातं योजनीयं रसादिषु ॥ १२० ॥

पूर्वोक्त रीतिसे फूँकेहुए हीरेको बारीक पीसकर उसमें थोडासा सुहागा मिलाकर केंचुएके गरम सत्त्वमें मिलादेवे और फिर उसमें हीरेकी बराबर सोना डालकर

अग्निपर रख धमें तो सत्त्व निकलताहै । वैद्यको चाहिये कि वह बुद्धिपूर्वक इस सत्त्वकी योजना अन्य रसोंमें करे ॥ १२० ॥

चलदन्तविबन्धनविधिः ।

त्रिगुणेन रसेनैव संमर्द्य गुटिकीकृतम् ।
मुखे धृते करोत्याशु चलदन्तविबन्धनम् ॥ १२१ ॥

जितनी हीराकी भस्म हो उसका तिगुना शुद्ध किया हुआ पारा उसमें मिलाकर गोली बनालेवे और इस गोलीको मुखमें रक्खे तो हिलते हुए दांतोंको शीघ्र ही दृढ कर देती है ॥ १२१ ॥

वज्रभस्मगुणाः ।

आयुःप्रदं सद्गुणदं च वृष्यं दोषत्रयप्रशमनं सकलामयघ्नम् ।
सूतेन्द्रबन्धवधसद्गुणदं प्रदीप्तं मृत्युं जयेत्तदमृतोपममेव वज्रम् ॥ १२२ ॥

विधिपूर्वक बनाई हुई हीराकी भस्म मनुष्योंकी आयु तथा शुभगुणोंको बढाती है, वृष्य है, वात, पित्त और कफके दोषोंको शान्त करती है और अन्य भी सम्पूर्ण रोगोंको नाश करती है पारेकी बद्धक तथा मारण करनेवाली है और पारेके उत्तम गुणोंको प्रगट करनेवाली है, प्रदीप्त है, मृत्युको भी दूर करनेवाली तथा अमृतके समान गुणकारी है ॥ १२२ ॥

अन्यच्च ।

वज्रं च षड्रसोपेतं सर्वरोगापहारकम् ।
सर्वाघशमनं सौख्यं देहादार्ढ्यं रसायनम् ॥ १२३ ॥

विधिपूर्वक बनाई हुई हीराकी भस्म छः प्रकारके रसोंसे युक्त तथा सर्व रोगोंको नाश करनेवाली और सम्पूर्ण पापोंको दूर करनेवाली है, सुखकारक तथा शरीरको दृढ करनेवाली रसायन है ॥ १२३ ॥

अन्यच्च ।

वज्रं समीरकफपित्तगदांश्च हन्याद्वज्रोपमं च कुरुते वपुरुत्तमश्रि ।
शोषक्षयज्वरभगन्दरमेहमेदःपाण्डूदरश्वयथुहारि च षड्रसाढ्यम् ॥१२४॥
आयुःपुष्टिं च वीर्यं च वर्णसौख्यं करोति च।
सेवितं सर्वरोगघ्नं मृतं वज्रं न संशयः ॥ १२५ ॥

शुद्ध हीराकी भस्म वात, पित्त और कफके दोषोंका नाश करती है, शरीरको वज्रके समान दृढ और उत्तम कान्तिसे युक्त करती है । शोषरोग, क्षयी, ज्वर, भगन्दर, प्रमेह, मेदा, पाण्डुरोग, उदरके रोग और शोफको दूर करती है, छः

प्रकारके रसोंसे युक्त है । आयुको पुष्ट और वीर्यको उत्पन्न करती है, देहमें उत्तम कान्ति और सुख करती है । उचित अनुपानके साथ सेवन करनेसे निस्सन्देह सम्पूर्ण रोगोंका नाश करती है ॥ १२४ ॥ १२५ ॥

भस्मसेवनानुपानानि ।

कुष्ठे खादिरवल्कयुक्पवनजेऽसृज्यार्द्रकक्षौद्रयुग्
देयं कासवलासश्वासविकृतौ वासोषणात्वक्कणाः ।
पित्ते दाहसितासमं ज्वरगणे च्छिन्नाजले तिक्तके
वज्रं मारितशुक्लभस्मगदहृद्युञ्ज्याद्भिषग्युक्तिभिः ॥ १२६ ॥

कुष्ठरोगमें हीराकी भस्मको खैर वृक्षकी छालके साथ सेवन करे, वातरक्तमें अदरखके रस और शहदके साथ, खाँसी, कफ और श्वास रोगमें अडूसेके रस, काली मिर्च, दालचीनी और पीपलके साथ, पित्त और दाहमें मिश्रीके साथ, सर्व प्रकारके ज्वरोंमें गिलोय और चिरायतेके काढेके साथ देवे । विधिपूर्वक मारण किया हुआ श्वेत भस्मरूप यह वज्र सर्वरोगोंका नाशक है, इस कारण वैद्यको चाहिये कि बुद्धिपूर्वक अनुपानोंकी कल्पना करके अनेक रोगोंमें इसकी योजना करे १२६॥

भस्मसेवनविधिः ।

सूतभस्मार्द्धसंयुक्तं मृतवज्रस्य भस्मकम् ।
मृताभ्रसत्त्वमुभयोस्तुलितं परिमर्दितम् ॥ १२७ ॥
क्षौद्राज्यसंयुतं प्राज्ञैर्गुञ्जामात्र च सेवितम् ।
निहन्ति सकलान्रोगान्सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ १२८ ॥
एवं वज्रभवं भस्म सेवनीयं नृभिस्सदा ।
त्रिसप्तदिवसैर्नॄणां गङ्गाम्भ इव पातकम् ॥ १२९ ॥

एक भाग हीराकी भस्म, अर्द्धभाग पारेकी भस्म और इन दोनोंके बराबर मृत अभ्रकका सत्त्व लेकर शहद और घीमें मिलाकर प्रतिदिन एक रत्ती मात्रासे सेवन करे तो सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करे । इस पूर्वोक्त प्रकारसे वज्रभस्मका सेवन नित्य करना चाहिये, जिस प्रकार गङ्गाजल पातकोंको दूर करता है वैसेही इक्कीस दिन पर्यन्त सेवन करनेसे यह भस्म समस्त रोगोंको हरलेती है॥१२७-१२९॥

अन्यच्च ।

त्रिंशद्भागमितं हि वज्रभसितं स्वर्णं कलाभागकं
तारं चाष्टगुणा सितामृतवरं रुद्रांशकं चाभ्रकम्।

पादांशं खलु ताप्यकं वसुगुणं वैक्रान्तकं षड्गुणं
भागोप्युक्तरसै रसोयमुदितः षाड्गुण्यसंसिद्धये ॥ १३० ॥

हीराकी भस्म तीस भाग, सुवर्णकी भस्म सोलह भाग, चांदीकी भस्म आठ भाग, सिंगिया विष एकादश भाग, अभ्रकभस्म चौथाई भाग सोनामक्खीकी भस्म आठ भाग, वैक्रान्तमणिकी भस्म छः भाग, पारेकी भस्म एक भाग इन सबको एकमें मिलाकर रखलेवे । यह अनेक रसोंके मेलसे बनाहुआ अति उत्तम रस षड्गुणकी सिद्धिके लिये प्राचीन आचार्योंने कहा है ॥ १३० ॥

वज्रमृदूकरणविधिः ।

मातुलुङ्गान्तरे वज्रं रुद्ध्वा बाह्ये मृदा लिपेत् ।
पुटेत्पश्चात्समुद्धृत्य एवं शतपुटैः पचेत् ॥ १३१ ॥
नागवल्ल्याद्रवैर्लिप्तं तत्पत्रेणैव वेष्टयेत् ।
भूमध्ये च स्थितं यावत्तद्वज्रं मृदुतां व्रजेत् ॥ १३२ ॥

बिजौरा नीम्बूके भीतर हीरेको रखकर ऊपर कपरमिट्टी करदेवे और फिर अग्निमें रख फूँकदे इसी प्रकार सौ पुट देकर पकावे तत्पश्चात् उस हीरेमें नागवल्ली (पान) के स्वरसका लेप करे और ऊपरसे उसीके पत्तोंसे लपेटकर पृथिवीमें गाडदेवे और जबतक नरम न होजाय तबतक गाडा रहने देवे । इस प्रकारकी क्रिया करनेसे हीरा बहुत नरम होजाता है ॥ १३१॥१३२ ॥

वज्रद्रावविधिः ।

वज्रवल्ल्यन्तरस्थं च कृत्वा वज्रं निरुत्थितम् ।
अम्लभाण्डगतं स्वेद्यं सप्ताहाद्द्रवतां व्रजेत् ॥ १३३ ॥

वज्रवल्ली (हडसंघरी, या हडसंकरी) की लुगदीमें हीराको रखकर फूँक देवे जब निरुत्थ होजाय तब अम्लवर्गोक्त औषधियोंके रसको पात्रमें डालकर स्वेदनाख्य यन्त्रके द्वारा स्वेदन करे । सात दिन पर्यन्त इसी प्रकार करनेसे वह हीरा पारेके समान पतला होजाता है ॥ १३३ ॥

वज्रदोषशान्त्युपायः ।

सितामधुघृतैः साकं गोदुग्धं दिनसप्तकम् ।
विधिना सेवितं हन्ति वज्रदोषं चिरोत्थितम् ॥ १३४ ॥

सात दिन पर्यन्त विधिपूर्वक मिश्री, शहद, घृत और गौका दूध एकमें मिलाकर सेवन करे तो आठ योग अशुद्ध हीरेके सेवनसे उत्पन्न हुए बहुतकालके भी दोषोंको नाश करता है ॥ १३४ ॥

प्रवालोत्पत्तिः ।

बालार्ककिरणरक्ता सागरसुशिलोद्भवा जललता या ।
न त्यजति निजं रूपं निकषे घृष्टापि सा स्मृता जात्या ॥ १३५ ॥

मूँगाभी एक प्रकारका प्रसिद्ध रत्न है और वह समुद्रके जलमें स्थित उत्तम शिलाओंपर उत्पन्न होता है यह प्रातःकालके बालसूर्यके तुल्य लाल रंगवाली जललता है। जो मूँगा कसौटीमें घिसनेसेभी निज रूपको नहीं त्यागता है वह बहुत उत्तम मानागया है ॥ १३५ ॥

उत्तमप्रवाललक्षणम् ।

पक्वबिम्बफलच्छायं वृत्तायतमवक्रकम् ।
स्निग्धमव्रणकं स्थूलं प्रवालं सप्तधा शुभम् ॥ १३६ ॥

जो पकी हुई कंदूरीके तुल्य कान्तिसे युक्त, गोलाकार, कुछ लंबा, वक्रतारहित, चिकना, छिद्रादिरहित, और स्थूल हो ऐसा सात लक्षणोंवाला मूँगा उत्तम होता है ॥ १३६ ॥

त्याज्यप्रवाललक्षणम् ।

गौरं रङ्गं जलाक्रान्तं वक्रं सूक्ष्मं सकोटरम् ।
रूक्षं कृष्णं लघुश्वेतं प्रवालमशुभं त्यजेत् ॥ १३७ ॥

जो मूँगा रंगमें श्वेत और लाल तथा पानीसे वक्रतासहित, सूक्ष्म, छिद्रसहित, रूक्ष, काला, छोटा और सफेद रंगवाला हो वह उत्तम नहीं है अतः उसको त्याग करे ॥ १३७ ॥

प्रवालगुणाः ।

प्रवालं मधुरं साम्लं कफपित्तादिदोषनुत् ।
वीर्यं कान्तिकरं स्त्रीणां धृतेर्मङ्गलदायकम् ॥ १३८ ॥
क्षयपित्तास्रकासघ्नं दीपनं पाचनं लघु ।
विषभूतादिशमनं विद्रुमं नेत्ररोगहृत् ॥ १३९ ॥

मूँगा स्वादमें मधुर और खट्टा होताहै, कफ, पित्तादि दोषोंको नाश करताहै स्त्रियोंके देहमें वीर्य और कान्तिको उत्पन्न करताहै और धारण करनेसे मङ्गलदायक होताहै, क्षयीरोग, रक्तपित्त, खाँसी इनको दूर करताहै, दीपन तथा पाचन है, हलका है, विष और भूतबाधाको शान्त करताहै, नेत्रोंके समस्त रोगोंको हरता है ॥ १३८ ॥ १३९ ॥

विद्रुमस्य चतुर्विधत्ववर्णनम् ।

विद्रुमं नाम यद्रत्नमामनन्ति मनीषिणः ।
ब्रह्मादिजातिभेदेन तच्चतुर्विधमुच्यते ॥ १४० ॥

बुद्धिमान् मनुष्य जिस रत्नको विद्रुम नामसे व्यवहार करते हैं वह ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन जाति भेदसे चार प्रकारका होताहै ॥ १४० ॥

विप्रजातिविद्रुमलक्षणम् ।

अरुणं शशरक्ताख्यं कोमलं स्निग्धमेव च ।
प्रवालं विप्रजातिः स्यात्सुखवेध्यं मनोरमम् ॥ १४१

जो लाल रंगवाला हो, कोमल तथा स्निग्ध हो, सुखपूर्वक वेध करने योग्य और मनोहर हो उस शशरक्तनामके मूँगाको ब्राह्मणजातिवाला कहते हैं ॥१४१॥

क्षत्रियजातिविद्रुमलक्षणम् ।

जवाबन्धूकसिन्दूरदाडिमीकुसुमप्रभम् ।
कठिनं दुर्वेध्यमस्निग्धं क्षत्रजातिं विदुर्बुधाः ॥ १४२ ॥

जो गुडहर, दुपहरिया, सिन्दूर (वृक्षविशेष) और अनारके फूलके समान कान्तिसे युक्त हो, कोमलतासे रहित हो कठिनतासे बेध करनेयोग्य हो और चिकना न हो उसे क्षत्रियजातिका मूँगा कहते हैं ॥ १४२ ॥

वैश्यजातिविद्रुमलक्षणम् ।

पलाशकुसुमाभासं तथा पाटलसन्निभम् ।
वैश्यजातिर्भवेत्स्निग्धं वर्णाढ्यं मन्दकान्तिमत् ॥ १४३ ॥

जिसकी कान्ति टेसूके समान अथवा गुलाब पुष्पके तुल्य हो चिकना हो रंगसे युक्त हो और मन्द कान्तिवाला हो उसे वैश्यजातिका मूँगा कहते हैं ॥ १४३ ॥

शूद्रजातिवज्रलक्षणम् ।

रक्तोत्पलदलाकारं कठिनं न चिरद्युति ।
विद्रुमं शूद्रजातिः स्याद्वायुवेध्यं तथैव च ॥ १४४ ॥

जो रंगमें रक्त कमलदलके समान हो, कठिन हो तथा बहुतकाल तक जिसकी कान्ति बराबर स्थित रहे और वायुवेध्य हो, उसे वैश्यजातिका मूँगा कहते हैं ॥ १४४ ॥

विद्रुमशुभगुणाः ।

रक्तता स्निग्धता दार्ढ्यं चिरद्युतिः सुवर्णता ।
प्रवालानां गुणाः प्रोक्ता धनधान्यकराः पराः ॥ १४५ ॥

रक्तवर्णता, चिकनाहट, दृढता, स्थिरकान्तित्व, वर्णसौन्दर्यता आदि धन और धान्यके देनेवाले मूँगोंके उत्तम गुण कहे गये हैं ॥ १४५ ॥

उत्पत्तिस्थानभेदेन विद्रुमस्य विशेषगुणवर्णनम् ।

हिमाद्रौ यत्तु संजातं तद्रक्तमतिनिष्ठुरम् ।
तत्र लिप्तो भवेन्निम्बकल्कोऽतिमधुरः स्थितः ॥
तस्य धारणमात्रेण विषवेगः प्रशाम्यति ॥ १४६ ॥

जो मूँगा हिमालय पर्वतमें उत्पन्न होता है वह लाल रंगवाला और कठिन होता है और उसमें लेप कियाहुआ नींब वृक्षका कल्क अति मधुर रससे युक्त होजाता है इस मूँगाके धारण करने मात्रसे विषका वेग शान्त होजाता है॥१४६॥

प्रवालदूषणादिवर्णनम् ।

विवर्णता तु खरता प्रवाले दूषणद्वयम् ।
रेखाकाकपदौ बिन्दुर्यथा वज्रेषु दोषकृत् ॥ १४७ ॥
तथा प्रवाले सर्वत्र वर्जनीयं विचक्षणैः ।
रेखा हन्याद्यशो लक्ष्मीमावर्तः कुलनाशनः ॥ १४८ ॥
पट्टलो रोगकृत् ख्यातो बिन्दुर्धनविनाशकृत् ।
त्रासः संजनयेत्त्रासं नीलिका मृत्युकारिणी ॥
मूलं शुद्धप्रवालस्य रूप्यद्विगुणमुच्यते ॥ १४९ ॥

मूँगामें दो दूषण होते हैं विवर्णता और खरता, रेखा, काकपद और बिन्दु यह सब जिस प्रकार हीरामें दोष करनेवाले माने गये हैं उसी प्रकार मूँगोंमें भी दोष करते हैं इस कारण बुद्धिमान् वैद्योंको चाहिये कि वह दोषयुक्त मूँगोंका त्याग करें । मूँगामें रेखा ४ दोष हो तो वह यश और लक्ष्मीको नाश करे, आवर्त दोष हो तो कुलका नाश हो, पट्टल नामक दोष रोगोंको उत्पन्न करता है, बिन्दु दोष धनका विनाश करे, त्रास दोष भयको उत्पन्न करे, नीलिका संज्ञक दोष मृत्यु करनेवाला है, शुद्ध मूँगाका मूल्य दो रुपया है॥१४७-१४९ ॥

विद्रुममारणविधिः ।

मौक्तिकस्य विधिः प्रोक्तः प्रवालेऽपि तथा विधिः ॥ १५० ॥

मोतीके मारणका जो प्रकार है वही प्रकार मूँगाके मारणका भी समझना चाहिये ॥ १५० ॥

मौक्तिकोत्पत्तिस्थानानि ।

शुक्तिः शंखो गजः क्रोडः फणी मत्स्यश्च दर्दुरः ।
वेणुश्चाष्टौ समाख्याताः सुज्ञैर्मौक्तिकयोनयः ॥ १५१ ॥

बुद्धिमानोंने, सीपी, शङ्ख, हाथी, शूकर, सर्प, मछली, मेंढक और बाँस यह आठ मोती उत्पन्न होनेके स्थान कहे हैं ॥१५१ ॥

गजमौतिकलक्षणम् ।

यद्दन्तावलकुम्भसम्भवमदः पीतारुणं मन्दरुक् ।
धात्रीदध्नतयात्र रत्नमधमं काम्बोजकुम्भोद्भवम् ॥ १५२ ॥

जो गजमुक्ता दँतारा हाथीके गण्डस्थलसे उत्पन्न होता है वह कुछ पीला तथा लाल रंगवाला और मन्दकान्तिसे युक्त होता है, परन्तु काम्बोज देशमें उत्पन्न हुए हाथीका जो मुक्ता होता है वह श्रेष्ठ नहीं है ॥ १५२ ॥

चतुर्विधगजमौक्तिकोत्पत्तिः तल्लक्षणञ्च ।

उक्ता गजपरीक्षायां गजजातिश्चतुर्विधा ।
मौक्तिकं तेषु जातं हि चतुर्विधमुदीर्यते ॥ १५३ ॥
ब्राह्मणं पीतशुक्लं तु क्षत्रियं पीतरक्तकम् ।
पीतश्यामं तु वैश्यं स्याच्छूद्रं स्यात्पीतनीलकम् ॥ १५४ ॥

जहां हाथियोंकी परीक्षाका वर्णन है वहां उनकी चार प्रकारकी जातियोंका कथन किया है । उन चार प्रकारके हाथियोंमें चार ही प्रकारके गजमुक्ता भी उत्पन्न होते हैं । जो कुछ पीला और सफेद रंगसे युक्त हो उसे ब्राह्मणजातिका गजमुक्ता जानना चाहिये । जिसका रंग कुछ पीला और लाल हो उसे क्षत्रियजातिका जानना, यदि कुछ पीला और श्याम रंगवाला हो तो उसे वैश्यजातिका जानना, और जो गजमुक्ता कुछ पीले तथा नीले रंगसे युक्त हो उसे शूद्रजातिका जानना चाहिये ॥ १५३ ॥ १५४ ॥

वाराहमौक्तिकोत्पत्तिस्तल्लक्षणञ्च ।

एकाकी सुसुखेन निस्पृहतया यः काननं गाहते
तस्यानादिवराहवंशजनुषः कोलस्य मूर्ध्नि स्थितम् ।

कंकोलाकृतिमिन्दुवत्सुधवलं दैवादवाप्नोति यः
सोऽमर्त्यैः समुपास्यते सनिधिभिर्मर्त्यो धनाधीशवत् ॥ १५५ ॥

श्री अनादिवराह भगवान्‌के वंशमें जो शूकर उत्पन्न हुआ वह निस्पृहतायुक्त सुखपूर्वक वनमें अकेला ही घूमता फिरता है उसके मस्तकमें कंकोलके तुल्य आकृतिवाला और चन्द्रमाके समान श्वेतमुक्ता होता है । दैवेच्छासे जिस मनुष्यके यह वराहमुक्ता प्राप्त होताहै वह मनुष्य शङ्ख आदि निधियोंसे युक्त देवताओंसे कुबेरके समान उपासित होताहै ॥ १५५ ॥

जातिभेदेन वराहस्य मुक्तायाश्च चतुर्विधत्ववर्णनम् ।

ब्रह्मादिजातिभेदेन वराहोऽपि चतुर्विधः ।
तेषु जाता भवेन्मुक्ता समासेन चतुर्विधा ॥ १५६ ॥
ब्राह्मणः शुक्लवर्णस्तु शूद्रमन्तेऽस्य लक्षते ।
क्षत्रियः शुक्लरक्तस्तु स्पर्शे कर्कश एव च ॥ १५७ ॥
वैश्यः स्याच्छुक्लपीतस्तु कोमलः कोलसन्निभः ।
शूद्रः स्याच्छुक्लनीलस्तु कर्कशः श्याम एव च ॥ १५८ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार जातियोंके भेदसे वराह भी चार प्रकारके होते हैं । इनमें उत्पन्न हुई मुक्ता भी सामान्यतासे चार प्रकारकी होती है । ब्राह्मणजातिका मोती श्वेत होताहै, और इसके अन्तमें शूद्र लक्षित होताहै । क्षत्रिय जातिका मोती कुछ सफेद और लाल होताहै । वैश्यजातिका मोती कुछ सफेद तथा पीला होताहै, यह कोमल और बदरी फलके समान होताहै। शूद्रजातिका मुक्ता कर्कश है रंगमें कुछ सफेद, नीला और श्याम होताहै॥१५६-१५८॥

वेणुमौक्तिकलक्षणम् ।

मुक्ताः सन्ति कुलाचलेषु करकाकान्त्युद्भवावंशजाः ।
कर्कन्धूफलबन्धवो निदधते कण्ठेषु शुद्धाङ्गनाः ॥

कुलाचलनामक पर्वतमें जो मोती बाँससे उत्पन्न होता है वह बर्फके समान सफेद और बेरके तुल्य बडा होताहै, उसको शुद्ध स्त्रियाँ कण्ठमें धारण करती हैं ॥

मत्स्यजमौक्तिकलक्षणम् ।

प्रोष्ठीगर्भगतस्तु मौक्तिकमणिर्नागासमः पाटली ।
पुष्पाभः स न लभ्यते भुवि जनैरस्मिन्कलौ पापिभिः ॥ १५९ ॥

मछलीके उदरमें जो मोती उत्पन्न है वह गजमुक्ताके तुल्य होताहै, रंग उसका पाढर फूलके समान जानना चाहिये। यह मत्स्यज मुक्ता इस कलियुगमें पापी मनुष्योंको नहीं मिलता ॥ १५९ ॥

दर्दुरमुक्तालक्षणम् ।

मेकादिष्वपि जायन्ते मणयो ये क्वचित्क्वचित् ।
भौजङ्गममणेस्तुल्यास्ते विज्ञेया बुधोत्तमैः ॥ १६० ॥

मेंडक आदिकोंमें भी जो कहीं २ मोती उत्पन्न होते हैं, वे सब सर्पज मुक्ताके समान जानना चाहिये ॥ १६० ॥

शङ्खमुक्तालक्षणम् ।

शंखस्याच्युतहारिणो जलनिधौ ये वंशजाः कम्बुका-
स्तेष्वान्तः किल मौक्तिकं भवति वैतच्छुक्रतारानिभम् ।
कापोताण्डसमं सुवृत्तमसकृच्छ्रीकं सुरूपं लघु
स्निग्धस्पर्शयुतं तथा च न पुनर्मर्त्यैस्तदासाद्यते ॥ १६१ ॥

विष्णुके पाञ्जजन्य नामक शङ्खके वंशमें उत्पन्न हुए अनेक शङ्ख समुद्रमें होते हैं उनके बीचमें जो मोती होता है वह शुक्रताराके समान कान्तिसे युक्त, कबूतरके अंडेके तुल्य गोल, लक्ष्मीयुक्त, सुन्दररूपवाला हलका और स्पर्शमें चिकना होता है यह मनुष्योंको नहीं प्राप्त होता ॥ १६१ ॥

सर्पजमौक्तिकलक्षणम् ।

शेषस्यान्वयिनां फणासु फणिनां यन्मौक्तिकं जायते
वृत्तं निर्मलमुज्ज्वलं शशिरुचि श्यामच्छवि श्रीकरम् ।
कंकोलाकृति कोपि कोटिसुकृतैः प्राप्नोति चेन्मानवः
स स्याद्वाजिगजाधिको नृपसमो जातोऽपि नीचे कुले॥१६२॥
आस्ते सद्मनि चेत्स पन्नगमणिस्ते यातुधानामराः
हर्तुं रन्ध्रमवेक्ष्य यान्ति च ततः कुर्यान्महाशान्तिकम् ॥ १६३ ॥

शेष नागके वंशमें उत्पन्न हुए सर्पोंके फणोंमें जो मोती उत्पन्न होता है वह गोल, निर्मल, चमकदार, चन्द्रमाके तुल्य कान्तिवाला, श्याम दीप्तिसे युक्त, लक्ष्मीका करनेवाला और कंकोलके समान आकृतिसे युक्त होता है स्वकृत कोटिपुण्योंके कारण जिस मनुष्यको इसकी प्राप्ति होती है वह यदि नीचकुलमें

भी उत्पन्न हुआ हो तोभी घोडे और हाथी आदिसे युक्त हो राजाके समान होताहै । यदि गृहमें यह सर्पज मोती विद्यमान हो तो अवसर पायकर देवता और राक्षस उसके हरलेजानेके लिये वहाँ आते हैं, इस कारण महाशान्तिक कर्म करे ॥ १६२ ॥ १६३ ॥

शुक्तिजमुक्तालक्षणम् ।

षट्स्वेतेष्वपि रुक्मिणीव जगति ख्यातिं गता रुक्मिणी
नाम्ना शुक्तिमतीव चोत्तमगुणा सिन्धौ समुज्जृम्भते ।
तस्या गर्भभवं तु कुंकुमनिभं जातीफलाकारकं
स्थूलं स्निग्धमतीव निर्मलतरं भूमौ प्रकाशं सदा ॥ १६४ ॥

समुद्रमें जो अत्युत्तम गुणोंसे युक्त शुक्ति रुक्मिणी नामक जीवविशेष उत्पन्न होताहै वह संसारमें रुक्मिणीके समान प्रसिद्ध है, उसके उदरमें कुंकुमके तुल्य कान्तिसे युक्त, जायफलके आकारके समान, स्थूल, चिकना और अत्यन्त निर्मल मोती निकलताहै, यह संसारमें प्रसिद्ध है ॥ १६४ ॥

मेघप्रभवमुक्ता ।

यन्मेघोदरसंभवं तदवनीमप्राप्तमेवामरै-
र्व्योमस्थैरपनीयते विनिपतद्वर्षासु मुक्ताफलम् ।
तिग्मांशोरपि दुर्निरीक्ष्यमकृशं सौदामिनीसन्निभं
देवानामपि दुर्लभं न मनुजस्यैतस्य प्राप्तिः पुनः ॥ १६५ ॥

जो मोती मेघोंके उदरसे उत्पन्न होता है वह जब वर्षा ऋतुमें पृथिवीमें गिरने लगता है उस समय पृथिवीमें पहुँचनेसे पहले बीचमें ही आकाशस्थित देवता उसे हरलेते हैं । यह इतना तेजवाला है कि देखनेमें सूर्यसे भी आधिक दुर्निरीक्ष्य होता है, स्थूल है, बिजलीके तुल्य कान्तिसे युक्त है, देवताओंको भी दुर्लभ है और मनुष्योंको तो प्राप्त ही नहीं हो सकता ॥ १६५ ॥

अन्यच्च ।

धाराधरेषु जायेत मौक्तिकं जलबिन्दुभिः ।
दुर्लभं तन्मनुष्याणां देवैस्तद्ध्रियतेऽम्बरात् ॥ १६६ ॥
कुक्कुटाण्डसमं वृत्तं मौक्तिकं निबिडं गुरु ।
घनजं भानुसङ्काशं देवयोग्यममानुषम् १६७ ॥

जो मोती मेघोंमें जलके बिन्दुओंसे बनताहै वह जब गिरने लगताहै उस समय बीचमेंही देवतालोग हरलेते हैं इस कारण मनुष्योंके लिये यह दुर्लभ है । यह मेघोंसे उत्पन्न मोती मुर्गेके अण्डेके समान गोल, घन और भारी होताहै, सूर्यके समान तेजसे युक्त देवताओंके योग्य और मनुष्योंको अलभ्य होताहै१६६॥१६७॥

पारसीकादिदेशोद्भवमुक्तालक्षणम् ।

श्वेतं स्निग्धमतीव बन्धुरतरं स्यात्पारसीकोद्भवं
रूक्षं काञ्चनवर्णसङ्करयुतं स्याद्वार्बरं मौक्तिकम् ।
शोणं रूमजसम्भवं विदुरिति स्निग्ध तथा दोषजं
चातुवर्ण्ययुतं सुलक्षणमतिश्लक्ष्णं कविश्रीकरम् ॥ १६८ ॥

फारिस (ईरान) देशमें उत्पन्न हुआ मोती सफेद, चिकना और अत्यन्त रमणीय होताहै । अरव देशमें उत्पन्न हुआ मोती रूक्ष, और सुवर्ण प्रधान मिश्रित वर्णोंसे युक्त होताहै । रूमदेशमें उत्पन्न हुआ रक्त कमलके समान रंगसे युक्त, चिकना, दोष रहित, चार वर्णोंसे युक्त, श्रेष्ठ लक्षणोंवाला, छोटा, और विधिपूर्वक सेवन करनेसे शुक्रके समान कान्ति करनेवाला होताहै ॥ १६८ ॥

दोषदमौक्तिकलक्षणम् ।

यद्विच्छायं मौक्तिकं व्यङ्गकायं शुक्तिस्पर्शं रक्ततां चापि धत्ते
मत्स्याक्षङ्कं रूक्षमुत्ताननम्रं नैतद्धार्यं धीमता दोषदायि ॥ १६९ ॥

जो मोती कान्तिरहित, विकृत आकारसे युक्त, शुक्तिलग्न, लाल रंगवाला, मछलीके नेत्रके समान चमकदार, रूक्ष, और ऊँचा नीचा हो वह दोषोंका करनेवाला है इस कारण बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि उसका धारण न करे ॥ १६९ ॥

श्रेष्ठमुक्तालक्षणम् ।

नक्षत्राभं वृत्तमत्यन्तमुक्तं स्निग्धं स्थूलं निर्व्रणं निर्मलं च ।
न्यस्तं धत्ते गौरवं यत्तुलायां निर्मौल्यं तन्मौक्तिकं सिद्धिदायि ॥१७०॥

जिसकी कान्ति नक्षत्रोंके समान हो तथा गोल, अत्यन्त चिकना, स्थूल, व्रणरहित, निर्मल और तोलमें अधिक परिमाणवाला हो वह बहुमूल्य मोती कार्यकी सिद्धि करनेवाला होताहै ॥ १७० ॥

मुक्तापरीक्षा ।

लवणक्षारक्षोदिनि पात्रे गोमूत्रपूरिते क्षिप्तम् ।
मर्दितमपि शालितुषैर्यदविकृतं मौक्तिकं जात्यम् ॥ १७१ ॥

गौके मूत्रमें नमक या खार मिलाकर किसी मिट्टीके पात्रमें भरकर चूल्हेपर चढाय देवे और स्वेदनयन्त्रके द्वारा मोतीका स्वेदन करे और फिर उस पात्रसे मोतीको निकालकर धानकी तुषाओंके साथ दोनों हाथोंसे मर्दन करे यदि उस मोतीमें किसी प्रकारका विकार न उत्पन्न हो प्रत्युत और भी स्वच्छ होजावे तो समझना कि यह अच्छी जातिका मोती है ॥ १७१ ॥

कृत्रिमाकृत्रिममुक्तापरीक्षा ।

यत्र कृत्रिमसन्देहः क्वचिद्भवति मौक्तिके ।
उष्णे सलवणे स्नेहे निशान्तद्वासयेज्जले ॥ १७२ ॥
व्रीहिभिर्मर्दनीयं वा शुष्कवस्त्रोपवेष्टितम् ।
यत्तु नायाति वैवर्ण्यं विज्ञेयं तदकृत्रिमम् ॥ १७३ ॥

यदि किसी मोतीमें बनावटीपनका सन्देह हो तो परीक्षकको चाहिये कि, वह नमक और स्नेहयुक्त गरम जलमें रात्रिभर उस मोतीको डुबाय रक्खे और पश्चात् उस जलसे मोतीको निकाल हाथमे रख धानकी तुषाओंके साथ मर्दन करे अथवा सूखे कपडेमें लपेट मर्दन करे यदि इस प्रकार करनेसे वह मोती विरुद्ध वर्णवाला न हो वा अन्य किसी प्रकारका विकार न हो तो उसे (अकृत्रिम) सहज मुक्ता जानना चाहिये ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

मणिमुक्तप्रवालानां शोधनविधिः ।

स्वेदयेद्दोलिकायन्त्रे जयन्त्याः स्वरसेन च ।
मणिमुक्ताप्रवालानां यामैकं शोधनं भवेत् ॥ १७४ ॥

मणि, मोती, मूँगा इनमें जिसको शुद्ध करना हो उसको जयन्ती (जैत) के स्वरसमें दोलायंत्रके द्वारा एक प्रहर पर्यन्त स्वदेन करे तो शुद्ध होजाता है॥१७४॥

द्वितीयः प्रकारः ।

मौक्तिकं शोधयेदम्लैः काञ्जिकैर्निम्बुकद्रवैः ।
गोमूत्रे शोधयेत्पश्चाच्छोधयेत्पयसा तथा ॥ १७५ ॥

अम्लद्रव्य, काजी, नीम्बूका रस इनमें स्वेदनयन्त्रके द्वारा मोतीका स्वेदन करे और पीछे गौके मूत्रमें शोधन करके दूधमें भी शुद्ध करे तो वह मोती अच्छे प्रकार शुद्ध होजाता है ॥ १७५ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

कुमारीतण्डुलीयेन स्तन्येन च विपाचयेत् ।
प्रत्येकं सप्तवारं च तप्ततप्तानि कृत्स्नशः ॥ १७६ ॥

मोतीको अग्निमें तपा तपाकर घीकुवार और चौलाईके रस तथा स्त्रीके दूधमें पृथक् २ सात सात बार बुझावे तो शुद्ध होजाता है ॥ १७६ ॥

मुक्ताप्रवालमारणविधिः ।

उक्तमाक्षिकवन्मुक्ताप्रवालानि च मारयेत् ॥ १७७ ॥

पहले सोनामाखीके मारणकी जो विधि वर्णन की गई है उसी विधिसे मोती और मूँगोंकाभी मारण करे ॥ १७७ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

गन्धपारदयोरैक्यान्मौक्तिकानि विमर्दयेत् ।
भावयेद्दुग्धयोगेन शरावसंपुटे क्षिपेत् ॥ १७८ ॥
वस्त्रमृत्तिकयोर्लेपाज्ज्वालयेद्धस्तिजे पुटे ।
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य चूर्णं भाण्डे निधापयेत् ॥ १७९ ॥

गंधक और पारेकी कज्जली बनाकर शुद्ध मोतियोंको उसीमें डालकर घोटे तदनन्तर दूधकी भावना देकर शरावसंपुटमें रख कपरमिट्टी करके गजपुटमें पकावे जब स्वांगशीतल होजावे तब शरावसंपुटसे उस भस्मको अलग निकाल काचकी शीशीमें भरकर रखदेवे ॥ १७८ ॥ १७९ ॥

मुक्ताभस्मगुणाः ।

मौक्तिकं समधुरं सुशीतलं दृष्टिरोगशमनं विषापहम् ।
राजयक्ष्मपरिकोपनाशनं क्षीणवीर्यबलपुष्टिवर्द्धनम् ॥ १८० ॥

विधिपूर्वक बनाई हुई मोतीकी भस्म मधुर और शीतल है, नेत्रोंके सम्पूर्ण रोग, विषरोग और क्षयीरोगको नाश करती है, जिनका वीर्य और बल क्षीण होगया है उनको पुष्टि देनेवाली है ॥ १८० ॥

अन्यच्च ।

कफपित्तक्षयध्वंसि कासश्वासाग्निमान्द्यजित् ।
पुष्टिदं वृष्यमायुष्यं दाहघ्नं मौक्तिकं मतम् ॥ १८१ ॥

मोतीकी भस्म,--कफरोग, पित्तरोग, क्षयी, खाँसी, श्वास, अग्निमान्द्य इनको नाश करती है, पुष्टिदायक तथा वृष्य है, आयुको बढानेवाली और दाहको नाश करनेवाली है ॥ १८१ ॥

मुक्ताद्रावणविधिः ।

मुक्ताफलानि सप्ताहं वेतसाम्लेन भावयेत् ।
जम्बीरोदरमध्ये तु धान्यराशौ निधापयेत् ॥ १८२ ॥
पुटपाकेन तच्चूर्णं द्रवते सलिलं यथा ।
कुरुते योगराजोऽयं रत्नानां द्रावणं शुभम् ॥ १८३ ॥

मोतीको अम्लवेतके रसकी सात दिन तक भावना देवे और पश्चात् उसे जंबीरी नीम्बूके भीतर रखकर अन्नकी राशिमें गाडदेवे, कुछ दिनके पीछे उसे निकालकर पुटपाक विधिसे पकावे तो वह मुक्ताचूर्ण पानीके समान पतला हो जाता है । द्रावण कारक योगोंमें यह मुख्य योग रत्नोंकी उत्तम द्रुति करनेवाला है ॥ १८२ ॥ १८३ ॥

शुभमरकतलक्षणम् ।

स्वच्छञ्च गुरु सच्छायं स्निग्धं गात्रञ्च मार्दवसमेतम् ।
अव्यङ्गं बहुरङ्गं शृंगारी मरकतं शुभं बिभृयात् ॥ १८४ ॥

जो मरकत (पन्ना) स्वच्छ सुन्दर कान्तिसे युक्त, चिकना, कोमलगात्र, अविकृत आकार, अनेक रंगोंसे युक्त और शृङ्गारसहित हो वह श्रेष्ठ होता है अतः उसका धारण करे ॥ १८४ ॥

अशुभमरकतलक्षणम् ।

शर्करिलकलिलरूक्षं मलिनं लघुहीनकान्तिकल्माषम् ।
त्रासयुतं विकृताङ्गं मरकतममरोपि नोपभुञ्जीत ॥ १८५ ॥

जो पन्ना खरदरा, मलिन, हलका, कान्तिसे रहित, विचित्रवर्ण युक्त, त्रासयुक्त और विकृत अङ्गवाला हो उसका उपभोग देवताभी न करे ॥ १८५ ॥

अन्यच्च ।

कपिलं कर्कशं नीलं पाण्डु कृष्णं च लाघवम् ।
चिपिटं विकृतं कृष्णं रूक्षं तार्क्ष्यं न शस्यते ॥ १८६ ॥

जो पन्ना पिङ्गल वर्णयुक्त, कठोर, नीला, पीला, काला, हलका, चिपिटा, विकारसहित और रूक्ष हो वह श्रेष्ठ नहीं होता है ॥ १८६ ॥

कृत्रिमाकृत्रिमत्वपरीक्षा ।

कृत्रिमत्वं सहजत्वं दृश्यते सूरिभिः क्वचित् ।
घर्षयेत्प्रस्तरे वङ्गकाचस्तस्माद्विपद्यते ॥ १८७ ॥
लेखयेल्लौहभृङ्गेण चूर्णेनाथ विलेपयेत् ।
सहजः कान्तिमाप्नोति कृत्रिमो मलिनायते ॥ १८८ ॥

पन्नाके कृत्रिमत्व और सहजत्वकी परीक्षा भी परीक्षक लोग वक्ष्यमाण रीतिसे करते हैं पन्नाको पत्थर, राँग और काचमें घिसे, अथवा लोहभृङ्गसे उसमें रेखा करे वा लोहेके बारीक चूर्णका उसके ऊपर लेप करे, यदि ऐसा करनेसे उस पन्नामें किसी प्रकारका विकार न हो प्रत्युत स्वच्छ कान्तियुक्त होजावे तो उसे सहज अर्थात् अकृत्रिम जानना और यदि वह मलिन होजावे या अन्य किसी प्रकारके विकारसे युक्त होज़ावे तो उसे कृत्रिम समझना चाहिये ॥१८७॥१८८॥

शोधनविधिः ।

शोधनं मारणं रत्नप्रकरणे कथितं मया ॥ १८९ ॥

पन्नाके शोधन तथा मारणका विधान पूर्व रत्नप्रकरणमें "तार्क्ष्यं गोदुग्धतः शुचि" अर्थात् पन्ना गौके दूधसे शुद्ध होता है इत्यादि वर्णन करचुके हैं॥१८९॥

मरकतगुणाः ।

मरकतं हि विषघ्नं शीतलं मधुरं सरम् ।
अम्लपित्तहरं रुच्यं पुष्टिदं भूतनाशनम् ॥ १९० ॥

पन्ना विषनाशक, शीतल, मधुर, दस्तावर, अम्लपित्तको हरनेवाला, रुचिकारक, पुष्टि देनेवाला, और भूतनाशक है ॥ १९० ॥

अन्यच्च ।

ज्वरच्छर्दिविषश्वासं सन्तापाग्नेश्च मान्द्यनुत् ।
दुर्नामपाण्डुशोफघ्नं तार्क्ष्यमोजोविवर्द्धनम् ॥ १९१ ॥

तार्क्ष्य (पन्ना) ज्वर, वमन, विष, श्वास, सन्ताप, अग्निमान्द्य, बवासीर, पाण्डुरोग और शोफको नाश करता तथा धातुओंके तेजको बढाताहै ॥ १९१ ॥

घृष्टं यदात्मना स्वच्छं स्वच्छायां निकषाश्मनि ।
स्फुटं प्रदर्शयेदेतद्वैदूर्यं जात्यमुच्यते ॥ १९२ ॥

जो वैदूर्य मणि कसौटीपर घिसनेसे अपनी कान्तिका त्याग न करे प्रत्युत स्वच्छ कान्तिसे युक्त होकर अपने रूपको स्पष्ट दिखलावे उसे उत्तम जातिकी कहना चाहिये ॥ १९२ ॥

कान्तिभेदेन तत्त्रिविधत्ववर्णनम् ।

एकं वेणुपलाशपेशलरुचा मायूरकण्ठत्विषा
मार्जारेक्षणपिङ्गला च विदुषा ज्ञेयं त्रिधा छायया ॥ १९३ ॥

एकजातिका वैदूर्यमणि वंशपत्रके तुल्य उत्तम कान्तिसे युक्त होता है, दूसरी जातिका मयूर पक्षीके कण्ठके समान कान्तिवाला और तीसरी जातिके मार्जार (बिलाव) की आँखोंके समान पिङ्गल कान्तिसे युक्त होता है । इस प्रकार तीन प्रकारकी कान्तिसे युक्त यह वैदूर्यमणि जानना चाहिये ॥ १९३ ॥

शुभवैदूर्यलक्षणम् ।

यद्गात्रे गुरुतां दधाति नितरां स्निग्धं तु दोषोज्झितं
वैदूर्यं विमलं वदन्ति सुधियः स्वच्छं च तच्छोभनम् ॥ १९४ ॥

इनमेंसे जिसके धारण करनेसे अङ्गमें गुरुता जानपडे तथा अति चिकना दोषरहित निर्मल और स्वच्छ होवे उसे परीक्षा करनेमें चतुर मनुष्य उत्तम कहते हैं ॥ (इसका रंग कुछ काला और पीला होता है) ॥ १९४ ॥

त्याज्यवैदूर्यवर्णनम् ।

विच्छायं मृच्छिलागर्भं लघुरूक्षं च सक्षतम् ।
सत्रासं परुषं कृष्णं वैदूर्यं दूरतस्त्यजेत् ॥ १९५ ॥

जो वैदूर्य मणि कान्तिसे रहित और मिट्टी तथा पत्थरोंसे युक्त हो, हलका हो, रूक्ष हो, व्रणयुक्त हो, भिन्न होनेपर भ्रान्तिकारक हो, खर्दरा और काले रंगसे युक्त हो तो उसे दूरसेही त्याग करे ॥ १९५ ॥

वैदूर्यगुणाः ।

वैदूर्यमुष्णमम्लं च कफमारुतनाशनम् ।
गुल्मादिदोषशमनं भूषितं च शुभावहम् ॥ १९६ ॥

वैदूर्य मणि गरम और खट्टा है, कफ और वायुका नाशक है, गुल्मादि दोषोंको शान्त करता है, धारण करनेसे शुभ फल करनेवाला है ॥ (इसके वैदूर्यके शोधनकी विधि " वैदूर्यं त्रिफलाजलैः " अर्थात् वैदूर्यको त्रिफलाके काढेसे शुद्ध करे, इत्यादि कहचुके हैं और वहीं पर मारणकीभी विधि वर्णन की गई है) ॥ १९६ ॥

अशुभगोमेदलक्षणम् ।

कुरङ्गश्वेतकृष्णाङ्गं रेखात्रासान्वितं लघु ।
विच्छायं शर्कराङ्गं गोमेदं विबुधस्त्यजेत् ॥ १९७ ॥

जो गोमेदमणि हरिणके रंगके समान सफेद, काली हो, रेखासहित, त्रासयुक्त, हलकी, कान्तिहीन और शर्करायुक्त हो उसे त्याग करे (गोमेदमणिका रंग पीला होता है) ॥ १९७ ॥

शुभगोमेदलक्षणम् ।

पीतच्छागसमच्छायं स्निग्धं स्वच्छसमं गुरु ।
निर्दलं मसृणं दीप्तं गोमेदं शुभमष्टधा ॥ १९८ ॥

जो गोमेद मणि पीले रंगवाली बकरीकी कान्तिके समान कान्तिसे युक्त हो, चिकनी, स्वच्छ, सम, भारी, दलरहित, मसीन और उज्ज्वल इन आठ लक्षणोंसे युक्त हो वह शुभ होती है ॥ १९८ ॥

अन्यच्च ।

गोमूत्राभं यद्गुरुस्निग्धशुक्लं शुद्धच्छायं गौरवं यच्च धत्ते ।
हेम्ना रक्तं श्रीमतां योग्यमेतद्गोमेदाख्यं रत्नमाख्यान्ति सन्तः ॥ १९९ ॥

जो गौके मूत्रके समान कान्तिसे युक्त, भारी चिकनी कुछ सफेद, शुद्ध कान्ति सहित गौरवता युक्त, और सोनेके तुल्य रक्त हो उस गोमेदमाणिको सज्जन मनुष्य श्रीमानोंके योग्य कहते हैं ॥ १९९ ॥

गोमेदगुणाः ।

गोमेदकोम्लश्चोष्णश्च वातकोपविकारनुत् ।
दीपनः पाचनश्चैव धृतोयं पापनाशनः ॥ २०० ॥

गोमेदमणि खट्टी और गरम होती है, वातके कोपसे उत्पन्न विकारोंको नाश करती है, दीपन है, पाचन है, धारण करनेसे पापोंको दूर करती है (गोमेदके शुद्ध करनेके लिये भी पूर्व ही लिखचुके हैं कि " गोमेदं रोचनाद्भिश्च " अर्थात् गोमेदको गोरोचनके जलसे शुद्ध करना चाहिये । इत्यादि मारणविधिभी वहींपर वर्णन करचुके है) ॥ २०० ॥

माणिक्यस्य चतुर्विधजातिवर्णनम् ।

तद्रक्तं यदि पद्मरागमथतत्पीतातिरक्तं द्विधा
जानीयात्कुरुविन्दकं यदरुणं स्यादेष सौगान्धिकम् ।

तन्नीलं यदि नीलगन्धकमिति ज्ञेयं चतुर्धा बुधै-
र्माणिक्यं कर्षघर्षणेऽप्यविकृतं रागेण जात्यं जगुः ॥ २०१ ॥

माणिक्यका रंग लाल हो तो उसे पद्मराग नामक एक भेद कहना चाहिये। और यदि पीलापन लिये बहुत लाल हो तो उसे कुरुबिन्द नामक दूसरा भेद जानना चाहिये। जो अरुण अर्थात् कुछ कालापन लिये लाल हो उसे सौगान्धिक नामक तीसरा भेद जाने। और जो नीले रंगका माणिक्य हो उसे नीलगन्ध नामक चौथा भेद जाने। पूर्वोक्त चारोंमेंसे जो कसौटीपर घिसनेसे भी किसी प्रकारके विकारसे युक्त न हो किन्तु निज उज्ज्वलकान्तिसे युक्त बना रहे उसे उत्तम जातिका माणिक्य जानना चाहिये ॥ २०१ ॥

शुभमाणिक्यलक्षणम्।

स्निग्धं गुरुगात्रयुतं दीप्तं स्वच्छं सुरञ्जकं रक्तम्।
इति जात्यं माणिक्यं कल्याणं धारणात्कुरुते ॥ २०२ ॥

जो माणिक्य चिकना, भारी, दीप्त, स्वच्छ और सुन्दर रंगसे युक्त लाल होवे उसे उत्तम जातिका माणिक्य जानना यह धारण करनेसे कल्याण करताहै॥२०२॥

अशुभमाणिक्यलक्षणम्।

विच्छायमभ्रपिहितमतिकर्कशशर्करं विधूमं च।
विरूपं रागविमलं लघुमाणिक्यं न धारयेद्धीमान् ॥ २०३ ॥

जो माणिक्य कान्तिरहित मेघके समान दोषयुक्त, अतिकर्कश, शर्करायुक्त, विधूम, विरूप, रंगका मलिन और हलका हो उसे बुद्धिमान् मनुष्य न धारण करे ॥ २०३ ॥

माणिक्यगुणाः।

माणिक्यं मधुरं स्निग्धं वातपित्तविनाशनम्।
रत्नप्रयोगे प्रज्ञातं रसायनकरं परम् ॥ २०४ ॥

जो माणिक्य मधुर, चिकना तथा वात और पित्तका नाश करनेवाला हो वह रत्नप्रयोगमें श्रेष्ठ और रसायन कारक है ॥ २०४॥

शुभनीललक्षणम्।

न निम्नो निर्मलो गात्रे मसृणो गुरुदीप्तकः।
तृणग्राही मृदुर्नीलो दुर्लभो लक्षणान्वितः ॥ २०५ ॥

जो नीलम मध्यमें नीचा न हो और निर्मल अङ्गवाला चिकना भारी तेजस्वी तिनकाको ग्रहण करनेवाला कोमलता युक्त तथा शुभलक्षणोंसे युक्त हो वह शुभ होता है परन्तु इसका मिलना कठिन है ॥ २०५॥

अशुभनीललक्षणम् ।

मृच्छर्कराश्मकालिलो विच्छायो मलिनो लघुः ।
रूक्षः स्फुटितगर्तश्च वर्ज्यो नीलः सदोषकः ॥ २०६ ॥

जो नीलम मणि मिट्टी, कंकर और पत्थरोंसे दुर्ज्ञेय, कान्तिरहित, मलिन-हलकी, रूक्ष, फूटी तथा गड्ढेसे युक्त हो वह दोषयुक्त होनेके कारण त्याग करनेके योग्य है ॥ २०६ ॥

नीलस्य चतुर्विधत्वादिवर्णनम् ।

सितशोणपीतकृष्णच्छाया नीलाः क्रमादिमे कथिताः ।
विप्रादिवर्णसिद्ध्यै धारणमस्यापि वज्रवत्फलदम् ॥ २०७ ॥

सफेद, लाल, पीली और काली इन चार प्रकारके रंगोंसे युक्त नीलम मणि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र संज्ञक जानना चाहिये, जो फल हीराके धारण करनेका है वही इसके धारणका भी समझना चाहिये ॥ २०७ ॥

नीलमाणिपरीक्षा ।

आनन्दचन्द्रिकाकारः सुन्दरः क्षीरतप्तकः ।
यः पात्रं रञ्जयत्याशु स जात्यो नील उच्यते ॥ २०८ ॥

जो नीलममणि दखनेमें आनन्द करनेवाली चचकाहटयुक्त, सुन्दर हो और अग्निमें तपाकर गरम दूध युक्त पात्रमें डालनेसे पात्रको रागयुक्त करदेवे वह उत्तम जातिका नीलम जानना ॥ २०८ ॥

जलनीलेन्द्रनीलं च शक्रनीलं तयोर्वरम् ।
श्वेतगर्भितनीलाभं लघु तज्जलनीलकम् ॥
कार्ष्ण्यगर्भितनीलाभं सभारं शक्रनीलकम् ॥ २०९ ॥

नीलम माणिके दो भेद हैं पहला जलनील और दूसरा इन्द्रनील, इन दोनोंमेंसे इन्द्रनील श्रेष्ठ है। जो श्वेतवर्णगर्भित नील कान्तिसे युक्त और हलकी हो वह जलनील संज्ञक नीलमणि कहाती है । जो कृष्णवर्णगर्भित नील कान्तिवाली और गुरु हो उसे इन्द्रनील नामक नीलमणि जानना चाहिये ॥ २०९ ॥

उत्तमनीललक्षणम् ।

एकच्छायं गुरु स्निग्धं स्वच्छं पिण्डितविग्रहम् ।
मृदुमध्ये लसज्ज्योतिः सप्तधा नीलमुत्तमम् ॥ २१० ॥

एक कान्तियुक्त, भारी, चिकनी, स्वच्छ, गोल बीचमें कुछ नम्र और सुन्दर ज्योतिसे युक्त सात लक्षणोंवाली नीलमणि श्रेष्ठ होती है ॥ २१० ॥

अशुभजलनीललक्षणम् ।

कोमलं विहितं रूक्षं निर्भारं रक्तगन्धि च ।
चिपिटाभं सरूक्षं च जलनीलं च सप्तधा ॥ २११ ॥

कोमल, विहित, रूखी, हलकी, रक्तके समान गन्धवाली, चिपटी और रूक्षता युक्त सात लक्षणोंवाली जलनील नामक मणि अशुभ होती है ॥ २११ ॥

नीलमणिगुणाः ।

श्वासकासहरं वृष्य त्रिदोषघ्नं सुदीपनम् ।
विषमज्वरदुर्नामपापघ्नं नीलमीरितम् ॥ २१२ ॥

नीलमणि,--श्वासरोग, कासरोग, त्रिदोष, विषमज्वर, बवासीर और पापोंको नाश करती है । वृष्य और दीपन है ॥ २१२ ॥

पुष्परागगुणाः ।

पुष्परागं विषच्छर्दिकफवाताग्निमान्द्यजित् ।
दाहकुष्ठार्शशमनं दीपनं पाचनं लघु ॥ २१३ ॥

पुखराज मणि,--विषबाधा, वमन, कफरोग, वातरोग, मन्दाग्नि, दाह, कुष्ठ और बवासीरको नाश करती है, दीपन और पाचन है ॥ २१३ ॥

शुभपुष्परागलक्षणम् ।

पुष्परागं गुरु स्वच्छं स्थूलं स्निग्धं समं मृदु ।
कर्णिकारप्रसूनाभं मसृणं शुभमष्टधा ॥ २१४ ॥

भारी, स्वच्छ, स्थूल, चिकना, समान, कोमल, कनेरके पुष्पकीसी कान्तिसे युक्त, मसीन इन आठ प्रकारके लक्षणोंसे युक्त पुखराज उत्तम होता है ॥२१४॥

अशुभपुष्परागलक्षणम् ।

निष्प्रभं कर्कशं रूक्षं पीतं श्यामं नतोन्नतम् ।
कपिलं कलिलं पाण्डुं पुष्परागं परित्यजेत् ॥ २१५ ॥

जो पुखराज निजकान्तिहीन, कठोर, रूक्ष, पीला, काला, ऊँचा नीचा, नीला, पीला मिश्रित, कालिल और पाण्डु रंगसे युक्त हो उसका त्याग करे ॥ २१५ ॥

अन्यच्च ।

कृष्णं बिन्द्वाङ्कितं रूक्षं धवलं मलिनं लघु ।
विच्छायं शर्कराभासं पुष्परागं सदोषलम् ॥ २१६ ॥

जो पुखराज-,काला बिन्दुओंसे अङ्कित, रूक्ष, सफेद, मलिन, हलका, कान्तिरहित और कंकरके समान प्रभायुक्त हो वह दोषयुक्त होता है ॥ २१६ ॥

शुभपुष्परागफलवर्णनम् ।

सुच्छायपीतगुरुगात्रसुरङ्गशुद्धं स्निग्धं च निर्मलमतीव सुवृत्तशीलम् ।
तत्पुष्परागममलं कलयेदमुष्य पुष्णाति कीर्तिमतिशौर्यसुखायुरर्थान् २१७

जो पुखराज सुन्दर कान्तिसे युक्त, पीला, भारी, उत्तम रंगवाला, शुद्ध चिकना, अत्यन्त निर्मल गोल और तेजस्वी हो वह श्रेष्ठ होता है, यह मणि,-धारण वा सेवन करनेवाले मनुष्यकी कीर्ति, बुद्धि, शूरता, सुख, आयु और धनको बढाती है ॥ २१७ ॥

रत्नयोगक्रमः ।

प्राची दिक्कुलिशस्य मौक्तिकमणेराग्नेयको दक्षिणा-
दिग्वाल्लिप्रभवस्य नैर्ऋतककुब् गोमेदसो वारुणी ।
नीलस्याथ दिशा विदूरजमणेर्वायोः कुबेरस्य दिक्-
पुष्पस्याथ हरिन्मणेर्हरहारिच्छेषस्य शेषा हरित् ॥ २१८ ॥

(आभूषणोंमें रत्नोंके जडनेका क्रम) आभूषणके पूर्वभागमें हीरा, आग्नेयमें मोती, दक्षिणमें मूँगा, नैर्ऋत्यमें गोमेद, पश्चिममें नीलम, वायव्यमें वैदूर्य, उत्तरमें पुखराज, ईशानमें पन्ना और शेष रत्नोंको आभूषणके मध्यभागमें जडवावे॥२१८॥

नवग्रहरत्नदाननिर्णयः ।

माणिक्यं तु रवेर्बुधस्य गरुडोद्गारो गुरोः पुष्पकं
गोमेदस्तमसः प्रवालमवनीसूनोर्विधोर्मौक्तिकम् ।
नीलो मन्दगतेः कवेस्तु कुलिशं केतोर्विडालाक्षकं
रत्नं रत्नविदो वदन्ति विहितं दानेऽथवा धारणे ॥ २१९ ॥

सूर्यका माणिक्य, बुधका पन्ना, बृहस्पतिका पुखराज, राहुका गोमेद, मङ्गलका मूँगा, चन्द्रमाका मोती, शनिका नीलम, शुक्रका हीरा, केतुका वैदूर्य इस प्रकार रत्नोंका दान वा धारण करना चाहिये यह रत्नके जाननेवाले कहते हैं॥ २१९॥

पञ्चरत्नवर्णनम् ।

पुष्परागं महानीलं पद्मरागं च वज्रकम् ।
प्रोक्तं मरकतं शुभ्रं पञ्चरत्नवराः शुभाः ॥ २२० ॥

पुखराज[1], नीलम, माणिक्य, हीरा और पन्ना ये पाँच रत्न सब रत्नोंमें श्रेष्ठ हैं ॥ २२० ॥

सर्वरत्नशोधननिर्णयः ।

वज्रवत्सर्वरत्नानि शोधयेन्मारयेत्तथा ।
प्रोक्तं न मारणं तेषां रत्नज्ञैः पृथगेव हि ॥ २२१ ॥

पुखराज, माणिक्य और पन्ना आदि रत्नोंका शोधन और मारण हीराके समान करे । रत्नोंके शोधनादिकी विधि जाननेवालोंने इन रत्नोंके शोधनादिका विधान पृथक् नहीं वर्णन किया ॥ २२१ ॥

वर्णनं तात रत्नानामष्टाविंशे कृतं मया ॥ २२२ ॥

हे तात ! इस अट्ठाईसवें अध्यायमें मैंने रत्नोंका वर्णन करदिया है ॥ २२२॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे
रत्नवर्णनं नामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

ऊनत्रिंशोऽध्यायः ।

अथातोपरत्नवर्णनं नामोनत्रिंशाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब हम उपरत्नवर्णन नामक उनतीसवें अध्यायका वर्णन करते हैं ।

गुरुरुवाच ।

अधुना चोपरत्नानां वर्णनं ह्यपि श्रूयताम् ॥ १ ॥

गुरु कहने लगे कि हे तात ! अब उपरत्नोंका वर्णन भी सुनो ॥ १ ॥

---

१ हिन्दीभाषामें खोटे पुखराजको करकत, खोटे माणिक्यको तामडा, खोटे हीराको काँसुला और खोटे नीलमणिको नीली कहते हैं ॥

उपरत्नवर्णनम् ।

वैक्रान्तः सूर्यकान्तश्च चन्द्रकान्तस्तथैव च ।
राजावर्तो लालसंज्ञः पेरोजाख्यस्तथापरे ॥ २ ॥
नीलपीतादिमणयोऽप्यन्ये विषहरा हि ये ।
वह्न्यादिस्तम्भका ये च ते सर्वे हि परीक्षकैः ॥ ३ ॥
उपरत्नेषु गणिता मणयो लोकविश्रुताः ।
रत्नादीनामलाभे तु ग्राह्यं तस्योपरत्नकम् ॥
मौक्तिकस्याप्यभावे तु मुक्ताशुक्तिं प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥

वैक्रान्त, सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त, राजावर्त, लाल, फिरोजा, नीली तथा पीली मणि और विषनाशक एवं अग्निस्तम्भक आदि सब लोक प्रसिद्ध रत्नोंको रत्नपरीक्षकोंने उपरत्नोंमें गणना की है यदि हीरा आदि रत्न न मिलें तो उनके स्थानमें उनके उपरत्न लेना चाहिये मोतीके अभावमें मोतीकी सीपको कार्यमें प्रयुक्त करे ॥ २-४ ॥

उपरत्नगुणाः ।

गुणा यथैव रत्नानामुपरत्नेषु ते तथा ।
तेषु किञ्चित्ततो हीना विशेषोऽयमुदाहृतः ॥ ५ ॥

यद्यपि वज्रादि रत्नोंमें जो उत्तम गुण हैं वही उन प्रत्येकके उपरत्नोंमें भी विद्यमान हैं परन्तु तो भी उनकी अपेक्षा इनमें कुछ न्यून गुण अवश्य है येही इन दोनोंमें विशेषता है ॥ ५ ॥

दैत्येन्द्रो माहिषः सिद्धः सह देवैः समुद्यतः ।
दुर्गा भगवती देवी तं शूलेन व्यमर्दयत् ॥ ६ ॥
तस्य रक्तं तु पतितं यत्र यत्र स्थितं भुवि ।
तत्र तत्र तु वैक्रान्तं वज्राकारं महारसम् ॥ ७ ॥
विन्ध्यस्य दक्षिणे चास्ति उत्तरे चास्ति सर्वतः ।
विकृतयाति लोहानि तेन वैक्रान्तिकः स्मृतः ॥ ८ ॥

जिस समय दैत्योंके पति महिषासुरका देवताओंके साथ भयंकर युद्ध होनेलगा उस समय भगवती दुर्गा देवीने अपने शूलसे जब उस असुरको मारा तब

उसके शरीरसे रुधिर बहने लगा वह रुधिर पृथिवीके जिस जिस प्रदेशमें गिरा उस २ प्रदेशमें हीराके समान महारस वैक्रान्त संज्ञाको प्राप्त हुआ । वैक्रान्तमणि विन्ध्याचलके दक्षिण एवं उत्तरभागमें सर्वत्र उपलब्ध होती है । यह लोहोंको विकारयुक्त करती है इस कारण इसका नाम वैक्रान्तिक रक्खा गया है ॥६-८॥

शुभवैक्रान्तलक्षणम् ।

अष्टास्रश्चाष्टफलकः षट्कोणो मसृणो गुरुः।
शुद्धमिश्रितवर्णैश्च युक्तो वैक्रान्त उच्यते ॥ ९ ॥

जो वैक्रान्त,--आठ नोकें और आठही फलकोंसे युक्त, छः कोणवाला, चिकना भारी और शुद्ध मिश्रित वर्णोंसे युक्त हो वह श्रेष्ठ होता है ॥ ९. ॥

अष्टविधवैक्रान्तवर्णनम् ।

श्वेतो रक्तश्च पीतश्च नीलः पारावतच्छविः ।
श्यामलः कृष्णवर्णश्च कर्बुरश्चाष्टधा हि सः ॥ १० ॥

सफेद, लाल, पीला, नीला, कबूतरके समान कान्तिवाला, श्याम, काला और कबरा इन आठ प्रकारके रंगोंसे युक्त आठ प्रकारकी वैक्रान्तमणि होती है ॥ १० ॥

अन्यच्च ।

वैक्रान्तः श्वेतपीतादिभेदेनाष्टप्रकारकम् ।
स्वर्णरूप्यादिके वर्णे स्वस्ववर्णः शुभो मतः ॥ ११ ॥
वैक्रान्तः कृष्णवर्णो यः षट्कोणो वसुकोणकः ।
मसृणो गुरुतायुक्तो निर्मलः सर्वसिद्धिदः ॥ १२ ॥

सफेद, पीत, लाल और नील आदि रंगोंके भेदसे वैक्रान्त आठ प्रकारका होता है । सोना और चाँदी आदिके वर्णमें अपने २ रंगका श्रेष्ठ होता है । जिसका रंग काला हो, छः वा आठ कोनोंसे युक्त चिकना, भारी और निर्मल हो वह सम्पूर्ण सिद्धियोंका देनेवाला है ॥ ११ ॥ १२ ॥

मतान्तरम् ।

श्वेतः पीतस्तथा रक्तो नीलः पारावतप्रभः ।
मयूरकण्ठसदृशश्चान्यो मरकतप्रभः ॥ १३ ॥
देहसिद्धिकरं कृष्णं पीते पीतं सिते सितम् ।

सर्वार्थसिद्धिदं रक्तं तथा मरकतप्रभम् ॥
शेषे द्वे निष्फले वर्ज्ये वैक्रान्तमिति सप्तधा ॥ १४ ॥

सफेद, पीला, लाल, नील, कबूतरके समान रंगसे युक्त, मयूरकंठके तुल्य कान्तिवाला और पन्नाके सदृश हरा इन भेदोंसे वैक्रान्त सात प्रकारका होता है, इनमेंसे जो कृष्ण रंगका वैक्रान्त है वह देहकी शुद्धि करता है । सोना बनानेमें पीला और चांदी बनानेमें सफेद रंगका वैक्रान्त ग्रहण करना चाहिये । लाल रंगसे युक्त तथा पन्नाके समान दीप्तिवाला वैक्रान्त सब प्रकारकी अर्थसिद्धियोंका देनेवाला है । शेष रहा नीला और कबूतरके समान रंगका वैक्रान्त सो वे दोनों निष्फल होनेके कारण ग्रहण करनेके योग्य नहीं है ॥ १३ ॥ १४ ॥

वैक्रान्तग्रहणविधिः ।

यत्र क्षेत्रे स्थितं चैकं वैक्रान्तं तत्र भैरवम् ।
विनायकं च संपूज्य गृह्णीयाच्छुद्धमानसः ॥ १५ ॥

जिस मनुष्यको वैक्रान्तमणिकी आवश्यकता हो उसको चाहिये कि जिस स्थानमें वैक्रान्तमणि स्थित हो वहाँ जाकर शुद्ध चित्त हो भैरव और गणेशका पूजन करके उस मणिको ग्रहण करे ॥ १५ ॥

वैक्रान्तशोधनमारणविधिः ।

वैक्रान्तं वज्रवच्छोध्यं नीलं वा लोहितं तथा ।
हयमूत्रे तु तत्सेच्यं तप्तं तप्तं द्विसप्तधा ॥ १६ ॥
ततस्तु मेषशृङ्ग्युत्थपञ्चाङ्गे गोलके क्षिपेत् ।
पुटेन्मूषापुटे रुद्धा कुर्यादेवं च सप्तधा ॥
वैक्रान्तं भस्मतां याति वज्रस्थाने नियोजयेत् ॥ १७ ॥

नील वा लाल रंगवाले वैक्रान्तको हीराके समान शुद्ध करे और पीछे अग्निमें तपा तपाकर चौदह बार घोडेके मूत्रमें बुझावे तत्पश्चात् मेढाशिंगीका पञ्चांग लाकर कूट पीस गोला बनालेवे और उस गोलेके भीतर मणिको रख मूषामें रक्खे और सरवेसे बंदकर कपरमिट्टी करके आरने उपलोंकी अग्नि देकर गजपुटमें फूँकदेवे । इसी रीतिसे सात बार सब क्रिया करे तो वैक्रान्त मणिकी भस्म सिद्ध होजाती है । यदि हीराकी भस्म न मिलसके तो इस वैक्रान्त भस्मका कार्यमें योग करे ॥ १६ ॥ १७ ॥

द्वितीयः प्रकारः।

वैक्रान्तं वज्रवच्छोध्यं ध्मातं सिक्तं नृमूत्रके।
वज्रवन्मृतिमायाति वज्रस्थाने प्रयोजयेत् ॥ १८ ॥

जिस प्रकार हीराका शोधन किया जाता है उसी प्रकार वैक्रान्तमणिका भी शोधन करे, परन्तु इसको अग्निमें तपाकर मनुष्यके मूत्रमें बुझावे। इसका मारण भी हीराकी समान ही करे और वज्रभस्मके अभावमें इस भस्मको कार्यमें लगावे १८

तृतीयः प्रकारः।

कुलित्थक्काथसंस्विन्नो वैक्रान्तः परिशुद्ध्यति।
म्रियतेऽष्टपुटैर्गन्धनिम्बुकद्रवसंयुतम् ॥ १९ ॥

वैक्रान्तको कुलथीके काढेमें औटाकर शुद्ध करे और पश्चात् नीम्बूके रसमें गंधक पीस उसमें लपेटकर फूँकदेवे, इसी प्रकार आठ पुट देनेसे वैक्रान्तकी भस्म सिद्ध होजाती है ॥ १९ ॥

चतुर्थः प्रकारः।

वैक्रान्तरत्नं त्रिदिनं विशुद्धं संस्वेदितं क्षारपटूनि दत्त्वा।
अम्लेषु मूत्रेषु कुलत्थरम्भानीरेऽथवा कोद्रववारिपक्वम् ॥ २० ॥

वैक्रान्त मणिको क्षारवर्ग, लवणवर्ग, अम्लवर्ग, मूत्रवर्ग, कुलथीका काढा केलेका रस अथवा कोदोंके काढेमें स्वेदन करे तो शुद्ध होजाताहै ॥ २० ॥

पञ्चमः प्रकारः।

वैक्रान्तेषु च तप्तेषु हयमूत्रे विनिःक्षिपेत्।
पौनःपुन्येन वा कुर्याद्द्रवं दत्त्वा पुटं तनु ॥
भस्मीभूतं तु वैक्रान्तं वज्रस्थाने नियोजयेत् ॥ २१ ॥

वैक्रान्तको अग्निमें तपाकर घोडेके मूत्रमें बुझावे, इस प्रकार बार बार करे, और फिर द्रव देकर हलका पुट देवे तो वह भस्म होजाता है। इसको वज्रभस्मके अभावमें देवे ॥ २१ ॥

वैक्रान्तभस्मगुणाः।

वैक्रान्तो वज्रसदृशो देहलोहकरो मतः।
विषघ्नो रसराजस्य ज्वरकुष्ठक्षयप्रणुत् ॥ २२ ॥

वैक्रान्तभस्मके गुण हीराकी भस्मके समान ही जानना चाहिये । यह भस्म शरीरको लोहेके सदृश दृढ करती है, पारेका विष नष्ट करती है, ज्वर, कुष्ठरोग और क्षयीको दूर करती है ॥ २२ ॥

अन्यच्च ।

वैक्रान्तस्तु त्रिदोषघ्नः षड्रसो देहदार्ढ्यकृत् ।
पाण्डूदरज्वरश्वासकासयक्ष्मप्रमेहनुत् ॥ २३ ॥

वैक्रान्तभस्म,–त्रिदोष, पाण्डुरोग, उदररोग, ज्वर, श्वास, खाँसी, क्षयी और प्रमेहको दूर करती है, देहमें दृढता करती है, छः रसोंसे युक्त है ॥ २३ ॥

भस्मसेवनविधिस्तत्फलञ्च ।

भस्मत्वं समुपागतो विकृतको हेम्नाऽमृतेनाञ्चितो
पादांशेन कणाज्यवल्लसहितो गुञ्जोन्मितः सेवितः ।
यक्ष्माणं ज्वरजञ्च पाण्डुगुदजं श्वासं च कासामयं
दुष्टं संग्रहणीमुरःक्षतमुखान्रोगाञ्जयेद्देहकृत् ॥ २४ ॥

वैक्रान्तमणिकी भस्म एक रत्ती, सोनेकी भस्म रत्तीका चौथाई भाग, पीपल, मिरच और मक्खन इन सबको मिलाकर सेवन करे तो क्षयी, ज्वर, पाण्डुरोग, गुदरोग (बवासीर आदि), श्वास, खाँसी, असाध्यसंग्रहणी और उरःक्षतादि रोगोंको दूर करे ॥ २४ ॥

अन्यच्च ।

सूतभस्मार्द्धसंयुक्तं नीलवैक्रान्तभस्मकम् ।
मृताभ्रसत्वमुभयोस्तुलितं परिमर्दितम् ॥ २५ ॥
क्षौद्राज्यसंयुतं प्रातर्गुञ्जामात्रं निषेवितम् ।
निहन्ति सकलान्रोगान्दुर्जयानन्यभेषजैः ॥
त्रिसप्तदिवसैर्नृणां गङ्गाम्भ इव पातकम् ॥ २६ ॥

दो भाग नीलवैक्रान्तकी भस्म, एक भाग पारेकी भस्म और इन दोनोंके बराबर मृत अभ्रकका सत्त्व लेकर शहद और घृतके साथ मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल एक रत्ती प्रमाण इकीस दिन तक सेवन करे तो अन्य औषधोंसे भी दुर्जय असाध्य रोगोंको उस प्रकार नाश करे जैसे गङ्गाजल पातकोंको नाश करती है ॥ २५ ॥ २६ ॥

वैक्रान्तसत्त्वपातनविधिः ।

सत्त्वपातनयोगेन मर्दितश्च वटीकृतः ।
मूषास्थो घटिकाध्मातो वैक्रान्तः सत्त्वमुत्सृजेत् ॥ २७ ॥

पहले सत्त्वपातनके लिये जो योग वर्णन करचुके हैं उनमेंसे किसी एक योगके साथ वैक्रान्त मणिको मर्दन करके गोला बनालेवे और उस गोलेको मूषामें रखकर एक घडी तक तीव्र अग्निमें धमावे तो वह सत्त्वको छोडे ॥ २७ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

मोक्षमोरटपालाशक्षारगोमूत्रभावितम् ।
वज्रकन्दानिशाकल्कं फलचूर्णसमन्वितम् ॥ २८
तत्कल्कं टङ्कणं लाक्षाचर्णं वैक्रान्तसम्भवम् ।
शरावेण समायुक्तं मेषशृङ्गीद्रवान्वितम् ॥ २९ ॥
पिण्डितं मूकमूषास्थं धमापितं च दृढाग्निना ।
तत्रैव पतते सत्त्वं वैक्रान्तस्य न संशयः ॥ ३० ॥

मोक्षवृक्ष (मोखावृक्ष) मोरट (लताविशेष) पलाश (ढाक) इन तीनोंके खारको गौके मूत्रकी भावना देवे तत्पश्चात् वज्रकन्द अर्थात् थूहरकी जड और हल्दीका कल्क, कक्कोलका चूर्ण, सुहागा, लाखका चूर्ण, वैक्रान्तमणिका चूर्ण इन सबको एकमें मिलाकर मेढासिंगीके रसमें गोला बनालेवे और उस गोलेको वज्रमूषामें रख तीव्र अग्निसे धमावे तो निस्सन्देह वैक्रान्तका सत्त्व निकलताहै॥२८--३०॥

तृतीयः प्रकारः ।

वैक्रान्तस्य पलं चैकं कर्षैकं टङ्कणस्य च ।
रविक्षीरैर्दिनैर्भाव्यं मर्द्यं शिग्रुदिनैर्द्रवम् ॥ ३१ ॥
गुञ्जापिण्याकवह्नीनां प्रतिकर्षाणि योजयेत् ।
एतेन गुटिकां कृत्वा कोष्ठयन्त्रे धमेद्दृढम् ॥
शंखकुन्देन्दुसंकाशं सत्त्वं वैक्रान्तजं भवेत् ॥ ३२ ॥

वैक्रान्त चार तोले, सुहागा एक कर्ष (अस्सी रत्ती) एक दिन आकके दूधमें घोटकर सहिंजनेके रसमें एकदिन घोटे तदनन्तर घूँघची, तिलोंका कल्क और चित्रक इन प्रत्येकको एक २ कर्ष लेवे और इसमें वैक्रान्तचूर्णको मिलाकर

गोला बनालेवे और उस गोलेको कोष्ठयन्त्रमें रख धोंकनीसे धोंके तो शंख कुन्द-पुष्प और चन्द्रमाके समान सत्त्व निकले ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

सर्वरत्नशोधनमारणविधिः ।

स्वेदयेद्दोलिकायंत्रे जयन्त्याः स्वरसेन च ॥ ३३ ॥
मणिमुक्ताप्रवालानां यामैकं शोधनं भवेत् ।
कुमार्यास्तन्दुलीयेन स्तन्येन च निषेचयेत् ॥ ३४ ॥
प्रत्येकं सप्तवेलं च तप्ततप्तानि कृत्स्नशः ।
मौक्तिकानि प्रवालानि तथा रत्नान्यशेषतः ॥ ३५ ॥
क्षणाद्विविधवर्णानि म्रियन्ते नात्र संशयः ।
उक्तमाक्षिवन्मुक्ताप्रवालानि च मारयेत् ॥
वज्रवत्सर्वरत्नानि शोधयेन्मारयेत्तथा ॥ ३६ ॥

सूर्यमणि, मोती और मूँगाको जयन्ती अर्थात् अरनीके रसमें एक प्रहर पर्यन्त स्वेदन करे तो शुद्ध होते हैं। इसी प्रकार हीरा, पन्ना, पुखराज, माणिक्य, इन्द्रनील, गोमेद, वैदूर्य, नीलम, मोती, मूँगा आदि समस्त रत्नोंको अग्निमें तपा २ कर घीकुवारिके रस, चौलाईके रस, और स्त्रीके दूधमें सात २ बार बुझावे तो थोडे समयमेंही अनेक प्रकारके रंगवाले रत्न भस्म होते हैं, इसमें सन्देह नहीं। अथवा सोनामक्खीके समान मोती, मूँगा, आदिका मारण करे अथवा हीराके सदृश सम्पूर्ण रत्नोंका शोधन और मारण करे ॥ ३३--३६ ॥

असंस्कृतान्यथासंस्कृतारत्नानामनिष्टकरत्ववर्णनम् ।

सिद्धं पारदमभ्रकं च विविधान्धातूंश्च लोहानि च
प्राहुः किञ्च मणीनथो च सकलान्संस्कारतः सिद्धिदान् ।
यत्संस्कारविहीनमेषु हि भवेद्यच्चान्यथा संस्कृतं
तन्मर्त्यं विषवद्विहन्ति तदिह ज्ञेया बुधैः संस्क्रिया ॥ ३७ ॥

पारद, अभ्रक, अष्टधातु, सात उपधातु, रत्न, और उपरत्न यह सब संस्कार करनेसे गुणकारी कहे गये हैं और विना संस्कारके वा अन्यथा संस्कार करनेसे यही रत्न मनुष्यके प्राणोंको विषके समान हर लेते हैं इस कारण बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि इन रत्नोंके शोधन तथा मारण आदिकी सम्पूर्ण क्रियाको अच्छे प्रकार जान लेवे ॥ ३७ ॥

सूर्यकान्तलक्षणम् ।

शुद्धस्निग्धो निर्व्रणो निस्तुषस्तु यो निर्घृष्टो व्योमनैर्मल्यमेति ।
यः सूर्यांशुस्पर्शनिष्ठ्यूतवह्निर्जात्यः सोयं कथ्यते सूर्यकान्तः ॥ ३८ ॥

जो सूर्यकान्त माणि शुद्ध, चिकनी, व्रणरहित, निस्तुष हो और कसौटीपर घिसनेसे आकाशके समान निर्मल होजावे सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे जिसमें अग्नि उत्पन्न हो वह उत्तम जातिका सूर्यकान्त माणि कहा जाता है ॥ ३८ ॥

सूर्यकान्तगुणाः ।

रविकान्तो भवेदुष्णो निर्मलश्च रसायनः ।
वातश्लेष्महरो मेध्यः पूजनाद्रवितोषकृत् ॥ ३९ ॥

सूर्यकान्त गरम, निर्मल, वातकफनाशक, बुद्धिवर्द्धक, और रसायन है इसके पूजनसे सूर्य प्रसन्न होता है ॥ ३९ ॥

चन्द्रकान्तलक्षणम् ।

स्निग्धं श्वेतं पीतमात्राच्छमं तद्धत्ते चित्ते स्वेच्छया यन्मुनीनाम् ।
यच्च स्रावं याति चन्द्रांशुसंगाज्जात्या रत्नं चन्द्रकान्ताख्यमेतत् ॥ ४० ॥

जो चिकनी और सफेद निज इच्छासे पान करने मात्रसे मुनियोंके चित्तमें शान्ति दे और चन्द्रकिरणोंके सम्बन्धसे जल छोडे उसे उत्तम जातिका चन्द्रकान्त जानना चाहिये ॥ ४० ॥

चन्द्रकान्तगुणाः ।

चन्द्रकान्तस्तु शिशिरः स्निग्धः पित्तास्रतापनुत् ।
शिवप्रीतिकरः स्वच्छो ग्रहालक्ष्मीविनाशनः ॥ ४१ ॥

चन्द्रकान्त माणि, शीतल और चिकनी है पित्तरक्त, दाह ग्रहबाधा अलक्ष्मी इनको नाश करती है, स्वच्छ है, महादेवजीकी प्रीतिको उत्पन्न करती है ॥ ४१॥

राजावर्तलक्षणम् ।

राजावर्तोऽल्परक्तोरुनीलिमामिश्रितप्रभः ।
गुरुत्वमसृणः श्रेष्ठस्तदन्यो मध्यमः स्मृतः ॥ ४२ ॥

राजावर्त[1] (रेवटी) माणि कुछ लाल और अधिक नीलता मिश्रित कान्तिसे युक्त, भारी और चिकनी होती है । इन उक्त लक्षणोंसे रहित राजावर्त मध्यम जानना ॥ ४२ ॥

---

१ दाक्षिणात्य भाषामें इस राजावर्तको गोविन्दमणि कहते हैं ।

अन्यच्च ।

निर्गारमसितमसृणं नीलं गुरु निर्मलं बहुच्छायम् ।
शिखिकण्ठसमं सौम्यं राजावर्तं वदन्ति जात्यमणिम् ॥ ४३ ॥

जो राजावर्त,--गढेलारहित, काला, चिकना, नीलवर्ण, भारी, निर्मल, बहुत कान्तिसे युक्त और मयूरकण्ठके समान सुन्दर हो उसे उत्तम जातिका कहते हैं ॥ ४३ ॥

राजावर्तभेदौ ।

राजावर्तो द्विधा प्रोक्तो गुटिकाचूर्णभेदतः ॥ ४४ ॥

गुटिका और चूर्णके भेदसे राजावर्त दो प्रकारका होता है ॥ ४४ ॥

राजावर्तशोधनविधिः ।

शिरीषपुष्पार्द्ररसैः संतप्तश्च निमज्जितः ।
सप्तवारं भवेच्छुद्धो राजावर्तो न संशयः ॥ ४५ ॥

राजावर्तमणिको अग्निमें तपा २ कर सिरसके फूलोंके रस और अदरकके रसमें सात बार बुझावे तो शुद्ध होवे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४५ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

निम्बुद्रवैः सगोमूत्रैः सक्षारैः स्वेदिताः खलु ।
द्वित्रिवारेण शुद्ध्यन्ति राजावर्तादि धातवः ॥ ४६ ॥

नींबूके रस और क्षारयुक्त गोमूत्रमें दो या तीन बार राजावर्त आदि धातुओंको स्वेदन करे तो शुद्ध होजाते हैं ॥ ४६ ॥

राजावर्तमारणविधिः ।

लुङ्गाम्बुगन्धकोपेतो राजावर्तो विचूर्णितः ।
पुटनात्सप्तवारेण राजावर्तो मृतो भवेत् ॥ ४७ ॥

बिजौरा नींबूके रसमें गन्धक मिलाकर राजावर्तके चूर्णको घोटे और शरावमें रख गजपुटमें पकावे, इसी प्रकार सात बार पुट देवे तो राजावर्तकी भस्म सिद्ध होवे ॥ ४७ ॥

राजावर्तगुणाः ।

प्रमेहक्षयदुर्नामपाण्डुश्लेष्मानिलापहः ।
दीपनः पाचनो वृष्यो राजावर्तो रसायनः ॥ ४८ ॥

राजावर्तो गुरुः स्निग्धो शिशिरः पित्तनाशनः ।
सौभाग्यं कुरुते नृणां भूषणेषु प्रयोजितः ॥ ४९ ॥

राजावर्त मणि,-प्रमेह, क्षयी, बवासीर, पाण्डुरोग, कफरोग और वातरोगको नाश करती है, दीपन, पाचन, वृष्य, भारी, चिकनी, शीतल और रसायन है, पित्तको हरती है। आभूषणोंमें धारण करनेसे मनुष्योंके सौभाग्यको बढाती है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

सत्त्वपातनविधिः ।

राजावर्तस्य चूर्णं तु कुनटीघृतमिश्रितम् ।
विपचेदायसे पात्रे महिषीक्षीरसंयुतम् ॥ ५० ॥
सौभाग्यपञ्चगव्येन पिण्डीबद्धं तु कारयेत् ।
ध्मापितं खदिराङ्गारैः सत्त्वं मुञ्चति शोभनम् ॥ ५१ ॥

किसी लोहेके पात्रमें भैंसका दूध डालकर उसमें मनसिल और घी मिले हुए राजावर्तके चूर्णको पकावे तत्पश्चात् सुहागा, पञ्चगव्य (गौके दूध, दही, घृत, मूत्र)के सहित राजावर्त चूर्णका गोला बनाकर वज्रमूषामें रख खैरके कोयलोंकी आँचमें धोंकनीसे धमन करे तो वह राजावर्त उत्तम सत्त्वको छोडताहै ॥५०॥५१॥

पिरोजभेदौ तद्गुणाश्च ।

पिरोजं हरितं श्यामं भस्माङ्गं हरितं द्विधा ।
पिराजं सुकषायं स्यान्मधुरं दीपनं परम् ॥ ५२ ॥
स्थावरं जङ्गमं चैव संयोगाच्च यथाविषम् ।
तत्सर्वं नाशयेच्छीघ्रं शूलभूतादिदोषजम् ॥ ५३ ॥

फीरोजा पत्थर हरितश्याम होताहै और उसके भस्माङ्ग तथा हरित यह दो भेद होते हैं। स्वादमें कसैला और मधुर है, दीपन है। संयोगसे स्थावर जङ्गम विष और शूल तथा भूतादिकोंकी जो बाधा है उस सबको शीघ्र ही नाश करता है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

स्फटिकोत्पत्तिपरीक्षे ।

कावेरविन्ध्ययवनचीननेपालभूमिषु ।
लाङ्गली व्यकिरन्मेदो दानवस्य प्रयत्नतः ॥ ५४ ॥

आकाशशुद्धं तैलाख्यमुत्पन्नं स्फटिकं ततः ।
मृणालशंखधवलं किञ्चिद्वर्णान्तरान्वितम् ॥ ५५ ॥
न तत्तुल्यं हि रत्नानामथवा पापनाशनम् ।
संस्कृतं शिल्पिनां सद्यो मूल्यं किञ्चिल्लभेत्ततः ॥ ५६ ॥

जिस समय बलभद्रजीने प्रयत्नसे दैत्यको मारा उस समय उसके मरजानेसे कावेरी नदी और विन्ध्यपर्वतके समीपकी भूमि तथा यवन, चीन, और नेपाल देशकी भूमियोंमें जो उसकी मेदा गिरी वह आकाशके समान निर्मल, कमल और शङ्खके समान सफेद तथा कुछ दूसरे रंगसे युक्त तैलसंज्ञक स्फटिक मणि होगई इस स्फटिकमणिके समान श्रेष्ठ अन्य कोई रत्न नहीं है, यह सम्पूर्ण पापोंको नाश करती है । रत्नोंमें संस्कार करनेवाले शिल्पियोंसे इस स्फटिक-मणिमें संस्कार करालेवे और उस शिल्पीके लिये उसके परिश्रमका उचित मूल्य दे देवे ॥ ५४-५६ ॥

स्फटिकपरीक्षा ।

यद्गङ्गातोयबिन्दुच्छविविमलतमं निस्तुषं नेत्रहृद्यं
स्निग्धं शुद्धान्तरालं मधुरमतिहिमं पित्तदाहास्रहन्तृ ।
पाषाणे यन्निघृष्टं स्फुटितमपि निजां स्वच्छतां नैव जह्या-
त्तज्जात्यं जात्वलभ्यं शुचिमपि चिनुते शैवरत्नं च रत्नम् ॥ ५७ ॥

जो स्फटिकमणि गङ्गाजीके जलबिन्दुओंके समान स्वच्छ, बिन्दुरहित, नेत्र और हृदयको हितकारी, चिकनी, भीतरके भागमें शुद्ध, मधुर, अतिशीतल, पित्त, दाह और रक्तके विकारोंको नाश करनेवाली, तथा कसौटी पत्थरपर घिसनेसे जो अपनी उत्तम स्वच्छताको न छोडे उस जातिवंत, अलभ्य, पवित्र और रुद्रप्रिय स्फटिकमणि मनुष्य कदाचित् ही प्राप्त करता है ॥ ५७ ॥

स्फटिकगुणाः ।

स्फटिकः समवीर्यः स्यात्पित्तदाहार्तिशोषनुत् ।
तस्याक्षमालाजपतो धत्ते कोटिगुणं फलम् ॥ ५८ ॥

स्फटिकमणि समवीर्य है, पित्त, दाह और शोषरोगको दूर करती है। यदि उसकी अक्षमालासे जप करे तो जप करनेवालेको वह अक्षमाला कोटिगुणा फल देती है ॥ ५८ ॥

रसानां शोधनसत्त्वपातनयोर्विधिः ।

महारसानां सर्वेषां रसानां शुद्धिरुच्यते ।
तथा चोपरसानां च शास्त्रदृष्टेन वर्त्मना ॥ ५९ ॥
वन्ध्याकन्दं पीतवेणी स्नुह्यर्कावर्तवायसी ।
वारिपिप्पलिका चैव कदली सपुनर्नवा ॥ ६० ॥
कोशातकी मेघनादो वज्रकन्दश्च लाङ्गली ।
एषां चैव रसैः सम्यक्पटुक्षीराम्लसंयुतैः ॥
भावितव्या रसाः सर्वे विषैश्चोपविषैः क्रमात् ॥ ६१ ॥
महारसाश्च सर्वेऽपि शुद्ध्यन्त्युपरसास्तथा ।
पश्चाद्ध्माता विमुञ्चन्ति सत्त्वं बहुलमुत्तमम् ॥ ६२ ॥

अब शास्त्रदृष्टमार्गसे सम्पूर्ण महारस, रस और उपरसोंके शोधन करनेकी सामान्य विधि कहते हैं । इन महारसादिकोंमेंसे जिस किसीको शुद्ध करना हो उसको वन्ध्या कर्कोटकी (बाँझखयखसा) कन्दके रस, स्वर्णक्षीरी, थोहर, आक, सोनामक्खी, कौवाठोडी, जलपिप्पली, केलाकन्द, पुनर्नवा, कडवी तोरई, चौलाई वज्रकन्द, लाङ्गलीकन्द इन सबोंके रस तथा दूधमें नमक, दूध और अम्लद्रव्य मिलाकर भावना देवे, इसी प्रकार विष और उपरसोंमें क्रमसे भावना देवे । इस पूर्वोक्त क्रियाके करनेसे महारस, उपरस आदि सत्त्वपातन योग्य शुद्ध होजाते हैं और शुद्ध होनेके अनन्तर विधिपूर्वक अग्निमें रखकर धमनेसे अति उत्तम सत्त्वको छोडते हैं ॥ ५९-६२ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

गुडगुग्गुलसौभाग्यं लाक्षासर्जरसः पटु ।
ऊर्णागुञ्जाक्षुद्रमीनमस्थीनि शशकस्य च ॥ ६३ ॥
तथा मध्वाज्यपिण्याकं तुल्यं पेष्यमजापयैः ।
सर्वतुल्यं च धान्याभ्रं भूनागामृत्तिकाथवा ॥ ६४ ॥
कान्तपाषाणचूर्णं वा कठिनोपरसाश्च ये ।
मेलयेन्माहिषैः पञ्च दृढं सर्वगुटीकृताः ॥ ६५ ॥
कर्षमात्रप्रमाणांश्च कोष्ठयन्त्रं दृढं धमेत् ।

अङ्गारैः खादिरोद्भूतैस्त्रिवारं धमनाद्ध्रुवम् ॥
निर्मलं पतते सत्त्वमसाध्यस्याप्यसंशयः ॥ ६६ ॥

गुड, गूगल, सुहागा, लाख, राल, लवण, ऊन, घूँघची, छोटी मछली, खर्गोशकी हड्डी, शहद, घृत और तिलकल्क इनको बराबर लेकर बकरीके दूधमें घोटलेवे और इन सबकी बराबर धान्याभ्र अथवा केंचुओंकी मिट्टी अथवा मण्डूरके चूर्ण मिलावे और महारसादिकोंमेंसे जिसका सत्त्व निकालना हो उसको भी इसीमें मिलादेवे तदनन्तर भैंसका गोबर, मूत्र, दूध, दही और घृत मिलाकर घोटे जब अच्छे प्रकार घुटजावे तब एक २ तोलेकी टिकिया बनाकर धूपमें सुखा लेवे और पीछे खरके कोयलोंकी अग्निमें रख कोठीयन्त्रमें बंकनाल द्वारा धमावे इसी प्रकार तीन वार करनेसे निर्मल सत्त्व निकल आताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६३--६६ ॥

सत्त्वपतनपरीक्षा ।

शुक्लदीप्तः सशब्दश्च यदा वैश्वानरो भवेत् ।
तदा सत्त्वं तु पतितं जानीयान्नान्यथा क्वचित् ॥
तथाग्नौ दक्षिणावर्ते सत्त्वं तु पतितं वदेत् ॥ ६७ ॥

जब अग्निमेंसे सफेद लाट निकले और पट २ शब्द होनेलगे तो समझे कि अब सत्त्वपतन होनेलगा और यदि उक्त लक्षण न हों तो जाने कि अभी सत्त्व निकलनेका प्रारम्भ नहीं हुआ । जिस ओर धोंकनीसे फूँक लगती है उस फूँकके दक्षिणावर्त ही प्रायः यह सत्त्व गिरा करताहै ॥ ६७ ॥

सत्त्वपातनकाले वह्निलक्षणम् ।

आवर्तमानं कनके पीता तारे सितप्रभा ।
शुल्बे नीलनिभा तीक्ष्णे कृष्णवर्मा विशारद ॥ ६८ ॥
वङ्गे ज्वाला कपोताभा नागे मलिनधूसरा ।
शैले तु धूसरा तात आयसे कपिलप्रभा ॥ ६९ ॥
अयस्कान्ते धूम्रवर्णा शस्ये च लोहिता भवेत् ।
वज्रे नानाविधा ज्वाला सत्त्वे वै पाण्डुरप्रभा ॥ ७० ॥

सुवर्णका सत्त्व निकालनेके समय अग्निकी लाट पीली होती है, चाँदीमें सफेद, ताँबेमें नील, फौलाद लोहमें काली, राँगेमें कबूतरके समान, सीसेमें मलिनधूसर, शिलाजीत और सुरमेंमेंभी धूसर, लोहमें कपिल कान्तलोहमें धूम्र, शस्यमें लाल,

हीरामें अनेक प्रकारकी प्रभासे युक्त और अधिकतर पाण्डुरवर्णकी अग्निज्वाला निकलती है ॥ ६८-७० ॥

शुद्धसत्त्वपरीक्षा।

न विस्फुलिंगा न च बुद्बुदा यदा यदा न चैषां पटलं न शब्दः ॥
मूषागतं रत्नसमास्थिरं च तदा विशुद्धं प्रवदन्ति सत्त्वम् ॥ ७१ ॥

सत्त्व निकालते समय जब अग्निमें चिनगारियें न उडें, बुद्बुदाकार न दिखाई देवे किन्तु रत्नसमान शुद्ध प्रतीत हो, पटल और चटपट शब्दसे रहित हो तो जानो कि अब सत्त्व शुद्ध है ॥ ७१ ॥

ताम्रायस्सत्त्वपरीक्षायां विशेषः।

शुल्बे दीप्तिः सशब्दश्च यदा वैश्वानरो भवेत्।
लोहावर्तसमं ज्ञेयं सत्त्वं पतति निर्मलम् ॥ ७२ ॥

ताम्रसत्त्व जब प्रकाशसे युक्त हो, अग्निमें पट २ शब्द होनेलगे तब जानो कि, उत्तम सत्त्व पतन होताहै। लोहेका सत्त्व जब मूषामें चक्कर खाने लग जाय तब समझना चाहिये कि, निर्मल शुद्ध सत्त्व गिरताहै ॥ ७२ ॥

कठिनसत्त्वमृदुक्रियाविधिः।

यदि सत्त्वं तु कठिनं भवेत्तत्र मृदुक्रिया।
सत्त्वं समस्तं संग्राह्यं काचकिट्टं विवर्जयेत् ॥ ७३ ॥
निक्षिप्य वज्रमूषायां बंकनालेन संधमेत्।
स्तोकं स्तोकं ददन्नागं समद्वित्रिचतुर्गुणम् ॥
यावत्सकोमलं तावत्सत्त्वं च योजयेद्रसे ॥ ७४ ॥

यदि सत्त्व कठिन हो तो उसको नम्र करनेकी यह क्रिया है कि, सम्पूर्ण सत्त्व लेकर उसका काचकिट्ट दूर करके वज्रमूषामें रख बंकनालसे धमे और उसमें थोडा २ सीसा डालता जाय इस पकार बराबर अथवा दो गुणा या तीन गुणा सीसा डालनेसे सत्त्व नम्र होजाता है इस प्रकार जितना सत्त्व नम्र होजावे उतना रसमें मिलावे (सीसा सत्त्वसे अलग रहता है) ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

द्वितीयः प्रकारः।

अथवा कठिनं सत्त्वं वज्रमूषान्तरे स्थितम्।
समटंकणसौवीरद्रोणपुष्पीरसेन वै ॥ ७५ ॥

खदिरांगारके ध्मातं ढालयेद्द्रोघृतेन वै ।
कोमलं जायते सत्त्वं नात्र कार्या विचारणा ॥ ७६ ॥

अथवा कठिन सत्त्वको वज्रमूषामें डालकर खैरके कोयलोंकी आंचमें रख धौंकनीसे धमन करे और सत्त्व बराबर सुहागा, सुरमा, द्रोणपुष्पीका रस और गौका घृत डाले तो सत्त्व अवश्य नम्र होजायगा ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

सत्त्वलोहयोर्मृदुकरणावश्यकता ।

न सत्त्वं कठिने सूते देहे वा क्रमते क्वचित् ।
तस्मात्सत्त्वं च लोहं च मृदुं कृत्वा प्रयोजयेत् ॥ ७७ ॥

सत्त्व और लोहेको नम्र करकेही योजना करनी चाहिये क्योंकि कठिन सत्त्व तथा लोहा न तो पारदमें मिलता और न शरीरमेंही प्रविष्ट होता है ॥ ७७ ॥

कोष्ठिकामितिः ।

षोडशाङ्गुलविस्तीर्णा हस्तमात्रायता शुभा ।
धातुसत्त्वनिपातार्थं कोष्ठिका तात कीर्तिता ॥ ७८ ॥

हे तात ! धातुओंके सत्त्व पातनके लिये जो कोष्ठिका (कठेली) होती है वह सोलह अङ्गुलकी चौडी और एक हाथकी लम्बी उत्तम होती है ॥ ७८ ॥

सत्त्वपातनयोग्यकाष्ठानि ।

वंशखादिरमाधूकबदरीदारुसम्भवैः ।
परिपूर्णा दृढाङ्गारैरथवा तेन कोष्ठकैः ॥
भस्त्रया ज्वालमार्गेण ज्वालयेच्च हुताशनम् ॥ ७९ ॥

सत्त्वपातनके लिये बाँस, खैर, महुवा, बेरी इनकी लकडियोंके पक्के कोयलोंकी आंचमें धौंकनी द्वारा जलानेके मार्गसे अग्निको प्रदीप्त करे ॥ ७९ ॥

द्रव्यादीनां पूर्वपूर्वादुत्तरोत्तरस्य श्रेष्ठत्वकथनम् ।

यस्य द्रव्यस्य यत्सत्त्वं तद्गुणस्तच्छताधिकम् ।
द्रुतिः शतगुणा तस्माद्रसयुक्ता ततोऽधिका ॥ ८० ॥

जिस द्रव्यमें जो गुण होते हैं उसके सत्त्वमें वे सौगुणा अधिक होते हैं, और उससेभी अधिक सौगुणा द्रुतिमें होते हैं, रसके साथ योग करनेसे उससेभी अधिक गुण होते हैं ॥ ८० ॥

ऊनत्रिंशत्तमेऽध्याये ह्युपरत्नानां च वर्णनम् ।
यथावच्च कृतं तात धारणीयं त्वया हृदि ॥ ८१ ॥

हे तात ! इस उनतीसवें अध्यायमें उपरत्नोंका यथावत् वर्णन करदिया है सो तुमको हृदयसे धारण करना चाहिये ॥ ८१ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे उपरत्नवर्णनं नाम ऊनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः ।

अथातो विषोपविषवर्णनं नाम त्रिंशाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब हम विष और उपविषोंके वर्णनका तीसवाँ अध्याय कथन करेंगे ॥

शृणु तात प्रवक्ष्यामि विषोपविषवर्णनम् ।
येषां विज्ञानमात्रेण सर्वरोगाञ्जयेद्बुधः ॥ १ ॥

गुरु कहने लगे कि, हे तात ! अब विष और उपविषोंका वर्णन श्रवण करो, जिनके विज्ञानमात्रसे बुद्धिमान् मनुष्य सब रोगोंको जीत लेता है ॥ १ ॥

विषोत्पत्तिं तथा स्थानं भेदमाकर्णयाधुना ।
पिशाचाः किन्नराश्चैव मिलित्वा मन्थनोत्सुकाः ॥ २ ॥
एकतो बलिराजश्च ब्रह्माद्याश्च तथैकतः ।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नागराजेन वेष्टितम् ॥ ३ ॥
क्षीराब्धिमन्थनं तत्र प्रारब्धं तु यदानघ ।
निर्गतास्तत्र रत्नानि कामधेन्वादयः प्रिया ॥ ४ ॥
अमलाकमलोत्पन्ना पश्चादुच्चैःश्रवास्ततः ।
ऐरावतो महाकायो निर्गतं वत्स चामृतम् ॥ ५ ॥
अतीव मथनाद्वत्स मन्दराघातवेगतः ।
अहिराजश्रमाद्वत्स विषज्वाला विनिर्गता ॥ ६ ॥
ततोतिघोरा सा ज्वाला निमग्ना क्षीरसागरे ।
प्रलयानलसंकाशः क्रुद्धः काल इवोत्कटः ॥ ७ ॥

तं दृष्ट्वा विबुधाः सर्वे दानवाश्च महाबलाः ।
विषण्णवदनाः सद्यः प्राप्ताश्चैव मदन्तिकम् ॥ ८ ॥
ततस्तैः प्रार्थ्यमानोहमपिवं विषमुत्तमम् ।
ततोवशिष्टमभवन्मूलरूपेण तद्विषम् ॥ ९ ॥
पत्ररूपेण कुत्रापि मृत्तिकारूपतः क्वचित् ।
कन्दरूपेण कुत्रापि ह्यष्टादशविधं विषम् ॥ १० ॥

हे वत्स ! अब मैं विषकी उत्पत्ति और उसके स्थान तथा भेदको कहताहूँ तुम सुनो जिस समय मथनोत्सुक दैत्य, सर्प, देवता, सिद्ध, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, पिशाच और किन्नरोंने मिलकर समुद्रको मथा उस समय राजा बलि सब दैत्य राक्षसोंको लेकर एक ओर उद्यत हुआ और दूसरी ओर ब्रह्मादि सब देवता उद्यत हुए हे अनघ वत्स ! उन देवता और दैत्योंने मन्दरपर्वतकी मथानी और वासुकिसर्पकी रस्सी बना उस मथानीमें लपेटकर समुद्र मथनेका प्रारंभ किया तब उससे कामधेनुआदि चौदह रत्न उत्पन्न हुए, लक्ष्मी उच्चैःश्रवा घोडा बडे शरीरवाला ऐरावत हाथी अमृत यह सब रत्न समुद्रके मथनसे निकले हे वत्स ! समुद्रके बहुत मथने और मन्दरपर्वतके आघातजनित वेगसे एवं अहिराज वासुकि सर्पको अधिक श्रम होनेके कारण मुखसे विषकी ज्वाला निकली, तत्पश्चात् वह घोरज्वाला क्षीरसमुद्रमें लीन होगई और फिर वही विषज्वाला प्रलयकालकी अग्निके समान तथा क्रोधयुक्त भयंकर कालके तुल्य हालाहल विष प्रगट हुआ उसको देखकर महाबली देवता और दैत्य उदासीनमुख होते हुए शीघ्रही मेरे निकट आकर स्तुति करनेलगे तदनन्तर स्तुतिको प्राप्त मैंने उस उत्तम विषको पीलिया । उस समय मेरे पीनेसे जो विष शेष रहगया वही किसी स्थानमें तो वृक्षोंके मूलरूप, किसी स्थानमें पत्ररूप, कहीं कन्दरूप और कहीं मृत्तिकारूपसे प्रगट हुआ । इनमेंसे कन्दविषके अठारह भेद हैं ॥ २--१० ॥

कन्दविषभेदाः ।

अष्टादशविधं तात कन्दजं परिकीर्तितम् ।
कालकूटं मयूराख्यं बिन्दुकं सक्तुकं तथा ॥ ११ ॥
वालुकं वत्सनाभं च शङ्खनाभं सुमङ्गलम् ।
शृङ्गी मर्कटकं मुस्तं कर्दमं पुष्करं शिखी ॥
हारिद्रं हरितं चक्रं विषं हालाहलाह्वयम् ॥ १२ ॥

हे तात! कन्दज विषके अठारह भेद हैं, जैसे कालकूट, मयूर, बिन्दुक, सक्तुक, वालुक, वत्सनाभ, शङ्खनाभ, सुमङ्गल, शृङ्गी, मर्कट, मुस्त, कर्दम, पुष्कर, शिखी, हारिद्र, हरित, चक्र और हालाहल ॥ ११ ॥ १२ ॥

कालकूटादिविषपरीक्षा।

घनं रूक्षं च कठिनं भिन्नाञ्जनसमप्रभम्।
कन्दाकारं समाख्यातं कालकूटं महाविषम् ॥ १३ ॥
मयूराभं मयूराख्यं बिन्दुवद्बिन्दुकः स्मृतः।
चित्रमुत्पलकन्दाभं सक्तुकं सक्तुवद्भवेत् ॥ १४ ॥
वालुकं वालुकाकारं वत्सनाभं तु पाण्डुरम्।
शंखनाभं शंखवर्णं शुभ्रवर्णं सुमङ्गलम् ॥ १५ ॥
घनं गुरु च निबिडं शृङ्गाकारं तु शृङ्गिकम्।
मर्कटं कपिवर्णाभं मुस्ताकारं तु मुस्तकम् ॥ १६ ॥
कर्दमं कर्दमाकारं सितपीतं च कर्दमम्।
पुष्करं पुष्कराकारं शिखी शिखिशिखाप्रभम् ॥ १७ ॥
हारिद्रकं हरिद्राभ हरितं हरितं स्मृतम्।
चक्राकारं भवेच्चक्रं नीलवर्णं हलाहलम् ॥ १८ ॥
ब्राह्मणः पाण्डुरस्तत्र क्षत्रियो रक्तवर्णकः।
वैश्यः पीतप्रभः शूद्रः कृष्णाभो निन्दितः स्मृतः ॥ १९ ॥
ब्राह्मणो दीयते रोगे क्षत्रियो विषभक्षणे।
वैश्यो व्याधिषु सर्वेषु सर्पदष्टाय शूद्रकम् ॥ २० ॥

जो बिष,--घन, रूक्ष, कठिन, भिन्न अञ्जनके समान नीला रंगसे युक्त और कन्दके आकारके समान हो उसे कालकूट महाविष कहते हैं, मोर पक्षीके रंगके समान जिसका रंग हो उसे मयूर विष कहते हैं, बिन्दुक विष बिन्दुके तुल्य होता है, जो चित्रवर्णसे युक्त कमलकन्दके सदृश हो वह और जो सत्तूके समान हो उसे सक्तुक कहते हैं, वालुक विष वालूके रंगका होता है, वत्सनाभ विष पीलापन लिये हुए सफेद रंगका होता है, शङ्खके रंगका, शङ्खनाभ सफेद रंगका सुमङ्गल, घन, भारी, कठिन और सींगके आकारवाला शृंगी बन्दरके

समान वर्णवाला मर्कट नागरमोथाके तुल्य मुस्तक, कीचके समान मैले तथा सफेद और पीले रंगका कर्दम, नीले कमलके रंगका पुष्कर, मुर्गेके रंगका शिखी, हरिद्राके रंगका हारिद्रक, हरे रंगका हरित, चक्रके आकारका चक्र और नीले रंगका हलाहल होता है । इनमेंसे जो विष पीलापन लिये हुए सफेद रंगका हो उसे ब्राह्मणवर्ण जानना । लाल रंगका क्षत्रियवर्ण, पीले रंगका वैश्यवर्ण और काले रंगका शूद्रवर्ण जानना चाहिये । ब्राह्मणवर्ण विषरोगमें, क्षत्रिय वर्ण विषभक्षणमें, वैश्यवर्ण सब व्याधियोंमें और सर्पके काटनेमें शूद्र-वर्णका विष दिया जाता है ॥ १३--२० ॥

मतान्तरम् ।

विषं च गरलं क्ष्वेडं कालकूटं च नामतः ।
अष्टादशविधं ज्ञेयं विषकन्दमिदं बुधैः ॥ २१ ॥
तेष्वष्टौ सौम्यभेदाः स्युर्भक्षणाद् घ्नन्ति मानवम् ।
दशोग्रभेदाः संस्पर्शादाघ्राणाद्वापि मारकः ॥ २२ ॥
सक्तुको मुस्तकश्चैव कौर्मोदारकसार्षपः ।
सैकतो वत्सनाभश्च श्वेतशृंगी तथैव च ॥ २३ ॥
एतानि भेषजकृते विषाण्यष्टौ समाहरेत् ।
जराव्याधिहराणि स्युर्विधिना शीलितानि हि ॥ २४ ॥

विष गरल, क्ष्वेड और कालकूट आदि नामोंसे प्रसिद्ध कन्द विषके बुद्धिमान् वैद्योंने अठारह भेद कहे हैं, उनमेंसे आठ भेद सौम्य हैं इनके भक्षण करनेसेही मनुष्यको मारते हैं (सूंघने और स्पर्श करनेसे नहीं) शेष रहे दश भेद सो उग्र हैं ये उग्र विष स्पर्श तथा सूँघने मात्रसेही मनुष्यको मारनेवाले हैं । सक्तुक, मुस्तक, कौर्म, दारक, सार्षप, सैकत, वत्सनाभ और श्वेतशृङ्गिक ये आठ विष सौम्य हैं औषधियोंमें ग्रहण करनेके योग्य है, विधिपूर्वक सेवन करनेसे बुढापा और व्याधियोंको नाश करते हैं ॥ २१--२४ ॥

चित्रमुत्पलकन्दाभं सुपेष्यं सक्तुवद्भवेत् ।
सक्तुकं तु विजानीयाद्दीर्घरोगं महोत्कटम् ॥ २५ ॥
ह्रस्ववेगं च रोगघ्नं मुस्तकं मुस्तकाकृति ।
कौर्मं तु कच्छपाकारं जानीयात्सुपरीक्षकः ॥ २६ ॥

ज्वरघ्नं दारकं चैव विद्यात्सर्पफणाकृति ।
सर्षपाख्यं सर्षपवद्विज्ञेयं सुविचक्षणैः ॥ २७ ॥
स्थूलसूक्ष्मकणैर्युक्तैः श्वेतपीतैर्विरोमकः ।
ज्वरादिसर्वरोगघ्नः कन्दः सैकत उच्यते ॥ २८ ॥
यः कन्दो गोस्तनाकारो दीर्घः पञ्चाङ्गुलो मतः ।
न स्थूलो गोस्तनादूर्ध्वं द्विविधो वत्सनाभकः ॥ २९ ॥
आशुकारी लघुस्त्यागी शुक्लः कृष्णोऽन्यथा भवेत् ।
प्रयोज्यो रोगहरणे जारणे च रसायने ॥ ३० ॥
गोशृंगो द्विविधः शृंगी श्वेतः स्याद्बहिरन्तरे ।
एतानि सक्तुकादीनि वातरक्ते त्रिदोषके ॥
मेहोन्मादापस्मृतिषु कुष्ठेष च नियोजयेत् ॥ ३१ ॥

जो चित्रवर्ण कमलकन्दके तुल्य और सहजमें ही पीसनेके योग्य हो, सत्तूके समान हो उसे साक्तुक विष जानना चाहिये। जिसका वेग हलका हो, रोगोंको नाश करनेवाला और नागरमोथाके समान आकारवाला हो उसे मुस्तक कहते हैं, कछुवेके समान आकृतिवाले विषको कच्छप जानना। जो सर्पफणके समान आकारवाला और ज्वरका नाशक हो उसे दारक जानना । जो पीले सरसोंके समान हो उसे सर्षप जानना चाहिये। स्थूल और सूक्ष्म कणोंसे युक्त सफेद और पीले रंगवाला हो उसे विरोमक जानना । ज्वर आदि सब प्रकारके रोगोंका नाशक और कन्दरूप हो उसे सैकत कहते हैं । जो कन्द आकृतिमें गौके स्तनके समान, लम्बाईमें पाँच अङ्गुल और मुटाईमें गौके स्तनके समान हो उसे वत्सनाभ कहते हैं, यह दो प्रकारका होता है, काला और सफेद. सफेद वत्सनाभ शीघ्र ही गुण करनेवाला, हलका और दस्तावर है, काले रंगका वत्सनाभ इससे विपरीत गुणोंको करनेवाला है, इसको रोगोंके दूर करने तथा जारण और रसायनमें देना । गोशृङ्ग नामक विषके दो भेद हैं, उनमेंसे एक तो बाहर भीतर सफेद होता है और दूसरा काला । ये पूर्वोक्त सक्तुकादि संज्ञक विष वातरक्त, त्रिदोष, प्रमेह, उन्माद, अपस्मृति (मृगी) और कुष्ठ रोगोंमें देना योग्य है ॥ २५-३१ ॥

विषभेदाः।

कर्कटं कालकूटं च वत्सनाभं हलाहलम् ।
वालुकं कर्दमं चैव सक्तकं मूलकं तथा ॥ ३२ ॥

सर्षपं शृंगकं वत्स मुस्तकं च महाविषम् ।
हरिद्रकमिति प्रोक्तं त्रयोदशविधं स्मृतम् ॥ ३३ ॥

हे वत्स ! विषके तेरह भेद कहेगए हैं जैसे कर्कट, कालकूट, वत्सनाभ, हलाहल, वालुक, कर्दम, सक्तुक, सर्षप, मूलक, शृङ्गक, मुस्तक, महाविष और हरिद्रक हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

कर्कटादिविषवर्णाः ।

कर्कटं कपिवर्णं स्यात्काकचंचुनिभं पुनः ।
कालकूटं ततो ज्ञेयं वत्सनाभं तु पाण्डुरम् ॥ ३४ ॥
भंगुराकन्दवद्वत्स नीलवर्णं हलाहलम् ।
वालुकं वालुकाभं च कर्दमं कर्दमोपमम् ॥ ३५ ॥
सक्तुकं श्वेतवर्णं स्याच्छुक्लकन्दं तु मूलकम् ।
सर्षपं पीतवर्णं स्याच्छृङ्गकं कृष्णपिंगलम् ॥ ३६ ॥
मुस्ताभं मुस्तकं प्रोक्तं रक्तवर्णं महाविषम् ।
हरिद्रकं पीतवर्णं विषभेदाः प्रकीर्तिताः ॥ ३७ ॥

कर्कट नामक विष बंदरके समान रंगका होता है, कालकूट कौएकी चोंचके तुल्य वर्णसे युक्त होता है, वत्सनाभ पीलापन लिये हुए सफेद रंगका होता है, हलाहल भङ्गुरकन्दके समान नील वर्ण होता है, वालुक वालूके रंगके समान, कर्दम नामक विष कीचके सदृश, सक्तुक सफेद, मूलक सफेद गाँठ, सर्षप पीले रंगका, सींगिया काला और पीला, मुस्तक नागरमोथाके तुल्य, महाविष लाल और हरिद्रक विष हरिद्राके समान पीले रंगका होता है। हे वत्स ! यह विषके भेद (और उनके रंग) कहे हैं ॥ ३४–३७ ॥

मतान्तरम् ।

कालकूटं वत्सनाभः शृङ्गकश्च प्रदीपनः ।
हालाहलो ब्रह्मपुत्रो हरिद्रः सक्तुकस्तथा ॥
सौराष्ट्रक इति प्रोक्ता विषभेदा अमी नव ॥ ३८ ॥

कालकूट, वत्सनाभ, शृङ्गक, प्रदीपन, हालाहल, ब्रह्मपुत्र, हरिद्रक, सक्तुक और सौराष्ट्रक ये विषके नव भेद कहे हैं ॥ ३८ ॥

त्याज्यविषाणि ।

कालकूटस्तथा मेषशृङ्गी दर्दुरकस्तथा ।
हालाहलश्च कर्कोटी ग्रन्थिर्हारिद्रकस्तथा ॥ ३९ ॥
रक्तशृङ्गी केशरश्च यमदंष्ट्रश्च पण्डितैः ।
त्याज्यानीमानि योगेषु विषाणि दश तत्त्वतः ॥ ४० ॥

कालकूट, मेषशृङ्गी, दर्दुरक, हालाहल, कर्कोटी, ग्रन्थि, हारिद्रक, रक्तशृङ्गी, केशर और यमदंष्ट्र इन दश प्रकारके विषोंको औषधयोगोंमें छोडनेके लिये विज्ञ वैद्योंने निषेध किया है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

लक्षणान्तरम् ।

वृत्तः कन्दो भवेत्कृष्णो जम्बीरफलवच्च यः ।
तत्कालकूटं जानीयाद्घ्राणमात्रान्मृतिप्रदम् ॥ ४१ ॥
मेषशृङ्गाकृतिः कन्दो मेषशृङ्गीति कथ्यते ।
दर्दुराकृतिकन्दश्च दर्दुरः कथितस्तु सः ॥ ४२ ॥
गोस्तनाभं फलं गुच्छं तालवृक्षच्छदस्तथा ।
तेजसा यस्य दह्यन्ते समीपस्था द्रुमादयः ॥ ४३ ॥
असौ हालाहलो ज्ञेयो किष्किंधायां हिमालये ।
दक्षिणाब्धितटे चास्ते कौंकणेऽपि च जायते ॥ ४४ ॥
अनलो बहिरन्तश्च हालाहलमुदाहृतम् ।
कर्कोटकाभं कर्कोटं रेखाभ्यन्तरतो मृदु ॥ ४५ ॥
हरिद्राभंगवद्ग्रन्थिः स स्यात्कृष्णोतिभीषणः ।
मूलाग्रे यस्तु वृत्तः स्यादापीतः पीतगर्भकः ॥ ४६ ॥
कञ्चुकाढ्यः स्निग्धपर्वो हारिद्रः सक्तुकन्दकः ।
गोशृङ्गघ्राणमात्रेण नासयासृक्प्रवर्तते ॥ ४७ ॥
कन्दो लघुश्चास्ति गलद्रक्तशृङ्गीति तद्विषम् ।
शुष्कार्द्रवस्तुकिंजल्कमध्ये तत्केशरं विदुः ॥ ४८ ॥
श्वदंष्ट्रारूपसंस्थानं यमदंष्ट्रेति चोच्यते ।

रसायने धातुवादे विषवादे क्वचित्क्वचित् ।
दशैतानि न प्रयुञ्जीत न भैषज्ये न रसायने ॥ ४९ ॥

जो कन्द जँबीरी नींबूके तुल्य गोल और काले रंगसे युक्त तथा सूँघनेमात्रसे ही मृत्यु करनेवाला हो उसे कालकूट विष जानना जो कन्द मेंढाके सींगोंके समान आकृतिवाला हो उसे मेषशृङ्गी विष कहते हैं। जो मेंडकके समान आकारसे युक्त हो उसे दर्दुर विष कहते हैं । जिसके फलोंके गुच्छे दाखके समान हों पत्ते ताडवृक्षके तुल्य हों और निकटमें स्थितवृक्ष जिसके तेजसे जले जाते हों उसे हालाहल विष कहते हैं। यह हालाहल विष किष्किंधा, हिमालय, दाक्षिणीय समुद्रके किनारे और कोंकणदेशमें उत्पन्न होता है, इसके बाहर और भीतर विषाग्नि व्याप्त रहती है जो कर्कोट सर्पके समान कान्तिसे युक्त और रेखाओंके सहित हो, भीतर कोमल हो उसे कर्कोटक विष कहते हैं, जो हरीद्राकी गाँठके समान हो और काले रंगसे युक्त हो उसे कृष्णक कहते हैं, यह भयङ्कर है । जो मूलके अग्रभागमें गोल, बाहर भीतर पीला, अधिक छालसे युक्त, और चिकने पत्रोंवाला हो उसे हारिद्र या सक्तुकन्द कहते हैं। जिसके सूँघने मात्रसे नासिकासे रक्त बहने लगे उसे रक्तशृङ्गी विष कहते हैं, यह हलका होता है जो कुछ गीला और कुछ सूखा हो, फूल जिसके केशरके समान हों उसे केशर विष जानना । जो कुत्तेकी डाढके समान आकारवाला हो उसे यमदंष्ट्र जानना इन पूर्वोक्त दश प्रकारके कालकूट इत्यादि विषोंका रसायनरूप धातुवाद और विषवादमें कहीं २ उपयोग करे परन्तु औषध और रसायनमें इनका योग कदापि न करना चाहिये ॥ ४१-४९ ॥

मतान्तरम् ।

वत्सनाभो हरिद्रश्च सक्तुकः सप्रदीपनः ।
सौराष्ट्रिकः शृङ्गिकश्च कालकूटस्तथैव च ॥
हालाहलो ब्रह्मपुत्रो विषभेदा अमी नव ॥ ५० ॥

वत्सनाभ, हरिद्र, सक्तुक, प्रदीपन, सौराष्ट्रिक, शृङ्गिक, कालकूट, हालाहल, और ब्रह्मपुत्र ये विषके नव भेद हैं ॥ ५० ॥

विषपरीक्षा ।

पलाशपत्रवत्पत्रं तद्बीजसदृशं फलम् ।
स्थूलकन्दो भवेत्तस्य प्रभावस्तु महान्स्मृतः ॥ ५१ ॥

सिन्दुवारसदृक्पत्रो वत्सनाभ्याकृतिस्तथा ।
तत्पार्श्वन तरोर्वृद्धिर्वत्सनाभः स भाषितः ॥ ५२ ॥
वर्णतो हारितो यः स्याद्दीप्तिमान्दहनप्रभः ।
महामारीकरो घ्राणात्कथितः स प्रदीपनः ॥ ५३ ॥
वर्णतः कपिलो यः स्यात्तथा भवति सारकः ।
ब्रह्मपुत्रः स विज्ञेयो जायते मलयाचले ॥ ५४ ॥

जिसके पत्ते और बीज पलाश (ढाक) के समान हों और कन्द स्थूल हो उसे कालकूट विष कहते हैं, इसका प्रभाव महान् है । जिसके पत्ते सम्हालूके सदृश हों, आकृति वत्सनाभिके तुल्य और निकटमें अन्य वृक्षकी वृद्धि न होवे उसे वत्सनाभ कहते हैं । जिसका रंग हरा हो, दीप्तिसे युक्त तथा अग्निके समान कान्तिवाला और सूँघनेसे महामारी रोगका उत्पन्न करनेवाला हो उसे प्रदीपन विष कहते हैं । जो रंगमें कपिल हो, और सारक अर्थात् दस्तावर हो उसे ब्रह्मपुत्र विष कहते हैं । यह मलयाचलमें उत्पन्न होताहै ॥ ५१-५४ ॥

वर्णभेदेन विषभेदाः ।

चतुर्धा वर्णभेदेन विषं ज्ञेयं मनीषिभिः ।
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्राः श्वेतरक्ताश्च पीतकाः ।
कृष्णवर्णः क्रमाज्ज्ञेयो वर्णानामानुपूर्वशः ॥ ५५ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंके भेदसे विष भी चार प्रकारका होताहै, इनमेंसे ब्राह्मण वर्णका विष सफेद, क्षत्रियवर्णका लाल, वैश्यवर्णका पीला और शूद्रवर्णका विष काले रंगका होताहै ॥ ५५ ॥

मारणादौ ग्राह्यविषाणि ।

मारणे कृष्णवर्णः स्याद्रक्तस्तु रसकर्मणि ।
पीतवर्णः क्षुद्रकार्ये श्वेतवर्णो रसायने ॥ ५६ ॥

मारणकर्ममें काले रंगका विष ग्रहण करना चाहिये । रसकर्ममें लाल रंगका, क्षुद्रकार्योंमें पीले रंगका और रसायनमें सफेद रंगका विष लेना चाहिये ॥ ५६ ॥

मतान्तरम् ।

ब्राह्मणः पाण्डुरस्तेषु क्षत्रियो रक्तवर्णकः ।
वैश्यः पीतप्रभः कृष्णवर्णश्च शूद्र उच्यते ॥ ५७ ॥

ब्राह्मणो दीयते रोगे क्षत्रियो विषभक्षणे ।
वैश्यो व्याधिषु सर्वेषु सर्पदष्टे च शूद्रकः ॥ ५८ ॥

ब्राह्मणवर्ण विष कुछ सफेदी लियेहुए पीले रंगका होताहै, क्षत्रियवर्ण लाल, वैश्यवर्ण पीला और शूद्र वर्ण विष काले रंगका होताहै । इनमेंसे ब्राह्मण विष रोगोंमें दिया जाताहै, क्षत्रियवर्ण विष विषभक्षणमें, वैश्यवर्ण समस्त व्याधियोंमें और शूद्रवर्ण विष सर्पके काटने पर दिया जाता है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

अन्यच्च ।

रसायने विषं विप्रो देहपुष्टौ तु बाहुजः ।
कुष्ठनाशे प्रयुञ्जीत वैश्यः शूद्रस्तु घातकः ॥ ५९ ॥

रसायनमें ब्राह्मण विष, शरीरपुष्टिमें क्षत्रियविष, कुष्ठरोगके नाशमें वैश्य विष और मारणकर्ममें शूद्र विष प्रयुक्त करे ॥ ५९ ॥

ग्राह्यविषम् ।

उद्धृतफलपाकेन नवं स्निग्धं घनं गुरु ।
अव्यापन्नं विषहैरवातातपशोषितम् ॥ ६० ॥

विषको फल पकनेके अनन्तर लेना चाहिये । जो विष नवीन, चिकना, घना, भारी, विष हरनेवाले पदार्थोंसे अदूषित और वायु तथा धूपसे शोषित न हो वह कार्यमें ग्रहण करनेके योग्य है ॥ ६० ॥

विषशोधनविधिः ।

विषभागांश्च कणवत्स्थूलान्कृत्वा तु भाजने ।
तत्र गोमूत्रकं क्षिप्त्वा प्रत्यहं नित्यनूतनम् ॥ ६१ ॥
शोषयेत्त्रिदिनादूर्ध्वं कृत्वा तीव्रातपे ततः ।
प्रयोगेषु प्रयुञ्जीत भागमानेन तद्विषम् ॥ ६२ ॥

विषके छोटे छोटे टुकडे करके मिट्टीके पात्रमें छोडकर गौका मूत्र भरदेवे । दूसरे दिन उस मूत्रको निकाल कर नवीन गोमूत्र भरे, तीसरे दिवस फिर भी पुराने मूत्रको निकाल नया गोमूत्र भरदेवे और फिर चौथे दिन उस विषको गोमूत्रसे अलग निकालकर तेज धूपमें सुखालेवे इस शुद्ध विषको प्रयोगोंमें भागके प्रमाणसे छोडे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

रक्तसर्षपतैलेन लिप्ते वाससि धारितम् ।
सक्तुकं मुस्तकं शृङ्गी वालुकासर्षपाह्वयम् ॥ ६३ ॥
वत्सनाभं कर्कटं च कालकूटादिकं ततः ।
न जात्वन्यत्प्रयोक्तव्यं विषे तीक्ष्णे च वारिते ॥ ६४ ॥

सक्तुक, मुस्तक, सिंगिया, वालुक, सर्षप, वत्सनाभ, कर्कट और कालकूट इन मेंसे जिसको शुद्ध करना हो उसे लाल सरसोंके तेलसे लेप कियेहुए कपडेमें रखकर सुखालेवे तो वह शुद्ध होजायगा। तीक्ष्ण विषका अन्यथा देना निषेध किया गया है इस कारण अन्य प्रकारसे न देना चाहिये ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

विषभागांश्च कणवत्स्थूलान्कृत्वा तु स्वेदयेत् ।
दुग्धे च घटिकाः पञ्च शुद्धिमायाति तद्विषम् ॥ ६५ ॥

कणोंके समान विषके मोटे २ टुकडे करके पाँच घटी पर्यन्त गौके दुग्धमें स्वेदन करे तो वे शुद्ध होजाते हैं ॥ ६५ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

खण्डीकृत्य विषं वस्त्रे परिबद्धं तु दोलया ।
अजापयसि संस्विन्नं यामतः शुद्धिमाप्नुयात् ॥ ६६ ॥
विषग्रन्थि मले न्यस्य माहिषे दृढमुद्रितम् ।
करीषाग्नौ पचेद्यामं वस्त्रपूतं विषं शुचि ॥ ६७ ॥

विषके छोटे छोटे टुकडे करके वस्त्रमें बाँधकर पोटली बनालेवे और उस पोटलीको बकरीके दूधमें दोलायन्त्रके द्वारा एक प्रहर तक स्वेदन करे तो वह विष शुद्ध होवे। अथवा बिषको भैंसके गोबरके भीतर रखकर जंगली कंडोंकी आँचमें एक प्रहर पर्यन्त पकावे और पीछे उसे कपडेसे पवित्र करे तो वह शुद्ध होजाता है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

पञ्चमः प्रकारः ।

कणशो वत्सनाभं च कृत्वा बद्धा च वाससि ।
दोलायन्त्रे जलक्षीरे प्रहराच्छुद्धिमृच्छति ॥
अजादुग्धे भावितस्तु गव्यक्षीरेण शोधयेत् ॥ ६८ ॥

वत्सनाभ (वच्छनाग) विषके छोटे २ टुकडे करके वस्त्रमें रखकर पोटली बनालेवे और उस पोटलीको जल मिले हुए दूधमें दोलायन्त्रके द्वारा एक प्रहर पर्यन्त पकावे तो शुद्ध होवे। अथवा बकरीके दूधमें भावना देकर गौके दुग्धमें शुद्ध करे ॥ ६८ ॥

विषमारणविधिः ।

समटङ्कणसंपिष्टं तद्विषं मृतमुच्यते ।
योजयेत्सर्वरोगेषु न विकारं करोति हि ॥ ६९ ॥

जितना विष हो उतना ही उसमें सुहागा मिलाकर घोटे तो वह मरणको प्राप्त होता है, इसे सब रोगोंमें देवे क्योंकि यह विकार नहीं करता ॥ ६९ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

तुल्येन टङ्कणेनैव द्विगुणेनोषणे च ।
विषं संयोजितं शुद्धं मृतं भवति सर्वथा ॥ ७० ॥

जितना विष हो उतना सुहागा और विषसे दुगनी काली मिर्च लेकर सबको मिलावे और घोटे तो वह शुद्ध विष मृत होता है ॥ ७० ॥

विषगुणाः ।

विषं रसायनं बल्यं वातश्लेष्मविकारनुत् ।
कटुतिक्तं कषायं च मदकारि सुखप्रदम् ॥ ७१ ॥
व्यवायि रुधिरोद्दाहि कुष्ठवातास्रनाशनम् ।
अग्निमान्द्यश्वासकासप्लीहोदरभगन्दरम् ॥
गुल्मपाण्डुव्रणार्शांसि नाशयेद्विधिसेवितम् ॥ ७२ ॥

विष रसायन बलकर्ता, वातकफविकारनाशक, कडुवा, तीखा, कसैला, मदकर्ता, सुखप्रद, व्यवायि (पहले सर्व शरीरमें व्याप्त होकर पीछे पचे)। रुधिरोद्दाहक कुष्ठ, वातरक्तनाशक, अग्निमान्द्य, श्वास, कास, प्लीहा, उदररोग, भगन्दर, गुल्म रोग, पाण्डुरोग, व्रण ये सब विधिपूर्वक विषके सेवन करनेसे नष्ट होते हैं॥७१-७२॥

गुणान्तराणि ।

विषं प्राणहरं प्रोक्तं व्यवायि च विकाशि च ।
आग्नेयं वातकफहृद्योगवाहि मदावहम् ॥ ७३ ॥

तदेव युक्तियुक्तं तु प्राणदायि रसायनम् ।
पथ्याशिनां त्रिदोषघ्नं बृंहणं वीर्यवर्द्धनम् ॥ ७४ ॥
ये दुर्गुणा विषेऽशुद्धे ते स्युर्हीनविशोधनात् ।
तस्माद्विषं प्रयोगेषु शोधयित्वा प्रयोजयेत् ॥ ७५ ॥

विष प्राणनाशक, व्यवायि, विकाशि अर्थात् ओजको सुखाकर सन्धिबन्धनोंको ढीला करनेवाला, आग्नेय, वातकफनाशक, योगवाही और मदकर्ता है । विधिपूर्वक सेवन करनेसे यह विष प्राणदाता और रसायन है, पथ्याशी मनुष्योंके त्रिदोषको नाश करता है, बृंहण और शुक्रवर्द्धक है । विना शोधे विषमें जो दुष्ट गुण है वही दुर्गुण हैं हीनशुद्ध विषमें भी जानना इसी कारण वैद्यको योग्य है कि, विषको अच्छे प्रकार शुद्ध करके औषधप्रयोगोंमें युक्त करे॥७३-७५॥

विषसेवनविधिः ।

नानारसौषधैर्ये तु दुष्टा यान्तीह नो गदाः ।
ते नश्यंति विषे दत्ते शीघ्रं वातकफोद्भवाः ॥ ७६ ॥
शरद्ग्रीष्मवसन्ते च वर्षासु च प्रदापयेत् ।
हेमन्ते शिशिरे चैव विधिना मात्रयार्पयेत् ॥ ७७ ॥
चतुर्मासैर्हरेद्रोगान्कुष्ठलूतादिकानपि ।
दातव्यं सर्वरोगेषु घृताशिनि हिताशिनि ॥ ७८ ॥
क्षीराशिनि प्रयोक्तव्यं रसायनरतो नरः ।
ब्रह्मचर्यविधानं हि विषकल्पे समाचरेत् ॥ ७९ ॥
पथ्ये स्वस्थमना भूत्वा तदा सिद्धिर्न संशयः ।
आचार्येण तु भोक्तव्यं शिष्यप्रत्ययकारकम् ॥ ८० ॥
विषे शुद्धिर्हि तदपि मात्रया नान्यथा भवेत् ।
सर्वरोगप्रशमनं हृष्टिपुष्टिकरं विषम् ॥ ८१ ॥

जो वात और कफके विकारसे उत्पन्न हुए दुष्ट रोग अनेक प्रकारके औषधोंके सेवनसे भी नहीं दूर होते वे विषके सेवन करनेसे शीघ्र ही नष्ट होजाते हैं। शरद्, ग्रीष्म, वसन्त, वर्षा, हेमन्त, शिशिर इन छहों ऋतुओंमें विधिपूर्वक मात्रासे रोगीके लिये विष देवे । चार मास पर्यन्त सेवन करनेसे कुष्ठ और

लूतादि रोगोंको भी नाश करता है । घी, दूध तथा अन्य भी जो हितकारी पदार्थ हैं उनका सेवन करनेवाले रोगीके लिये सब रोगोंमें यह विष देने योग्य है. इसका सेवन करनेवाला मनुष्य ब्रह्मचर्यके नियमका पालन करे और स्वस्थचित्त होकर पथ्यसेवनमें ही तत्पर रहे तो निस्सन्देह विषकल्पमें सिद्धि होवे, शिष्यकी शङ्का दूर करनेके लिये वह विष वैद्यसे स्वयं ही सेवन करने योग्य है, शुद्ध किये विषकी भी मात्रा अन्यथा न होना चाहिये यह विष समस्त रोगोंको शान्त करनेवाला और दृष्टिको पुष्ट करनेवाला है ॥ ७६-८१ ॥

विषमात्रामितिः ।

प्रथमे सार्षपी मात्रा द्वितीये सर्षपद्वयम् ।
तृतीये च चतुर्थे च पञ्चमे दिवसे तथा ॥ ८२ ॥
षष्ठे च सप्तमे चैव क्रमवृद्ध्या विवर्द्धयेत् ।
सप्तसर्षपमात्रेण प्रथमं सप्तकं नयेत् ॥ ८३ ॥
एवं मात्राविषं देयं तृतीये सप्तमे क्रमात् ।
वृद्ध्यायहनि प्रदातव्यं चतुर्थे सप्तके तथा ॥ ८४ ॥
एवं सप्त समायाते परां मात्रां भिषग्वरैः ।
स्थिरींकुर्याद्यथेच्छं तु ततस्त्यागं तु कारयेत् ॥ ८५ ॥
सेवनक्रममेतत्तु विषकल्पस्तु ईरितः ।
एवं मात्रा सेवने स्याद्गुञ्जामात्रं तु कुष्ठवान् ॥ ८६ ॥
एवमेवाष्टपर्यन्तं परा मात्राधिका मता ।
विधिना मात्रया काले भवेत्पथ्याशिनां नृणाम् ॥ ८७ ॥

पहले दिवस सरसोंके समान विषकी मात्रा ग्रहण करनी चाहिये, दूसरे दिवस दो सरसोंके समान, तीसरे दिन तीन, चौथे दिन चार, पाँचवें दिन पाँच, छठवें दिन छः, इसी प्रकार प्रतिदिन एक एक बढाकर सातवें दिन सात सरसोंके बराबर विषकी मात्रा लेनी योग्य है । इस प्रकार प्रथम सप्ताहको सात सर्षप प्रमाण मात्रासे व्यतीत करे, फिर द्वितीय और तृतीय सप्ताहमें सात सरसोंके बराबर विषकी मात्रा लेवे । चौथे सप्ताहमें फिर वृद्धिसे सेवन करे जब ऐसे क्रमवृद्धिसे उनचास दिन व्यतीत होजावें तब परम मात्रा होजाती है, जबतक सेवन करनेकी आवश्यकता होवे तबतक परममात्रासे इसका सेवन करता रहे और फिर क्रमसे घटा देवे । यह सेवनक्रम विषकल्प कहा है, कुष्ठरोगी मनुष्य ऐसे एक रत्ती

मात्राके सेवनसे रोगरहित होजाता है, ऐसे आठ मात्रा पर्यन्त परम अधिक मात्रा मानी है । पथ्य भोजन करनेवाले मनुष्य उचित मात्रासे ठीक समयमें विधिपूर्वक सेवन करे तो उन्हें नीरोगता प्राप्त होजाती है ॥ ८२-८७ ॥

अन्यच्च ।

एकाष्टकं भवेद्यावदभ्यस्तं तिलमात्रया ।
सर्वरोगहरं नृणां जायते शोधितं विषम् ॥ ८८ ॥

पहले आठ दिन पर्यन्त शुद्ध विषको तिलके समान मात्रासे सेवन करे और पीछे प्रतिदिन एक २ तिल वृद्धि करता जावे। इस प्रकार शोधन किया हुआ यह विष मनुष्योंके सर्व रोगोंको हरलेता है ॥ ८८ ॥

विषानुपानानि ।

शिखिकर्किरसोपेतं विषमज्वरजिद्विषम् ।
मधुयष्ट्याह्वयं रास्ना सेव्यमुत्पलकं दलम् ॥ ८९ ॥
तन्दुलोदकपीतातिरक्तपित्तस्य भेषजम् ।
रास्नाविडङ्गत्रिफलादेवदारुकटुत्रयम् ॥ ९० ॥
पद्मकं क्षौद्रममृता विषं च श्वासकासजित् ।
सितारसविषक्षीरप्रवालमधुभिः कृता ॥ ९१ ॥
वान्तिं निहन्ति गुटिका मनुजानां न संशयः ।
मधुमद्यनिशारेणुसैन्धवैः कटुत्वग्युतम् ॥
च्यवनप्राशनोपेतं विषं क्षपयति क्षयम् ॥ ९२ ॥

शुद्ध विषको शुद्ध पारा और शुद्ध नीलाथोथेके साथ नित्य सेवन करनेसे ज्वर दूर होताहै, मुलहटी, रास्ना, कमलगट्टेका चूर्ण और चावलोंके पानीके साथ रक्तपित्तको, रास्ना, वायविडङ्ग, त्रिफला, देवदारु. त्रिकटु, कमलगट्टा, सहत और गुडूची (गिलोय) के रसके साथ सेवन करे तो श्वास तथा कास रोगको दूर करता है। मिश्री, पारा, सिंगिया विष, दूध, मूँगेकी भस्म और सहतके साथ बनाईहुई गुटिका वमनका नाश करती है, सहत, मद्य, हलदी, पित्तपापडेका रस, सैन्धव नमक, कुडाकी छाल इनके संग वा च्यवनप्राश अवलेहके संग विषका सेवन करे तो क्षयी रोगको नाश करताहै ॥ ८९-९२ ॥

विजयापिप्पलीमूलापिप्पलीद्वयचित्रकैः ।
पुष्कराह्वयसटीद्राक्षायवानीक्षारदीप्यकैः ॥ ९३ ॥

सितायष्टीद्विबृहतीसैन्धवैः पालकैः पचेत् ।
सविषार्द्धपलैः प्रस्थं घृताक्कं जीर्णभुक्पिबेत् ॥ ९४ ॥
दुर्नाममेहगुल्मार्शस्तिमिरक्रिमिपाण्डुकान् ।
गलग्रहग्रहोन्मादकुष्ठानि च नियच्छति ॥ ९५ ॥
मुस्तावत्सकपाठाग्निव्योषप्रतिविषाविषम् ।
धातकीमोचनिर्यासं चूतास्थिग्रहणीहरम् ॥ ९६ ॥
कृच्छ्रघ्नविषपथ्याग्निदन्तीद्राक्षानिशाविषाः ।
शिलाजतु विषं त्र्यूषमुदावर्ताश्मरीहरम् ॥ ९७ ॥

भाँग, पीपलामूल, छोटी पीपल, गजपीपल, चित्रक, पुहकरमूल, कचूर, दाख, अजवायन, जवाखार, अजमोद, मिश्री, मुलहटी, दोनों कटेरी, सेंधानमक, पालक और विष इन प्रत्येक औषधियोंको आधा २ पल लेकर चूर्ण बनावे और एक प्रस्थ (६४ तोला) घृतमें पकावे, तत्पश्चात् योग्य मात्रासे नित्य इसका सेवन करे, जब यह विष पचजावे तब ऊपरसे औरभी अपने सामर्थ्यके अनुसार उत्तम घृतका पान करे तो बवासीर, प्रमेह, गोला, तिमिर, कृमिरोग, पाण्डु, गलग्रह, ग्रहव्याधि, उन्माद और कुष्ठ रोग दूर होते हैं । नागरमोथा, कुडाकी छाल, पाढ, चित्रक, व्योष (सोंठ, मिर्च, पीपल), अतीस, सिंगिया विष, धायके फूल, मोचरस और आमकी गुठली इन सबको विषके साथ मिलाकर सेवन करनेसे संग्रहणी रोग दूर होता है । हरड, चित्रक, जमालगोटा, दाख, अतीस और अड्रूसके साथ विष सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्र दूर होता है । शिलाजीत और त्रिकुटाके संग विषका सेवन करनेसे उदावर्त और पथरीरोग नष्ट होते हैं॥९३-९७॥

गोमूत्रक्षारसिन्धूत्थविषपाषाणभेदकम् ।
वज्रवद्दारयत्येतदेकतः पीतमश्मरीम् ॥ ९८ ॥
त्रिफलासर्जिकाक्षारैर्विषं गुल्मप्रभेदनम् ।
पिप्पलीपिप्पलीमूलं विषं शूलहरं परम् ॥ ९९ ॥
विषं द्रवन्ती मधुकं द्राक्षा रास्ना सठी.कणाः ।
विषवेल्लमिशिक्षीरं गुल्मप्लीहानिबर्हणम् ॥
प्लीहोदरघ्नं पयसा शताह्वाक्रमिजिद्विषम् ॥ १०० ॥

गोमूत्र, क्षार, सेंधानमक, पाषाणभेद इनके साथ विषका सेवन करे तो जैसे वज्र पर्वतोंको विदीर्ण करदेता है वैसेही विष पथरीको दूर करता है । त्रिफला

और सज्जीखारके साथ विष खानेसे गुल्मरोगका नाश होता है । पीपल और पीपलामूलके साथ शूल, द्रवन्ती, महुआ, दाख, रास्ना, कचूर, पीपल, वायविडंग, सौंफ और दूधके साथ सेवन करनेसे गुल्म और प्लीहा रोग नष्ट होजाते हैं । दूधके साथ विषका पान करनेसे प्लीहा (तापातिल्ली) और सौंफके साथ कृमिरोगको दूर करता है ॥ ९८--१०० ॥

वायसीमूलनिक्वाथपीतं कुष्ठहरं विषम् ।
पयसाराजवृक्षत्वक्त्रायन्तीवाकुचीबला ॥ १०१ ॥
प्लीहघ्नीवाकुचायां च विषं क्वाथेन कुष्ठजित् ।
अवल्गुजैलकजयाविडक्षारद्वयं विषम् ॥ १०२ ॥
लेपः ससैन्धवः पिष्टो वारिणा कुष्ठनाशनः ।
चित्रकार्कजहस्तिपिप्पलीवाकुचीविषैः ॥ १०३ ॥
सचार्द्रकैलजगजकरञ्जफलसैन्धवैः ।
सव्योषस्वर्जिकाक्षारयवक्षारानिशाद्वयैः ॥ १०४ ॥
पानाद्यैः शीलितं कुष्ठदुष्टनाडीव्रणापची ।
विषं भल्लातकीद्वीपिगुञ्जानिम्बफलैर्जयेत् ॥ १०५ ॥
लेपोम्लपित्तैश्वित्राणि पुण्डरीकं च दारुणम् ।
ककुन्दरारुष्कद्वीपिस्पृक्कापत्रैलवालुकम् ॥ १०६ ॥
पिष्टं खादिरतोयेन त्रिरात्रमुषितं पिबेत् ।
श्वित्रे विषेण संघृष्टं ततः स्फोटान्किलासजान् ॥ १०७ ॥
कङ्कणेन विभिन्द्याशु लेपैर्लिम्पेच्च कोष्टकैः ।
अथवा करवीरार्कमूलवाकुचिकाविषैः ॥ १०८ ॥
वस्ताम्बुपिष्टैः सद्वीपिद्वीपिप्पल्यरुष्करैः ।
लाक्षासुरी च मञ्जिष्ठा कुष्ठपद्मकशारिवाः ॥ १०९ ॥
गुञ्जा मही कुरवको लाङ्गली वज्रकन्दकः ।
वाराहीकन्दकास्फोतसप्ताह्वो गिरिकर्णिका ॥ ११० ॥
अर्कोऽश्वमारयोर्मूलं नागपुष्पं नतं निशे ।
दन्तीविषं हस्तिविषं पिप्पल्यो मरिचानि च ॥ १११ ॥

तत्तैलं कटुतैलं वा श्वित्रस्याभ्यञ्जनं पचेत् ।
सवर्णकरणं श्रेष्ठमास्तिक्यस्य वचो यथा ॥ ११२ ॥

मकोयकी जडके क्वाथके संग विषका पान करनेसे कुष्ठरोगको, दूध, अमलतासकी छाल, त्रायमाणा, बावची और खैरटीके साथ सेवन करनेसे प्लीहाको नष्ट करता है और सुहागा साहित विषका पान करनेसे कुष्ठ दूर होय । एलुवा, सज्जीखार, जवाखार, सैन्धवनमक इनके साथ विष मिला कुछ जल छोडकर बाँटलेवे और कोढपर लेप करे तो वह नष्ट होजाता है, चित्रक, आक, गजपीपल, बावची, वच्छनागाविष, अदरख, एलुआ, नागकेशर, कंजका, फल, सैन्धव नमक, त्रिकटु, सज्जीखार, जवाखार, हलदी और दारुदल्दीके साथ विषका पानादि द्वारा सेवन करनेने कुष्ठ, नाडीव्रण और अपची रोग दूर होवे, वच्छनाग विष, भिलावा, गजपीपल, घूँघची और नीमके फल इनका लेप अम्लपित्त, चित्रकुष्ठ और दारुण पुण्डरीकको दूर करता है । कुँदरू भिलावा, गजपीपल, सफेद लज्जालु, पत्रज, एलुवा इन सबको खैरके पानीके साथ बाँटकर तीन दिन पर्यन्त रखछोडे तदनन्तर विष छोडकर पान करे तो कुष्ठरोग दूर होवे । और यदि विष मिलाकर कुष्ठजनित फोडोंपर लेप करे तो उनका नाश भी होवे । कंकण नामक शस्त्रसे कुष्ठको भेद करके बहुत शीघ्रहीं उक्त औषधको लेप करे अथवा कनेर, आककी जड, बावची, बच्छनाग विष, चित्रक, गजपीपल और भिलावेको बकरीके मूत्रमें बाँटकर लेप करे तो कुष्ठका नाश होवे अथवा लाख. राई, मंजीठ, कूठ, पद्माख, सारिवा, घूँघची, कुटकी, कुरबक, कलियारी, थूहर, वाराहीकन्द, कोविदार, सतवन, इन्द्रजौ, आक, कनेर इनकी जड, नागकेशर तगर हलदी, दारुहलदी, दन्ती, वच्छनाग विष, हास्तिविष, पीपल, मिरच इन सब औषधियोंके तेल अथवा इनके द्वारा सिद्ध किये हुए सरसोंके तेलका लेप कोढपर करे तो समान रंग होजावे यह सवर्ण करनेका प्रयोग बहुत उत्तम है और आस्तिक्यका कहाहुआ है ॥ १०१--११२ ॥

एरण्डतैलत्रिफलागोमूत्रं चित्रकं विषम् ।
सर्पिषा सहितं पीतं वातार्तित्वमपोहति ॥ ११३ ॥
कोरकं चीरनिष्क्काथैर्लाङ्गलीविषसर्षपैः ।
गन्धकं कोलमरिचैः सस्नुक्क्षीरैर्विपाचितम् ॥ ११४ ॥
जयेज्ज्योतिष्मतीतैलमनलत्वगदानपि ।
स्वरसं बीजपूरस्य वचाब्राह्मीरसं घृतम् ॥ ११५ ॥

वन्ध्या पिबति सविषं सत्पुत्रैः परिवार्यते ।
वीरालाङ्गलिकादन्तिविषपाषाणभेदकैः ॥ ११६ ॥
प्रयोज्य मूढगर्भाणां प्रलेपो गर्भमोचनः ।
देवदारु विषं सर्पिर्गोमूत्रं कण्टकारिका ॥
वचा वाक्स्खलनं हन्ति बुद्धेश्च परिवर्द्धनम् ॥ ११७ ॥

एरण्डका तेल, त्रिफला, गोमूत्र, चित्रक और विषको घृतके साथ पान करे तो बादीसे उत्पन्न हुई पीडाको नाश करताहै । ग्वारपाठा, सीसम, कलियारी, बच्छनाग विष, सरसों, गन्धक, कोल, मिरच, थूहरका दूध इन सबको मालकाँगनीके तेलमें पकावे और उसका मर्दन करे तो वातविकारसे उत्पन्न हुए त्वचाके रोग दूर होते हैं । बिजौरा नीम्बूका रस, वच, ब्राह्मीका रस, नवीन घृत इनमें विषको मिलाकर सेवन करनेसे वन्ध्या स्त्री भी गर्भवती होती है । सफेद कनेर, कालियारी, दन्ती, वच्छनाग विष और पाषाणभेद इनका लेप मूढगर्भको मोचन करता है । देवदारु, बच्छनाग विष, घृत, गोमूत्र कटेली और वच इनके सेवन करनेसे जिह्वाके सम्पूर्ण रोग दूर होते हैं और बुद्धिकी वृद्धि होती है॥११३--११७॥

विषं सर्पिः सिता क्षौद्रं तिमिरापहमञ्जनम् ।
विषं चैकमजाक्षीरकल्पितं घृतधूपितम् ॥ ११८ ॥
विषं धात्रीफलरस रसकृत्पारिवारितम् ।
अञ्जनं शंखसहितं प्रगाढं तिमिरं जयेत् ॥ ११९ ॥
विषमिन्द्रायुधं स्तन्ये घृष्टं काचे तदञ्जनम् ।
बीजपूररसैर्घृष्टं विषं तद्वत्सितान्वितम् ॥ १२० ॥
विषं मागधिका द्वे च निशे काचघ्नमञ्जनम् ।
शुक्लार्म च विषं कृष्णायुक्तं गोमूत्रभावितम् ॥ १२१ ॥

घी, मिश्री और शहदमें विषको घिसकर लगावे तो तिमिररोग नष्ट होवे । अथवा बकरीके दूधमें विषको घिसकर नेत्रोंमें लगावे और घृतकी धूनी देवे तो तिमिर रोग दूर होवे । शंखकी नाभिसहित विषको आँवलेके रसकी अनेक भावना देकर अंजन बनावे और उसे नेत्रोंमें लगावे तो घोर तिमिर रोगकोभी नाश करे । स्त्रीके दुग्धमें विष और हीराको घिसकर नेत्रोंमें लगावे तो काच रोग नष्ट होवे । बिजौरा नीम्बूके रसमें मिश्री और विषको मिलाकर नेत्रोंमें लगावे तो विषका विकार दूर होवे । विष, पीपल, दोनों हलदी इनका अंजन

बनाकर नेत्रोंमें लगावे तो काचरोग दूर होवे । पीपल और विषको गोमूत्रमें भावना देकर नेत्रोंमें लगावे तो शुक्रार्म रोग नष्ट होजाता है ॥ ११८--१२१ ॥

समुद्रफेनस्फटिकीकुरुविन्दरसाञ्जनम् ।
कूर्मपृष्ठं च तुल्यानि तेभ्योऽर्द्धांशमनःशिला ॥ १२२ ॥
अर्द्धमानानि मरिचसैन्धवायोरजांसि च ॥
अथो यथोत्तरं दद्यादयसा च समं विषम् ॥ १२३ ॥
आगारधूमसहितैर्वत्समूत्रेण कल्कितैः ।
भल्लातकाग्निसम्पाकाविषैर्गोमूत्रपेषितैः ॥ १२४ ॥
लेपो विचर्चिकादद्रुरसिकाकिटिभापहः ।
सम्पाकपत्रं त्वङ्मूलं विषं तक्रं चतुर्गुणम् ॥ १२५ ॥
विषतुम्बुरुबीजानि वाजिगन्धाम्लवेतसम् ।
हरिद्रा वायसी रास्ना हरितालं मनःशिला ॥ १२६ ॥
पटोलनिम्बपत्राणि कणा गन्धकसैन्धवम् ।
विषं दारु शिरीषास्थि तक्रं लेपेन कुष्ठजित् ॥ १२७ ॥
करञ्जकरवीरार्कमालतीरक्तचन्दनैः ।
आस्फोताकुष्ठमञ्जिष्ठासप्तच्छदनिशानतैः ॥ १२८ ॥
सिन्धुवारवचाक्ष्वेलैर्गवां मूत्रे चतुर्गुणे ।
सिद्धं कुष्ठहरं तैलदुष्टव्रणविशोधनम् ॥ १२९ ॥
कुष्ठाश्वमृगभृङ्गार्कमूलस्नुकक्षीरसैन्धवैः ।
तैलं सिद्धं विषावाप्यमभ्यङ्गात्कुष्ठजित्परम् ॥ १३० ॥

समुद्रफेन, स्फटिक, कुरुविंद, रसांजन और कूर्मपृष्ठ ये पाचों समान भाग सबसे आधा भाग, मनसिल मिरच, लोहरज ये दोनों आधा २ भाग और लोहके समान विष ले गृहधूम और वत्समूत्रके साथ कल्क करे और मिलावे और अग्निसंपाक विषसे गोमूत्रमें पीसकर लेप बनावे और देहपर लगावे तो विचर्चिका दद्रु रसीका, किठिभ ये सब दूर होते हैं। अमलतासके पत्त, छाल और जडमें विषको मिलावे और पश्चात् चौगुनी छाछ डालकर लेप बनालेवे । अथवा विष, तुम्बुरुबीज, असगंध, अम्लबेंत, हलदी, वायसी, रहसन, हरिताल, मनशिल, पटोलपत्र, नींबके

पत्ते, पीपल, गंधक, सैन्धव इन सबको छाँछमें मिलाकर लेप करे तो कुष्ठरोगका नाश होवे । करंज, कनेर, आक, मालतीके फूल, लाल चन्दन, सफेद कोयल, कूठ, मंजीठ, सतवन, हलदी, तगर, सम्हालु, वच और विषको चौगुने गोमूत्रमें पकावे और पश्चात् तेल डालकर विधिपूर्वक पकालेवे । यह तेल कुष्ठरोगनाशक और बिगडे हुए घावका शुद्ध करनेवाला है । कूठ, कनेर, कस्तूरी, भँगरा, आककी जड, थूहरका दूध, सैन्धव नमक, कमलगट्टा और विष मिलाकर यथाविधिसे तेल सिद्ध करे । इस तेलकी मालिश करनेसे कुष्ठरोग दूर होताहै ॥ १२२-१३०॥

भद्रश्रीदारुमरिचनिशाद्वयत्रिवृद्धनैः ।
गोमूत्रपिष्टैः सहसा विषस्यार्द्धपलेन च ॥ १३१ ॥
ब्राह्मीरसार्कजक्षीरगोशकृद्रससंयुतम् ।
प्रस्थं सर्षपतैलस्य सिद्धिमाशु व्यपोहति ॥ १३२ ॥
रसक्रियेयमधुना पिल्लशुक्लार्मकाचनुत् ।
अभीक्ष्णं शीततोयेन सिञ्चेन्नेत्रे विषाञ्जिते ॥ १३३ ॥
रक्तचन्दनमञ्जिष्ठातिन्तिडीफलसूतकैः ।
अयसा लोध्रकतकनिशाशङ्खकणोषणैः ॥ १३४ ॥
मनःशिलाकरञ्जाक्षबीजोग्राफेनसैन्धवैः ।
अजाक्षीरे समविषैर्वर्तयो विहिता हिताः ॥
शुल्कार्ममांसपिल्लेषु ग्रन्थिगण्डार्बुदेषु च ॥ १३५ ॥
रसोनकन्दमरिचाविषसर्षपसैन्धवैः ।
पिल्लेक्षणहितं कार्यं सुरसारसपेषितैः ॥
पूरयेत्सर्पिषा चानु सर्पिरेव च पाययेत् ॥ १३६ ॥

चन्दन, देवदारु, काली मिर्च, हलदी, दारुहलदी, नीसोथ, नागरमोथा इन प्रत्येकको एक २ पल और विषको आधा पल लेकर गोमूत्रमें पीसलेवे । ब्राह्मीका रस, आकका दूध और गोबरका रस इन सबको एक प्रस्थ (६४ तोले) सरसोंके तेलमें मिलाकर तेल सिद्ध करे । यह रसक्रिया है । इस औषधको नेत्रोंमें लगावे तो शीघ्र पिल्ल शुक्लार्म और काँचरोगको दूर करे । जब विषको नेत्रोंमें लगावे तब नेत्रोंको वारवार ठण्ढे जलसे धोता रहे । लाल चन्दन, मंजीठ, इमलीके फल, पारा, लोहचूर, लोध, कतक, हलदी, शङ्खनाभि, पीपल, काली मिर्च, मनसिल,

कंजाकी मींगी, बहेडाके बीज, वच, समुद्रफेन, सेंधा नमक, बच्छनाग विष इन सबको समान भाग लेकर बकरीके दूधमें बाँटकर बत्ती बनालेवे । यह बत्ती शुक्रामें, मांसापिल्ल, ग्रन्थिरोग, गंडरोग और अर्बुद इत्यादि नेत्रके रोगोंको दूर करती है । लहसन, काली मिर्च, विष, सरसों और सेंधा नमकको तुलसीके स्वरसमें बारीक बाँटकर नेत्रोंमें लगावे तत्पश्चात् नेत्रोंको घृतसे पूर्ण करे और घृतका पान करे ॥ १३१-१३६ ॥

मधूकसारमधुकाविषक्षीरजलैर्घृतम् ।
पक्वं सन्तर्पणं श्रेष्ठं नक्तान्धत्वं चिरोत्थितम् ॥ १३७ ॥
अञ्जनं नरपित्तेन रोचनं मधुशृङ्गिभिः ।
स्वर्जिकाक्षारसिन्धूत्थशुक्तशुक्तं वरं विषम् ॥ १३८ ॥
कर्णयोः पूरणं तीव्रकर्णशूलनिबर्हणम् ।
प्रपौण्डरीकमाञ्जिष्ठाविषातिन्दुससुद्भवैः ॥
निहन्ति साधितं तैलं गण्डूषेण मुखामयान् ॥ १३९ ॥

महुआ, मुलहटी, विष, दूध, जल, घृत इन सबको एकत्र पकाकर नेत्रोंको तर्पण करे तो बहुत दिनके भी नक्तान्ध्य अर्थात् रतौंध रोगको दूर करे । अथवा नरपित्तके वा काकडाशिंगीके साथ गोरोचनका नेत्रोंमें अंजन करे । सज्जी, सेंधा नमक, सिरका, कांजी इनक साथ बच्छनागविषको बारीक पीसकर कानमें छोडे तो तीव्र कर्णशूलका नाश होवे । कमलपुष्प, मंजीठ, विष और कुचला इन सबको छोडकर सिद्ध किये हुए तेलका कुल्ला करे तो मुखके समस्त रोग दूर होते हैं ॥ १३७-१३९ ॥

शालाखदिरकङ्कोलजातीकर्पूरचन्दनैः ।
बोलाब्दवालैर्द्विगुणविषैः साराम्बुपेषितैः ॥ १४० ॥
समूत्रा वटिका क्लृप्ताः धृताद्घ्नंति मुखामयान् ।
कटुतैलं विषं नस्यं पलिकारुंषिकापहम् ॥ १४१ ॥

शालवृक्षकी छाल, कत्था, कंकोल, जायफल, भीमसेनी कपूर, चन्दन, बोल, नागरमोथा, सुगन्धवाला इनको समान भाग और इन सबसे दुगुना विष लेकर खैरसार और गोमूत्रमें बाँटकर गोलियाँ बनालेवे इनको धूपमें सुखाकर मुखमें रक्खे रहे तो सम्पूर्ण मुखरोगोंको नष्ट करती हैं । सरसोंके तेलमें विष मिलाकर नास लेवे तो पलिका और अरुंषिका रोग दूर होवे ॥ १४० ॥ १४१ ॥

गुञ्जाटंकण शिग्रुमूलरजनीसम्पाकभल्लातक-
स्नुह्यर्काग्निकरञ्जसैन्धववचाकुष्ठाभयालाङ्गली ।
वर्षाभूषटभूशिरीषवरणव्योषाश्वमारोविषं
गोमूत्रं शमयेद्विलुप्तमपचीग्रन्थ्यर्बुदश्लीपदाम् ॥ १४२ ॥

घूँघची, सुहागा, सहिंजनेकी जड, हलदी, अमलतास, भिलावाँ, थूहर, आक, चित्रक, कंज, सैन्धवनमक, वच, कूट, हर्र, कलियारी, केचुए, षटभू, शिरसकी छाल, व्योष, (सोंठ, मिर्च, पीपल), कनेर और बच्छनागविषको गोमूत्रमें बारीक बाँटकर इन्द्रलुप्त, अपची, ग्रन्थिरोग, अर्बुद और श्लीपद रोगमें लेप करे तो इन सबको दूर करे ॥ १४२ ॥

विषसेवनाधिकारिणः ।

अशीतिर्यस्य वर्षाणि चतुर्वर्षाणि यस्य वै ।
विषं तस्य न दातव्यं दत्तं चेद्रोगकारकम् ॥ १४३ ॥
न क्रोधिते न पित्तार्ते न क्लीबे राजयक्ष्माणि ।
क्षुत्तृष्णाश्रमकर्माध्वसेविनि क्षयरोगिणि ॥ १४४ ॥
गर्भिण्यां बालवृद्धे च न विषं राजमन्दिरे ।
न दातव्यं न भोक्तव्यं विषं व्याधा कदाचन ॥ १४५ ॥

अस्सी और चार वर्षकी अवस्थावाले मनुष्यको विषका सेवन न करावे क्योंकि यह विष उक्त अवस्थावाले मनुष्यको देनेसे रोगोंकी उत्पत्ति करता है क्रोधी, पित्तरोगी, नपुंसक, क्षयीरोगयुक्त, भूँखा, प्यासा, परिश्रमी, मार्गचला, गर्भिणी, बालक, वृद्ध, तथा राजा और राजाके आश्रित मनुष्योंको व्याधि होने पर भी विष कदापि न देना चाहिये और न इन्हें स्वयं भी सेवन करना उचित है ॥ १४३-१४५ ॥

विषसेवनपथ्यानि ।

घृतं क्षीरं सितां क्षौद्रं गोधूमांस्तण्डुलानि तत् ।
मरिचं सैन्धवं द्राक्षां मधुरं पानकं हिमम् ॥ १४६ ॥
ब्रह्मचर्यं हिमं देशं हिमं कालं हिमं जलम् ।
विषस्य सेवको मर्त्यो भजेदतिविचक्षणः ॥ १४७ ॥

विषका सेवन करनेवाला चतुर मनुष्य घी, दूध, मिश्री, सहत, गेहूँ, चावल, काली मिर्च, सैन्धव नमक, दाख, मधुररस, तथा शीतल गुणयुक्त पदार्थ, ब्रह्मचर्य शीत देश, शीत ऋतु, शीत जल इन सबका सेवन करे ॥ १४६ ॥ १४७ ॥

विषमात्राधिकभक्षणोपद्रववर्णनम् ।

मात्राधिकं यदा मर्त्यः प्रमादाद्भक्षयेद्विषम् ।
अष्टौ वेगास्तदा तेन जायन्ते तस्य देहिनः ॥ १४८ ॥
उद्वेगं प्रथमे वेगे द्वितीये वेपथुर्भवेत् ।
वेगे तृतीये दाहः स्याच्चतुर्थे पतनं भवेत् ॥ १४९ ॥
फेनस्तु पञ्चमे वेगे षष्ठे विकल एव च ।
जडता सप्तमे वेगे मरणं चाष्टमे भवेत् ॥ १५० ॥
विषवेगानिति ज्ञात्वा मन्त्रतन्त्रैर्विनाशयेत् ।
यामन्नाष्टमवेगं तु संप्राप्नोति हि मानवः ॥ १५१ ॥

यदि कोई मनुष्य प्रमाद आदिसे विषको मात्रासे अधिक भक्षण करलेवे तो उस विषके प्रभावसे मनुष्यके शरीरमें आठ वेग उत्पन्न होते हैं इनमें प्रथम वेगमें उद्वेग, द्वितीयमें कम्प, तृतीयमें जलन, चतुर्थमें पृथिवी आदिपर गिरना, पञ्चममें मुखसे फेन निकलना, षष्ठमें विकलता, सप्तम वेगमें जडता और अष्टममें मरण हो । वैद्यको चाहिये कि उक्त विषवेगोंको जानकर अष्टम वेगके आनेके पूर्वही मन्त्र और तन्त्रसे विषके उपद्रवोंका शीघ्रही नाश करे ॥ १४८-१५१ ॥

विषवेगनाशकयोगः ।

अतिमात्रा यदा भुक्ता वमनं तस्य कारयेत् ।
अजादुग्धं ददेत्तावद्यावद्भ्रान्तिर्न जायते ॥ १५२ ॥
अजादुग्धं यदा कोष्ठे स्थिरीभवति देहिनः ।
विषवेगं ततो जीर्णं जानीयात्कुशलो भिषक् ॥ १५३ ॥

विषसेवनकी जितनी मात्रा है उससे अधिक यदि किसीने भक्षण करलिया हो तो उस मनुष्यको आकण्ठ बकरीका दूध पिलावे और जब तक अच्छे प्रकार वमन होकर कोष्ठ शुद्ध न होजावे तब तक उसे दुग्ध पीनेके लिये देता रहे । इस प्रकार जब कोष्ठके शुद्ध होनेसे दूध स्थिर होजाताहै अर्थात् वमन नहीं होता तब चतुर वैद्यको जानना चाहिये कि, अब विषका वेग पचगया ॥ १५२ ॥ १५३ ॥

द्वितीययोगः ।

विषं हन्याद्रसः पीतो रजनीमेघनादयोः ।
सर्पाक्षिटंकणं वापि घृतेन विषहृत्परम् ॥ १५४ ॥

हल्दी और चौलाई इन दोनोंके रसका पान करे तो विषके उपद्रवोंको नष्ट करे । सर्पाक्षी (गन्धनाकुली या भुजङ्गघातिनी) और सुहागा इन दोनोंको मिलाकर घृतके साथ पान करे तो विषके समस्त उपद्रवोंका नाश हो ॥ १५४ ॥

तृतीययोगः ।

पुत्रजीवकमज्जा वा पीता निम्बुकवारिणा ।
विषवेगं निहन्त्येव वृष्टिर्दावानलं यथा ॥ १५५ ॥

नींबूके रसमें पुत्रजीवक (जीयापोता) की मज्जाको मिलाकर पान करे तो विषके वेगको इस प्रकार नष्ट करताहै जैसे जलवृष्टि दावानलको ॥ १५५ ॥

चतुर्थयोगः ।

गोघृतपानाद्धरते विषं च गरलं च कर्कोटी ।
शमनी सकलविषानां त्रिमूली सुरभिजिह्वा च ॥ १५६ ॥

बाँझककोडाको गौके घृतके साथ पीवे तो स्थावर विष तथा सर्पविषको दूर करताहै । त्रिमूली और सुरभिजिह्वा सम्पूर्ण विषके वेगको दूर करती है ॥ १५६ ॥

पञ्चमयोगः ।

अतिमात्रं यदा भुक्तं तदाज्यं टंकणं पिबेत् ।
विषं सवेगतो नाशमाशु चाप्नोति निश्चितम् ॥ १५७ ॥

जिस समय मात्रासे अधिक विषका भक्षण करलिया हो तो उस समय घृतमें सुहागा मिलाकर पान करे तो वेगयुक्त विषका निस्सन्देह नाश होताहै ॥ १५७ ॥

विषसेवनापथ्यानि ।

कट्वम्ललवणं तैलं दिवास्वप्नानलातपान् ।
अभ्यस्तेऽपि विषे यत्नाद्वर्जनीयान्विवर्जयेत् ॥ १५८ ॥

विषके भक्षणका अभ्यास होनेपर भी प्रयत्नसे कडवे और खट्टे पदार्थ, नमक, तेल, दिनका सोना, अग्निका तापना, (धूपमें भ्रमण करना) आदि त्याग करनेयोग्य कार्योंका त्याग करे ॥ १५८ ॥

रूक्षाशिनः विषसेवनोपद्रवाणि ।

दृग्विभ्रमं कर्णरुजमन्यांश्चानिलजान्गदान् ।
विषं रूक्षाशिनः कुर्यान्मृत्युमेव त्वजीर्णतः ॥ १५९ ॥

जो विषसेवी मनुष्य रूखे पदार्थोंका भोजन करताहै उसके वह विष दृग्विभ्रम, कर्णरोग तथा अन्य वातज रोगोंको उत्पन्न करताहै । विषका अजीर्ण निश्चय मृत्यु करताहै ॥ १५९ ॥

उपविषवर्णनम् ।

स्नुह्यर्कलाङ्गलीगुञ्जाहयारिर्विषमुष्टिका ।
जैपालोन्मत्तआफूके नवोपविषजातयः ॥ १६० ॥

थूहर, आक, कलिहारी, घूँघची, कनेर, कुचला, जमालगोटा, धतूरा, अफीम ये नव उपविष कहाते हैं ॥ १६० ॥

अन्यमतम् ।

भल्लातकं चातिविषं चतुर्भागं च खाखसम् ।
करवीरं द्विधा प्रोक्तमहिफेनं द्विधा मतम् ॥ १६१ ॥
धत्तूरश्च चतुर्धा स्याद्द्विधा गुञ्जा च निर्विषी ।
विषमुष्टिर्लांगली च गणश्चोपविषाह्वयः ॥ १६२ ॥

भिलावाँ, अतीस, चार प्रकारके खाखस, दो प्रकारका कनेर, दो प्रकारकी अफीम, चार प्रकारका धतूरा, दो प्रकारकी घूँघची, निर्विषी, कुचिला, कलिहारी यह उपविषाख्य गण है ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

उपविषशोधनविधिः ।

पञ्चगव्येषु शुद्धानि देयान्युपविषाणि च ।
विषाभावप्रयोगेषु गुणास्तु विषसम्भवाः ॥ १६३ ॥

पूर्वोक्त सब उपविष पञ्चगव्य (दूध, दही, घृत, मूत्र, गोबर) में शुद्ध करके देना चाहिये । इन उपविषोंके गुण भी प्रायः मुख्य विषोंके समान हैं अतः विषके न मिलनेपर उपविष ही ग्रहण करना चाहिये ॥ १६३ ॥

अर्कगुणाः ।

अर्कद्वयं सरं वातकुष्ठकण्डूविषापहम् ।
निहन्ति प्लीहगुल्मार्शोयकृच्छ्लेष्मोदरकृमीन् ॥ १६४ ॥

सफेद और लाल दोनों प्रकारके आक सर अर्थात् विरेचनकारक हैं, वातरोग, कुष्ठरोग, खुजली, विषविकार, प्लीहा, गुल्मरोग, बवासीर, यकृत्, कफोदर, कृमिरोग इन सबको नष्ट करते हैं ॥ १६४ ॥

लाङ्गलीशोधनविधिस्तद्गुणाश्च ।

लाङ्गलीशुद्धिमायातिदिनं गोमूत्रसंस्थिता ॥ १६५ ॥
लाङ्गली च सरा कुष्ठशोफार्शोव्रणशूलनुत् ॥
तीक्ष्णोष्णकृमिनुल्लघ्वी पित्तला गर्भपातनी ॥ १६६ ॥

कलिहारीके छोटे २ टुकडे करके एक दिवस गौके मूत्रमें भिगोवे तो शुद्ध होजाती है। यह विरेचन करनेवाली है, कुष्ठ, शोफ, अर्श, व्रणशूल, कृमिरोग इन सबको नाश करती है। यह तीक्ष्ण, गरम, हलकी, पित्तको उत्पन्न करनेवाली और गर्भको पतन करनेवाली है ॥ १६५ ॥ १६६ ॥

गुञ्जाशोधनविधिस्तद्गुणाश्च ।

गुञ्जाकाञ्जिकसंस्विन्ना प्रहराच्छुद्ध्यति ध्रुवम् ॥ १६७ ॥
गुञ्जालघुर्हिमा रूक्षा भेदनी श्वासकासजित् ॥
कृष्णाकृमिकुष्ठकण्डूश्लेष्मपित्तव्रणापहा ॥ १६८ ॥

कांजीमें घूँघचीको एक प्रहर पर्यन्त दोलायन्त्रके द्वारा पकावे तो वह शुद्ध होजाती है। यह हलकी, शीतल, रूखी, भेदक और श्वासकासनाशक है। काले रंगकी घूँघची कृमिरोग, कुष्ठरोग, कण्डू, कफ पित्तके विकार और व्रणदोषोंको नाश करनेवाली है ॥ १६७ ॥ १६८ ॥

करवीरशोधनविधिस्तद्गुणाश्च ।

हयारी विषवच्छोध्यौ गोदुग्धे गोलकेन तु ।
करवीरद्वयं नेत्ररोकुष्ठव्रणापहम् ॥
लघूष्णं कृमिकण्डूघ्नं भक्षितं विषवन्मतम् ॥ १६९ ॥

दोनों प्रकारके कनेरोंके छोटे २ टुकडे करके गौके दूधमें दोलायन्त्र द्वारा शुद्ध करे वा विषके समान शुद्ध करे। ये दोनों कनेर नेत्ररोग, कुष्ठरोग, व्रणरोग, कृमिरोग और खुजलीको दूर करते हैं। हलके तथा गरम हैं। भक्षण करनेसे विषके तुल्य गुणकारी हैं ॥ १६९ ॥

विषमुष्टिशोधनविधिः ।

दोलायन्त्रेण संस्वेद्यः काञ्जिके प्रहरद्वयम् ।
किञ्चिदाज्येन संभृष्टो विषमुष्टिर्विशुद्ध्यति ॥ १७० ॥

कुचिलाको कांजीमें दोलायन्त्र द्वारा दो प्रहर पर्यन्त पकावे और पश्चात् घृतमें कुछ भूनलेवे तो शुद्ध होजाताहै ॥ १७० ॥

विषमुष्टिगुणाः ।

विषमुष्टिः कटुस्तिक्तस्तीक्ष्णोष्णः श्लेष्मवातहा ।
सारमेयविषोन्मादहरो मदकरः सरः ॥ १७१ ॥

विषमुष्टि (कुचिला) कडवा, तीखा, चरपरा, गरम, कफ और वातका नाशक कुत्तेके विषसे उत्पन्न उन्मादरोगको दूर करनेवाला और मदकारी तथा विरेचनकारक है ॥ १७१ ॥

जयपालशोधनाविधिः ।

पञ्चगव्येषु संशोध्य दूरे कार्यास्तु जिह्वकाः ।
ततोऽम्लवर्गे दशधा क्षारवर्गे त्रिधाः पुनः ॥ १७२ ॥
कुमारोकोद्रवभस्मजले चैवं विशोधयेत् ।
एवं शुद्धस्तु जैपालो वान्तिदाहविवर्जितः ॥ १७३ ॥

जमालगोटेको पञ्चगव्यमें शुद्ध करके जीभोंको निकालकर अलग फेंकदेवे तत्पश्चात् अम्लवर्गोक्त औषधियोंमें दशवां क्षारवर्गमें तीन वार शुद्ध करके घीकुवारके रसमें और कोदोंकी राखके जलमें शुद्ध करे । इस प्रकार शोधित जमालगोटा वमन और दाहसे रहित होता है ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

जैपालं रहितं त्वगंकुररसैश्चाद्रिर्मले माहिषे ।
निक्षिप्तं त्र्यहमुष्णतोयविमलं खल्वे सवासोर्दितम् ।
लिप्तं नूतनखर्परेषु विगतस्नेहं रजःसन्निभं ।
नीम्बूकाम्बुविभावितं च बहुशः शुद्धं गुणाच्छं भवेत् ॥ १७४ ॥

जमालगोटोंको भैंसाके गोबरमें तीन दिन पर्यन्त गाड रक्खे और चौथे दिन उसके वक्कल तथा जीभको निकालकर फेंकदेवे तत्पश्चात् गरम पानीसे धो अडूसा सहित खरलमें छोड मर्दन करके मिट्टीके नवीन खपडेमें लेप करदेवे, जब तेल सूखकर धूलिके समान होजावे तब नीम्बूके रसमें बहुत समय तक मर्दन करेतो शुद्ध तथा गुणोंमें स्वच्छ हो ॥ १७४ ॥

तृतीयः प्रकारः ।

वस्त्रे बद्ध्वा तु जैपालं गोमयस्योदके न्यसेत् ।
पाचयेद्यामममात्रं तु जैपालः शुद्धतां व्रजेत् ॥ १७५ ॥

जमालगोटेका वस्त्रमें बाँध गोबरके रसमें दोलायन्त्र द्वारा एक प्रहर पकावे तो शुद्ध होजाता है ॥ १७५ ॥

पञ्चमः प्रकारः।

जैपालं निस्तुषं कृत्वा दुग्धे दोलायुते पचेत्।
अन्तर्जिह्वां परित्यज्य युंज्याच्च रसकर्मणि ॥ १७६ ॥

जमालगोटेका वल्कल दूर करके वस्त्रमें बाँध दूधमें दोलायन्त्रद्वारा पकावे पश्चात् अन्तर्जिह्वाको निकालकर फेंकदेवे तो शुद्ध होजाता है। इस शुद्ध जमालगोटाको रसकर्ममें युक्त करे ॥ १७६ ॥

जयपालगुणाः।

जैपालोतिगुरुस्तिक्तो वान्तिकृज्ज्वरकुष्ठनुत्।
उष्णो गुरुर्व्रणश्लेष्मकण्डूकृमिविषापहः ॥ १७७ ॥
न विषं विषमित्याहुर्जैपालो विषमुच्यते।
शोधितश्च विरेकेषु चमत्कृतिकरः परः ॥ १७८ ॥

जमालगोटा अतिगुरु, तीखा, वमनकारी, ज्वर, कुष्ठ, व्रणरोग, कफविकार, खुजली, कृमिरोग, विषोपद्रव इन सबका नाशक और गरम है। चतुर वैद्य विषको विष नहीं कहते किन्तु जमालगोटेको विष कहते हैं। शुद्ध किया हुआ जमालगोटा विरेचनमें अत्यन्त चमत्कार करनेवाला है ॥ १७७ ॥ १७८ ॥

धत्तूरशोधनविधिः।

धत्तूरबीजं गोमूत्रे चतुर्यामोषितं पुनः।
कण्डितं निस्तुषं कृत्वा योगेषु विनियोजयेत् ॥ १७९ ॥

धतूरेके बीजोंको गौके मूत्रमें चार प्रहर तक भिगोवे तत्पश्चात् हलकी चोट देकर छिलका निकाल योगोंमें युक्त करे ॥ १७९ ॥

धत्तूरगुणाः।

धत्तूरो मदवर्णाग्निवातकृज्ज्वरकुष्ठनुत्।
उष्णो गुरुर्व्रणश्लेष्मकण्डूकृमिविषापहः ॥ १८० ॥

धत्तूरा उन्माद, कान्ति, दाह, वातविकार, ज्वर, कुष्ठ इनको दूर करता है। गरम और भारी है। कफविकार, खुजली, कृमिरोग और विषोपद्रवोंको नष्ट करता है ॥ १८० ॥

अहिफेनशोधनविधिः।

अहिफेनं शृङ्गवेररसैर्भाव्यं त्रिसप्तधा।
शुद्धन्तु सर्वयोगेषु योजयेत्तद्विधानतः ॥ १८१ ॥

अफीमको अदरकके रसकी इक्कीस भावना देवे तो शुद्ध हो। इस शोधित अफीमको सब योगोंमें विधिपूर्वक युक्त करे ॥ १८१ ॥

अहिफेनगुणाः ।

आफुकं शोषणं ग्राहि श्लेष्मघ्नं वातपित्तलम् ।
मदकृद्दाहकृच्छुक्रस्तम्भनायासमेहकृत् ॥ १८२ ॥
अतिसारे ग्रहण्यां च हितं दीपनपाचनम् ।
सेवितं दिवसैः कैश्चिद्भ्रमयत्यन्यथार्तिकृत् ॥ १८३ ॥

अफीम शोषक, ग्राही और कफनाशक है। वात, पित्त मद, दाह, वीर्य-स्तभ परिश्रम और प्रमेहको उत्पन्न करती है। अतिसार और ग्रहणी रोगमें हीतकारक है, दीपन तथा पाचन है। कुछ दिन तक सेवन की हुई यह चित्तको भ्रमाती है अन्यथा पीडाको उत्पन्न करती है ॥ १८२ ॥ १८३ ॥

विजयाशोधनविधिः ।

बब्बुलत्वक्कषायेण भङ्गां संस्वेद्य शोषयेत् ।
गोदुग्धभावनां दत्त्वा शुष्कां सर्वत्र योजयेत् ॥ १८४ ॥

बबूलकी छालके क्वाथमें भाँगको स्वेदनकर गौके दूधकी भावना देकर सुखा लेवे। इस प्रकार शुद्ध की हुई भाँगका सर्वत्र उपयोग करे ॥ १८४ ॥

विजयागुणाः ।

विजयाकटुकषायोष्णा तिक्ता वातकफापहा ।
संग्राही वाक्प्रदा बल्या मेधाकृद्दीपनी परा ॥ १८५ ॥

भाँग,- कडवी, कषैली, गरम, तीखी, वातकफनाशक, संग्राही, वाक्शक्तिवर्द्धक बलप्रद, मेधाकर और अग्निको प्रदीप्त करनेवाली है ॥ १८५ ॥

सेहुण्डगुणाः ।

सेहुण्डो रोचनस्तीक्ष्णो दीपनः कटुको गुरुः ।
शूलमष्ठीलिकाध्मानगुल्यशोफोदरानिलान् ॥
हन्ति दोषान्यकृत्प्लीहकुष्ठोन्मादाश्मपाण्डुताः ॥ १८६ ॥

थूहर रोचन, तीक्ष्ण, दीपन, कटु और भारी है। शूल, अष्ठीलिका, अफरा, गुल्मरोग, वातरोग, यकृत्, प्लीहा, कुष्ठ, उन्माद, पथरी, और पाण्डुरोगको दूर करता है ॥ १८६ ॥

गौरीपाषाणकगुणाः ।

गौरीपाषणकः प्रोक्तो द्विविधः श्वेतपीतकः ।
श्वेतः शंखस्य सदृशो पीतो दाडिमकप्रभः ॥ १८७ ॥
श्वेतः कृत्रिमकः प्रोक्तो पीतः पर्वतसम्भवः ॥
कृष्णरक्तविभेदेन चतुर्धा कथ्यते क्वचित् ॥ १८८ ॥

संखिया दो प्रकारकी होती है, सफेद और पीली, सफेद संखिया शंखके समान रंगवाली और पीली अनारके समान कान्तियुक्त होतीहै। इनमेंसे श्वेत संखिया कृत्रिम अर्थात् बनावटी है और पीली संखिया पर्वतसे उत्पन्न होती है कहीं २ श्वेत और पीतके अतिरिक्त कृष्ण तथा रक्तके भेदसे यह संखिया, चार प्रकारकी कही गई है ॥ १८७ ॥ १८८ ॥

विषविकारशान्त्युपायाः ।

तत्रादावहिफेनविषनिवृत्तियोगाः ।

बृहत्क्षुद्राम्बुनो दुग्धैः पलमानस्य सेवनात् ॥
नागफेनविषं याति स जीवति चिरं पुमान् ॥ १८९ ॥
उग्रासिन्धुस्तथा कृष्णा मज्जमादनकं फलम् ॥
तप्तनीरेण तद्देयमहिफेनविषं जयेत् ॥ १९० ॥
टङ्कणं नीलतुत्थं च घृतयुक्तं च दापयेत् ।
तेन वान्तिर्भवेत्सद्यो नागफेनविषं जयेत् ॥ १९१ ॥

बडी कटेरीका चार तोला रस दूधके साथ सेवन करे तो अफीमका विष नष्ट होता है और वह मनुष्य चिरकाल तक जीवित रहता है अथवा वच, सेंधानमक, पीपल, मैनफलकी मज्जा इन सबको गरम जलके साथ सेवन करावे तो अफीमका विष दूर होवे अथवा सुहागा, नील, नीलाथोथा इन सबको बारीक पीस घृतमें मिलाकर सेवन करावे तो शीघ्रही वमन होकर अफीमका विष नष्ट होवे१८९-१९१॥

धत्तूरविषशान्त्युपायाः ।

वृन्ताकफलबीजस्य रसो हि पलमात्रकः ।
भक्षणाद्धुक्तधत्तूरविषं नश्यति निश्चितम् ॥ १९२ ॥
कार्पासास्थि तथा पुष्पं जलेनोत्क्वाथ्य पानतः ।
धत्तूरस्य विषं हन्ति तथा लवणसेवनात् ॥ १९३ ॥

गोदुग्धप्रस्थमेकं तु शर्करायाः पलद्वयम् ।
तत्पानतो विषं याति धत्तूरस्य तु निश्चितम् ॥ १९४ ॥

बैंगनके बीजोंका चार तोला रस भक्षण करनेसे खायेहुए धतूरेका विष निश्चयसे दूर होता है । बिनौले और कपासके फूलोंका काढा बनाकर पीनेसे भी धतूरविष शान्त होजाता है, अथवा नमकके सेवनसे भी यह विष नष्ट होता है अथवा गौके एक प्रस्थ (६४ तोले) दूधमें दो पल मिश्री मिलाकर सुखोष्ण पान करे तो धत्तूरविष निश्चयसे शान्त हो ॥ १९२–१९४ ॥

वत्सनागविषशान्त्युपायः ।

पटवणस्य वृक्षस्य रसं पलप्रमाणकम् ।
शर्करायुक्तपानेन वत्सनागविषं हरेत् ॥ १९५ ॥

हीरवण वृक्षके चार तोले रसमें मिश्री डालकर पीवे तो वच्छनागविषको नष्ट करे ॥ १९५ ॥

भल्लातकविषशान्त्युपायः ।

स्वरसो मेघनादस्य नवनीतेन संयुतः ।
भल्लातकभवं शोफं हन्ति लेपेन तत्क्षणात् ॥ १९६ ॥
दारुसर्षपमुस्तानि नवनीतेन लेपयेत् ।
भल्लातकविकारोऽयं सद्यो गच्छति निश्चितम् ॥ १९७ ॥
नवनीतं तिलं दुग्धं पुनः खण्डयुतेन च ।
लेपनाच्छमनं याति भल्लातकव्यथा त्वरम् ॥ १९८ ॥

मक्खन सहित चौलाईके रसका भिलावाँकी सूजन पर लेप करे तो तत्कालही उस शोफको नाश करता है। अथवा देवदारु, सरसों, नागरमोथा इन सबको बारीक पीसकर मक्खनयुक्त लेप करे तो शीघ्र ही भल्लातकजनित विकार शान्त होताहै । अथवा मक्खन, तिल, दूध इन सबका लेप करनेसे भिलावाँसे उत्पन्न व्यथा शीघ्र ही नष्ट होती है ॥ १९६–१९८ ॥

विजयाविकारशान्त्युपायः ।

शुण्ठी गोदधियुक्ता च पीता भङ्गाविकारनुत् ॥ १९९ ॥

सोंठको बारीक पीसकर गौके दहीके साथ पान करे तो भाँगके विकारको शान्त करता है ॥ १९९ ॥

गुञ्जाविकारशान्त्युपायः ।

मेघनादरसो ग्राह्यः शर्करायुक्तपानतः ।
उच्चटायाः विकारस्य शान्तिः स्याद्दुग्धसेवनात् ॥ २०० ॥
मधुखर्जूरिमृद्वीका तिन्तिडीकाम्लदाडिमौ ।
परूषैरामलश्चैव युक्तः सद्यो विकारनुत् ॥ २०१ ॥

चौलाईके रसमें मिश्री मिलाकर पान करे और इसके ऊपर दूधका सेवन करे तो घूँघचीके विकारकी शान्ति हो, अथवा शहद, छुहारा, दाख, खट्टा अनार, फालसा, आँवला इन सबको एकमें मिलाकर सेवन करे तो शीघ्रही घूंघचीका विकार शान्त हो ॥ २०० ॥ २०१ ॥

करवीरविषशान्त्युपायः ।

सितायुक्तं सदा देयं दधि वा माहिषं पयः ।
तथा चार्कत्वचा पीता करवीरविषापहा ॥ २०२ ॥

भैंसीके दूध वा दहीमें मिश्री मिलाकर पान करे तो कनेरका विष दूर होजाताहै । अथवा आककी छालका पान करे तो भी कनेरका विष दूर होताहै २०२॥

वज्रीविषशान्त्युपायः ।

शीतवारियुता पीता सिता वज्री विषापहा ।
वस्त्रवायुस्तथा कार्यः शीतच्छायां च संभजेत् ॥ २०३ ॥
चिञ्चापत्रं जले पिष्ट्वा मर्दयेच्छान्तिकृत्सदा ।
हेमगैरिकयुग्वारिस्नुह्यर्कजविकारनुत् ॥ २०४ ॥

ठंढे जलमें मिश्री मिलाकर पान करे और कपडेके व्यजनका वायु तथा शीतल:छायाका सेवन करे तो थूहरका विष शान्त हो । अथवा इमलीके पत्तोंको पानीमें पीसकर देहमें मर्दन करे तो थूहरका विष शान्त हो । अथवा सोनागेरूको जलमें पीसकर पान करे तो थूहर और आकका विष शान्त हो॥२०३॥२०४॥

जयपालविषशान्त्युपायः ।

धान्यकं सितया युक्तं दध्ना सह च यः पिबेत् ।
देहे जैपालजो व्याधिर्नाशमाप्नोति निश्चितम् ॥ २०५ ॥

धनियाँ और मिश्रीको बारीक पीसकर दहीके साथ पान करे तो शरीरमें जमालगोटेके विषसे उत्पन्न जो व्याधि है वह निश्चयसे नाशको प्राप्त होती है२०५

त्रिंशत्तमेस्मिन्नध्याये विषोपविषवर्णनम् ।
सम्यक्कृतं मया वत्स तत्त्वतस्तान्निबोध हि ॥ २०६ ॥

हे वत्स ! मैंने इस तीसवें अध्यायमें अच्छे प्रकारसे विष और उपविषोंका वर्णन किया, तुम उसको यथायोग्य जानो ॥ २०६ ॥

अथ प्रथमखण्डस्योपसंहारः ।

रसोत्पत्तिश्च यन्त्राणां वर्णना रससंस्कृतिः ।
रसस्य मारणं तद्वद्धिङ्गुलस्य च वर्णनम् ॥
अभ्रकस्य ततस्तालस्याञ्जनादेस्तथैव च ।
रसानामुपपूर्वाणां वर्णनं स्वर्णरौप्ययोः ॥
जसदस्य च ताम्रस्य वङ्गस्याथो हि वणनम् ।
लोहसीसकयोश्चैव मण्डूरस्य तथैव च ॥
माक्षिकद्वयकस्याथ मिश्रकाध्याय एव च ।
विमलातुत्थचपलारसकानां शिलाजतोः ॥
साधारणरसाध्यायो ह्यध्यायौ रत्नयोस्तथा ।
विषोपविषकाध्यायः पूर्वखण्ड इतीरिताः ॥
अध्यायास्त्रिंशदिह हि फल्गु हित्वा मनीषिभिः ।
सारं ग्राह्यं पौरुषेये क्वनु निर्दोषता भवेत् ॥

इस पूर्वखण्डमें क्रमसे-रसोत्पत्ति १, यन्त्रवर्णन २, रससंस्कार ३, रसमारण ४, हिङ्गुलवर्णन ५, गन्धकवर्णन ६, अभ्रकवर्णन ७, हरितालवर्णन ८, अञ्जनादिवर्णन ९, उपरसवर्णन १०, सुवर्णवर्णन ११, रौप्यवर्णन १२, ताम्रवर्णन १३, वङ्गवर्णन १४, जसदवर्णन १५, सीसकवर्णन १६, लोहवर्णन १७, मण्डूरवर्णन १८, मिश्रकधातुवर्णन १९, स्वर्णमाक्षिक २०, रौप्यमाक्षिकवर्णन २१, विमलावर्णन २२, तुत्थवर्णन २३, चपलकंकुष्ठवर्णन २४, रसकवर्णन २५, शिलाजतुवर्णन २६, साधारणरस-शंखिया अम्बर आदि वर्णन २७, रत्नवर्णन २८, उपरत्नवर्णन २९, विषोपविषवर्णन ३० ये तीस अध्याय हैं इनमें जो कुछ सार पदार्थ हो उसका स्वीकार करना दोषोंको न देखना यह विद्वानोंका कार्य है। क्योंकि मनुष्योंके कर्मोंमें सदा ही कुछ न कुछ दोष रह ही जाते हैं ॥

दोहा—त्रिंशत् अध्यायनविषे, गुरुशिष्यसंवाद ।
प्रथम खण्ड पूरण कियो, लिखकर रामप्रसाद ॥ १ ॥
उभयलोक कल्याणप्रद, रसग्रन्थनको सार ।
कुशल होहिं रसकर्ममें, पढहिं जे भले प्रकार ॥ २ ॥
रसविषयक पौराणको, समुझि लिख्यो अनुकूल ।
निरखि छमहिं बुधजन मोहिं, यदि कहुं हो प्रतिकूल ॥ ३ ॥
सोरठा—निज बालकसम जानि, गुरुजन मोहिं प्रशंसहीं ।
नहिं ताते कछु हानि, जगनिंदक यदि निन्दहीं ॥ ४ ॥

इति श्रीपाटियालाराज्यान्तर्गतटकसालनिवासी पं० द्वारिका-
दासोपाध्यायात्मजरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते
रसेन्द्रपुराणे प्रथमखण्डः समाप्तः ॥ १ ॥

वैद्यक ग्रन्थ

अष्टांगहृदय - (वाग्भट्ट) संपूर्ण - श्री वाग्भट्ट कृत मूल की आयुर्वेदाचार्य पं. शिवशर्माजी कृत 'शिवदीपिका' नामक सरल हिन्दी टीका सहित ।

अष्टांग हृदय - (वाग्भट्ट) सूत्रस्थान - श्री वाग्भट्ट कृत मूल की पं. शिवशर्मा कृत 'शिवदीपिका' नामक सरल हिन्दी टीका सहित ।

अमृत सागर - (हिन्दी में) इसमें सर्व रोगों के वर्णन और यत्न हैं ।

अर्क प्रकाश - (लंकापति रावण कृत) हिन्दी टीका सहित ।

अनुपान दर्पण - हिन्दी टीका सहित ।

अनुभूत योगावली - चिकित्साग्रन्थ ।

इलाजुल गुर्बा - हिन्दी अनुवाद ।

कल्प पञ्चक प्रयोग - हिन्दी टीका सहित ।

कामसूत्र - महर्षि वात्सायन प्रणीत पं. यशोधर विरचित जयमङ्गलाख्या व्याख्या तथा रिसर्च स्कॉलर पं. माधवाचार्य कृत, पुरुषार्थ प्रभाख्य हिन्दी टिका व टिप्पणी से विभूषित ।

कामरत्न - योगेश्वर नित्यनाथ प्रणीत और स्व. वि. वा. पं. ज्वालाप्रसादजी मिश्र कृत, हिन्दी टीका सहित ।

कुमारतन्त्र - लंकाधिपति रावण कृत, हिन्दी टीका सहित ।

कोकसार वैद्यक - नारायणप्रसाद मिश्र कृत तथा इक्षा गिरीजी कृत कामकलासार सहित ।

गुणों की पिटारी - काशी निवासी स्वामी परमानंद कृत हिन्दी भाषा में ।

चक्रदत्त - चिकित्सासार संग्रह । दत्तकुलोत्पन्न चरकच्चतुरानन श्रीमच्चक्रपाणि विरचित । श्रीवाराणसीस्थ हिन्दु विश्व विद्यालयस्थायुर्वेद विद्यालयाध्यापक श्री. पं. जगन्नाथ शर्मा वाजपेयी, आयुर्वेदाचार्य द्वारा नितांत परिशोधित, परिष्कृत सुबोधिनी हिन्दी टीका सहित ।

चरक संहिता - वैद्यरत्न पं. रामप्रसाद राजवैद्य कृत हिन्दी टीका सहित एवं विद्यालंकार आयुर्वेदाचार्य पं. शिवशर्माजी द्वारा संशोधित ।

द्रव्यगुण - दत्तकुलोत्पन्न - चरकचतुरानन - चक्रपाणि विरचित, स्व. वि. वा. पं. ज्वालाप्रसादजी मिश्र कृत, हिन्दी टीका सहित ।

नपुंसकामृतार्णव -वैद्यरत्न पं. रामप्रसादजी राजवैद्य कृत हिन्दी टीका सहित ।

नाड़ीदर्पण - हिन्दी टीका सहित।

नाड़ी परीक्षा- हिन्दी टीका सहित। अति सुलभ।

नाड़ी विज्ञान - महर्षि कणाद मुनि प्रणीत। हिन्दी टीका सहित।

पशु चिकित्सा - (वृषकल्पद्रुम) छन्दबद्ध भाषा।

पारद संहिता - अग्रवाल कूलभूषण अलीगढ़ निवासी बां. निरंज्जनप्रसाद गुप्त संग्रहीत तथा व्यासोपाह्न जेष्ठमल्ल काव्यतीर्थ कृत हिन्दी टीका सहित।

बालतन्त्र - कल्याणवैद्य रचित, हिन्दी टीका सहित।

बृहन्निघण्टुरत्नाकर - (प्रथम भाग) पं. दत्ताराम चौबे द्वारा संकलित, हिन्दी टीका सहित। इसमें शरीराध्याय, यंत्राध्याय, शस्त्रविचारणाध्याय, योगसूत्राध्याय, अष्टविधशस्त्रकर्माध्याय, इत्यादि वर्णित है।

बृहन्निघण्टुरत्नाकर - (द्वितीय भाग) हिन्दी टीका सहित। इसमें क्षारपाकविधि, अग्निकर्म, दोषधातु मलवृद्धि, दोष वर्णन, ऋतुचर्या, दिनचर्या, रात्रिचर्या और नाड़ीदर्पणादि वर्णन भलीभांति किया गया है।

बृहन्निघण्टुरत्नाकर - (तृतीय भाग) पूर्वोक्त सर्वालंकारों से विभूषित विविध रोगों की चिकित्सा का संग्रह।

बृहन्निघण्टुरत्नाकर - (चतुर्थ भाग) - चिकित्साखण्ड पूर्वोक्त सर्वालंकारो से विभूषित।

बृहन्निघण्टु रत्नाकर - (पंचम भाग) - रोगों का कर्म विपाक।

बृहन्निघण्टु रत्नाकर - (षष्ठम् भाग) - रोगों का चिकित्सा विभाग।

बृहन्निघण्टु रत्नाकर (सप्तम् - अष्टम् भाग) अर्थात ''शालिग्राम निघण्टु भूषण''। स्व. लाला. शालिग्राम संकलित इस ग्रन्थ में संस्कृत, हिन्दी, बंगाली, मराठी, गुजराथी, द्राविडी, तैरंगी, औत्कली, इंग्लिश, लैटिन, फारसी अरबी आदि अनेक देशदेशांतरीय भाषाओं में सर्व औषधियों के नाम दिये है, तथा उनके गुणों का वर्णन औषधियों के चित्रों सहित दिया है। दो रंगों में।

भावप्रकाश - तीनों खण्ड, भावमिश्र संगृहीत। हिन्दी टीका सहित। हिन्दी टीकाकार गो. वा. लालाशालिग्रामजी।

भैषज्य रत्नावली - हिन्दी टीका सहित। मूल रचयिता - श्री गोविन्ददासजी सेन, हिन्दी टीकाकार - स्व. वैद्य पं. शंकरलालजी।

मदनपाल निघण्टु - वैद्यरत्न पं. रामप्रसाद राजवैद्य कृत, अत्युत्तम हिन्दी टीका सहित। इसमें औषधों के नाम व गुणदोष वर्णन हैं।

माधवनिदान - पं. दत्ताराम चौबे कृत, हिन्दी टीका सहित।

योगचिन्तामणि - पं. दत्ताराम चौबे कृत हिन्दी टीका सहित।

रसायनविधि - (हिन्दी में) वैद्यशास्त्री पं. गौरीशंकरजी द्वारा संग्रहीत।

वंगसेन - भीषक्‌शिरोमणि स्व. लालाशालिग्रामजी कृत हिन्दी टीका सहित।

वैद्यक रसराज महोदधि - भगत भगवानदास कृत, पांच भागों में

शार्ङ्गधरसंहिता - वैद्यरत्न पं. रामप्रसादजी राजवैद्य कृत हिन्दी टीका सहित।

शालिग्रामौषधि शब्दसागर - अर्थात् आयुर्वेदीय औषधिकोष। गो. वा. लालाशालिग्रामजी वैश्य कृत।

सिस्टिम ऑफ आयुर्वेद - (इंग्लिश में) पंजाब के आयुर्वेदज्ञ वैद्यरत्न पं. शिवशर्माजी की दिव्य लेखनी की कृती है।

सुश्रुत संहिता- चारो भागों का संपूर्ण सेट, दो जिल्दों में। स्व. पं. मुरलीधरजी शर्मा राजवैद्य कृत सान्वय, सट्टिप्पण, सपरिशिष्ठ हिन्दी टीका सहित। प्रथम भागमें सूत्रस्थान, द्वितीय भाग में निदानस्थान एवं शारीरस्थान, तृतीय भाग में चिकित्सास्थान एवं कल्पस्थान, चतुर्थ भाग में उत्तर तन्त्र हैं। इसमें संपूर्ण रोगों का निदान, लक्षण और औषधियों के प्रचार वा प्रत्त्येक रोगपर क्वाथ, चूर्ण, रस और घी आदि से अच्छे प्रकार से चिकित्सा वर्णित है।

सुश्रुत संहिता - (प्रथम भाग) सूत्रस्थान - उपरोक्त सर्वालंकारों संहित।

सुश्रुत संहिता - (द्वितीय भाग) - निदानस्थान एवं शारीरस्थान - उपरोक्त सर्वालंकारो सहित।

सुश्रुत संहिता - (तृतीय भाग) - चिकित्सास्थान एवं कल्पस्थान - उपरोक्त सर्वालंकारो सहित।

सुश्रुत संहिता - (चतुर्थ भाग) - उत्तरतन्त्र - उपरोक्त सर्वालंकारो सहित।

हितोपदेश वैद्यक - जैनाचार्य श्रीकण्ठजी कृत, हिन्दी टीका सहित।

होम्योपैथी - (हिन्दी में) - लेखक डॉ. मुकेश बत्रा। (पेपर बैक एडीशन)

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन
मुंबई